DISCOVERY®

...Discover your mettle

सामान्य अध्ययन

भारतीय अर्थव्यवस्था

मुख्य परीक्षा

(भाग-1)

Downloaded From
www.studymaterialofficial.com

Personal copy
not for sale
and circulation

Head Office (B-14) Basement Commercial Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
E-mail:discoveryiasacademy@gmail.com
Enquiry: 011-32906050, 9313058532, 9999044179

Lucknow Branch: Arif chamber IV, Ist Floor Above Maha Laxmi Sweets, Purania chauraha Aliganj
PH: 08960240900

Visit us at: www.discoveryiasacademy.com

Downloaded From
www.studymasterofficial.com

विषय सूची

आधारभूत संकल्पनाएं Basic Concepts (1–13)

- व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र (Micro & Macro Economics)
- विकास अर्थशास्त्र (Development Economics)
- कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics)
- केंद्रीकृत योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Centrlized Planned Economy)
- बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy)
- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था (Least Developed Economy)
- पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalist Economy)
- समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy)
- मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)
- आर्थिक विकास (Economic Development)
- मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)
- आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)
- विकास के कारक (Factors of Development)
- भारतीय अर्थव्यवस्था : एक परिचय (Indian Economy: An Introduction)
- सतत् विकास (Sustainable Development)

राष्ट्रीय आय National Income (14–19)

- राष्ट्रीय आय का महत्व (Significance of National Income)
- राष्ट्रीय आय की माप (Mesurment of National Income)
- उत्पादन इकाइयों का औद्योगिक वर्गीकरण (Industrial Classification of Production Units)
- मांग और पूर्ति की संकल्पना (Concept of Demand and Supply)

भारत में नियोजन Planning in India (20–36)

- भारत में नियोजन का इतिहास (History of Planning in India)
- भारतीय नियोजन की विशेषताएं (Features of Indian Planning)
- आर्थिक नियोजन एवं मुक्त बाजार (Economic Planning and Open Market)
- नियोजन के प्रकार (Types of Planning)
- भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य (Objects of Economic Planning in India)
- पंचवर्षीय नियोजन (Five Year Plans)
- भारत में योजना रणनीति (Planning Strategy in India)
- योजना आयोग (Planning Commission)
- राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council)
- भारत विजन 2020 (India Vision 2020)
- आर्थिक सुधार एवं नियोजन की भूमिका (Economic Reforms and Role of Planning)
- 1991 का संकट और आर्थिक नीति में सुधार (1991 Crisis & Reforms in Economic Policies)
- आर्थिक नियोजन की भूमिका (Role of Economic Planning)

संसाधनों का जुटाव Mobilization of Resources (37–77)

मुद्रा और बैंकिंग (Money and Banking)

- महत्वपूर्ण शब्दावली (Importnat Terms)
- भारतीय मौद्रिक प्रणाली (Indian Monetary System)
- मुद्रा आपूर्ति (Money Supply)
- मुद्रा बाजार (Money Market)
- भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)
- मुद्रा स्फीति (Inflation)
- भारत में बैंकिंग संरचना (Banking Structure in India)
- भारत में इस्लामी बैंकिंग (Islamic Banking in India)
- सार्वत्रिक बैंकिंग (Universal Banking)
- भारत में बैंकिंग की प्रगति एवं प्रवृतियां (Progress and trends of Banking in India)
- गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (Non–Banking Financial Companies)
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank)
- भारतीय आयात-निर्यात बैंक (Export–Import Bank of India)
- भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India)
- भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) (SIDBI)
- राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank)
- सहकारी बैंक (Co–Operative Bank)
- विदेशी वाणिज्यिक बैंक (Foregin Commercial Bank)
- निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks)
- वित्तीय संस्थाओं के लिए पूंजी पर्याप्तता मानक (Capital Adequacy Standard for Financial Industries)
- पूंजी पर्याप्तता निर्धारण में पूंजी से तात्पर्य (Meaning of Capital in Determining Capital Adequacy)
- परिसम्पत्ति प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन तथा प्रतिभूति लाभ प्रवर्तन अध्यादेश 2002
- बैंकिंग लोकपाल योजना (Banking Ombudsman Scheme)
- बैंकिग क्षेत्र के सुधार (Banking Sector Reforms)
- नरसिंहम समिति (Narshimham Commettee)
- भारतीय बैंकिंग प्रणाली में गैर निष्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (N.P.A. in Indian Banking System)

Downloaded From www.studymasterofficial.com

- निष्पादनीय अथवा मानक परिसम्पत्तियाँ (Performing or Standerd Assets)
- गैर निष्पादनीय परिसम्पतियाँ (Non–Performing Assets)
- भारत में म्यूचुअल फण्ड (Mutual Funds in India)
- साझा कोष योजनाओं के प्रकार (Types of Muntual Fund Schemes)
- भारत में गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों की भूमिका (Role of NBFCs in India)
- भारत में पूँजी बाजार (Capital Market in India)
- पूंजी बाजार से संबंधित प्रमुख शब्दावली (Important Terms regarding Capital Market)

पूंजी बाजार (Capital Market)

- पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में अंतर (Differences between Capital Market and Money Market)
- पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में परस्पर संबंध (Relations between Capital Market and Money Market)
- पूंजी बाजार के अवयव (Components of Capital Market)
- वित्तीय मध्यस्थ (FIs– Financial Intermediaries)
- भारत का पूँजी बाजार (Capital Market in India)
- वृहद पूँजी बाजार (Macro Capital Market)
- ऋण बाजार (Debt Market)
- सरकारी बांड (Government Bonds)
- कारपोरेट बांड बाजार (Corporate Bond Market)
- डिपाजिटरी रिसीट (Depositry Receipts)
- पूँजी बाजार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य (Importnat facts regarding Capital Market)
- विदेशी मुद्रा का वायदा कारोबार (Future Trading of Foreign Currency)
- निक्षेप-निधि (डिपॉजिटरी) प्रणाली की अवधारणा (Concept of Dipository System)
- सर्किट ब्रेकर (Circuit Breaker)
- इनसाइडर (Insider)
- इनसाइडर ट्रेडिंग (insider Trading)
- Clause–49
- क्यू.आई.पी. (QIP)
- क्लियरिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लि. (Clearing Corporation of India Ltd)
- कोलम्बो प्लान (Colombo Plan)
- भारत में स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchanges in India)
- मिबोर तथा मिबिड (MiBok and MiBiD)
- भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) (Securities and Exchange Board of India)
- शेयरों की पुनर्खरीद : नई व्यवस्था (Buy Back of Shares: New System)
- द नेशनल सिक्युरिटीज डिपाजिटरी लिमिटेड (NSDL)
- सेन्ट्रल डिपाजिटरी सर्विसेज (इण्डिया) लिमिटेड (CDSL)

लोक वित्त Public Finance (78–103)

- लोक वित्त से संबंधित प्रमुख शब्दावली (Important Terms regarding Public Finance)
- संघ-राज्य वित्तीय संबंध (Union–State Financial Relation)
- केन्द्रीय राजस्व का वितरण (Distribution of Central Revenue)
- राज्य सरकारों के कर स्रोत (Tax Sources of State Governments)
- केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में गैर कर राजस्व का वितरण (Distribution of Non Tax Revenue between Centre and State Governments)
- केन्द्र एवं राज्य सरकारों के ऋण प्राप्ति सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions Relating to Borrowings by Union & State Governments)
- वित्त आयोग (Finance Commission)
- 13 वां वित्त आयोग (13th Finance Commission)
- बजट (Budget)
- भारत में बजट संबंधी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision Regarding Budget in India)
- बजट के घटक (Components of Budget)
- केन्द्र तथा राज्य सरकार के खाते (Accounts of Centre and State Governments)
- राजकोषीय प्रबंधन (Fiscal Management)
- भारत में राजकोषीय सुधार (Fiscal Reforms in India)
- राजकोषीय घाटा एक बेहतर माप क्यों है? (Why Fiscal Deficit is a better Measurment?)
- घाटा पूरा करने के वित्तीय स्रोत (Financial Sources to Cover up Deficit)
- हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)
- बजटीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Budgetary Policy)
- राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)
- राजकोषीय उत्तदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम 2003 (FRBM Act. 2003)
- भारत की राजकोषीय नीति के दोष (Shortcomings of Indian Fiscal Policy)
- भारतीय कर प्रणाली की विशेषताएं (Characteristics of Indian Tax System)
- कर सुधार से सम्बंधित प्रमुख समितियाँ (Important Commetties Regarding Tax Reforms)
- मूल्य वर्द्धित कर (वैट) (Value Added Tax)
- नया डायरेक्ट टैक्स कोड (New Direct Tax Code)

गुड्स एवं सर्विसेज टैक्स (GST)

गरीबी एवं बेरोजगारी Poverty & Unemployment (104–120)

- गरीबी की परिभाषा (Definition of Poverty)
- निर्धनता रेखा (Poverty Line)

Downloaded From www.studymasterofficial.com

- गरीबी निर्धारण से संबंधित समितियाँ (Committiees Regarding Poverty Determination)
- गरीबी निवारण के विशिष्ट कार्यक्रम (Spacial Programmes of Poverty alleviation)
- गरीबी; नई चुनौतियां और उपाय (Poverty– New Chalanges and Measures)
- बेरोजगारी (Unemployment)
- भारत में गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार कार्यक्रम: (Poverty Eradication and Employment Programmes in India)
- ग्रामीण विकास से संबंधित नवीन योजनाएं (New Schemes regarding Rural Development)
- हाल मे किए गए सामाजिक सुरक्षा उपाय: (Recent Social Security Measures)
- यू.आई.डी प्रणाली (UID System)

कृषि Agriculture (121–159)

- भूमिका (Introduction)
- कृषि में पूंजी की भूमिका (Role of Capital in Agriculture)
- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व (Significance of Agriculture in India Economy)
- भारतीय कृषि की विशेषताएं (Features of Indian Agriculture)
- कृषि के पिछड़ेपन के कारण (Causes of Agricultureal Backwordness)
- कृषि तथा उद्योग में अन्तर्सम्बन्ध (Inter relation between Agriculture and Industry)
- कृषि विकास में औद्योगिक विकास की भूमिका (Role of Industrial Development in Agricultural Development)
- 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) के दौरान कृषि क्षेत्र का निष्पादन (Performance of Agriculture During 11th Plan)
- कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम (Special Programmes for Pramoting Agricultural Production)
- भारत में हरित क्रान्ति (Green Revolution in India)
- द्वितीय हरित क्रान्ति (Second Green Revolution)
- काट्रैक्ट फार्मिंग (Contract Farming)
- ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता की समस्या (Problem of Rural or Farmer indebterdness)
- कृषि ऋणग्रस्तता (Agricultural Indebtedness)
- किसानों के लिए ऋण माफी योजना (Loan Waiver Scheme for Farmers)
- राष्ट्रीय कृषि नीति, 2000 (National Agriculture Policy 2000)
- राष्ट्रीय बीज नीति, 2002 (National Seed Policy, 2002)
- राष्ट्रीय कृषक नीति, 2007 (National Policy on Farmers)
- राष्ट्रीय कृषक आयोग (National Commission for Farmers)
- काश्तकारी प्रणाली एवं भूमि सुधार (Tenancy System & Land Reforms)
- कीमत प्रबंधन (Price Management)
- लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS)
- कृषि वित्त (Agricultural Finance)
- भारत में कृषि विपणन (Agri Marketing in India)
- गेहूं-चावल का वायदा व्यापार (Future Trading of Wheat and Rice)
- विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि (WTO and Indian Agriculture)
- वैश्वीकरण और भारतीय कृषि की प्राथमिकताएं (Globalisation and Priorities of India Agriculture)
- हॉगकांग सम्मेलन में कृषि संबंधी प्रावधान (Provisions regarding agriculture in Hongkong Conference)
- कृषि क्षेत्र में चुनौतियां और संभावनाएं (Challenges and Prospects in Agro Sector)
- भारत में सहकारिता (Co–operative in India)

औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Sector) (160–194)

- भारत में सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector in India)
- निजीकरण (Privatization)
- विनिवेश नीति (Disinvestment Policy)
- नई विनिवेश नीति (New Disinvestment Policy)
- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश (Disinvestment in Public Sector Enterprises)
- राष्ट्रीय निवेश कोष (National Investment Fund)
- बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporations)
- भारत में निगमित शासन (Corporate Governance in India)
- उद्योग (Industry)
- भारत में औद्योगिक नीति एवं लाइसेंस व्यवस्था (Industrial Policy and Lience System in India)
- नवगठित प्रतिस्पर्द्धा आयोग (Newly Constituted Competition Commission)
- लघु उद्योग (Small Scale Industries)
- मध्यम स्तरीय उद्योग (Medium Industries)
- औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness)
- उद्योगों के सन्दर्भ में सरकार की नीति (Government Policies Regarding Industries)
- औद्योगिक वित्त (Industrial Finance)

Downloaded From www.studymasterofficial.com

Downloaded From
www.studymasterofficial.com

1. आधारभूत संकल्पनाएं
BASIC CONCEPTS

व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र (Micro & Macro Economics)

परंपरागत रूप से अर्थशास्त्र की विषय वस्तु का अध्ययन दो व्यापक शाखाओं के अंतर्गत किया जा रहा है। व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम बाजार में उपलब्ध विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास करते हैं कि इन बाजारों में व्यक्तियों की अंत:क्रिया द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्राएँ और कीमतें किस प्रकार निर्धारित होती है। इसके विपरीत समष्टि अर्थशास्त्र में हम कुल निर्गत, रोजगार तथा समग्र कीमत स्तर आदि समग्र उपायों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए पूरी अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास करते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि समग्र उपायों के स्तर किस प्रकार निर्धारित होते हैं तथा उनमें समय के साथ साथ परिवर्तन किस प्रकार आता है। समष्टि अर्थशास्त्र में अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार हैं- अर्थव्यवस्था में कुल निर्गत का स्तर क्या है? कुल निर्गत निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? कुल निर्गत में समय के साथ किस प्रकार वृद्धि होती रहती है? क्या अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण रूप से उपयोग न होने के क्या कारण हैं? कीमतों में वृद्धि क्यों होती है? अत: जिस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र में विभिन्न बाजारों का अध्ययन किया जाता है वैसा समष्टि अर्थशास्त्र में नहीं। समष्टि अर्थशास्त्र में हम अर्थव्यवस्था के कार्य निष्पादन की समग्र अथवा समष्टिगत उपायों के व्यवहार का अध्ययन करने का प्रयास करते हैं।

विकास अर्थशास्त्र (Development Economics)

ऐसे अर्थशास्त्र में आर्थिक प्रगति लाने वाले सभी कारकों का सामूहिक अध्ययन किया जाता है। सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक रूप से यह कहना तर्कसंगत है कि कोई भी कारक अकेला या तो प्रभावी नहीं हो सकता या प्रकृति प्रगति के लिए सक्षम नहीं होता। इस कारण विकास अर्थशास्त्र की विषय वस्तु में ऐसे सभी कारणों एवं उनके व्यवहारों के अध्ययन के अतिरिक्त अनेक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके संरचनात्मक अवयवों के भौतिक तथा मानवीय पूंजी की पहचान की गई है। अत: इस प्रकार के आर्थिक नीतियों का उद्देश्य इन संरचनात्मक अवयवों के बीच संतुलन स्थापित करना है। विकास अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण प्राकृतिक तथा संसाधनों का विकास और उनके अनुकूलतम अनुप्रयोग तथा संरक्षण के साथ-साथ शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में निवेश कर मानवीय पूंजी को सुदृढ़ बनाना भी है। कार्यात्मक अवयव के सन्दर्भ में बाजारों का कार्यनिष्पादन सबसे महत्वपूर्ण है जो पूर्ण रूप से वितरण की कार्यकुशलता पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त विकास अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य विषमताओं में कमी लाना है। अत: स्पष्ट है, कि वितरण की कार्यकुशलता विकास अर्थशास्त्र को व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र से जोड़ती है जबकि विषमताओं में कमी लाने वाला उद्देश्य इसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र से जोड़ता है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics)

इसका मूल आधार मूल्य निर्णय तथा समता है। ऐसे अर्थशास्त्र का उद्देश्य यह परीक्षण करना होता है कि एक नियत अवधि में

Downloaded From www.studymasterofficial.com

आर्थिक तथा उन्हें प्रभावित करने वाली गैर आर्थिक गतिविधियां कितनी प्रभावशाली हैं, दूसरे शब्दों में आर्थिक लाभों को बुनियादी सेवाओं में रूपान्तरित करने वाली प्रक्रिया ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है।

केंद्रीकृत योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Centrlized Planned Economy)

केंद्रीयकृत योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सरकार या केंद्रीय सत्ता उस अर्थव्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण क्रियाकलापों की योजना बनाती है। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग से संबद्ध सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय सरकार द्वारा किये जाते हैं। वह केंद्रीय सत्ता संसाधनों का विशेष रूप से विनिधान करके वस्तुओं एवं सेवाओं का अंतिम संयोग प्राप्त करने का प्रयास कर सकती है। जो पूरे समाज के लिए वाँछनीय है।

बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy)

केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के विपरीत बाजार अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक क्रियाकलापों का निर्धारण बाजार की स्थितियों के अनुसार होता है। अर्थशास्त्र के अनुसार,बाजार, एक ऐसी संस्था है। जो अपने आर्थिक क्रियाकलापों का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों को निर्बाध अंत: क्रिया प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में बाजार व्यवस्थाओं का ऐसा समुच्चय है, जहाँ आर्थिक अभिकर्ता मुक्त रूप से अपने धन अथवा अपने उत्पादों का परस्पर निर्बाध आदान प्रदान कर सकते हैं। बाजार व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु तथा सेवा की एक तय कीमत होती है। (जिस पर क्रेता एवं विक्रेता में सहमति होती है)। क्रेताओं तथा विक्रेताओं का परस्पर इसी कीमत पर विनिमय होता है।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था (Least Developed Economy)

अल्प विकसित अर्थव्यवस्था का तात्पर्य पिछड़ी अर्थव्यवस्था से है। वस्तुत: प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय दो ऐसे कारक हैं जिनके आधार पर अल्प विकसित एवं विकसित अर्थव्यवस्थाओं को एक-दूसरे से भिन्न कर परिभाषित किया जाता है। इस आधार पर यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ग़रीबी विद्यमान होती है। साथ ही, ऐसे देशों में नागरिकों का जीवन स्तर भी एक निश्चित स्तर से न्यून होता है। जैकॉब वायनर के अनुसार, 'अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता होती है तथा वहां ऐसी क्षमता भी विद्यमान होती है जिसकी सहायता से श्रम तथा पूंजी का समुचित उपयोग कर जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।' इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अल्प विकसित देशों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों तथा श्रम एवं पूंजी का समुचित दोहन नहीं किया जा सका है।

जहां तक भारत का प्रश्न है, प्रथम पंच वर्षीय योजना के प्रारूप पत्र में अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित किया गया था। दूसरी ओर, हॉफमैन ने भी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहा है कि इनकी पहचान वहां विद्यमान गरीबी के विस्तार से की जा सकती है। ऐसे देश सामान्य जनता के न्यून जीवन स्तर तथा भिखारियों की जनसंख्या के कारण पहचाने जाते हैं। लगभग सभी अल्प विकसित देशों में कुछ सामान्य गुण पाये जाते हैं जिनमें से कई गुणों की संक्षिप्त व्याख्या नीचे की गई है :

1. **आय का न्यून स्तर** :- कमोबेश सभी अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम होती है। इसके फलस्वरूप लागों को आधारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी व्यापक कठिनाइयां होती हैं। अन्तत: इससे उत्पादकता के दृष्टिकोण से उनका कार्य निष्पादन भी कम होता है। विकसित देशों की तुलना में न्यून आय वाले ऐसे देशों में जीवन प्रत्याशा भी कम होती है।
2. **न्यून जीवन स्तर** :- न्यून आय का एक प्रतिफल जीवन स्तर में होने वाली कमी है। इससे सकल राष्ट्रीय स्तर भी कम हो जाता है तथा प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत भी न्यून होती है। स्पष्टत:, ऐसे देशों में स्वास्थ्य स्तर में कमी के कारण जीवन प्रत्याशा अत्यन्त कम हो जाती है तथा जन्म दर में अप्रत्याशित वृद्धि की आंशका बढ़ जाती है।
3. **जनसंख्या अतिरेक** :- सामान्यत: अल्प विकसित देशों में जनसंख्या आधिक्य पाया जाता है। इसका मूल कारण यह है कि ऐसे

Downloaded from www.studentsofficial.com

देशों में पोषण स्तर न्यून होता है जिसके कारण मृत्यु दर अधिक होती है। अन्ततः जन्म दर में अप्रत्याशित वृद्धि हो जाती है। वस्तुतः अल्पविकसित देशों में जनसंख्या विस्फोट की स्थितियां विद्यमान होती हैं। साथ ही, अधिक जनसंख्या के कारण शिक्षा एवं स्वास्थ्य से संबंधित कई अन्य समस्याएं भी पनपती हैं।

4. **बेरोजगारी एवं प्रच्छन्न बेरोजगारी :-** अल्प विकसित देशों की एक सामान्य विशेषता यह है कि यहां व्यापक स्तर पर बेरोजगारी विद्यमान होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन देशों में संसाधनों का पर्याप्त तथा समुचित आवंटन नहीं हो पाता है। कई देशों में प्रच्छन्न बेरोजगारी की समस्या भी होती है जिसका तात्पर्य यह है कि समुचित भत्ता नहीं मिलने के कारण कार्यरत लोगों की उत्पादकता अत्यन्त कम हो जाती है।

5. **कृषि का वर्चस्व :-** अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में कृषि का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान अत्यन्त बढ़ जाता है जो अन्ततः औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों के विकास को कुप्रभावित करता है।

6. **पूंजी की अपर्याप्तता :-** आय का न्यून स्तर वस्तुतः बचत की प्रक्रिया को प्रभावित करता है जिससे पूंजी निर्माण की प्रक्रिया अन्ततः प्रभावित होती है। पूंजी की कमी अथवा अपर्याप्तता से श्रम का प्रभावकारी दोहन नहीं हो पाता जो उत्पादन तथा उत्पादकता दोनों को ही कुप्रभावित करता है।

7. **दोहरी अर्थव्यवस्था :-** सामान्यतः अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में दोहरी अर्थव्यवस्था के गुण विद्यमान होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक ओर जहां बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था कार्य करती है वहीं दूसरी ओर नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था की आवश्यकता भी महसूस होती है। इस दोहरी व्यवस्था के कारण संतुलन बनाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। साथ ही, इससे ग्राम-नगर विषमता का भी विस्तार होने की आशंका होती है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalist Economy)

बाजारी अर्थव्यवस्था आर्थिक प्रणालियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि लगभग सभी स्तरों पर आर्थिक स्वायत्तता दी जाती है। दूसरी ओर ऐसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति का अत्यधिक महत्व होता है, क्योंकि उपभोग के रूप में वृद्धि कर उत्पादकों एवं व्यापारियों को लाभ दिया जा सकता है। ऐसे आर्थिक प्रणाली का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि मांग में वृद्धि से उत्पादों एवं सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होती है, जो कि उत्पादन के स्तर पर अधिक प्रेरित करती है। इसका उद्देश्य मुनाफे में वृद्धि करना है। अतः स्पष्ट है, कि बाजारी अर्थव्यवस्था की कार्यकुशलता मुनाफे पर केन्द्रित होती है।।बाजारी अर्थव्यवस्था का नकारात्मक पक्षः-

1. बाजार के अनिश्चित व्यवहार के कारण निवेश की दर में कमी की आशंका।
2. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा से बाजारों की कार्यकुशलता में कमी की आशंका।
3. मुनाफा अर्जन की प्रवृत्तियों के कारण सामाजिक विकास कार्यक्रमों की असफलता की आशंका।
4. बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप श्वेत उत्पादों में वृद्धि से निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं के आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाने की आशंका।

समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy)

ऐसी आर्थिक प्रणाली में सभी आर्थिक निर्णय नियोजित रूप से लिए जाते हैं। उल्लेखनीय है, कि संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण होता है। नियोजन के माध्यम से भी जनता की आवश्यकताओं का आकलन उसके अनुरूप संसाधनो का आवंटन किया जाता है। ऐसी आर्थिक प्रणाली के नकारात्मक पक्षों में दो सबसे महत्वपूर्ण है:

1. लालफीताशाही के पनपने की आशंका
2. वैयक्तिक क्षमताओं के अनुरूप क्षमताओं का आवंटन नहीं होने से उत्पादकता में कमी की आशंका

www.studymasterofficial.com Downloaded From DISCOVERY

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

मिश्रित आर्थिक प्रणाली में समाजवादी तथा पूंजीवादी प्रणाली को संतुलित किया जाता है। इसकी कार्यकुशलता राज्य द्वारा किए गए विनियमन, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के संतुलन पर निर्भर करती है।

आर्थिक विकास (Economic Development)

आर्थिक विकास का अर्थ किसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था के स्तर पर लाने वाली प्रक्रिया से है जो उत्पादों एवं सेवाओं में मात्रात्मक वृद्धि में सहायक होती है।

मेयर तथा बाल्डविन के अनुसार, 'आर्थिक विकास दीर्घकाल में राष्ट्रीय आय में वृद्धि सुनिश्चित करने वाली एक प्रक्रिया है।' यह भी स्पष्ट है कि जब भी जनसंख्या वृद्धि की दर से आर्थिक विकास की दर अधिक होती है, तब प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होती है। इस कारण आर्थिक विकास में कई प्रक्रियाएं गत्यात्मक स्थितियों में विद्यमान होती हैं। इस गत्यात्मकता से मांग एवं पूर्ति दोनों की ही संरचना में व्यापक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। सामान्यत: आर्थिक विकास के निम्नांकित अवयव होते हैं :

1. यह एक प्रक्रिया है।
2. यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया का प्रतिफल है।
3. इसका प्रत्यक्ष एवं अंतरंग संबंध राष्ट्रीय आय से है।

वास्तव में, आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से दीर्घ काल में राष्ट्रीय आय में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि होती है। यह भी स्पष्ट है कि उत्पादकता एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक विकास की प्रक्रिया के माध्यम से प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि का सुनिश्चित होना अनिवार्य है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास केवल आर्थिक संरचना में परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं संस्थागत परिवर्तन भी सुनिश्चित किये जाते हैं। आर्थिक विकास के कई महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नांकित हैं:

1. उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि।
2. परंपरागत ढांचों में व्यापक तथा सकारात्मक परिवर्तन।
3. इसकी प्रकृति नैतिक होने के कारण यह समता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में सहायक है।
4. यह अपने दृष्टिकोण में सांस्कृतिक है, जिसके कारण यह उन नीतियों एवं कार्यक्रमों के निरूपण में सहायक है जो क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम हैं।

वास्तव में आर्थिक विकास कई महत्वपूर्ण गैर-आर्थिक कारकों को भी प्रभावित करता है। इनमें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य मानवीय गुण महत्वपूर्ण हैं।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

इसका प्रतिपादन 1990 में यूनाइटेड नेशनल डेवेलेपमेंट प्रोग्राम से जुड़े हुये अर्थशास्त्री महबूब उल हक तथा उनके सहयोगी अर्थशास्त्री प्रमुखतया ए.के. सेन तथा सिंगर हंस ने किया। यह तीन चरों पर आधारित है-

1. **जन्म के समय जीवन प्रत्याशा** (LEI) :- इसके आधार पर जीवन प्रत्याशा सूचकांक ज्ञात होता है, इसके आधार पर दीर्घायुता का अनुमान प्राप्त होता है।
2. **शैक्षणिक उपलब्धि** (EAI) :- इसे प्रौढ़ साक्षरता दर (4/3भार) के साथ प्राइमरी, सेकेण्डरी तथा टेरिशियरी स्कूल नामांकन (1/3भार) के अनुपात को जोड़कर प्राप्त किया जाता है।

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

3. **जीवन निर्वाह का स्तर:** जिसे क्रयशक्ति समायोजित प्रतिव्यक्ति आय (डालर में) व्यक्त किया जाता है। इससे समायोजित जी.डी.पी. प्रतिव्यक्ति सूचकांक ज्ञात किया जाता है।

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)

आर्थिक संवृद्धि उत्पादन, आय तथा अर्थव्यवस्था के अन्य महत्वपूर्ण घटकों में मात्रात्मक वृद्धि का परिचायक है। अनिवार्य रूप से यह कहा जा सकता है कि वही देश संवृद्ध है जिसकी आय में वृद्धि हो रही हो। लेकिन इसके अतिरिक्त उत्पादकता में वृद्धि भी आर्थिक संवृद्धि का प्रदर्शन करती है। आर्थिक विकास की भांति आर्थिक संवृद्धि भी एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है जिसमें कई संस्थागत कारक कार्य करते हैं। इस आधार पर आर्थिक संवृद्धि को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है जो सकल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि में सहायक है। लेकिन आर्थिक विकास की भांति यह आधारभूत संरचनाओं के सृजन में प्रत्यक्षत: सहायक नहीं है बल्कि इसके माध्यम से आर्थिक समुच्चय की वृद्धि की जा सकती है। स्पष्टत: आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि की सहायता से अर्थव्यवस्था की कमोबेश सभी समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। संक्षेप में आर्थिक संवृद्धि के निम्नांकित महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं :

1. विद्यमान उत्पादन शक्तियों में मात्रात्मक वृद्धि।
2. उत्पादन शक्तियों की उत्पादकता में वृद्धि।
3. अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन।
4. अर्थव्यवस्था के संगठनात्मक स्वरूप में परिवर्तन तथा पूंजी निर्माण एवं निवेश की मात्रा में वृद्धि।

कई अवसरों पर आर्थिक विकास एवं संवृद्धि को एक दूसरे का पर्यायवाची मान लिया जाता है लेकिन वास्तविकता में इन दोनों संकल्पनाओं में व्यापक भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता का ज्ञान नीतियों के निर्धारण तथा कार्यक्रमों के निरूपण के लिए अनिवार्य है। एक ओर जहां आर्थिक संवृद्धि आय में वृद्धि के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है, वहीं दूसरी ओर, आर्थिक विकास से सामाजिक-आर्थिक ढांचे में संस्थागत एवं संगठनात्मक परिवर्तन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में आर्थिक संवृद्धि उत्पादन शक्तियों में होने वाला मात्रात्मक परिवर्तन है जबकि आर्थिक विकास उनमें गुणात्मक परिवर्तन सुनिश्चित करती है जिसके फलस्वरूप आधारभूत संरचनाओं का सृजन तथा विकास किया जा सकता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास निश्चित रूप से आर्थिक संवृद्धि की अपेक्षा एक वृहत संकल्पना है। दूसरे शब्दों में, संवृद्धि, विकास का ही एक अभिन्न अंग है।

आर्थिक संवृद्धि (Ecomonic Growth)

साधारण अर्थों में आर्थिक संवृद्धि मात्रात्मक वृद्धि का परिचायक है जो राष्ट्रीय अथवा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के रूप में प्रतीत होती है।

तकनीकी रूप से आर्थिक संवृद्धि एक ऐसी स्थिति है जिसमें उच्च उत्पादन के साथ-साथ पूर्ण रोजगार विद्यमान होता है। पूर्ण रोजगार का अर्थ बेरोजगारी के न्यूनतम स्तर से है।

आर्थिक संवृद्धि की आधुनिक संकल्पना एडम स्मिथ एवं डेविस ह्यूम द्वारा विकसित की गई थी जब वणिकवाद (वाणिज्यवाद) का विरोध करते हुए यह कहा गया था कि किसी राष्ट्र का धन उसकी उत्पादन क्षमता है न कि बहुमूल्य धातुओं की मात्रा। ऐसी क्षमता से किसी राष्ट्र में पूँजी निर्माण की दर बढ़ती है जो आर्थिक संवृद्धि का मुख्य कारक है। एडम स्मिथ के अनुसार आर्थिक संवद्धि के लिए विनिर्माण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी राष्ट्र को निरपेक्ष लाभ प्रदान करता है।

आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत या मॉडल

1. Harrad Domar Model

इस सिद्धांत के अनुसार आर्थिक समृद्धि की दर राष्ट्रीय बचत के समानुपाती और पूँजी उत्पाद के वियुत्क्रमानुपाती पूँजी उत्पाद अनुपात का अर्थ एवं इकाई उत्पादन में लगी पूँजी की कुल मात्रा से है।

संवृद्धि के इस मॉडल का उपयोग अधिकांश राष्ट्रों द्वारा विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आर्थिक संवृद्धि के लिए किया गया था।

Downloaded from www.studymaterofficial.com

2. बहिर्जात संवृद्धि मॉडल

राबर्ट सोलो के अनुसार केवल राष्ट्रीय बचत आर्थिक संवृद्धि के लिए उत्तरदायी नहीं होती क्योंकि इससे केवल आय के स्तर का निर्धारण किया जा सकता है न कि संवृद्धि दर का। इस सिद्धांत के अनुसार आर्थिक संवृद्धि के दो मुख्य कारक हैं :

(i) पूँजी संचय

(ii) प्रौद्योगिकीय परिवर्तन

3. अतिरेक श्रम का सिद्धांत (Theory of Surplus Labour)

वास्तविक अर्थों में यह श्रम से संबंधित सिद्धांत है, लेकिन चूंकि इसमें श्रम की गतिशीलता के आधार पर किसी एक क्षेत्र में संवृद्धि की व्याख्या की गई है, अत: इसे संवृद्धि के संदर्भ में देखा जा सकता है।

इसके अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में एक परम्परागत क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में श्रम की अधिकता से उसकी कीमत कम हो जाती है। इसके फलस्वरूप मुनाफे में वृद्धि और पूँजी संचय के अधिक दर से आधुनिक क्षेत्र की संवृद्धि दर बढ़ जाती है।

4. क्रुगमैन मॉडल

इस सिद्धांत के अनुसार आर्थिक संवृद्धि सदैव केवल नवाचारों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इसके लिए निर्गम का बेहतर उपयोग निवार्य है। इस सिद्धांत की व्याख्या 1990 के दशक में द.पू. ऐशियाई अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन पर आधारित है।

5. अन्तर्जात संवृद्धि मॉडल

इस मॉडल के अनुसार आर्थिक संवृद्धि मानव पूँजी मे किए गए निवेश पर निर्भर करती है, क्योंकि यह नवाचारों का मूल आधार है। इस सिद्धांत के अनुसार ज्ञान और तकनीक संवृद्धि के दो मूख्य कारक है अत: अनुसंधान और विकास मानव पूँजी में निवेश किया जाना अनिवार्य है। इस सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए गैरी बेकर ने यह कहा है कि शिक्षा, प्रशिक्षण और स्वास्थय के क्षेत्र में किया गया व्यय मानव पूँजी निर्माण के एच्छिक प्रक्रिया है तथा इसे जनसंख्या वृद्धि का स्वभाविक प्रतिफल नहीं माना जा सकता। मानव पूँजी में मात्रा में वृद्धि से श्रम की कुशलता बढ़ती है जिससे बचत और पूँजी संचय की दर में भी वृद्धि होती है अत: मानव पूँजी आर्थिक संवृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

विकास के कारक (Factors of Development)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होती है। इनमें से कई ऐसे कारक हैं जो विकास की प्रक्रिया के आरंभ को प्रभावित करते हैं। इन कारकों को प्राथमिक संचालक (Prime Movers) कहा जाता है। दूसरी ओर, अन्य कारकों को सामूहिक रूप से द्वितीयक कारक (Secondary Factors) कहते हैं। ऐसे सभी कारकों को व्यापक स्तर पर आर्थिक एवं गैर-आर्थिक कारकों में विभक्त किया जा सकता है:

1. आर्थिक कारक

आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले अति विशिष्ट कारकों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया गया है :

क. 1. **प्रौद्योगिकीय प्रगति :-** सभी विकासशील एवं विकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रौद्योगिकीय प्रगति का विशेष स्थान है। इनके प्रभाव में वस्तुत: अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जो विकास की गति को तीव्रता प्रदान करते हैं। यह सर्वविदित है कि प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावकारी दोहन प्रौद्योगिकीय विकास एवं प्रगति से ही संभव है। व्यावहारिक रूप से प्रौद्योगिकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है जिसके फलस्वरूप, भूमि, श्रम एवं पूंजी जैसे उत्पादन के साधनों को प्रभावी बनाया जा सकता है। साथ ही, प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के कारण ही सम्पूर्ण श्रम शक्ति को कार्यक्षेम बनाया जाता है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन की प्रक्रियाओं को त्वरित गति प्रदान की जा सकती है तथा इनके आधार पर नई वित्तीय संरचनाओं का सृजन भी किया जा सकता है।

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

2. तकनीकी प्रगति

उत्पादन का तरीका जो उत्पादन की एक इकाई को प्राप्त करने के लिए साधनों का संयोग प्रदर्शित करता है जैसे पूंजी की 1 इकाई तथा श्रम की 3 इकाई से वस्तु की एक निश्चित मात्रा प्राप्त करना तकनीक या प्रविधि कहलाता है। उत्पादन की तकनीक या प्रविधि में परिवर्तन तकनीकी प्रगति या टेक्नालाजिकल प्रोग्रेस कहलाता है।

तकनीकी प्रगति का आशय है उत्पादन क्रिया में उन्नत टेक्नालाजी का प्रयोग जिसके अन्तर्गत न केवल 'मशीन' को लेते हैं, जो निश्चित रूप से उत्पादन में प्रत्यक्ष योगदान करती है। बल्कि इसका सम्बन्ध टेक्नालाजी से सम्बन्धित मानव कुशलता, संगठनात्मक ढाँचा तथा इनफारवेयर (inforw are) या टेक्नालाजी से सम्बन्धित सूचनाओं से भी है। टेक्नालॉजिकल प्रगति के लिए शोध तथा उद्योगों में बहुत अधिक विनियोग, कुशल उद्यमी जो नव प्रवर्तित टेक्नालाजी की व्यापारिक सम्भावना तथा जोखिम का अनुमान लगा सके तथा विस्तृत बाजार की आवश्यकता होती हैं। टेक्नॉलाजिकल प्रोग्रेस के तीन प्रकार हो सकते हैं-

(i) तटस्थ तकनीकी प्रगति तब होती है जबकि उच्चतर उत्पादन के स्तर की प्राप्ति आगत के रूप में साधनों की उसी मात्रा तथा उसी संयोग (com b ination) से हो सके।

(ii) श्रम बचत करने वाली तकनीकी प्रगति तब होती है जब उच्चतर उत्पादन के स्तर को उतनी ही श्रम की मात्रा से प्राप्त किया जा सके।

(iii) पूँजी बचत करने वाली तकनीकी प्रगति तब होती है जबकि उच्चतर उत्पादन के स्तर को उतनी ही पूंजी के मात्रा के द्वारा प्राप्त किया जा सके।

- **तकनीक हस्तान्तरण के विभिन्न रूप:-** विकासशील तथा अल्पविकसित देश पूँजी की कमी के कारण नव-प्रवर्तन तथा शोध पर बहुत कम व्यय कर पाते हैं, इसलिए वे अपनी स्वयं की उन्नत टेक्नालाजी का हस्तान्तरण करते हैं। टेक्नालाजी ट्रान्सफर के अनेक रूप हो सकते हैं जिसके द्वारा विकसित देशों से अल्पविकसित तथा विकासशील देशों को टेक्नालाजी का हस्तान्तरण होता है। 1960 के पूर्व सबसे प्रचलित या यूँ कहिए एकमात्र तरीका बहुराष्ट्रीय विनियोग का था जिसके अन्तर्गत टेक्नालाजी का स्वामित्व तथा नियंत्रण टेक्नालॉजी बेचने वाले निगम के पास बना रहता है। इस स्थिति में टेक्नालॉजी का क्रेता देश अत्यन्त ही कमजोर समझौता की स्थिति वाला होता है। इसका सबसे प्रमुख कारण 'वित्त' तथा 'टेक्नालॉजी' का परस्पर अलग नहीं होना था। 1960 के बाद जब विकासशील देशों ने टेक्नालॉजी पर अधिक नियंत्रण के लिए बल दिया तो टेक्नालॉजी ट्रान्सफर के अनेक अन्य रूप विकसित हुए जो मुख्य रूप से दो अन्य कारणों से सम्भव हो सके। एक तो अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार के विकास से 'वित्त' तथा टेक्नालॉजी' का अलग होना सम्भव हो सका तथा दूसरा विकसित देशों में कुशल तथा विशेषज्ञ इन्जीनियरिंग फर्म विकसित हुई जो टेक्नालाजी तथा उससे सम्बद्ध सेवाओं को बेचती हैं।
- **तकनीक हस्तांतरण की जो विधियाँ विकसित हुई वे हैं-**
  1. **संयुक्त उद्यम:-** जिसमें स्वामित्व तथा नियंत्रण में हिस्सेदारी होती है।
  2. लाइसेंसिंग जिसमें स्वामित्व तथा प्रबन्धन की जिम्मेदारी टेक्नालोजी ट्रान्सफर करने वाले देश के पास होंगी पर टेक्नोलोजी लाइसेंस के साथ जुड़ी हुयी शर्तो के कारण, प्रबन्धन तथा स्वामित्व में होने के बावजूद भी स्वतंत्र निर्णय नहीं लिया जा पाता है, निर्णय प्रतिबन्धित होता है।
  3. **फ्रेन-चाइजिंग:-** इसके अन्तर्गत तकनीक हस्तांतरण करने वाले देश अपना 'ब्रैंड नाम' बेचता है तथा साथ में प्रबन्धकीय तथा तकनीकी सहायता भी देता है।
  4. **टर्नकी कान्ट्रेक्ट्स** (Turnkey Contracts):- इसके अन्तर्गत पूर्णतया तैयार फैक्ट्री क्रेता को दी जाती है।
  5. तकनीक के अनेक रूपों के विकसित होने के बावजूद अब भी प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग सबसे प्रभावपूर्ण तथा प्रचलित तरीका बना हुआ है।

ख. पूंजी निर्माण :- आर्थिक विकास के कारकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूंजी निर्माण की प्रक्रिया है। किसी विशिष्ट समय में

पूंजीगत वस्तुओं के भंडार में वृद्धि से उस समय पूंजी निर्माण की प्रक्रिया की पहचान की जा सकती है। तकनीकी रूप से किसी उत्पाद का वह भाग जिसका उपभोग करने के बदले उत्पादन की प्रक्रिया में उपयोग किया जाता है, पूंजी कहलाता है। पूंजी निर्माण के द्वारा उत्पादन के आधार का विस्तार, रोजगार सृजन तथा प्रौद्योगिकीय उन्नयन संभव है जिसके कारण यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पूंजी निर्माण आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाली एक प्रक्रिया है।

ग. **जनसंख्या** :- जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास को दो रूपों में प्रभावित करती है। प्रथम, जनसंख्या वृद्धि से प्रति व्यक्ति आय में कमी होती है तथा द्वितीय, मानव संसाधन के रूप में जनसंख्या के सही उपयोग से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त होती है। इसका मूल कारण यह है कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि श्रम शक्ति का निरंतर प्रवाह बनाये रखती है जो किसी भी देश के आर्थिक विकास का द्योतक है।

घ. **प्राकृतिक संसाधन** :- किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास वहां उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा पर निर्भर करता है। सामान्यत: ऐसे संसाधनों में भूमि, खनिज, वन, महासागर, जलवायु तथा पर्वत सम्मिलित किये जाते हैं। इन्हीं संसाधनों द्वारा विकास को सुदृढ़ आधार प्राप्त होता है।

ड़. **विदेशी व्यापार** :- अल्प विकसित तथा विकासशील देश अपने आर्थिक विकास के लिए विदेशी व्यापार का प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि विदेशी व्यापार के माध्यम से पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

2. **गैर-आर्थिक कारक** :- जहां तक आर्थिक विकास का प्रश्न है, आर्थिक कारकों के साथ-साथ कई गैर-आर्थिक कारकों का भी विशेष योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुत: किसी क्षेत्र अथवा देश में रहने वाले लोगों में आर्थिक रूप से विकसित होने की प्रबल इच्छा का होना अनिवार्य है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि उन्हें आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले सभी कारकों का पर्याप्त ज्ञान भी प्राप्त हो। निम्नांकित कारकों को महत्वपूर्ण गैर-आर्थिक कारकों की श्रेणी में रखा जा सकता है :

क. आधारिक विज्ञान के विकास की प्रवृत्ति।

ख. ऐसे विज्ञान का आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग प्राप्त करने की प्रवृत्ति।

ग. नये आविष्कारों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति।

घ. भौतिक विकास के लक्ष्य प्राप्त करने की प्रवृत्ति।

ड़. उपभोग की दर में वृद्धि।

ऐसा देखा गया है कि जिस देश की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सुदृढ़ होती हैं, वहां आर्थिक विकास भी पर्याप्त होता है। उल्लेखनीय है कि आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सामाजिक विकास सुनिश्चित करना भी है। कई सामाजिक कारकों में एकता एवं अखंडता, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार, कई राजनीतिक कारक भी ऐसे होते हैं जो आर्थिक विकास में सहायक होते हैं। इनमें राजनीतिक स्थायित्व, संसाधनों को गत्यात्मक बनाने के लिए आवश्यक दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति आदि उल्लेखनीय हैं। कई विकासशील देशों में धार्मिक कारक भी आर्थिक विकास में सहायक होते हैं। ऐसे कारकों में पंथ तथा धर्म निरपेक्षता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में धार्मिक उन्माद की प्रवृत्ति आर्थिक विकास को कुप्रभावित करती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था : एक परिचय (Indian Economy: An Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था को सामान्यतया एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में स्वीकार किया जाताहै जिसका अर्थ है कि उसने विकास की प्रक्रिया में स्वतन्त्रता प्राप्ति की शुरूआत में एक उपनिवेशवादी विरासत के साथ एक पिछड़ी या अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में जो विकास यात्रा प्रारम्भ की थी। उसका परिणाम यह हुआ कि इसमें अनेक संरचनात्मक परिवर्तन हुए तथा उसमें विकसित देशों के लक्षण भी आये हैं पर अब भी उसमें विकसित तथा अल्पविकसित देशों के लक्षणों का मिश्रण है इसलिये इसे विकासशील अर्थव्यवस्था कहना अधिक उचित होगा।

Downloaded From studymasterofficial.com
DISCOVERY

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था

- विकसित देशों की तुलना में भारत की प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त ही कम है। विश्व बैंक की रिर्पोट 2007 के अनुसार 2005 में जहां स्विटजरलैंण्ड की प्रति व्यक्ति आय 54930 डॉलर तथा अमरीका की 43740 डॉलर थी वहीं भारत में यह मात्र 720 डॉलर ही रही।
- आय का वितरण अत्यन्त ही विषम है जो गरीबी, कुपोषण, शोचनीय रहन सहन के स्तर आदि को और भी अधिक विषम बना देती है। भारत में ही 'दो भारत' बन गये हैं। एक ओर जहाँ समृद्ध भारत है तो वहीं ग्रामीण भारत में घाना, मलावी जैसी गरीबी विद्यमान है। व्यापक प्रयासों के बावजूद भी गरीबी की दर मात्र 2% तक ही घट पायी है।
- भारत में आज भी आधी से अधिक जनसंख्या कृषि में लगी हुई है जबकि अमरीका व कनाडा में मात्र 3% जनसंख्या ही कृषि कार्यो में संलग्न है।
- अल्पविकसित देशों में पायी जाने वाली जनांकिकीय विशेषतायें अभी भी भारत में पायी जाती है। जनसंख्या वृद्धि दर अभी उच्च है। साथ ही उच्च शिशु मृत्यु दर भी विकास के समक्ष महत्वपूर्ण बाधा है।
- इसके अतिरिक्त प्रविधि के संबंध में पिछड़ापन, व्यापक बेरोजगारी, दोषपूर्ण आर्थिक व सामाजिक संगठन, असन्तोषजनक जीवन की गुणवत्ता आदि कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो अल्पविकसित देशों की तरह भारत में भी पायी जाती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशेषतायें:-

- सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान में कमी आयी है। और तृतीयक क्षेत्रक के योगदान में अधिक वृद्धि आयी है। हाल में कृषि का राष्ट्रीयआय में योगदान जहाँ घटकर 18.5% रह गया। वहीं तृतीयक क्षेत्र का योगदान बढ़कर 58% हो गया।
- औद्योगिक क्षेत्र के योगदान में वृद्धि तो आयी ही है परन्तु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले आधुनिक संगठित क्षेत्र के योगदान में यह वृद्धि आयी है जो विकसित अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण लक्षण है।
- भारत में लोहा एवं इस्पात, भारी इन्जीनियरिंग, रसायन, उर्वरक, पूंजीगत वस्तुओं आदि के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई जो कि एक विकसित अर्थव्यवस्था की सूचक है।
- अवस्थापना के क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ है तथा जीवन की गुणवत्ता भी पहले की तुलना में बढ़ी है। क्रयशक्ति समता की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व में चतुर्थ स्थान पर है। तथा जी. डी.पी. की दृष्टि से 10वीं बड़ी अर्थव्यवस्था है।
- विकास के साथ निर्यात संरचना में भी परिवर्तन आया है। प्राथमिक वस्तुओं के स्थान पर निर्मित वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हुई है।
- अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के साथ चालू खाते पर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के प्रतीक है। हाल में भारत को ट्रिलियन क्लब में शामिल किया गया है अर्थात् भारत की राष्ट्रीय आय 1 ट्रिलियन से अधिक हो गयी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछले वर्ष विशेष रूप से 10वीं योजनावधि में कुछ अच्छे संकेत मिले हैं। एक ओर जहाँ विकास दर उच्च रही है तो वहीं विदेशी भुगतान स्थिति लगातार सन्तोषजनक बनी हुई है और ज्ञान अर्थव्यवस्था में हमें उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण तुलनात्मक लाभ की स्थिति प्राप्त हुई हैं। प्रगति के सामाजिक संकेतकों में भी सुधार हुआ है और जीवन प्रत्याशा, शिक्षा व स्वास्थ्य आदि के आंकड़ों में सुधार हुआ है। परन्तु अनेकानेक चुनौतियाँ मुंह बाये खड़ी है।

1. समस्या वर्तमान वृद्धि दर को उसी स्तर पर कायम रखने की है, यदि उसे और बढ़ाया नहीं जा सके।
2. आर्थिक विकास दर गरीबी निवारक वृद्धि दर में रूपान्तरित नहीं हो पायी है। भूमण्डलीकरण का वितरणात्मक पक्ष कमजोर होने के कारण यह एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गयी है।
3. एक ओर जहाँ समस्त अर्थव्यवस्था 9% से भी अधिक दर से वृद्धि कर रही है, वहीं कृषि क्षेत्र में वृद्धि दर 2% से भी कम है। कृषि विकास के बिना समग्र विकास एक मृगतृष्णा बनकर रह गयी है। कृषि की प्रमुख समस्या कम उत्पादकता तथा कृषकों का

अपने उत्पादन का उचित मूल्य न मिलने की है। यदि 11वीं पंचवर्षीय योजना में 9% के लक्षित दर को प्राप्त करना है तो यह आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र 4% वार्षिक की दर से विकसित हो।

4. अर्थव्यवस्था में अग्रगामी तथा पार्श्वगामी श्रृंखलाओं की दृष्टि से अवस्थापना विकास सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रभावी है। परन्तु जनसंख्या की तीव्र ऊंची आर्थिक वृद्धि दर तथा तीव्र नगरीकरण की बढती मांग के कारण अवस्थापना की कमी की समस्या गम्भीर रूप से दिखाई पड़ती है।

5. बढ़ती हुई स्फीति एक गम्भीर चुनौती है। स्फीति न सिर्फ उत्पादन पर कुप्रभाव डालती है अपितु असमानता की खाई को और भी चौड़ा कर देती है। सबसे अधिक आवश्यकता इसकी है कि अल्पकाल में या तात्कालिक रूप में स्फीति संवेदनशील कृषि वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाया जाये, उनमें वायदा बाजार सट्टेबाजी तथा होर्डिंग की प्रवृति को नियन्त्रित किया जाये तथा दीर्घकालीन स्तर पर कृषि वृद्धि को ऊपर उठाया जाये।

6. राजकोषीय समेकन पोषित विकास की आवश्यक दशा है और अर्थव्यवस्था की संवृद्धि हेतु एक आवश्यक प्रतिबंध और चुनौती है। घाटों में कमी लाना, अनुत्पादक व्यय की समाप्ति की ओर अग्रसर करते हुए विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

7. यह मानकर चलना कि उच्च आर्थिक वृद्धि स्वत: नीचे की ओर रिसाव के द्वारा सामाजिक न्याय स्थापित कर लेगी और जीवन की गुणवत्ता में सुधार लायेगी, बहुत अधिक महत्वाकांक्षी परिकल्पना होगी। भूण्डलीकरण का वितरणात्मक पक्ष बहुत कमजोर है। बढ़ती जनशक्ति को रोजगार सम्भाव्यता के रूप में बदलाव एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

भारत में समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy in India)

''वह धन सम्पत्ति व आय जिसे प्राप्त किया गया था अथवा कमाया गया था जिस पर स्वामित्व है तथा जो देश की वैध कर प्रणाली से बच गया है और उस पर कोई कर नहीं दिया गया है तो ऐसे धन सम्पत्ति व आय के क्षेत्र को काली अर्थव्यवस्था (Black Economy) या अवैध अर्थव्यवस्था (Illegitimate Economy or Illegal Economy) कहते हैं। लेकिन जब वैध अर्थव्यवस्था व अवैध अर्थव्यवस्था साथ-साथ चलती है तो इसे समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy) कहते हैं। वैध अर्थव्यवस्था से अर्थ उस अर्थव्यवस्था से है जिसे समाज के कानूनों द्वारा स्वीकार किया जाता है जबकि समानान्तर अर्थव्यवस्था इसके विपरीत है। समानान्तर अर्थव्यवस्था का न तो समाज द्वारा और न कानून द्वारा मान्यता दी जाती है। काली अर्थव्यवस्था का ही दूसरा नाम समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy) या भूमिगत अर्थव्यवस्था (Underground Economy) या असूचित अर्थव्यवस्था (Unreported Economy) है। इसे Unaccounted Economy, Subterranean Economy व Un-sanctioned Economy भी कहते हैं। जब लोग अवैधानिक रूप से आय, सम्पत्ति साधन एकत्रित कर लेते हैं तो ऐसा एकत्रण (Stock) कालाधन (Black Money) कहलाता है।

भारत में काली या समानान्तर अर्थव्यवस्था:- ''काली आय (Black Income) उन आयों का जोड़ माना जाता है जो कर योग्य है परन्तु जिसे कर निर्धारण अधिकारियों को बताया नहीं गया है।''

डॉ. सूरजभान गुप्त के अनुसार 1992 में यह काली आय 51,000 करोड़ रुपये की थी लेकिन संसद की स्थायी समिति (Parliament Standing Committee) ने 1994-95 की आय की मात्रा, 3,00,000 करोड़ रुपये आंकी (1980-81 की कीमतों के आधार पर)। इस प्रकार इस 14 वर्ष के काल में काली आय 488 प्रतिशत बढ़ी है। इसी समिति के अनुसार काला धन (Black Money) उस समय 11,00,000 करोड़ रुपये का चलन में था जो राष्ट्रीय आय का 130 प्रतिशत बैठता था। इस प्रकार काला धन समानान्तर अर्थव्यवस्था के रूप में चल रहा है।

कालाधन या काली आय की उत्पति के लिए उत्तरदायी घटक:- 1. करारोपण का स्तर व ढांचा, 2. कर प्रशासन की कमजोरियां, 3. नियंत्रण एवं लाइसेन्स व्यवस्था, 4. राजनीतिक पार्टियों को चन्दा, 5. जनता में नैतिकता का अभाव, 6. सार्वजनिक व्यय कार्यक्रमों का दोषपूर्ण प्रबन्ध, 7. मुद्रा स्फीति।

काली आय या काले धन या समानान्तर अर्थव्यवस्था का प्रभाव:- (1) राज्य को आगम की हानि- जब काले धन की आय को जाती है तो इससे राज्य को आगम की हानि होती है अर्थात् राज्य को कर पूरी मात्रा में नहीं मिलते हैं। यदि कर पूरी मात्रा में मिल गये

Downloaded From www.studyofficial.com

होते तो राज्य द्वारा अधिक धन सामाजिक विकास पर लगाया जा सकता था। (2) आर्थिक असमानता व सम्पत्ति का केन्द्रीकरण। (3) संसाधनों का सम्पत्ति की ओर विचलन (4) भारत के बाहर कोषों का स्थानान्तरण- इसके लिए निर्यातों का मूल्य कम लिया जाता है (Under Invoicing of Exports) व आयातों का मूल्य अधिक दिया जाता है (Over Invoicing of Imports)। (5) धन का अपव्ययी उपयोग- समानान्तर अर्थव्यवस्था में धन का अपव्ययी उपभोग होता है। इसका अर्थ है कि फिजूल खर्ची बढ़ती है तथा धन अनुत्पादक (Unproductive) कार्यों की ओर खिसक जाता है जिसे उत्पादक कार्यों में लगाकर देश का कल्याण किया जा सकता था। इस प्रकार देश का विकास धीमा हो जाता है। (6) साख नियंत्रण संसाधन प्रभावहीन होना- जब देश में काली तरलता (Black Liquidity) अधिक होती है तो सरकार द्वारा आयोजित साख नियंत्रण संसाधन प्रभावहीन से हो जाते हैं और वे आशा के अनुरूप प्रभाव नहीं दिखा पाते है। (7) मुद्रा स्फीति को बढ़ावा- काली आय मुद्रा स्फीति का एक महत्वपूर्ण कारण है। यह कारण परोक्ष है। इससे मूल्य वृद्धि को बढ़ावा मिलता है जिससे आम जनता को कठिनाई होती है। इसीलिए वान्चू समिति ने लिखा है कि "काला धन एक प्रकार से देश की अर्थव्यवस्था में कैंसर के विकास जैसा है, जिसे यदि समय पर न रोका गया तो निश्चित रूप से यह देश को बर्बादी की ओर ले जाता है।"

भारत में कालाधन निकालने के लिए निम्न कार्य किये गए हैं- (I) विमुद्रीकरण, (II) स्वतः प्रकटीकरण योजनाएं व (III) बाण्ड।

I. **विमुद्रीकरण** (Demonetization):- विमुद्रीकरण का अर्थ है सरकार द्वारा एक निश्चित मूल्य वाले नोटों से चलन एकदम बन्द कर देना तथा ऐसे नोटों के धारकों को अन्य छोटे नोटों में नोट बदलने की सुविधा देना। लेकिन नोट बदलते समय यह सबूत देना होगा कि यह उनकी वैध कमायी है अन्यथा उन पर कर लगाया जाएगा। सरकार ने विमुद्रीकरण दो बार किया- पहली बार 1946 में जब 1,000 रुपये के नोटों का चलन बन्द किया व दूसरी बार 1978 में जब 1,000, 5,000 व 10,000 रुपये के नोटों का चलन बन्द किया। दोनों ही बार सरकार को इसमें कोई सफलता नहीं मिली। पहली बार केवल 9 करोड़ रुपये के नोट बदलने के लिए प्रस्तुत किये गये। जबकि दूसरी बार 145 करोड़ रुपये के।

II. **स्वतः प्रकटीकरण योजनाएं** (Voluntary Disclosure Schemes):- स्वतः प्रकटीकरण योजनाएं वे योजनाएं हैं जिनमें कालाधन घोषित करने वालों को अपने घोषित काले धन का एक निश्चित प्रतिशत सरकार को कर के रूप में देना पड़ता है और उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जाती है। इस प्रकार, घोषित काले धन का एक निश्चित प्रतिशत देने पर काली आय सफेद आय में बदल जाती है।

III. **बॉण्ड** (Bond):- 1981 में सरकार ने 10,000 रुपये के विशेष धारक बॉण्ड (Special Bearer Bond) जारी किये जिनकी विशेषता यह थी कि 10 वर्ष पश्चात् सरकार बॉण्ड धारक को 10,000 रुपये के स्थान पर 12,000 रुपये वार्षिक करेगी तथा बॉण्ड धारक को पूर्ण छूट (Complete immunity) होगी और उससे इसकी आय का स्रोत नहीं पूछा जाएगा। इस योजना के अन्तर्गत 964 करोड़ रुपये के बाण्ड बिके।

काली आय या कालाधन या समानान्तर अर्थव्यवस्था को रोकने के उपाय 1. कर ढांचे को युक्तिसंगत बनाना, 2. अनावश्यक नियंत्रणों को हटाना, 3. वास्तविक भू-सम्पत्ति की जाँच, 4. चुनाव सुधार।

सतत् विकास (Sustainable Development)

सतत् विकास एक त्रिआयामी संकल्पना है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय पक्ष शामिल होते हैं। आर्थिक पक्ष के तहत जनकल्याण और वस्तुओं एवं सेवाओं के तार्किक उपयोग पर बल दिया जाता है जबकि सामाजिक पक्ष में मानवीय साधनों की सुदृढ़ता तथा व्यक्तिगत तथा पर्यावरणीय पक्ष में सम्पूर्ण पारिस्थितिकी प्रणालियों की सुरक्षा के विषय को प्राथमिकता दी जाती है।

सतत् विकास का आर्थिक आयाम इस मूल तत्व पर आधारित है कि एक व्यक्ति अथवा इकाई को इस रूप में लाभ प्रदान किया जाए ताकि किसी अन्य व्यक्ति अथवा इकाई को हानि नहीं हो। इस मूल तत्व को 'परेटो की अनुकूलता' कहते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आर्थिक कार्यकुशलता अनिवार्य है, जिसका अर्थ यह है कि संसाधनो का केवल कार्यकुशल आवंटन बढ़ाते हुए उनका उपभोग अनिवार्य है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

सतत् विकास के पर्यावरणीय आयाम में दो कार्य शामिल हैं :-

1. पारिस्थितिकीय प्रणाली की व्यवहारिकता में वृद्धि।
2. पारिस्थितिकीय प्रणाली पर होने वाले आघातो में कमी।

अत: स्पष्ट है कि सतत् विकास की संकल्पना में केवल यथास्थिति बनाए रखना ही शामिल नहीं है बल्कि सतत् पूर्नविकास की संकल्पना भी शामिल है जिसका तात्पर्य पारिस्थितिकीय प्रणालियों के पुर्नरूथान से है।

इसी प्रकार सतत् विकास के सामाजिक आयाम से निम्न दो तथ्यों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती है :-

1. व्यक्तिगत स्तर पर आवश्यकताओं की पूर्ति।
2. व्यापक स्तर पर सामाजिक कल्याण।

स्पष्टत: सतत् विकास की कोई निश्चित परिभाषा उपलब्ध नहीं है लेकिन इसे सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय अन्त: फलक के रूप में देखा जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ एवं सतत् विकास

1. Brundtland Commission Report

सन् 1987 में विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग ने अपनी रिपोर्ट "Our common future" में यह कहा है कि सतत् विकास वह अवधारणा है जो वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ -साथ भविष्य में भी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम बनाती है। आयोग की इस रिपोर्ट के बाद सतत् विकास के महत्व में अप्रत्याशित वृद्धि हो गई है।

2. पृथ्वी सम्मेलन (Reio सम्मेलन) 1992

सतत् विकास के त्रिकोणीय दृष्टिकोण को आधिकारिक मान्यता मिली। इस त्रिकोणीय अवधारणा में आर्थिक व्यवहार्यता, पर्यावरणीय धारिता एवं सामाजिक सुदृढ़ता शामिल हैं।

सतत् विकास पर एक कार्य योजना का अनुमोदन किया गया जिसे Agenda-21 कहा जाता है। इस कार्य योजना के प्रावधानों को 4 श्रेणियों में बाँटा गया है:

1. सामाजिक और आर्थिक आयाम जिसमें गरीबी उन्मूलन जिसमे उपयोग की प्रवृत्तियों में परिवर्तन तथा स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक कार्यो को प्रोत्साहन देना शामिल है।
2. विकास की दृष्टि से संसाधनों का संरक्षण और प्रबंधन जिसमें वायुमंडलीय सुरक्षा निर्वनीकरण पर अंकुश तथा जैव विविधता का संरक्षण शामिल है।
3. विभिन्न संस्थाओं अथवा संगठनों जैसे गैर सरकारी संगठनों की भूमिका का सुदृढ़ीकरण शामिल है।
4. नीतियों के कार्यान्वयन और वित्तीय तथा तकनीकी संसाधनों के हस्तांतरण को प्राथमिकता देना।

3. अन्तर्राष्ट्रीय सतत् विकास सम्मेलन (जोहांसबर्ग 2002)

1. पर्यावरण पर भूमण्डलीकरण के प्रभावों का अध्ययन।
2. प्रशासकीय कार्यकुशलता में वृद्धि से सतत् विकास को प्रोत्साहन।
3. वर्ष 2015 तक पेयजल और स्वच्छता की अनुउप्लब्धता वाली जनसंख्या में 50 प्रतिशत की कमी लाना।
4. वर्ष 2012 तक समुद्री सुरक्षित क्षेत्रों के एक नेटवर्क का निर्माण।
5. वर्ष 2020 तक मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले रासायनिक पदार्थो के उत्पादन और उपयोग पर अंकुश।
6. सतत् विकास शिक्षा दशक (2005 से 2014) को कार्यावित करना।
7. जापान तथा स्वीडन के प्रस्ताव पर दिसम्बर, 2002 में महासभा द्वारा इसे अनुमोदित किया गया।
8. यूनेस्को को प्राथमिक रूप से उत्तरदायी बनाने का प्रावधान किया गया है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

9. सतत् विकास शिक्षा के लिए विश्वस्तर पर विशेष अभियानों के संचालन का प्रावधान किया गया है।

4. Rio+20 (संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास सम्मेलन, मैक्सिको, 2012)

मुख्य उद्देश्य:-

1. हरित अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए सतत् विकास की दृष्टि से विश्वस्तर पर किए गए सभी प्रयासों की समीक्षा करना।
2. नई और उभरनेवाली चुनौतियों के लिए रणनीतियों का निर्धारण करना।

सम्मेलन में हरित अर्थव्यवस्था की संयुक्त राष्ट्र महासचिव की रिपोर्ट के आधार व्याख्या की गई है। इसके अनुसार ऐसी अर्थव्यवस्था के चार मुख्य अवयव शामिल हैं :-

1. बाजार की विफलताओं को संबोधन।
2. आर्थिक ढांचे और सतत् विकास का प्रणालीगत आकलन और नई संभावनाओं की खोज।
3. आर्थिक नीतियों के साथ-साथ सामाजिक लक्ष्यों पर बल।
4. वृहद आर्थिक ढांचे पर बल।

इन अवयवों के संदर्भ में हरित अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए निम्न कार्यों का प्रस्ताव किया गया है :-

1. कीमत निर्धारण प्रणाली की विवेकीकरण तथा उन वस्तुओं अथवा पदार्थों पर कर आरोपण जो पर्यावरण को क्षति पहुँचाती है।
2. सतत् विकास के लिए आवश्यक अवसंरचनाओं में लोक निवेश की मात्रा में वृद्धि।
3. सतत् विकास के लिए पर्यावरण मित्र तकनीकों का विकास और अनुसंधान।
4. विशिष्ट सामाजिक नीतियों का निर्धारण।

DISCOVERY
Downloaded from www.studymasterofficial.com

2. राष्ट्रीय आय
NATIONAL INCOME

किसी देश की आर्थिक समृद्धि उसकी राष्ट्रीय आय से ही प्राप्त की जाती है। दूसरे शब्दों में किसी देश का आर्थिक आधार उसकी राष्ट्रीय आय की मात्रा तथा उसके वितरण पर निर्भर करता है। इसी कारण सभी विकासशील तथा विकसित देश द्वारा राष्ट्रीय आय का आकलन करने वाले सभी समंकों का प्रति वर्ष संकलन कर ने का प्रयास करता है। दूसरी ओर, किसी देश को गरीबी तथा बेरोजगारी के दुष्चक्र से बाहर निकालने के लिए भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा उसका समतामूलक वितरण अनिवार्य है।

राष्ट्रीय आय की संकल्पना में किसी निश्चित अवधि, जो सामान्यतः एक वर्ष होती है, में उस देश द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को सम्मिलित किया जाता है। *मार्शल* के अनुसार, 'किसी राष्ट्र के संसाधनों पर श्रम तथा पूंजी द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से होने वाले उत्पादन को ही राष्ट्रीय आय कहते हैं। संक्षेप में राष्ट्रीय आय की संकल्पना में निम्नांकित तथ्यों का समावेश किया जाता है :

1. एक निश्चित अवधि, सामान्यतः एक वर्ष में किसी राष्ट्र की होने वाली कुल आय।
2. इस अवधि में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य।
3. कुल आय में से मूल्य ह्रास को घटाकर तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय को जोड़कर राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है।

अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय में कुल उपभोग (C), कुल निवेश (I) तथा कुल सरकारी व्यय (G) शामिल हैं। विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का मान निकालने के लिए प्रथमतः कुल निर्यात (E) में से कुल आयात (M) घटा दिया जाता है। इस मान में से मूल्य ह्रास घटाने से विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधान आय का मान प्राप्त होता है। सांकेतिक रूप से राष्ट्रीय आय (N.I.) को इस रूप में प्रकट किया जा सकता है:

$$N.I. = C + I + G - D + E - M$$

व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय आय की संकल्पना में निम्नांकित संकल्पनाओं को भी सम्मिलित किया जाता है :

सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product, GDP)

निवासियों तथा अनिवासियों द्वारा किसी देश की घरेलू अर्थव्यवस्था में एक निश्चित अवधि (सामान्यतः एक वर्ष) में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद कहलाता है। इसमें विदेशों से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product, GNP)

किसी देश के निवासियों द्वारा कुल घरेलू तथा कुल विदेशी निर्गम के योग को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह सकल घरेलू उत्पाद तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का योग है। इस कारण यह स्पष्ट है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में होने वाली कमी से राष्ट्रीय आय में भी कमी होती है। सामान्यतः सकल राष्ट्रीय उत्पाद को चालू तथा स्थिर कीमतों पर मापा जाता है। यह देखा गया है कि चालू कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद स्थिर कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद की अपेक्षा अधिक होती है। अतः

$$GNP = GDP + NFIA \text{ (Net Factor Income from Abroad)}$$

निवल (शुद्ध) घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product, NDP)

सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास घटा देने पर निवल घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, निवल राष्ट्रीय उत्पाद वस्तुत: सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास कम कर देने से प्राप्त होता है। जब निवल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना साधन लागत पर की जाती है, तब उसे राष्ट्रीय आय कहते हैं।

प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)

प्रति व्यक्ति आय से वस्तुत: किसी राष्ट्र की औसत आय प्राप्त की जाती है। इसका मान ज्ञात करने के लिए राष्ट्रीय आय में देश की कुल जनसंख्या से भाग दिया जाता है। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता में हुई वृद्धि की परिचायक होती है।

राष्ट्रीय आय का महत्व (Significance of National Income)

जैसा कि हम जानते हैं, किसी राष्ट्र की आर्थिक संवृद्धि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकी राष्ट्रीय आय का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। निम्नांकित तथ्यों के उल्लेख से राष्ट्रीय आय के महत्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है :

1. तुलनात्मक अध्ययन

विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय का ज्ञान प्राप्त करने से किसी देश द्वारा अपनी आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में व्यापक सहायता प्राप्त होती है क्योंकि इससे तुलनात्मक अध्ययन संभव हो पाता है। इससे उस देश के नागरिकों के जीवन स्तर को भी ऊँचा उठाने में सहायता प्राप्त हो सकती है। विकासशील देशों द्वारा इस दिशा में प्रयास किये जाने चाहिए।

2. आर्थिक समृद्धि का द्योतक

प्रति व्यक्ति आय को किसी देश की आर्थिक समृद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण समंक कहा गया है। लेकिन प्रति व्यक्ति आय की गणना करने के लिए राष्ट्रीय आय की गणना अनिवार्य है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के उपरांत ही प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की जा सकती है।

3. आर्थिक नीतियों का आधार

राष्ट्रीय आय के विभिन्न आयामों का अध्ययन करने से ही सरकार को अपनी आर्थिक नीतियों के निर्धारण में मार्गदर्शन प्राप्त होता है। साथ ही, राष्ट्रीय आय की प्रस्थिति देश में मुद्रा आपूर्ति तथा साख प्रवाह को आधार प्रदान करने में सक्षम है।

4. आर्थिक कल्याण

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय तथा उससे संबंधित आंकड़ों से सरकार को समाज के सभी वर्गों, विशेषकर कमजोर वर्गों के कल्याण संबंधी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का मार्गदर्शन प्राप्त होता है। इससे देश में आर्थिक विषमताओं में भी कमी लाई जा सकती है।

5. आर्थिक शक्ति का अध्ययन तथा आय का वितरण

राष्ट्रीय आय द्वारा ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि किसी देश में आय का वितरण किस प्रकार से हो रहा है। इससे आर्थिक विकास तथा संवृद्धि के स्तरों का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय की माप (Mesurment of National Income)

राष्ट्रीय उत्पाद का आकलन करने के लिए उत्पादित करने वाले क्षेत्रों तथा उत्पादों की पहचान की जाती है। यह आकलन बाजार की कीमतों पर किया जाता है। इसके लिए निर्गम (Output) तथा आय (Income) विधियों का प्रयोग किया जाता है। कृषि तथा विनिर्माण क्षेत्रों के लिए निर्गम विधि का प्रयोग सर्वाधिक प्रचलित है जबकि तृतीयक क्षेत्रों, यथा, व्यापार, लोक प्रशासन आदि के लिए आय विधि

www.Downloaded From www.upscmaster.official.com DISCOVERY

प्रयुक्त होती है। निर्गम विधि में मूल्य वर्द्धन दृष्टिकोण का प्रयोग किया जाता है। मूल्य वर्द्धन वस्तुत: किसी वस्तु के मूल्य में से उसकी उत्पादन लागत को घटाकर प्राप्त किया जाता है। किसी क्षेत्र में उत्पादित सभी वस्तुओं के मूल्य वर्द्धन का योग प्राप्त कर राष्ट्रीय आय में उस क्षेत्र की भूमिका निर्धारित की जा सकती है। संक्षेप में निर्गम विधि के लिए उत्पादन, कीमत तथा उत्पादन लागत जैसे समंकों का होना अनिवार्य है। भारत में राष्ट्रीय आय का आकलन करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि भारत जैसे विकासशील देशों को कई विशिष्ट समस्याओं का सामना करना पड़ता है:

1. **संकल्पनात्मक समस्याएं :-** आंकड़ों के संकलन में ऐसी कई समस्याएं विद्यमान होती हैं जो राष्ट्रीय आय के आकलन में कठिनाइयां उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए, किसी गृहणी को उसकी सेवाओं के बदले वेतन नहीं दिया जाता। प्रशासन में ऐसी सेवाओं की पहचान कर पाना दुष्कर है जो उत्पादन में प्रत्यक्ष योगदान देती हैं। किसी आधार वर्ष में वस्तुओं के मूल्य का आकलन भी कठिन होता है क्योंकि उसी आधार वर्ष में कई नई वस्तुओं का भी समावेश होता है जिनकी कीमतों का निर्धारण आकलन में सम्मिलित नहीं हो पाता।
2. **अल्पविकास :-** भारत जैसे देश में उत्पादन के एक बड़े भाग को मौद्रिक दृष्टिकोण प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार कई उत्पादों के लिए अभी भी विनिमय प्रणाली कार्य करती है तथा कई उत्पादों को उपभोग के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है। ऐसी सभी समस्याओं के कारण अल्प विकसित देशों में राष्ट्रीय आय की माप दुष्कर है।
3. **पर्याप्त सूचना का अभाव :-** यह देखा गया है कि राष्ट्रीय आय के आकलन के लिए आवश्यक कई सूचनाएं प्राप्त नहीं हो पाती हैं। इस कारण समंकों की संख्या पर्याप्त नहीं होती।

राष्ट्रीय आय को मापने की विधियाँ

साइमन कुजनेट्स के अनुसार किसी देश की राष्ट्रीय आय को निम्नलिखित तीन विधियों द्वारा मापा जा सकता है:-

1. **उत्पत्ति गणना विधि:-** कुजनेट्स ने इस विधि को वस्तु सेवा विधि के नाम से परिभाषित किया है। इस पद्धति के अन्तर्गत देश में एक वर्ष में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है तथा उसके योग को अन्तिम उपज योग कहा जाता है। यह वास्तव में सकल घरेलू उत्पाद को दर्शाता है। राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद) की गणना के लिए सकल घरेलू उत्पाद के मूल्य में विदेशों में अर्जित शुद्ध आय को जोड़ा जाता है तथा मूल्य ह्रास को घटाया जाता है।
2. **आय गणना विधि :-** इस पद्धति के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय की गणना के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों तथा व्यावसायिक उपक्रमों की शुद्ध आय का योग प्राप्त किया जाता है। डा. बाउले तथा राबर्टसन के अनुसार आय गणना विधि के अन्तर्गत आयकर देने वाले तथा आयकर न देने वाले समस्त व्यक्तियों की आय को जोड़ दिया जाता है। ऐसा करने के लिए कभी कभी देश में विभिन्न आय वर्गों के व्यक्तियों का चुनाव कर लिया जाता है तथा उनकी आय के आधार पर देश की कुल आय का अनुमान लगाया जाता है।
3. **उपभोग बचत विधि :-** इस विधि को व्यय विधि भी कहा जाता है। इस विधि के अनुसार कुल आय या तो उपभोग पर व्यय की जाती है अथवा बचत पर। अत: राष्ट्रीय आय कुल उपभोग तथा कुल बचतों का योग होता है। इस विधि से आय की गणना करने के लिए उपभोक्ताओं की आय तथा उनकी बचत से सम्बन्धित आँकड़ों का उपलब्ध होना आवश्यक होता है। चूँकि इस प्रकार के सही आँकड़े आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते। अत: इस विधि का प्रयोग सामान्यत: कम किया जाता है। भारत जैसे देश में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन प्रणाली तथा आय प्रणाली का सम्मिश्रण प्रयोग किया जाता है।

- आर्थिक संकल्पनाओं में मध्यवर्ती एवं अंतिम उत्पादों की संकल्पना का विशेष महत्व है। वस्तुत: इन उत्पादों के संबंध में सूचना प्राप्त किये बिना राष्ट्रीय आय का आकलन नहीं किया जा सकता।

मध्यवर्ती उत्पाद (Intermediate Products)

उन उत्पादों को मध्यवर्ती उत्पाद कहा जाता है जो किसी एक उत्पादक द्वारा किसी दूसरे उत्पादक से खरीदे जाते हैं। इसका मूल कारण खरीदने वाली इकाई द्वारा उक्त उत्पाद का पुन: विक्रय करना है। ऐसे उत्पादों पर आने वाली लागत को मध्यवर्ती कीमत कहते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

अंतिम उत्पाद (Final Products)

ऐसी सभी वस्तुएं तथा सेवाएं जो पुन: विक्रय के बदले उपभोग अथवा निवेश के लिए उपलब्ध होती हैं, को अंतिम उत्पाद कहते हैं। इस श्रेणी में सभी घरेलू उत्पादों तथा पूंजीगत वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है।

बाजार कीमत एवं साधन लागत (Market Price & Factor Cost)

बाजार कीमत एवं साधन लागत जैसी संकल्पनाओं की परख अप्रत्यक्ष करों तथा सहायिकी के संदर्भ में विकसित की जा सकती है। बाजार कीमत का अर्थ उस कीमत से है जिसका भुगतान क्रेताओं द्वारा उत्पादक इकाइयों को किया जाता है। विक्रेताओं द्वारा इस बाजार कीमत का एक भाग अप्रत्यक्ष कर के रूप में सरकार को दिया जाता है। उत्पादन पर आरोपित सभी प्रकार के करों जैसे बिक्री कर, उत्पाद शुल्क आदि को अप्रत्यक्ष कर कहते हैं। इन्हें अप्रत्यक्ष कहने का मूल कारण यह है कि ऐसे कर विक्रेताओं पर आरोपित किये जाते हैं लेकिन इनका भुगतान क्रेताओं द्वारा किया जाता है। प्राप्त राजस्व को विक्रेताओं द्वारा सरकार को सौंप दिया जाता है।

साधन आय की संकल्पना (Concept of Factor Income)

साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वर्द्धन (NVA_{FC}) राष्ट्रीय आय में उत्पादन इकाई द्वारा किया जाने वाला योगदान है। एक उत्पादन इकाई का निर्माण चार उत्पादन के साधनों से होता है, जैसे भूमि, पूंजी, श्रम तथा उद्यमशीलता। इस आधार पर स्पष्ट है कि NVA_{FC} का वितरण उत्पादन के इन्हीं साधनों के मध्य किया जाता है। उत्पादन इकाइयों द्वारा किये जाने वाले ऐसे भुगतानों को साधन भुगतान (Factor Payment) कहते हैं। ऐसे भुगतान जो साधन के स्वामियों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, को साधन आय (Factor Income) कहते हैं।

श्रम के स्वामी को भत्तों, वेतन, बोनस तथा कई अन्य प्रकार की सुविधाओं के रूप में ऐसी आय प्राप्त होती है। दूसरी ओर, भूमि के स्वामी का हिस्सा किराए के रूप में प्राप्त होता है। इसके विपरीत, पूंजी के स्वामी को ब्याज तथा उद्यमशीलों को मुनाफा प्राप्त होता है।

साधन भुगतान के कई रूप हैं जैसे-

1. **कर्मचारियों को मुआवजा :-** इसके अन्तर्गत कर्मचारियों को दिये जाने वाले सभी नकद तथा अन्य प्राप्तियां सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, कर्मचारियों को बोनस, भविष्य निधि, नि:शुल्क आवास, चिकित्सकीय सुविधाएं आदि भी प्रदान की जाती हैं। दूसरे शब्दों में, कर्मचारियों को सभी प्रकार की मौद्रिक एवं गैर-मौद्रिक सुविधाएं मुआवजे के रूप में प्रदान की जाती हैं।
2. **किराया:-** भूमि के स्वामियों को उनकी भूमि के उपयोग के लिए किराये के रूप में राशि प्रदान की जाती है।
3. **ब्याज:-** ब्याज के रूप में उत्पादन इकाइयों को ऋण देने वालों को राशि प्रदान की जाती है। राष्ट्रीय आय के आकलन में उत्पादन इकाइयों द्वारा ब्याज के रूप में दी जाने वाली राशि को ही साधन भुगतान कहा जाता है। उपभोग व्यय के रूप में प्रदत्त राशि इस प्रकार के साधन भुगतान में सम्मिलित नहीं की जाती।
4. **मुनाफा:-** उद्यमशीलों को उनकी उद्यमशीलता के बदले जो राशि प्रदान की जाती है, उसे मुनाफा कहते हैं। साधन भुगतान करने के पश्चात शेष राशि को ही मुनाफे के रूप में प्रदान किया जाता है।

कार्यशील अतिरेक की संकल्पना

किराये, ब्याज तथा मुनाफे के योग के रूप में किये जाने वाले साधन भुगतान को कार्यशील अतिरेक कहा जाता है। वैकल्पिक रूप से NVA_{FC} में से कर्मचारियों के मुआवजे को घटा देने से कार्यशील अतिरेक प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार, कार्यशील अतिरेक वस्तुत: साधन भुगतान का एक भाग है जो श्रम के बदले दिये जाने वाले भुगतान से भिन्न होता है। स्पष्टत: कार्यशील अतिरेक तथा कर्मचारियों के मुआवजे के योग को NVA_{FC} कहते हैं। दूसरी ओर, किराए तथा ब्याज को संपत्ति आय भी कहते हैं। मुनाफा एक उद्यमशीलता से प्राप्त होने वाली आय है। अत: कार्यशील पूंजी में संपत्ति आय तथा उद्यमशील आय का भी योग है।

अंतिम व्यय की संकल्पना

अंतिम व्यय वस्तुत: उत्पादों और सेवाओं के अंतिम उपभोग तथा निवेश पर होने वाला व्यय है। अपने उत्पादों के पुन: विक्रय के लिए

उत्पादन इकाइयों द्वारा किया गया व्यय मध्यवर्ती व्यय है। दूसरे शब्दों में, अंतिम व्यय अंतिम उत्पादों पर होने वाला व्यय है। अंतिम उपभोग के क्रय के लिए घरेलू तथा सरकारी व्यय को ही अंतिम व्यय कहा जाता है। निवेश के लिए उत्पादन इकाइयों द्वारा अपने आर्थिक क्षेत्र में किया गया व्यय तथा विदेशियों द्वारा उसी क्षेत्र में किया जाने वाला व्यय है। इस आधार पर अंतिम व्यय को निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. निजी अंतिम उपभोग व्यय
2. सरकारी अंतिम उपभोग व्यय
3. सकल घरेलू पूंजी निर्माण
4. शुद्ध निर्यात

इनमें से (1) तथा (2) को उपभोग व्यय तथा (3) एवं (4) को निवेशोन्मुखी व्यय कहते हैं।

1. **निजी अंतिम उपभोग व्यय** (Private Final Consumption Expenditure, PFCE) :- इस श्रेणी में निजी घरों तथा घरों को समर्थन देने वाले गैर-मुनाफा संस्थानों द्वारा किया जाने वाला क्रय सम्मिलित किया जाता है। निजी व्यय वस्तुतः व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।

2. **सरकारी अंतिम उपभोग व्यय** (Govt. Final Consumption Expenditure, GFCE) :- सरकार द्वारा सामान्य रूप से प्रदान की जाने वाली सुविधाओं पर होने वाले व्यय को इस श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। इन सेवाओं में पुलिस, सैनिक, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सेवाएं शामिल हैं।

3. **सकल घरेलू पूंजी निर्माण** (Gross Domestic Capital Formation, GDCF) :- किसी देश की सीमा में उत्पादन इकाइयों द्वारा किया गया कुल व्यय अथवा निवेश ही सकल घरेलू पूंजी निर्माण कहलाता है। यह व्यय दो प्रकार का होता है : (क) स्थिर परिसंपत्तियां जैसे भवन, मशीन, परिवहन के साधन आदि, तथा (ख) भंडारण के लिए उपलब्ध वस्तुएं।

4. **निवल निर्यात** (Net Exports) :- राष्ट्रीय आय के आकलन में किसी देश की आर्थिक सीमा में उत्पादित अंतिम वस्तुओं को निवेश के रूप में देखा जाता है। इस आधार पर निर्यात को विदेशों में किया गया निवेश है। इसी प्रकार, आयात को विनिवेश के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार, कुल निर्यात में से कुल आयात घटाने से शुद्ध निर्यात अथवा विदेशों में किया गया शुद्ध निवेश प्राप्त होता है।

उत्पादन इकाइयों का औद्योगिक वर्गीकरण (Industrial Classification of Production Units)

किसी आर्थिक सीमा में विद्यमान सभी उत्पादन इकाइयों को एक सजातीय समूह अथवा क्षेत्र में विभक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, सभी कृषि तथा संबद्ध कार्यों को कृषि क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार, बैंकिंग क्षेत्र में कार्यरत सभी इकाइयों को बैंकिंग क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। संकल्पनात्मक रूप से किसी देश की समस्त उत्पादन इकाइयों को निम्नांकित तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है :

1. **प्राथमिक क्षेत्र** (Primary Sector) :- इस क्षेत्र में ऐसी सभी इकाइयां सम्मिलित की गई हैं जो प्राकृतिक संसाधनों के दोहन जैसे, कृषि, वन, मत्स्यन, खनन तथा उत्खनन से संबंधित हैं। इस क्षेत्र को महत्व के दृष्टिकोण से भी प्रथम क्षेत्र कहा गया है। इसका मूल कारण यह है कि प्राथमिक क्षेत्र ही अन्य क्षेत्रों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराता है।

2. **द्वितीयक क्षेत्र** (Secondary Sector) :- उत्पाद के एक स्वरूप को अन्य स्वरूपों में बदलने वाली इकाइयों से निर्मित क्षेत्र को द्वितीयक क्षेत्र कहते हैं। इसमें विनिर्माण एवं निर्माण संबंधी सभी इकाइयां सम्मिलित की जाती हैं।

3. **तृतीयक क्षेत्र** (Tertiary Sector) :- सेवा क्षेत्र में कार्य करने वाली सभी इकाइयों से निर्मित क्षेत्र को तृतीयक क्षेत्र कहा जाता है। इसमें बैंकिंग, परिवहन, संचार, व्यापार आदि क्षेत्र सम्मिलित होते हैं।

DISCOVERY
Downloaded From

मांग और पूर्ति की संकल्पना (Concept of Demand and Supply)

मांग शब्द का अर्थ अर्थव्यवस्था में अति विशिष्ट है। किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु की मांग को वैयक्तिक मांग कहते हैं। किसी निश्चित समय में किसी व्यक्ति द्वारा की गई मांग उस व्यक्ति द्वारा उस वस्तु को किसी कीमत पर खरीदने की इच्छा है। इस आधार पर मांग की परिभाषा में निम्नांकित तथ्यों का समावेश किया जाता है :

1. वस्तु की मात्रा जिसे कोई व्यक्ति खरीदना चाहता है। 2. वस्तु की कीमत जिसे खरीदने वाला व्यक्ति देना चाहता है।

3. वह निश्चित अवधि जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा किसी कीमत पर वस्तु की खरीद की जाती है।

एक वस्तु को कई व्यक्तियों द्वारा खरीदा जा सकता है। यदि किसी निश्चित अवधि में सभी व्यक्तियों द्वारा किसी निश्चित कीमत पर खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा को समष्टि रूप में देखा जाये तो उसे उस वस्तु की बाजार मांग कहते हैं।

मांग को प्रभावित करने वाले कारक :-किसी वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाले कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. वस्तु की कीमत 2. वस्तु के ग्राहक की आय 3. ग्राहक की अभिरुचि तथा प्राथमिकता 4. संबद्ध वस्तुओं की कीमत

वस्तु की कीमत में परिवर्तन से मांग पर पड़ने वाले प्रभाव:- किसी व्यक्ति की क्रय शक्ति अथवा वास्तविक आय का तात्पर्य किसी उत्पाद तथा सेवाओं की मात्रा एवं उस व्यक्ति द्वारा भुगतान की जाने वाली राशि से है। क्रय शक्ति में वृद्धि का अर्थ उसी आय में अधिक वस्तुओं की खरीद है तथा क्रय शक्ति में कमी का अर्थ कम वस्तुओं की खरीद से है। जब किसी वस्तु की कीमत कम होती है तो ग्राहकों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, वही ग्राहक उसी आय में अधिक मात्रा में उक्त वस्तु की खरीद कर सकता है। स्पष्टत:, वस्तु की कीमत कम होने से उसकी मांग में वृद्धि होती है।

मांग का नियम:- मांग के नियम के अनुसार, अन्य कारकों के स्थिर रहने पर किसी वस्तु की कीमत में हुई कमी से उसकी मांग बढ़ती है तथा कीमत में होने वाली वृद्धि से उसकी मांग कम होती है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी मांग एक दूसरे के व्युत्क्रमानुपाती है। कई ऐसे अवसर विद्यमान होते हैं जब मांग का नियम प्रभावी नहीं होता। इन अवसरों को मांग के नियम का अपवाद कहते हैं। ऐसे अपवादों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. **प्रतिष्ठा वस्तुएं** (Prestige goods) :- कई ऐसे उत्पाद होते हैं जिनसे किसी व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, हीरा। इन वस्तुओं की उच्च कीमतें प्रतिष्ठा में भी वृद्धि करती हैं।
2. **गिफिन वस्तुएं** (Giffen goods) :- सर रॉबर्ट गिफिन के अनुसार, कई अवसरों पर किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि के बावजूद उसकी मांग में वृद्धि होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसी वस्तुएं अनिवार्य वस्तुएं होती हैं। इन वस्तुओं को ही गिफिन वस्तुएं कहा जाता है।
3. **संभावनाएं** (Possibilities) :- यदि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि हो रही है तथा ग्राहकों को ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में उसकी कीमत में और भी वृद्धि होने की संभावना है तो उस वस्तु की मांग में वृद्धि हो जाती है। लेकिन इसके साथ-साथ उसकी कीमत में भी वृद्धि होती है।

दूसरी ओर, पूर्ति का तात्पर्य किसी इकाई द्वारा किसी निश्चित अवधि में किसी वस्तु की पूर्ति करने की इच्छा से है। अत: पूर्ति की परिभाषा में निम्नांकित तथ्यों का समावेश है :

1. वस्तु की मात्रा जिसकी आपूर्ति की जानी है। 2. वस्तु की कीमत जिस पर उसकी आपूर्ति की जानी है। 3. वह अवधि जिसमें वस्तु की आपूर्ति की जानी है।

पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक:- किसी इकाई द्वारा किसी वस्तु की पूर्ति के लिए उसकी मात्रा सुनिश्चित नहीं होती। पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. वस्तु की कीमत 2. उससे संबंधित अन्य वस्तुओं की कीमतें 3. उत्पादन के साधनों की कीमतें 4. उत्पादक का उद्देश्य

5. उत्पादन प्रौद्योगिक

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

3. भारत में नियोजन
Planning in India

भारत में नियोजन का इतिहास (History of Planning in India)

1934- सर एम. विश्वेश्वरैया ने दस वर्षीय योजना प्रस्तुत की जिसका मूल उद्देश्य 10 वर्षों में राष्ट्रीय आय को दुगना करना, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना, लघु एवं बड़े उद्योगों का समन्वित विकास करना था।

1938- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पं. जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया जिसने देश की आर्थिक समस्याओं को ध्यान में।रखकर सरकार के समक्ष एक योजना प्रस्तुत की जिसके प्रमुख बिन्दु थे- सहकारी कृषि को प्रोत्साहन, उद्योगों का विकास, मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा कृषि ऋणों की उपलब्धता।

1944- बम्बई के 8 प्रमुख उद्योगपतियों ने मिलकर एक 15 वर्षीय योजना का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसे 'बाम्बे प्लान' के नाम से जाना गया। "A Plan for Economic Development" नाम की इस योजना के माध्यम से प्रति व्यक्ति आय को दोगुना करने का लक्ष्य रखा गया। यह योजना मुख्य रूप से पूंजीवादी योजना थी जो जन समर्थन न मिलने के कारण कार्यान्वित न हो सकी। भारतीय श्रम संघ के प्रमुख एम.एन. राय द्वारा साम्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर एक 'जन योजना' प्रस्तुत की गई। साम्यवादी विचारधारा पर आधारित होने के कारण इस योजना को भी स्वीकार नहीं किया गया। गांधीजी की आर्थिक विचारधारा से प्रेरणा पाकर 1944 में श्रीमन्नारायण ने एक गांधीवादी योजना प्रस्तुत की। इस योजना का उद्देश्य जन समुदाय के जीवन स्तर को निर्धारित न्यूनतम सीमा तक लाना था। वित्तीय साधनों की अनुपलब्धता के कारण यह योजना क्रियान्वित न हो सकी।

1950- श्री जयप्रकाश नारायण ने शोषण विहीन समाज की स्थापना के उद्देश्य से 'सर्वोदय योजना' प्रस्तुत की। सरकार ने इस योजना को आंशिक रूप में स्वीकार किया।

वर्ष 1951-1956 की अवधि के लिए प्रथम पंचवर्षीय नियोजन के क्रियान्वयन के साथ ही भारत में नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था की नींव डाली गई थी। तब से कुल ग्यारह नियोजनों का क्रियान्वयन किया जा चुका है। भारत द्वारा नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था के चयन के कारणों में से महत्वपूर्ण कारणों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया गया है :

1. **विकास का बेहतर प्रयास:-** नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था के चयन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण विकास की प्रक्रिया को बेहतर बनाना था। निश्चित रूप से यह विकास सामाजिक तथा आर्थिक विकास की ओर उन्मुख था। वास्तव में, ब्रिटिश शासन की कमियों के कारण भारत के समक्ष अपनी उत्पादक शक्ति में वृद्धि के लिए इससे बेहतर विकल्प उपलब्ध नहीं था। इसका मूल कारण यह था कि नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था के माध्यम से ही उपलब्ध राष्ट्रीय संसाधनों का अनुप्रयोग कर आधारभूत संरचनाओं, जैसे सड़क, रेलवे, संचार आदि, का सृजन अनिवार्य था।

2. **आर्थिक कमियों का उन्मूलन:-** भारत को सामाजिक तथा आर्थिक रूप से विकसित बनाने के लिए यह आवश्यक था कि राष्ट्रीय स्तर पर उद्यमशीलता का विकास किया जाये। इसके लिए नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था ही अनिवार्य थी। इसी के माध्यम से औद्योगीकरण तथा औद्योगिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया जा सकता था। सरकार ने उद्यमशीलता के विकास के लिए ठोस प्रयास किये तथा संसाधनों को गत्यात्मक बनाने में भी सरकार को व्यापक सफलता अर्जित हुई। लेकिन भारत जैसे अल्प विकसित

Downloaded From www.studymaterial.com
DISCOVERY

देश में केवल सरकारी प्रयास ही आर्थिक कमियों को दूर करने में सक्षम नहीं हो सकते थे। इस कारण सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने का निर्णय किया जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के विकास पर समान बल दिया गया।

3. **कार्यक्षमता में वृद्धि :-** नियोजन सफलता की कुंजी है। इस सत्य को महसूस करते हुए यह तय किया गया कि नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था न केवल कार्यक्षमता में वृद्धि करने में सक्षम होगी बल्कि इससे कार्यशील जनसंख्या में क्षमता निर्माण भी किया जा सकेगा।

4. **आवश्यकताओं की पूर्ति :-** स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल उपरांत भारत की अर्थव्यवस्था का ढांचा अत्यन्त कमजोर था। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले देश के लिए यह अनिवार्य था कि कृषि विकास पर सर्वाधिक बल दिया जाये। इसके साथ ही, औद्योगिक विकास भी सुनिश्चित करना आवश्यक था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था ही एकमात्र विकल्प के रूप में भारत के समक्ष उपलब्ध थी।

भारतीय नियोजन की विशेषताएं (Features of Indian Planning)

भारतीय नियोजनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इनकी प्रकृति सांकेतिक है। विशेष रूप से 1990 के दशक में भारतीय नियोजनों के चरित्र में व्यापक परिवर्तन किये गये हैं, जिनके कारण इन्हें पूर्ण रूप में सांकेतिक बना दिया गया है। आठवीं तथा नवीं योजनाओं ने विकास एवं संवृद्धि के कई महत्वपूर्ण संकेतकों का प्रदर्शन किया था जिनमें निर्यात, आयात, निवेश, पूंजी निर्माण, राष्ट्रीय आय आदि उल्लेखनीय हैं। इन संकेतकों ने सरकार को नये लक्ष्यों के निर्धारण तथा संवृद्धि लक्ष्य की प्राप्ति में व्यापक सहयोग प्रदान किये। भारतीय नियोजन की विशेषताओं में निम्नांकित का उल्लेख समीचीन है:

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए नियोजन
2. विकेन्द्रीकृत नियोजन
3. मिश्रित अर्थव्यवस्था के अनुरूप नियोजन
4. संवृद्धि एवं समता के लिए नियोजन
5. अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण का लक्ष्य
6. स्वावलंबन पर विशिष्ट बल
7. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय

आर्थिक नियोजन एवं मुक्त बाजार (Economic Planning and Open Market)

किसी मुक्त बाजार में संसाधनों का उपयोग मुनाफा अर्जन तथा लोक कल्याण के लिए किया जाता है। इस कारण आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने बाजार पर नियंत्रण रखने के भी प्रयास किये। वस्तुत: आर्थिक नियोजन को मुक्त बाजारी व्यवस्था से बेहतर माना गया है जिसके कारणों में निम्नांकित प्रमुख हैं:

1. अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन की सहायता से कम समय में उत्पादक क्षमता बढ़ाई जा सकती है।
2. आर्थिक नियोजन के माध्यम से न केवल चालू उपभोग बल्कि भविष्य के उत्पादन के लिए भी उत्पादों एवं सेवाओं का उत्पादन किया जा सकता है।
3. उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिए आर्थिक नियोजन अपेक्षाकृत अधिक संसाधनों को गत्यात्मक बनाने की क्षमता रखता है।
4. कालांतर में आर्थिक नियोजन के माध्यम से आर्थिक विषमता कम की जा सकती है।
5. अर्थव्यवस्था के विकास में यह आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों का विकास सुनिश्चित करने में सक्षम है।
6. आर्थिक नियोजन सरकार को अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखने तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए सहायता प्रदान करता है।

आर्थिक नियोजन से अर्थ

''आर्थिक नियोजन का अर्थ एक संगठित आर्थिक प्रयास से है जिसमें एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित एवं सुपरिभाषित सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक साधनों का विवेकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है।'' आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं : (1) लक्ष्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण- आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषता-निश्चित लक्ष्यों का निर्धारण है। यह लक्ष्य पहले से खूब सोच-विचारकर निर्धारित किये जाते हैं, फिर उन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विकास की प्राथमिकताएँ एवं उनका क्रम निश्चित किया जाता है। (2) संगठित प्रणाली- आर्थिक नियोजन के लिए एक संगठित प्रणाली या ढंग के रूप में कार्य किया जाता है। यह प्रणाली स्वतंत्र उपक्रम प्रणाली (पूंजीवादी प्रणाली) की वैकल्पिक पद्धति है। (3) केन्द्रीय नियोजन व्यवस्था- आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत नियोजन का कार्य एक केन्द्रीय नियोजन संस्था को सौंप दिया जाता है। यही संस्था या संगठन योजनाएँ बनाता है एवं उनमें समन्वय करता है तथा उनको कार्य रूप में परिणत कराने की व्यवस्था करता है। (4) निश्चित अवधि- आर्थिक नियोजन एक निश्चित अवधि के लिए होता है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। (5) सरकारी कार्यक्रम- आर्थिक नियोजन सरकारी रणनीति का एक भाग होता है। (6) राज्य द्वारा हस्तक्षेप- आर्थिक नियोजन में राज्य द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है और निजी उद्योगों व संस्थाओं को भी राजकीय निर्देशों का पालन करना पड़ता है। (7) सामाजिक उत्थान- आर्थिक नियोजन का उद्देश्य सामाजिक उत्थान करना है जिससे कि समाज का विकास हो, उसका रहन-सहन का स्तर ऊपर उठे, उसकी आय में वृद्धि हो तथा सामाजिक बुराइयों का अन्त हो। (8) साधनों का अधिकतम उपयोग- आर्थिक नियोजन की एक विशेषता यह है कि इसमें साधनों का उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाता है। (9) दीर्घकालीन प्रक्रिया- आर्थिक नियोजन में एक के बाद एक योजनाएँ चलायी जाती हैं जिनमें आपस में दीर्घकालीन संबंध होता है। अल्पकालीन योजनाएँ भी दीर्घकालीन योजनाओं का भाग होती हैं। इस प्रकार एक योजना दूसरी योजना के लिए तथा दूसरी योजना तीसरी योजना के लिए (और इसी प्रकार आगे भी) आधार का काम करती है।

नियोजन के प्रकार (Types of Planning)

विभिन्न आधारों पर नियोजनों के प्रकारों की व्याख्या की गई है। इनमें से कई महत्वपूर्ण प्रकार के नियोजनों का उल्लेख नीचे किया गया है :

संरचना के आधार पर

1. **भौतिक नियोजन** :- इस प्रकार के नियोजन में विभिन्न संसाधनों का दोहन, नवीकरण तथा पुनर्चक्रण किया जाता है। इसका संबंध प्रति व्यक्ति संसाधन उपलब्धता से भी है।
2. **सामाजिक नियोजन** :- राष्ट्रीय हितों के संरक्षण की संकल्पना तथा विभिन्न सामाजिक आयामों के विकास के लिए निर्मित नियोजन को सामाजिक नियोजन कहा जाता है।
3. **आर्थिक नियोजन** :- आर्थिक विकास एवं संवृद्धि के लिए आवश्यक विभिन्न आयामों पर बल देकर उनका समुचित अनुप्रयोग करना आर्थिक नियोजन है। इससे आर्थिक स्थायित्व प्राप्त किया जा सकता है।

प्रकृति के आधार पर

1. **सांकेतिक नियोजन** :- इस प्रकार के नियोजन में विकास की माप कई महत्वपूर्ण संकेतकों के आधार पर की जाती है। इन संकेतकों में उद्योग, ग्रामीण विकास, साक्षरता, स्वास्थ्य, मानव विकास आदि प्रमुख हैं। सांकेतिक नियोजन का आधार प्रेरणा तथा अनुरोध है। इसके द्वारा राष्ट्रीय विकास की दर का प्रदर्शन भी किया जा सकता है।
2. **स्थैतिक नियोजन** :- योजना अवधि में बिना किसी परिवर्तन के जब योजना का क्रियान्वयन किया जाता है तब ऐसे नियोजन को स्थैतिक नियोजन की संज्ञा दी जाती है। इन नियोजनों का मूल्यांकन योजना काल के उपरांत किया जाता है।
3. **प्रावैगिक नियोजन** :- किसी योजना के क्रियान्वयन को बेहतर बनाने के उद्देश्य से योजना काल में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जाते हैं। ऐसे नियोजनों को प्रावैगिक नियोजन कहते हैं।

www.Downloadfromstudymasterofficial.com

4. **सुधारवादी नियोजन :-** इस प्रकार के नियोजन का चरित्र अस्थायी होता है। इसका मूल कारण यह है कि ऐसे नियोजनों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं। सामान्यत: ऐसे नियोजनों का निर्धारण विकासशील देशों द्वारा किया जाता है।

5. **विकासवादी नियोजन :-** विकासशील अथवा अल्प विकसित देशों में विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के उद्देश्य से विकासवादी नियोजनों का निर्धारण किया जाता है। ऐसे नियोजन में विकास के साथ-साथ सुधारों पर भी विशिष्ट बल होता है।

> **सांकेतिक नियोजन**
>
> सांकेतिक नियोजन का तात्पर्य एक ऐसे नियोजन से है जिसमे विभिन्न संकेतकों के आधार पर लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है। सांकेतिक नियोजन को राज्य और बाजार के बीच एक अंत:फलक के रूप में परिभाषित किया जाना ऐसे सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका कीमत प्रबंधन की है क्योंकि इससे उत्पादन, वितरण और उपभोग के मध्य संतुलन स्थापित होता है।
>
> दूसरी ओर श्रम और बाजार तथा बाजार और उपभोक्ताओं के बीच संतुलन बनाना भी ऐसे नियोजन का दायित्व है। हालांकि भारतीय नियोजन प्रणाली में सांकेतिक नियोजन को सर्वाधिक महत्व दिया गया है लेकिन सन् 1992 में निर्धारित 8वीं योजना को इस दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

शक्ति के आधार पर

1. **केन्द्रीकृत नियोजन :-** संसाधनों का नये प्रकार से उपयोग करने वाले नियोजन को केन्द्रीकृत नियोजन कहते हैं। वस्तुत: ऐसे नियोजन में संसाधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है। विश्व में सर्वप्रथम केन्द्रीकृत नियोजन का ही प्रयोग किया गया था। इस नियोजन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें संभावनाएँ व्यक्त नहीं की जातीं बल्कि लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। इस कारण कई अवसरों पर इसे अव्यावहारिक भी कहा गया है।

2. **विकेन्द्रीकृत नियोजन :-** नियोजन तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में जन भागीदारी सुनिश्चित करने के मूल उद्देश्य से विकेन्द्रीकृत नियोजन निर्धारित किये जाते हैं। इस नियोजन में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण पंचायत स्तर तक किया जाता है जिससे सभी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन बेहतर ढंग से किया जा सके। यद्यपि भारत में विकेन्द्रीकृत नियोजन की संकल्पना आधिकारिक रूप से प्रथम पंचवर्षीय नियोजन से ही लागू की गई थी लेकिन इस दिशा में वास्तविक प्रयास संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधनों के उपरांत नवीं योजना से प्रारंभ किया गया था। विकेन्द्रीकृत नियोजन की संकल्पना वस्तुत: एक वृहत संकल्पना है जिसमें **क्षेत्रीय** तथा **नगरीय नियोजन** भी सम्मिलित होते हैं।

अन्य प्रकार के नियोजन

1. **प्रेरणा के आधार पर नियोजन:-** इस प्रकार के नियोजन में राज्य द्वारा नागरिकों को नियोजन तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस आधार पर ऐसे नियोजन के तहत आर्थिक नीतियों का निर्धारण होता है।

2. **दिशा के आधार पर नियोजन :-** इस प्रकार का नियोजन वस्तुत: सरकार द्वारा संचालित होता है क्योंकि सभी कार्यों एवं नीतियों पर सरकार का ही प्रभुत्व स्थापित होता है। इस कारण सरकार ही सभी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की दिशा का निर्धारण करती है।

भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य (Objects of Economic Planning in India)

जैसा कि हम जानते हैं, भारत में आर्थिक विकास को त्वरित गति प्रदान करने तथा बाजारी प्रक्रियाओं को नियंत्रित तथा विनियमित करने के मूल उद्देश्य से आर्थिक नियोजन को संकल्पित किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय अर्थव्यवस्था में विद्यमान समस्याओं का निराकरण आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। इस कारण कालांतर में आर्थिक नियोजनों के उद्देश्यों का पर्याप्त विस्तार किया गया। कतिपय ऐसे उद्देश्यों का उल्लेख नीचे किया गया है :

1. **आर्थिक संवृद्धि को त्वरण:-** आरंभिक चरणों में भारत में प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम थी जिसकी वृद्धि अनिवार्य थी। इसके लिए यह आवश्यक था कि उत्पादन की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक हो। उल्लेखनीय है कि योजना आयोग ने यह संभावना व्यक्त की थी कि आगामी 20 वर्षों में भारत की वास्तविक आय दुगुनी हो जायेगी क्योंकि उत्पादन की दर में अप्रत्याशित वृद्धि

Downloaded From www.studymasterofficial.com

होगी।

2. **आर्थिक विषमताओं में कमी:-** भारतय अर्थव्यवस्था में न केवल न्यून आय की समस्या है बल्कि व्यापक स्तर पर आर्थिक विषमताएं भी विद्यमान हैं। ये विषमताएं मुख्य रूप से आय के असमान वितरण के कारण हैं। भारत में आर्थिक नियोजन निर्धनों के आय स्तर में वृद्धि कर आय के इस असमान वितरण को कम करने के प्रति कटिबद्ध है।

3. **स्वावलम्बन:-** भारत में आर्थिक नियोजन का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य स्वावलंबन की प्राप्ति है। इसके लिए नियोजनों में इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि भारत कृषि संबद्ध कच्चे माल तथा खनिजों का निर्यात नहीं कर उनका उन वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग किया जाये जिनका वर्तमान में आयात किया जाता है। इससे भारत की औद्योगिक उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होगी। दूसरी ओर, स्वावलंबन का तात्पर्य यह भी है कि भारत अपनी औद्योगिक क्षमता इस रूप में बढ़ाए कि आयातों के भुगतान की क्षमता विकसित हो सके।

भारत के संविधान में नियोजन

नियोजन 7वीं अनुसूची की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 20: आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन में उल्लेखित है। अत: संघ और राज्य दोनों की भूमिका नियोजन के निर्माण और कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण है।

समवर्ती सूची के इस प्रावधान को उद्देशिका में उल्लेखित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय तथा भाग-4 में अनुच्छेद 38, 39, 46 से विकसित 'वितरण न्याय के सिद्धांत' से प्रत्यक्ष समर्थन मिलता है।

संघ और राज्य के सहयोग से बनने वाली योजनाओं के अनुमोदन का दायित्व राष्ट्रीय विकास परिषद का है जिसमें राज्यों के मुख्यमंत्री और संघशासित क्षेत्रों के प्रशासक सदस्य होते हैं।

4. **संतुलित क्षेत्रीय विकास:-** आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भारत के विभिन्न पिछड़े क्षेत्रों को विकास की मुख्य धारा में लाना है। वास्तव में भारत के कई क्षेत्र औद्योगिक विकास के दृष्टिकोण से अत्यन्त पिछड़े हैं। इन क्षेत्रों के विकास के लिए क्षेत्र-विशिष्ट कार्यक्रमों का क्रियान्वयन आर्थिक नियोजनों की विशेषता भी है।

5. **आधुनिकीकरण:-** किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास आधुनिकीकरण के बिना संभव नहीं है। इस तथ्य के आलोक में आर्थिक नियोजनों का निरूपण किया जाता है। आधुनिकीकरण से नई तकनीकों के माध्यम से उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। साथ ही, आधुनिकीकरण भारतीय उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने में भी सक्षम है। इसके अतिरिक्त, इससे सामाजिक विकास के साथ-साथ आय में वृद्धि भी की जा सकती है।

6. **बेरोजगारी में कमी:-** आर्थिक संवृद्धि अन्तत: रोजगार के नये अवसरों का सृजन करती है। इस उद्देश्य से भारत में आर्थिक नियोजन नये उद्योगों की स्थापना तथा उनके सुदृढ़ीकरण के प्रति कटिबद्ध है। इसके फलस्वरूप, कृषि पर पड़ने वाले जनसंख्या दबाव को भी कम किया जा सकता है।

पंचवर्षीय नियोजन (Five Year Plans)

भारत में नियोजन की उत्पत्ति वस्तुत: वर्ष 1934 में एम. विश्वेश्वरैया द्वारा प्रकाशित पुस्तक प्लानिंग इन इंडिया से देखी जा सकती है। इस पुस्तक में भारत जैसे देश के लिए नियोजन के महत्व का उल्लेख किया गया था। हांलाकि आरंभिक चरणों में दस वर्षी नियोजनों के निर्धारण का प्रस्ताव किया गया था। इस दिशा में पहला ठोस प्रयास 1938 में किया गया था जब जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक **राष्ट्रीय नियोजन समिति** गठित की गई थी। वर्ष 1944 में **बॉम्बे प्लान** नामक एक 15-वर्षीय नियोजन का निर्धारण किया गया था जिसमें कुल 10,000 करोड़ रुपए के व्यय का अनुमान था। अगस्त 1944 में भारत सरकार द्वारा **योजना एवं विकास विभाग** की स्थापना की गई। इसी बीच, एम. एन. राय द्वारा कुल 15,000 करोड़ रुपए की लागत वाले एक 15-वर्षीय नियोजन का निर्धारण किया गया जिसे **जन योजना** की संज्ञा दी गई थी। लगभग इसी अवधि में श्रीमन्नारायण ने कृषि सुधार तथा ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के पुनर्गठन के मूल उद्देश्य से **गांधी योजना** नामक एक योजना का निर्धारण किया। लेकिन वर्ष 1950 में **योजना आयोग** के गठन के उपरांत भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का वर्तमान स्वरूप उजागर हुआ। इस क्रम में भारत में वर्ष 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना क्रियान्वित

Downloaded From www.Studymasterofficial.com
DISCOVERY

की गई।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56)

भारत के विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असंतुलन को दूर करने के मूल उद्देश्य से वर्ष 1951 में पहली पंचवर्षीय योजना का क्रियान्वयन किया गया था। योजना को भारत में आर्थिक विकास की प्रक्रिया के आरंभ का दायित्व सौंपा गया था। इस अवधि में भारत में खाद्य सुरक्षा की व्यापक समस्या विद्यमान थी जिसके आलोक में योजना में कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। सिंचाई, पुनर्वास, ऊर्जा उत्पादन तथा परिवहन जैसे क्षेत्रों पर विशिष्ट बल दिये गये। कुल 1960 करोड़ रुपए की लागत वाली इस योजना में 2.1 प्रतिशत का संवृद्धि लक्ष्य निर्धारित था। इनके अतिरिक्त, जमींदारी प्रथा की समाप्ति प्रथम नियोजन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। साथ ही, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी पहले नियोजन का महत्वपूर्ण आयाम सिद्ध हुआ।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61)

दूसरी पंचवर्षीय योजना को **महलनोबिस योजना** भी कहा जाता है। इस नियोजन में भारी तथा आधारिक उद्योगों की स्थापना तथा उनके विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। इसका मूल उद्देश्य औद्योगीकरण की प्रक्रिया को त्वरित गति प्रदान करना था। औद्योगीकरण का लक्ष्य न केवल उत्पादन में वृद्धि बल्कि राष्ट्रीय आय में भी पर्याप्त वृद्धि करना था। दूसरे नियोजन की एक अन्य विशेषता यह थी कि इस योजनाकाल में भारत ने 1956 में औद्योगिक नीति की घोषणा की थी। राष्ट्रीय आय में 3.9 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में 1.9 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। उद्योगों की स्थापना ने रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का भी सृजन किया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66)

दूसरी योजना के अंत तक एक आवश्यकता महसूस की गई कि खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलंबन तथा इस्पात, रसायन एवं ऊर्जा संबंधी उद्योगों का विस्तार किया जाये। इसी दृष्टिकोण से तीसरी योजना का क्रियान्वयन किया गया था। पूर्व की दोनों योजनाओं की भांति तीसरे नियोजन में भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा रोजगार के अवसरों के सृजन पर बल दिया गया था। योजना ने इस तथ्य पर विशिष्ट बल दिया था कि आय का समान वितरण तथा सामान्य जनता के क्षमता निर्माण की प्रक्रिया का सुदृढ़ीकरण अनिवार्य था। तीसरे नियोजन के लिए कुल आवंटित राशि 10,400 करोड़ रुपए थी। वास्तव में इस नियोजन ने भारत में समेकित विकास की अवधारणा को ठोस आधार प्रदान करते हुए कृषि तथा उद्योग के संतुलित विकास को प्रोत्साहित किया।

वार्षिक योजनाएं (1966-69)

वर्ष 1962 से 1968 के मध्य भारत में कई विशिष्ट समस्याएं उत्पन्न हो गई थीं। इन समस्याओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण 1962 में भारत-चीन युद्ध तथा 1966-67 एवं 1967-68 में भीषण अकाल था। इन समस्याओं के कारण सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा लगभग निम्नतम स्तर पर आ गया। वस्तुत: कोष के अधिकांश भाग को प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवंटित कर दिया गया था जिसके फलस्वरूप कृषि तथा उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में होने वाले निवेश में अप्रत्याशित कमी हो गई। इसके कारण सकल उत्पादकता भी अत्यन्त कम हो गई। भारत सरकार ने अर्थव्यवस्था को पुन: सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से पंचवर्षीय योजनाओं के स्थान पर तीन वार्षिक योजनाओं का निरूपण किया। इस कारण इस अवधि को **योजनावकाश** (Plan Holiday) कहते हैं। वर्ष 1966 में रुपए का अवमूल्यन कर निर्यात को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा का अधिकाधिक अर्जन था। तीनों वार्षिक योजनाओं के लिए कुल 6,626 करोड़ रुपए की राशि स्वीकृत थी। राष्ट्रीय आय में 2.2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित था। आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने का प्रयास किया गया ताकि देश की सकल उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74)

इस अवधि में भारत ने स्थायित्व के साथ विकास की प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने पर विशिष्ट बल दिया था। वास्तव में चौथी योजना आर्थिक पुनर्निर्माण की प्रक्रियाओं का ही विस्तार थी जिनकी नींव योजनावकाश में डाली गई थी। भारत के समाजवादी लोकतंत्र की रक्षा के उद्देश्य से सामाजिक न्याय तथा समता सुनिश्चित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इसी योजनाकाल में बहुचर्चित **गाडगिल**

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

फॉर्मूले का क्रियान्वयन भी किया गया था। योजना के प्रारूप पत्र में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख था कि सभी कार्यक्रम स्वावलंबन तथा विकेन्द्रीकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करेंगे।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-78)

पांचवीं योजना का मूल उद्देश्य कृषि सुधारों को प्रश्रय देना था क्योंकि इस क्षेत्र में उत्पादक निवेश की अपर्याप्तता विद्यमान थी। स्वावलंबन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह अनिवार्य था कि संसाधनों को तत्काल प्रभावकारी रूप से गत्यात्मक बनाया जाये। स्वावलंबन प्राप्त करने के लिए तीन मुख्य तथ्यों को प्राथमिकता दी गई, (क) विदेशी सहायता को न्यूनतम स्तर पर लाने का प्रयास, (ख) वास्तविक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से संसाधनों का वितरण तथा (ग) बचत में वृद्धि कर पूंजी निर्माण को बढ़ावा। पांचवीं योजना ने उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ-साथ गरीबी उपशमन तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि के भी महत्वपूर्ण प्रयास किये। योजनाकाल में क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने तथा जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने वाले प्रयासों को सामर्थ्य प्रदान किया गया था। इस योजना में क्रियान्वित किये जाने वाले कार्यक्रमों के समक्ष सर्वाधिक बड़ी चुनौती यह थी कि सम्पूर्ण देश में विद्युतीकरण अत्यन्त कम था जिसके फलस्वरूप कई कार्यक्रम अपने लक्ष्य प्राप्ति में सफल नहीं हो पाये। 3.9 प्रतिशत की संवृद्धि लक्ष्य वाले इस नियोजन में 20-सूत्री कार्यक्रम की आधारशिला रखी गई थी।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)

मुख्य रूप से छठी योजना ने गरीबी उपशमन के लिए प्रयास किया जिसके लिए राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लक्षित थी। इस योजना में संवृद्धि का लक्ष्य 5.2 प्रतिशत निर्धारित किया गया था। योजना के प्रारूप पत्र में गरीबी के विस्तार के तीन महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख किया गया था: (क) निम्न संवृद्धि दर, (ख) आय तथा उपभोग की वस्तुओं का असमान वितरण तथा (ग) जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर। छठी योजना में कुल दस लक्ष्य निर्धारित थे:

1. देश की आर्थिक संवृद्धि की दर में वृद्धि, संसाधनों का समुचित अनुप्रयोग तथा उनकी उत्पादकता में वृद्धि।
2. विकास के सभी क्षेत्रकों में आधुनिकीकरण के माध्यम से प्रौद्योगिकीय स्वावलंबन की प्राप्ति।
3. बेरोजगारी एवं गरीबी में पर्याप्त कमी।
4. ऊर्जा के आंतरिक स्रोतों का त्वरित विकास।
5. समाज के कमजोर वर्गों के जीवन स्तर में सुधार के लिए सामाजिक-आर्थिक विकास के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का क्रियान्वयन।
6. आय तथा संसाधनों के वितरण में व्याप्त विषमता में कमी।
7. विकास तथा प्रौद्योगिकीय विस्तार से क्षेत्रीय विषमता में कमी।
8. जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश।
9. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का संरक्षण।
10. शिक्षा, संचार एवं अन्य संस्थागत गतिविधियों का प्रसार।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

छठी योजना की भांति ही सातवीं योजना में भी गरीबी उपशमन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। साथ ही, इसने ग्राम-नगर विषमता तथा क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के लिए विशेष प्रयास किये ताकि आय तथा संसाधनों के असमान वितरण को समान बनाया जा सके। उत्पादक रोजगार का सृजन इस नियोजन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। सातवीं योजना की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने वाले निवेश का अनुपात 48:52 था। योजनाकाल में गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के विकास तथा जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने पर भी बल दिया गया था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

जुलाई 1991 में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के आरंभ के साथ यह आवश्यक हो गया था कि सम्पूर्ण नियोजन प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन किया जाये। यह परिवर्तन आठवीं योजना में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए। भारतीय उद्योगों को वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में सफल बनाने के लिए आवश्यक बाजारी प्रक्रियाओं के अनुरूप नई औद्योगिक नीति तथा व्यापार नीति की घोषणा की गई। विकास के विभिन्न चरणों में मानव संसाधन की महत्ता समझते हुए योजनाकाल में मानव संसाधन विकास तथा प्रबंधन के सभी आयामों को प्राथमिकता प्रदान की गई। 15-35 वर्ष आयु वर्ग में साक्षरता की दर में वृद्धि हेतु प्रयास आठवीं योजना की एक विशेषता थी।

ऊर्जा, परिवहन, संचार तथा सिंचाई के क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं का सृजन तथा विकास भी योजना की विशिष्टताओं में से एक था। घरेलू संसाधनों पर बल देते हुए बचत एवं निवेश की प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाना आवश्यक था। दूसरे शब्दों में, आठवीं योजना ने बाह्य स्रोतों पर निर्भरता कम करने का लक्ष्य निर्धारित किया था। निवेश का लक्ष्य सकल घरेलू उत्पाद का 23.2 प्रतिशत तथा घरेलू बचत का लक्ष्य सकल घरेलू उत्पाद का 21.6 प्रतिशत निर्धारित था।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

नवीं योजना की मूल भावना **सामाजिक न्याय तथा समता के साथ विकास** की थी। इस योजना के विशिष्ट उद्देश्यों में निम्नांकित का उल्लेख समीचीन है :

1. गरीबी उपशमन तथा उत्पादक रोजगार सृजन के उद्देश्य से कृषि एवं ग्रामीण विकास की प्राथमिकता।
2. मूल्य स्थिरीकरण के साथ आर्थिक संवृद्धि की दर में वृद्धि।
3. समाज के सभी वर्गों के लिए खाद्य तथा पोषण सुरक्षा का सुनिश्चितीकरण।
4. सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा, आवासीय सुविधा तथा एक निश्चित अवधि में संपर्क साधनों की प्रचुरता जैसी आधारिक सुविधाओं की उपलब्धता का सुनिश्चितीकरण।
5. जनसंख्या वृद्धि दर पर अंकुश।
6. सामाजिक गत्यात्मकता तथा जन भागीदारी के साथ सतत् पर्यावरण विकास।
7. सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए महिलाओं एवं समाज के अन्य वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यकों का सशक्तिकरण।
8. जन भागीदारी सुनिश्चित करने वाले संस्थानों जैसे पंचायती राज, सहकारी संघ तथा स्व-सहायता समूहों का प्रवर्तन और विकास।
9. स्वावलंबन प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले प्रयासों का सुदृढ़ीकरण।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07)

कृषि विकास, राजकोषीय असुरक्षा, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, आधारभूत संरचनाओं में सरकार की भूमिका आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर दसवीं योजना में विशिष्ट बल दिया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि अर्थव्यवस्था की समस्याओं के निराकरण के लिए इन क्षेत्रों का विकास अनिवार्य है। यद्यपि नियोजन में आर्थिक ढांचे में सुधार लाने के कई प्रावधान किये गये हैं लेकिन इन प्रावधानों की सफलता सरकार द्वारा बनाई जाने वाली कार्य योजनाओं की सफलता पर निर्भर है। 8 प्रतिशत के संवृद्धि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण नियोजन प्रणाली में व्यापक परिवर्तन की अनिवार्यता है। इसके लिए निवेश नियोजन से विकासोन्मुखी नियोजन की ओर उन्मुख होना भी अनिवार्य है।

योजना में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र, दोनों को ही सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। लेकिन इसकी सफलता भी इसके अनुरूप निर्धारित की जाने वाली नीतियों पर निर्भर है। योजना आयोग के उपाध्यक्ष द्वारा दिया गया यह सुझाव कि आयोग का पुनर्गठन किया जाना चाहिए, इस तथ्य का द्योतक है कि राज्यों को वृहत नियोजनों से विशेष लाभ प्राप्त नहीं होता। वर्तमान

www.studyguideofficial.com
Downloaded From

संदर्भ में यह भी आवश्यक है कि राज्यों को योजना में आवंटित राशि तथा चयनित संसाधनों के मध्य संतुलन स्थापित करना होगा।

दसवीं योजना में हाल के वर्षों में उत्पन्न समस्याओं के निराकरण के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं। सरकार द्वारा नई रणनीति के तहत आधारभूत संरचनाओं के विकास के लिए निजी क्षेत्र को प्रेरित करने का कार्य किया जाना आवश्यक है। वर्तमान विश्व जो बाजार तथा तकनीक आधारित है, में यह तथ्य और भी महत्वपूर्ण हो गया है। दूसरे शब्दों में, सरकार के लिए नियंत्रक के स्थान पर एक विनियामक की भूमिका का निर्वाह करना अनिवार्य हो गया है। इसी आधार पर भारत की अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण कर उसे सुदृढ़ बनाया जा सकता है। विश्व विकास रिपोर्ट 2004 : गरीबी पर प्रहार के आलोक में दसवीं योजना में वर्ष 2007 तक गरीबी को 5 प्रतिशत अंक तथा 2012 तक 15 प्रतिशत अंक कम करने का लक्ष्य निर्धारित है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साक्षरता दर में वृद्धि, वनाच्छादित प्रदेश का विस्तार, जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर में कमी तथा सुरक्षित पेयजल की सुविधा का विस्तार करने वाले प्रयासों से सामर्थ्य प्रदान किया जायेगा। योजना में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि श्रम शक्ति को कार्यक्षम बनाने के लिए भारत को उत्पादक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

दसवीं योजना में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई है। इसके लिए तृतीय तथा अब चौथे चरण के आर्थिक सुधारों के काल में सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र को इस रूप में विकसित करने का लक्ष्य रखा गया है कि उसमें रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की क्षमता बढ़ सके। उल्लेखनीय है कि इस कार्य को राष्ट्रीय कृषि नीति का पर्याप्त सहयोग भी प्राप्त होगा। कृषि के अतिरिक्त, योजना में परिवहन, पर्यटन तथा निर्माण परियोजनाओं को सुदृढ़ बनाने पर भी बल दिया गया है। योजना काल में कृषि मंत्रालय के अधीन तिलहन पर प्रौद्योगिकी मिशन तथा अन्य ऐसे ही कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी किया जायेगा।

जहां तक आधारभूत संरचनाओं एवं सूचना प्रौद्योगिकी का प्रश्न है, योजना आयोग ने भारतीय प्रबंधन संस्थानों तथा भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के साथ संपर्क बनाये हैं जिससे इन संस्थाओं के विशेषज्ञों के ज्ञान का सहयोग प्राप्त किया जा सके। भारत में राजकोषीय असुरक्षा की भावना दूर कर बेहतर राजकोषीय प्रबंधन के लिए योजना आयोग ने गैर-योजनागत व्यय संबंधी मामलों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का निश्चय किया है। आयोग ने **आवर्ती योजना** (Rolling Plan) के निरूपण की भी सिफारिश की है। तीन वर्षीय इस प्रणाली के तहत संसाधनों को दो वर्षों की अवधि के उपरांत मूल्यांकित कर तीसरे वर्ष के लिए नीति निर्धारित की जायेगी। योजना में यह भी उल्लेख है कि 8 प्रतिशत के संवृद्धि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिक निवेश तथा सार्वजनिक क्षेत्र से प्राप्त राशि के अतिरेक की आवश्यकता है। इस कारण निवेश का लक्ष्य सकल घरेलू उत्पाद के 23 प्रतिशत से बढ़ाकर 32.6 प्रतिशत रखा गया है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12)

त्वरित संवृद्धि और समावेशी विकास के लिए सामाजिक और आर्थिक अवसंरचनाओं का निर्माण एवं विकास 11वीं योजना का मुख्य उद्देश्य थे:

1. सकल घरेलू उत्पाद को 8% से 10% को करने का लक्ष्य तथा वर्ष 2016-17 तक प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने के लिए 12 वीं योजनाकाल में 10% लक्ष्य को सतत बनाए रखने का प्रयास।
2. अतिरिक्त लाभ लेने के लिए कृषि उत्पादकता में 4% की वृद्धि।
3. 70 मिलियन रोजगार के अवसरों का सृजन।
4. शिक्षित बेरोजगारी को 5% से कम करने का प्रयास।
6. प्राथमिक विद्यालयों से नामांकन वापस लेने की दर जो वर्ष 2003-04 में 52% थी, को 20% कम करने का प्रयास (2011-12)।
7. साक्षरता दर में वृद्धि तथा विशेष रूप से सातवर्ष तथा उससे अधिक आयु की जनसंख्या में साक्षरता दर को 85: करने का प्रयास।
8. साक्षरता दर में लैंगिक असमानता को 10% अंक तक करने का प्रयास।
9. 0-3 वर्ष के आयु वर्ग में बालकों के कुपोषण को लगभग 50% कम करने का प्रयास।

DISCOVERY
Downloaded From www.studynotesofficial.com

10. महिलाओं एवं बालिकाओं के रक्तचाप के स्तर पर वर्ष 2011-12 तक 50% की कमी।

11. 0-6 वर्ष के आयु वर्ग में 2011-12 तक लिंग अनुपात को 935 तथा 2016-17 तक 950 करने का प्रयास।

12. सभी कार्यक्रमों के लाभों का औसतन 33% उपलब्ध करा महिलाओं एवं बालिकाओं तक उपलब्ध कराने का प्रयास।

13. वर्ष 2009 तक सभी गांवों में विद्युतीकरण तथा 24 घंटे विद्युत आपूर्ति सुनिश्चित करने का प्रयास

14. सभी मौसम में कार्य करने वाली सड़कों का निर्माण।

15. वनाच्छादान में 5% अंक की वृद्धि।

16. विश्वस्वास्थ्य संगठन के मानकों को वर्ष 2011-12 तक सभी बड़े शहरों में लागू करने का प्रावधान ताकि वायु की गुणवत्ता सुनिश्चित किए जा सके।

17. नगरीय पर्यावरण में सुधार के लिए नगरों से उत्सर्जित अवशिष्ट जल का निस्तारण ताकि वर्ष 2011-12 तक नदियों को प्रदूषणमुक्त किया जा सके।

18. वर्ष 2016-17 तक ऊर्जा की कार्यकुशलता में 20% अंक।

11वीं योजना का कार्य निष्पादन

11वीं योजना में संवृद्धि को समावेशन के लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन माना गया है, उल्लेखनीय है कि तीव्र संवृद्धि तभी सफल हो सकती है कि जब उसे आर्थिक, सामाजिक कार्यक्रमों से समर्थन दिया जाए ताकि जीवन स्तर में सुधार हो सके और सामुदायिक स्तर पर विषमताएँ दूर की जा सके। इसी पृष्ठभूमि में 11वीं योजना के कार्य निष्पादन की समीक्षा तार्किक होगी।

संवृद्धि की दृष्टि से 11वीं योजना अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा सकती है इसका मुख्य कारण यह है कि वैश्विक अर्थिक मंदी और वित्त संकट के कारण जब भारत की संवृद्धि दर वर्ष 2007-08 में 9.3 प्रतिशत से कम होकर वर्ष 2008-09 में 6.8% हो गई थी तब 11वीं योजना में विभिन्न उपायों और राजकोषीय पैकेज के माध्यम से वर्ष 2009-10 से संवृद्धि दर को पुन: 8% तक लाने में सफलता प्राप्त की है। वर्ष 2011-12 में संवृद्धि दर के 11% होने की आशा है। हलांकि यह 9% के वार्षिक लक्ष्य से कम होगी लेकिन विद्यमान दशाओं को देखते हुए यह कहा जाना चाहिए कि योजनाकाल में संवृद्धि को समावेशन का एक प्रभावकारी साधन बनाया गया है।

12वीं योजना (2012-17)

यह विदित है कि पंचवर्षीय नियोजनों का दृष्टिकोण पत्र परम्परागत रूप से योजना आयोग के दीर्घकालिक नियोजन विभाग द्वारा बनाया जाता रहा है। इसमें वरिष्ठ अधिकारियों का एक समूह (Focus Group) आर्थिक संवृद्धि के अनुमानों और क्षेत्रवार वितरण के अवयवों का आकलन करता है। जो योजना के दृष्टिकोण पत्र का आधार है।

12वीं योजना के दृष्टिकोण पत्र के निर्माण के पूर्व अधिकारियों के इस समूह के बदले निचले स्तर से योजना आयोग के सलाहकार तक के अधिकारियों को 1 माह की अवधि में क्षेत्रवार आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप अपने विचार देने का दायित्व सौंपा गया था। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उन समस्याओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है, जो नितियों के कार्यान्वयन के समक्ष विद्यमान होती हैं जैसे-1. पर्यावरणीय स्वीकृति (Environmental Clearence) 2. वन अधिकार से संबंधित विषय 3. निवेश से संबंधित समस्याएं।

एसी सूचनाओं की प्राप्ति के लिए योजना आयोग ने देशभर में विभिन्न स्थानों पर कार्यशालाओं का आयोजन कर अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। निश्चित रूप से इस दृष्टिकोण से बनाई जाने वाली 12वीं योजना में न केवल जनसहभागिता सुनिश्चित होगी वरन सुशासन की स्थापना में इसका योगदान महत्वपूर्ण होगा।

मौलिक उद्देश्य:- तीव्र अधिक समावेशी और सतत् संवृद्धि।

योजना में निम्न क्षेत्रों को संवृद्धि का संचालन माना गया है-

(i) निवेश की उच्च दर - सकल घरेलू उत्पाद का 36%

(ii) बचत की उच्च दर - 33.7%

(iii) निर्यात में वृद्धि

(iv) निजी क्षेत्र की गत्यात्मकता में वृद्धि

(v) शिक्षा, स्वास्थ्य तथा श्रम क्षेत्रों में सुधार

योजना में दो प्रकार की चुनौतियों का सामना करने का भी उल्लेख हैं-

1. **घरेलू** - तीव्र गति से बढ़ती आवश्यकताओं को देखते हुए सकल घरेलू उत्पाद की दर की तीव्रता एक बड़ी चुनौती है। साथ ही आवश्यकता अनुसार संरचनात्मक सुधार सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है।
2. **बाह्य चुनौतियां** - वैश्विक अर्थव्यवस्था में विद्यमान संकट विशेषकर यूरोज़ोन संकट से उत्पन्न चुनौतियां।

12वीं योजना में किए जाने वाले मुख्य प्रयास-

1. पेंसन तथा बीमा क्षेत्रों में सुधार की प्राथमिकता जिसका उद्देश्य घरेलू बचतों को निगमीय निवेश में रूपांतरित करना है।
2. अवसंरचना ऋण निधि (Infrastructure Debt fund) की स्थापना ताकि अवसंरचनाओं के विकास के लिए पर्याप्त राशि जुटाई जा सके।
3. सार्वजनिक बैंकों में सरकारी अंश को 51% से कम करने का प्रावधान ताकि उनका पूँजी आधार बड़ा किया जा सके।
4. वित्तीय समावेशन को उच्चस्तरीय प्राथमिकता।
5. 2009 की समन्वित ऊर्जा नीति का कार्यान्वयन ताकि वैश्विक दशाओं के अनुरूप ऊर्जा की कीमतें निर्धारित की जा सकें।
6. नई राष्ट्रीय जल नीति का निर्धारण और सतत् जल प्रबंधन को प्राथमिकता कार्यान्वयन।
7. जैव विविधता अधिनियम 2002 (नियमावली 2004) का ग्रामसभा के स्तर पर कार्यान्वयन।
8. आजिविका, भोजन तक पहुँच तथा पारितंत्र और मानव स्वास्थ्य का अभिरक्षण।
9. विशेष कर पोषण के स्तर पर लैंगिक विषमता में कमी।
10. मानव संसाधन स्वास्थ्य प्रबंध प्रणाली का आरम्भ।

12वीं योजना के उद्देश्यों की समीक्षा (12वीं योजना में संवृद्धि की सम्भावनाएं)-

यद्यपि 12वीं योजना का मूल लक्ष्य तीव्र समावेशी और सतत् संवृद्धि है लेकिन विश्व अर्थव्यवस्था में विशेषकर औद्योगीकृत राष्ट्रों में संवृद्धि दर के अपेक्षाकृत कम रहने की आशंका के कारण 12वीं योजना के समक्ष मांग जनित चुनौतियां विद्यमान होगीं विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मांग के कम होने के कारण भारतीय निर्यात में कमी की आशंका है। इस पृष्ठभूमि मे 12वीं योजना काल में निर्यात दर में वृद्धि के लिए उभरती हुई बाजारी अर्थव्यवस्थाओं के साथ संबंधों में सुधार की संभावनाएं बढ़ गई है। पिछले कई वर्षों में यह देखा गया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में घरेलू मांग अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। इस कारण विद्यमान परिस्थितियों में आगामी वर्षों में भी घरेलू मांग संवृद्धि की एक प्रमुख संचालक सिद्ध होगी।

यह भी कहा जाना तार्किक होगा कि अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को गति देने के लिए अवसंरचना के क्षेत्र में निवेश में वृद्धि अनिवार्य है। इस चुनौती का सामना करने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में वृद्धि के प्रयास किए जाऐगें। उल्लेखनीय है कि विश्व नवेश रिपोर्ट 2011 में हलांकि भारत का स्थान थ्क्प् के आकर्षण केन्द्र की दृष्टि से 9 से गिर कर 14 हो गया है परन्तु घरेलू अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता से अगले तीन वर्षों में भारत का स्थान तीसरा होगा।

12वीं योजनाकाल में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए एक उपयुक्त वातावरण के निर्माण की आवश्यकता है। उल्लेखनीय है कि भारत में सकल घरेलू बचत GDP का 32.2% थी वह 2009-10 में बढ़कर 33.7% हो गई थी अत: यह आशा की जा सकती है कि योजना काल में पूँजी के जुटाव में सरलता होगी।

जहाँ तक कृषि विकास का प्रश्न है निश्चित रूप से बागवानी और मत्सयन जैसे क्षेत्रों का योगदान आगामी वर्षों में महत्वपूर्ण होगा। लेकिन इसके लिए बेहतर बाजारी व्यवस्था और प्रभावशाली परिवहनीय सुविधाओं का होना अनिवार्य है। विशेषकर छोटे किसानों के हित को

Downloaded From www.studymaterial.com

देखते हुए राज्यों द्वारा भूमि सुधार संबंधी अधिनियमों के निर्धारण की आवश्यकता है। इस प्रकार निविर्माण के क्षेत्र में भी वृद्धि दर बढ़कर उत्पादक रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन आवश्यकता होगा। इसी कारण विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर का लक्ष्य 10.11% प्रतिवर्ष निर्धारित है।

अवसंरचनात्मक विकास 12वीं योजना की सबसे बड़ी चुनौती है। अत: यह चुनौती न केवल वित्त की प्राप्ति वल्कि उसके उपयोग की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। विकास के साथ-साथ सकल राजकोषीय घाटे को कम करना योजना का एक प्रमुख दायित्व है जिसके लिए राजस्व प्प्तियों के श्रोत बढ़ने वाले प्रयास किए जाऐंगे। इसमें उत्पाद एवं सेवाकर प्रणाली का क्रियान्वयन भी शामिल है।

भारत का सकल राजकोषीय घाटा वर्ष 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद का 5.1% रहा है जिसके 2011-12 में कम होकर 4.6% होने की आशा है। इसके उपरांत प्रतिवर्ष 0.5% अंक की कमी की जाएगी जिससे वर्ष 2014-15 तक केन्द्र सरकार का राजकोषीय घाटा 3% और सकल राकोषीय घाटा 4.5% होगा।

निष्कर्षत: वर्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि रणनीतिक परिवर्तनों के साथ 12वीं योजनाकाल में चुनौतियों का सामना करते हुए संवृद्धि की जा सकती है।

भारत में योजना रणनीति (Planning Strategy in India)

1991 के आर्थिक उदारीकरण को आधार बनाकर भारत में नियोजन की रणनीति का आंकलन तर्क संगत होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि 1991 के पूर्व भारत में नियोजन मुख्य रूप से समृद्धि आधारित विकास, जबकि उसके उपरान्त विकास आधारित समृद्धि पर केन्द्रित रहा है। दूसरी ओर 1991 के पूर्व बंद अर्थव्यवस्था नियोजनों के माध्यम से विकास को दिशा दि गई थी, जबकि मुक्त बाजारी अर्थव्यवस्था के दौर पर नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था को समायोजित करने का प्रयास किया गया। अत: यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय नियोजन की रणनीति में परिस्थितयों के साथ अनुकूलित होने की क्षमता विद्यमान है इसी पृष्ठभूमि में इस रणनीति को निम्नांकित चरणों में विभक्त किया जा सकता है

सवृद्धि आधारित विकास का चरण 1951-1966

इस काल में मुख्य रूप से प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय वृद्धि लक्षित थी। इसके लिए प्रथम तीन नियोजनों का निर्धारण किया गया था। इस अवधि में मुद्रा स्फीति की उच्चदर तथा खाद्यान्न संकट जैसी समस्याएं विद्यमान थी। अत: उत्पादन में मात्रात्मक वृद्धि करना अनिवार्य था। अन्तत: 11% लक्ष्य के विपरीत राष्ट्रीय आय में 18% की वृद्धि दर्ज की गई। इस अवधि के प्रथम चरण में कृषि उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी, जबकि दूसरा नियोजन भारी तथा आधारित उद्योगों को दूसरे नियोजन का यह दृष्टिकोण सार्वजनिक क्षेत्र के विकास, धन के संकेन्द्रण पर अंकुश लगाने के लिए लगाया गया था। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य तीसरे नियोजन एकीकृत विकास को प्राथमिकता दिया जाना इस रणनीति की एक विशेषता कही जा सकती है।

योजना अवकाश (1966-1969)

नियमित अवधि वाली दीर्घकालिन योजनाओं के स्थान पर वार्षिक नियोजन के निर्धारण की अवधि को योजना अवकाश कहते हैं। ऐसे योजनाओं के अवकाश के कारणों में प्रमुख है।

1. 1962 के भारत-चीन युद्ध के दुष्परिणामों का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव जिसमें गैर प्रबंधन प्रक्रिया का असंतुलन सबसे महत्वपूर्ण था।
2. 1965 भारत-पाक युद्ध के कारण रक्षा परिव्यय में वृद्धि तकनीकी रूप से रक्षा पर होने वाला व्यय उपभोग व्यय कहा जाता है। इस कारण विकासोन्मुखी व्यय में कमी हुई।
3. लगातार दो वित्तीय वर्षों में अकाल के कारण सकल उत्पादकता में अप्रत्याशित कमी।
4. मुद्रा स्फीति की उच्च दर।
5. आयात बिलों के भुगतान की समस्या के कारण भुगतान संतुलन संकट।
6. मुद्रा के अवमूल्यन के दुष्परिणाम।

www.Downloadmasterofficial.com DISCOVERY

आर्थिक पुनःनिर्माण का चरण (1969-1978)

आर्थिक पुनः निर्माण के आधार स्तम्भों में रोजगार सृजन तथा तकनीकी सबसे महत्वपूर्ण होता है, लेकिन इन्हें समर्थन देने के लिए विदेशी व्यापार का विस्तार अनिवार्य होता है, क्योंकि इससे न केवल विदेशी मुद्रा का अर्जन संभव है बल्कि घरेलू उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसी कारण इस अवधि में निर्यात संवर्धन की रणनीति अपनायी गई थी। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सहायता से उत्पादक रोजगार के अवसरों का सृजन करने वाले कार्यक्रम भी कार्यान्वित किए गए।

सामाजिक विकास और स्वालम्बन का चरण (1974-1978)

पांचवे नियोजन की इस अवधि में गरीबी उपशमन को प्राथमिकता दी गई थी जिसके लिए दो क्षेत्रों पर सबसे अधिक बल दिया गया था।

1. ग्रामीण रोजगार में वृद्धि
2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ ऐसी प्रक्रियाओं का ग्रामीण रोजगार के साथ संबध
   इसी कारण इस अवधि में भूमि तथा कास्तकारी सुधारों को प्राथमिकता दी गई।

समन्वय तथा एकीकरण का चरण (1980-1985)

ग्राम नगर विषमता दूर करना इस अवधि का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इस कारण कृषि और उद्योग का एकीकरण स्वाभविक था। इसी अवधि में भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण के उपरान्त रोजगार के अवसरों के सृजन को प्राथमिकता दी गई ताकि गरीबी उपशमन किया जा सके।

आय में वृद्धि का चरण (1985-90)

इस चरण में भी नियोजन की रणनीति में मुख्य रूप से गरीबी उपशमन को प्राथमिकता देते हुए क्षमता निर्माण तथा उत्पादकता में वृद्धि के लिए प्रयास किए गए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए प्रयास करना था।

मानव विकास का चरण (1992-97)

1991 के आर्थिक उदारीकरण के आरंभ में योजना की रणनीति में व्यापक परिवर्तन करते हुए उसे विकास आधारित समृद्धि पर केन्द्रित कर दिया गया। इस कारण मानव विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दिया जाना तर्कसंगत था। इसी उद्देश्य से 15 से 35 आयु वर्ग में शिक्षा के सार्वभौमिकरण पर जोर दिया गया था।

समता एवं सामाजिक न्याय के साथ विकास (1997-2002) नौवी योजना की यह अवधि राजनीतिक व आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण कही जा सकती है क्योंकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से इस दौरान अन्तरक्षेत्रीय विकास को प्राथमिकता दी गई। दूसरे शब्दों में यह योजना विकास के साथ-साथ कल्याण पर केन्द्रित थी।

सतत् विकास का चरण (2002-07)

दसवीं योजनाकाल में संसाधनों के अनुकूलतम दोहन तथा संरक्षण पर अधिक जोर दिया गया था। दूसरी ओर योजना की रणनीति में कृषि तथा पर्यावरण, उद्योग तथा पर्यावरण के बीच बेहतर संबंधो की स्थापना के प्रयास किए गए। इसी प्रकार बाजारी प्रक्रियाओं का लाभ लेते हुए विकास और समृद्धि के एकीकरण का प्रयास किया गया। इसी कारण इसे संसाधन आधारित सुधारवादी नियोजन कहा गया था।

समावेशी विकास का चरण (2007-2012)

ग्यारहवीं योजना के इस अवधि में उद्यमशीलता के विकास को प्राथमिकता दी गई। इसके लिए इस अवधि में आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक अवसंरचनाओं का विकास भी किया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि, पूर्व विद्यालयी शिक्षा को भी प्राथमिकता दी गई है, ताकि बुनयादी स्तर से ही मानव संसाधन विकास को प्रोत्साहित किया जा सके।

DISCOVERY®
Downloaded From www.studyexpressofficial.com

योजना आयोग (Planning Commission)

एक संविधानेत्तर संस्था के रूप में योजना आयोग का गठन 15 मार्च, 1950 को किया गया था जिसका मूल उद्देश्य भारत की समाजवादी अर्थव्यवस्था के लिए योजना के प्रारूप का निर्माण करना है। आयोग के कार्यों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. देश के संसाधनों की मात्रा तथा उनके गुणों का आकलन। इन संसाधनों, भौतिक, वित्तीय तथा मानव, का समुचित एवं प्रभावकारी अनुप्रयोग।
2. आर्थिक नियोजन के लक्ष्यों के निर्धारण के लिए पंचवर्षीय नियोजनों का निर्माण।
3. सभी उद्देश्यों के आलोक में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओं का निर्धारण।
4. प्राथमिकताओं के अनुरूप उपलब्ध संसाधनों का समुचित आवंटन।
5. नियोजन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट मार्गदर्शन।
6. नियोजन के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों के साथ समन्वय।
7. नियोजन के तहत क्रियान्वित होने वाले कार्यक्रमों का मूल्यांकन तथा उसके अनुरूप सुझाव।

राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council)

भारत के योजना आयोग तथा राज्यों के मध्य समन्वय की स्थापना के मूल उद्देश्य से 6 अगस्त, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई थी। योजना आयोग की भांति प्रधानमंत्री परिषद का भी अध्यक्ष होता है तथा योजना आयोग का सचिव, परिषद का सचिव होता है। सभी मुख्य मंत्री, केन्द्रीय मंत्री, संघशासित प्रदेशों के प्रशासक आदि इसके सदस्य होते हैं। परिषद द्वारा निम्नांकित कार्यों का निष्पादन किया जाता है:

1. पंचवर्षीय नियोजन का आवर्ती मूल्यांकन।
2. राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली सभी सामाजिक-आर्थिक नीतियों की समीक्षा।
3. योजना में उल्लिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सुझाव।
4. योजना के अनुरूप संसाधनों का आवंटन, तथा उनकी गत्यात्मकता में वृद्धि।
5. योजना आयोग द्वारा निर्धारित पंचवर्षीय नियोजन को अंतिम स्वीकृति।

भारत विजन 2020 (India Vision 2020)

23 जनवरी, 2003 को योजना आयोग ने एक वृहत कार्यक्रम निर्धारित किया था जिसे भारत विजन 2020 की संज्ञा दी गई है। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आगामी दो दशकों में आर्थिक विकास के विभिन्न आयामों की प्रगति का मूल्यांकन करना है। इसी आधार पर नये लक्ष्यों का निर्धारण किया जा सकेगा। लक्ष्यों के निर्धारण के उपरांत नये प्रयासों तथा नई नीतियों के क्रियान्वयन से इनकी प्राप्ति करने का प्रयास किया जायेगा। भारत विजन 2020 की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें गरीबी उपशमन के साथ-साथ साक्षरता दर में वृद्धि एवं बेरोजगारी में कमी करते हुए 9 प्रतिशत की वार्षिक संवृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करना है। वास्तव में इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन से वर्ष 2020 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने में व्यापक सहायता प्राप्त होने की प्रबल संभावना है। बॉक्स में भारत विजन 2020 के कतिपय लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है।

आर्थिक सुधार एवं नियोजन की भूमिका (Economic Reforms and Role of Planning)

भारत में आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से वर्ष 1991 को अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि इस वर्ष कमोबेश सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन किये गये थे। 1991 में ही भारत में आर्थिक संकट जैसी स्थितियां भी उत्पन्न हो गई थीं जिन्होंने वस्तुतः भारत में नियोजनबद्ध अर्थव्यवस्था की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। यह भी महसूस किया गया कि भारत को संकट की इस स्थिति

www.Downloadexammasterofficial.com
DISCOVERY

से बाहर निकालने के लिए आर्थिक नीति में व्यापक परिवर्तन आवश्यक था।इस पृष्ठभूमि में भारत में आर्थिक सुधार के कार्यक्रमों की नींव रखी गई। 1991 के पूर्व भारत में आर्थिक नियोजन सफलताओं एवं विफलताओं का एक मिश्रण सिद्ध हुआ था।

यद्यपि आर्थिक विकास ने वृद्धि दर्ज की थी, लेकिन यह वृद्धि अपेक्षा से कम थी। आर्थिक विषमताओं में भी अपेक्षित कमी रिकार्ड नहीं की जा सकी थी। गरीबी का विस्तार भी बना हुआ था तथा कुल जनसंख्या का लगभग एक तिहाई भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को विवश था। इनके अतिरिक्त, जीवन स्तर में सुधार भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता था।

हांलाकि औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा प्रैद्योगिकीय विकास संतोषजनक था लेकिन इन क्षेत्रों में और भी प्रगति की संभावनाएं विद्यमान थीं। सामाजिक एवं आर्थिक आधारभूत संरचनाओं के विकास में भी अर्थव्यवस्था ने संतोषजनक प्रगति की थी। लेकिन इन सभी सफलताओं के बावजूद 1990 के दशक के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष निम्नांकित समस्याएं विद्यमान थीं :

1. **स्फीतिकारी दबाव** :- 1990 के दशक के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी दशाओं का अत्यधिक दबाव बना हुआ था। अनिवार्य वस्तुओं की कीमतें अप्रत्याशित रूप से बढ़ी हुई थीं। इसने कार्यशील जनसंख्या के लिए रहन-सहन की व्ययभारिता में भी वृद्धि की थी। इनके द्वारा अधिक वेतन और भत्ते की मांग ने औद्योगिक लागत में भी वृद्धि कर दी। उच्च औद्योगिक लागत तथा मूल्य वृद्धि ने वस्तुओं की मांग में घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों ही स्तरों पर कमी ला दी।
2. **वित्त की कमी** :- औद्योगीकरण तथा अन्य संबद्ध कार्यों के लिए निश्चित रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था में उस समय पर्याप्तता नहीं थी। इसके अतिरिक्त परिवहन, संचार आदि क्षेत्रों में भी वित्त की कमी से विकास कार्य नहीं हो पा रहे थे। इन समस्याओं के कारण औद्योगिक उत्पादन में निरंतर कमी देखी गई।
3. **विदेशी मुद्रा की कमी** :- अर्थव्यवस्था की समस्याओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण विदेशी मुद्रा में होने वाली कमी थी। हांलाकि 1980 के दशक में भारतीय निर्यात ने वृद्धि दर्ज की थी लेकिन आयातों की अधिकता ने अर्थव्यवस्था के समक्ष विदेशी मुद्रा की कमी की चुनौती खड़ी कर दी थी। भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा की अत्यधिक आवश्यकता थी। इस कारण विदेशी मुद्रा भारतीय रुपए की तुलना में महंगा हो गया।
4. **बेरोजगारी** :- यद्यपि औद्योगिक विकास की गति में वृद्धि हुई थी लेकिन इस क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का सृजन पर्याप्त नहीं हो पाया।
5. **वैश्विक व्यापार की भागीदारी में कमी** :- आर्थिक नियोजन के आरंभिक चरणों में वैश्विक व्यापार में भारत का हिस्सा लगभग 2 प्रतिशत था। लेकिन 1990 के दशक के पूर्व इस हिस्सेदारी में अप्रत्याशित कमी हो गई तथा यह कम होकर 0.5 प्रतिशत हो गई।
6. **अन्य देशों में आर्थिक संवृद्धि की उच्च दर** :- कई विकासशील देशों जैसे दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स, हांग कांग, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया तथा चीन में आर्थिक संवृद्धि की दर के उच्च होने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो गई थीं।
7. **लाइसेंस प्रणाली** :- औद्योगिक विकास को नियंत्रित तथा विनियमित करने के लिए एक जटिल लाइसेंस प्रणाली की व्यवस्था थी जिसके कारण औद्योगिक विकास की गति कम हुई थी।
8. **विदेशी निवेश पर नियंत्रण** :- भारत में विदेशियों द्वारा किये जाने वाले निवेश पर नियंत्रण स्थापित था। इसके कारण भारत में औद्योगिक विकास की गति तीव्र नहीं हो पाई।

1991 का संकट और आर्थिक नीति में सुधार (1991 Crisis & Reforms in Economic Policies)

1991 के पूर्व भारत में विदेशी मुद्रा का गंभीर संकट उत्पन्न हो गया था। विदेशी विनिमय के संदर्भ में प्रशासकीय दर तथा बाजार दर में बड़ी खाई उत्पन्न हो गई थी। इसके अतिरिक्त, विदेशी मुद्रा को वापस करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हो गई थी। इस कारण विदेशी मुद्रा का संकट तीव्र हो गया था।

1991 के आरंभ में ईराक तथा कुवैत के मध्य हुए युद्ध के कारण पेट्रालियम पदार्थों की कमी हो गई थी। साथ ही, पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में भी वृद्धि हो रही थी। इन देशों तथा अन्य खाड़ी देशों में कार्यरत भारतीयों द्वारा अपनी अर्जित राशि को भारत भेज पाना संभव नहीं हो पा रहा था। इसके अतिरिक्त, बड़ी संख्या में विदेशों से भारतीयों का वापस आना भी भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित

www.studiestoday.com Downloaded From DISCOVERY

कर रहा था।

कमोबेश इसी अवधि में भारत में राजनीतिक अस्थिरता विद्यमान थी जिसके कारण भारतीय बाजारों में निवेशकों में आत्म विश्वास की कमी बढ़ गई थी। ऐसी स्थिति में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा स्वर्ण को बंधक रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने के अलावा कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं था।

संकट की इस स्थिति से देश को बाहर निकालने के लिए आर्थिक नीतियों में व्यापक परिवर्तन किये गये। इन परिवर्तनों में से निम्नांकित का उल्लेख समीचीन है:

1. **लाइसेंस व्यवस्था की समाप्ति :-** उद्योगों को लाइसेंस मुक्त करना नई औद्योगिक नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष था जिसने उद्योगों में आत्म विश्वास का संचार किया था। साथ ही, उन्हें प्रतिस्पर्धी बनाने में भी इस व्यवस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नई औद्योगिक नीति में लाइसेंस प्रणाली की समाप्ति के प्रावधान से यह आशा की गई थी कि इससे उद्योगों के आधार का विस्तार भी पर्याप्त होगा जिसमें व्यापक स्तर पर सफलता परिलक्षित हुई है।
2. **प्रौद्योगिकीय आयात की अनुमति :-** भारतीय उद्योगों को विदेशों से नई तकनीकों के आयात की अनुमति प्रदान करना इस दिशा में किया जाने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। इसके फलस्वरूप भारत में तीव्र गति से प्रौद्योगिकीय उन्नयन की संभावनाएं प्रबल हो गईं।
3. **विदेशी निवेश की स्वतंत्रता :-** विदेशी निवेशकों को उद्योगों का चयन कर उनमें निवेश की स्वतंत्रता प्रदान की गई। इससे न केवल विदेशी पूंजी प्रवाह में वृद्धि होने की संभावना थी बल्कि इससे तकनीकी उन्नयन की भी प्रबल संभावना थी।
4. **प्रतिबंधों की समाप्ति :-** निवेश अथवा व्यापार पर आरोपित प्रतिबंधों की समाप्ति का प्रावधान नई आर्थिक नीतियों का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।
5. **आयात शुल्क में कमी :-** विभिन्न उत्पादों पर आरोपित आयात शुल्कों में कमी भी आर्थिक नीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। इसके फलस्वरूप घरेलू तथा विदेशी उत्पादकों के मध्य विकासोन्मुखी प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण हो गया।
6. **आयात लाइसेंस का उदारीकरण :-** आयात किये जाने वाले अधिकांश उत्पादों को उस श्रेणी में डाल दिया गया जिनके लिए लाइसेंस प्रणाली की अनिवार्यता नहीं थी।
7. **विदेशी मुद्रा पर नियंत्रण की समाप्ति :-** आरंभिक चरणों में भारतीय रुपए को विदेशी मुद्राओं की तुलना में आधिकारिक रूप से मंहगा किया गया था। कालांतर में विदेशी मुद्रा अर्जन पर आरोपित नियंत्रण को समाप्त कर दिया गया जिसके फलस्वरूप विदेशी मुद्रा मुक्त बाजारी व्यवस्था में उपलब्ध हो गई। साथ ही, एक एकीकृत विनिमय प्रणाली का आरंभ भी किया गया था।
8. **उत्पाद शुल्कों में कमी :-** अधिकांश उत्पादों पर आरोपित उत्पाद शुल्कों में कमी कर दी गई जिसके फलस्वरूप आयातित उत्पादों के संदर्भ में विभिन्न उद्योगों के मध्य प्रतिस्पर्धा का विकास हो गया।
9. **प्रत्यक्ष करों की दर में कमी :-** करों के भुगतान के प्रति नागरिकों को उत्तरदायी बनाने के मूल उद्देश्य से प्रत्यक्ष करों की दर में चरणबद्ध रूप से कमी करने का प्रावधान किया गया था। इससे न केवल कर राजस्व बल्कि कर-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात में भी वृद्धि हुई।
10. **सरकारी पूंजी का विक्रय :-** सरकार ने अपने स्वामित्व वाली कुछ इकाइयों में लगी अपनी पूंजी की उगाही के लिए भी प्रयास किये जिससे संसाधनों को गत्यात्मक बनाकर राजकोषीय समेकन की अवधारणा को सामर्थ्य प्रदान किया गया।

आर्थिक नियोजन की भूमिका (Role of Economic Planning)

नई आर्थिक नीतियों के तहत किये गये सुधारों का उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र की संवृद्धि सुनिश्चित करना था। साथ ही, इन सुधारों का उद्देश्य यह भी था कि सरकार की एक नियंत्रक वाली भूमिका के कारण उत्पन्न समस्याओं का निराकरण किया जाये। संक्षेप में, भारत में आर्थिक सुधार निरंतरता के साथ परिवर्तन की संकल्पना पर आधारित थे।

चूंकि आर्थिक उदारीकरण में सरकार की भूमिका अत्यन्त कम हो गई है, इस कारण योजनाओं के तहत आर्थिक विषमता कम करने तथा स्वावलंबन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विशिष्ट प्रयास आवश्यक हो गये हैं। साथ ही, योजनाओं को रोजगार के अवसरों के सृजन

www.Downloaded from.studygovt official.com

तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास के प्रति भी अधिक संवेदनशील तथा कार्यक्षेम बनने की अनिवार्यता है। गरीबी उपशमन का लक्ष्य पूर्व की भांति अभी भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इस आलोक में योजनाओं के अन्तर्गत गरीबी उपशमन के लिए निर्धारित कार्यक्रमों की सफलता का उत्तरदायित्व निश्चित रूप से सरकार का है। दूसरे शब्दों में, भारत में नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लक्ष्य की प्राप्ति में आर्थिक नियोजन के माध्यम से सरकार की अहम भूमिका है।

वास्तव में, उदारीकरण तथा सुधारों के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक नियोजन की भूमिका में कमी नहीं हुई, बल्कि इसके दृष्टिकोण में परिवर्तन परिलक्षित हैं। इस नये दृष्टिकोण के कारण सामाजिक-आर्थिक विकास में आर्थिक नियोजन की भूमिका का वस्तुतः विस्तार हो गया है। दूसरी ओर, भारत जैसे विकासशील देश में राजकोषीय समेकन तथा आय की समानता के संदर्भ में भी आर्थिक नियोजन को पूर्व की भांति अधिक उत्तरदायी बनाने की आवश्यकता है। इसी आधार पर भारत को सन् 2020 तक एक विकसित राष्ट्र बनाने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

आर्थिक उदारीकरण नव उदारवादी सिद्धांतों पर आधारित प्रक्रिया है, जिसमे एकाधिकार को समाप्त कर प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित की जाती है जिसके लिए आर्थिक प्रक्रियाओं एवं नीतियों का सरलीकरण किया जाता है। उदारीकरण के दौरान निजीकरण की प्रक्रिया को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है ताकि अर्थव्यवस्था में पूँजी और निवेश की पर्याप्तता सुनिश्चित की जा सके।

भारत में आर्थिक सुधार

सुधारों की पृष्ठभूमि :-

1. ऋण GPD अनुपात की अधिकता (ap 81%) से आर्थिक अस्थायित्व।
2. आयात-निर्यात असंतुलन के कारण भुगतान संतुलन का गंभीर संकट।
3. मुद्रास्फीत की उच्च दर और माँग एवं पूर्ति के मध्य असंतुलन के कारण वित्तीय अस्थायित्व।
4. अत्यधिक ऋण भार से राजकोषीय घाटे का उच्च स्तर।

प्रथम पीढ़ी

किसी भी अर्थव्यवस्था में सुधार का आरम्भ संरचनात्मक सुधारों से किया जा सकता है इसी कारण भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधारों के तहत औद्योगिक सुधारों को प्राथमिकता दी गई है।

इन सुधारों में निम्न प्रमुख थे :-

1. औद्योगिक लाइसेंस पद्धति की समाप्ति।
2. विनिवेश और निजीकरण को प्रोत्साहन।
3. लघु एवं मध्यम उपक्रमों की सुदृढ़ता में वृद्धि।
4. विनिर्माण क्षेत्र को प्राथमिकता।

द्वितीय पीढ़ी

1. बैंकिंग तथा राजकोषीय सुधारों को प्राथमिकता।
2. विदेशी निवेश प्राप्ति की प्रक्रियाओं का सरलीकरण।
3. पूँजी बाजार की कार्यकुशलता में वृद्धि।
4. बैंकिग तथा अन्य क्षेत्रों में निजीकरण को प्रोत्साहन।

तृतीय श्रेणी

1. अवसंरचनात्मक सुधारों के साथ-साथ मानव पूँजी पर अत्यधिक बल।
2. श्रम सुधारों को प्रोत्साहन तथा श्रम की कार्य कुशलता में वृद्धि।

www.studiesteroffical.com Downloaded From DISCOVERY

ूर्व की
ाफलता
आर्थिक

ारिवर्तन
गया है।
पूर्व की
य प्राप्त

ही जाती
सर्वोच्च

वस्था

4. संसाधनों का जुटाव
Mobilization of Resources

मुद्रा और बैंकिंग (Money and Banking)

महत्वपूवर्ण शब्दावली (Importnat Terms)

मुद्रा :- यह अप्रत्यक्ष विनियम का माध्यम है। विस्तृत रूप में यह विनिमय के माध्यम, मूल्य के मापक, ऋणों के अन्तिम भुगतान तथा मूल्य के संचय के साधन के रूप में स्वतंत्र एवं सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है।

आदेश मुद्रा :- वह मुद्रा जो सरकार के आदेश से निर्मित एवं जारी की जाती है।

वैध मुद्रा :- वह मुद्रा जिसे सरकारी मान्यता प्राप्त होती है तथा जिसकी स्वीकार्यता बाह्यकारी होती है। किसी भी देश की सरकार एवं केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये नोट एवं सिक्के उस देश की वैध मुद्रा होती है।

अवैध मुद्रा :- वह मुद्रा जिसे सरकारी मान्यता तो प्राप्त होती है किन्तु इसकी स्वीकार्यता बाध्यकारी नहीं होती है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के चेक, हुण्डी व्यवसायिक बिल आदि आते है।

हार्ड करेंसी :- जब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जिस मुद्रा की पूर्ति की तुलना में माँग लगातार अधिक होती है, वह हार्ड करेंसी कहलाती है।

साफ्ट करेंसी :- जब अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में किसी मुद्रा की माँग की तुलना में पूर्ति अधिक होती है, तो ऐसी मुद्रा साफ्ट मुद्रा कहलाती है।

हार्ड मनी :- उस विदेशी मुद्रा को हाटमनी की संज्ञा दी जाती है जिसमें शीघ्र पलायन कर जाने की प्रवृत्ति होती है।

चीप मनी :- वह मुद्रा जो कम ब्याज दर पर उपलब्ध हो जाती है।

डीयर मनी :- वह मुद्रा जो अधिक ब्याज दर पर उपलब्ध होता है।

साफ्ट लोन :- जिस ऋण को कम ब्याज और लंबी परिपक्वता अवधि जैसी आसान शर्तो पर प्राप्त किया जाता है।

मुदा और निकट मुद्रा :- विनिमय का वह माध्यम जो शत प्रतिशत तरल हो, मुद्रा कहलाती है। जैसे-नगद, बैंक ड्राफ्ट आदि। किन्तु विनिमय का जो माध्यम शत प्रतिशत स्वीकार्य अथवा तरल न हो, निकट मुद्रा कहलाती है। जैसे- चेक और अवैध मुदाएं आदि।

उच्च शक्ति मुद्रा :- वह मुद्रा जो भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के द्वारा जारी की जाती है। इसे आधार मुद्रा भी कहते है। क्योंकि इसी के आधार पर बैंकों के साख निर्माण के प्रक्रिया के द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति इसके कई गुना हो जाती है।

सामान्य मुद्रा :- यह उच्च शक्ति मुद्रा तथा बैंकों के द्वारा किये गये कुल साख निर्माण के योग के बराबर होती है।

नकद आरक्षण अनुपात (CRR) :- प्रत्येक बैंक को अपनी कुल जमाओं (मांग जमा + सावधि जमा) का एक निश्चित अनुपात नकद

www.studymasterofficial.com
Downloaded From

रूप में आर.बी.आई. के पास रखना होता है, जिसे नकद आरक्षण अनुपात कहते है।

सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) :- प्रत्येक बैंक को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात तरल रूप में अपने पास रखना होता है, जिसे सांविधिक तरलता अनुपात कहते है।

बैंक दर:- वह दर जिस पर आर.बी.आई. अन्य बैंकों को ऋण देती है।

खुले बाजार की क्रियाएं:- इसका संबंध सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद-बिक्री से है। सरकारी प्रतिभूतियों का यह बाजार गिल्डएज बाजार के नाम से जाना जाता है।

रेपो दर तथा रिवर्स रेपो दर:- आर.बी.आई. सरकारी प्रतिभूतियों को बैंकों को बेचने के समय जिस दर पर नकद का अवशोषण करती है उसे रिवर्स रेपो दर कहते है। इसके विपरीत प्रतिभूतियों की खरीद के समय जिस दर पर आर.बी.आई. बैंकों को नकद देती है उसे रेपों दर कहते है।

अवमूल्यन:- सरकार द्वारा देश विशेष की मुद्रा का विनिमय मूल्य अन्य मुद्राओं की तुलना में जानबूझकर कम करने के प्रक्रिया अवमूल्यन कहलाती है। भारत में रूपए का अवमूल्यन सन् 1949, 1964 तथा 1991 में किया गया था।

माँग जन्य स्फीति:- जब अर्थव्यवस्था में प्रचलित बाजार कीमतों पर वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल माँग वस्तु बाजारों में इनकी कुल उपलब्ध पूर्ति की तुलना में अधिक होती है, तो सामान्य कीमत स्तर बढ़ने लगता है जिसे माँग जन्य स्फीति कहते है।

रैचिट स्फीति:- जब अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्रों की कुल माँग अधिक होती है परन्तु विभिन्न क्षेत्रों में इनका वितरण समुचित नहीं होता। दूसरे शब्दों में कुछ खण्डों में माँग अधिक होती है और कुछ में कम। ऐसे में यदि कम माँग वाले खण्डों में उद्योगपतियों एवं श्रमिक संघों के विरोध के कारण कीमतों को नीचे नहीं गिरने दिया जाता है। इस प्रकार समग्र रूप में सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होती है। इसे रैचिट स्फीति कहते है।

मंद या रेंगती हुयी मुद्रा स्फीति:- यदि किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर 3 प्रतिशत अथवा इससे कम है तो इसे मंद या रेंगती हुयी मुद्रा स्फीति कहते है।

चलती हुई मुद्रा स्फीति:- किसी भी अर्थव्यवस्था में यदि मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर 3 प्रतिशत से अधिक किन्तु 10 प्रतिशत तक है तो इसे चलती हुयी मुद्रा स्फीति कहते है।

संदर्भित दर (Reference Rate):- संदर्भित दर मुद्रा उधारी बाजारों में मुद्रा के मूल्य के संबंध में एक सीमा चिह्न का काम करती है। यह दर सभी प्रकार की उधारी के संबंध में दिशा निर्देशक का कार्य करती है।

प्रधान उधारी दर (PLR):- किसी बैंक की प्रधान उधारी दर वह व्यापक जिस पर बैंक अपने सबसे विश्वसनिय ग्राहक को उधार देता है।

दौड़ती हुई मुद्रा स्फीति:- किसी भी अर्थव्यवस्था में यदि मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर 10 प्रतिशत से अधिक केन्तु 20 प्रतिशत तक है तो इसे दौड़ती हुई मुद्रा स्फीति कहते है।

अति मुद्रा स्फीति:- यदि किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की दर 20 प्रतिशत से अधिक और 100 प्रतिशत ते होती है तो इसे अतिमुद्रास्फीति कहा जाता है।

घाटे की अर्थव्यवस्था की नीति अथवा हीनार्थ प्रबंधन की नीति:- किसी भी अर्थव्यवस्था में यदि सरकार के बजट का कुल व्यय उसके कुल आय से अधिक हो, तो यह बजट घाटा कहलाती है। इस बजट घाटे अथवा बंजट के अतिरिक्त व्यय का भुगतान करने के लिए सरकार को नयी मुद्रा जारी करनी पड़ती है।

याचना मुद्रा:- यह व्यापारिक बैंक द्वारा दिया जाने वाला अल्पकालिक ऋण है, जो प्राय: 1-2 दिन से 15 दिन के लिए दिये जाते है। तरलता की दृष्टि से यह सबसे अच्छा निवेश है।

बैंक अधिविकर्ष (Bank over Draft) :- इसके अंतर्गत बैंक अपने विश्वसनीय ग्राहकों को उनके खाते में जमा की राशि से अधिक राशि की निकासी का अधिकार दे देता है।

इकाई बैंकिंग प्रणाली:- वह बैंकिंग प्रणाली जिसमें बैंकिंग चारों ओर फैली हुयी बैंक की शाखाओं के द्वारा न होकर एक कार्यालय में स्थित इकाई द्वारा किया जाता है।

DISCOVERY
Downloaded From www.studygateofficial.com

सर्वव्यापी बैंकिंग:- जब वाणिज्यिक बैंक सामान्य वाणिज्यिक बैंकों के कार्यो के साथ साथ औद्योगिक इकाइयों के दीर्घकालीन वित्तीयन के भी कार्य को ले लें, तो इसे सर्वव्यापी बैंकिंग कहते है।

गैर निष्पादनकारी परिसम्पत्ति :- गैर निष्पादनकारी परिसम्पत्ति से आशय ऐसे अग्रिमों या बैंकों द्वारा दिये गये पिछले ऋणों से है, जिनके मूलधन तथा ब्याज का भुगतान ऋणी द्वारा 180 दिन या उससे अधिक दिनों तक नहीं किया गया है और इस प्रकार बकाया राशियाँ एकत्रित होती गयी है।

सामाजिक बैंकिंग:- ऐसे बैंक जो निवेश तथा ऋण के सामाजिक प्रयोग की दृष्टि से कार्य करते है वे उन परियोजनाओं के लिए ऋण देते है, जो पर्यावरणीय या सामाजिक उद्देश्य से संबंधित होती है, उन्हें सामाजिक बैक कहते है। ये परम्परागत बैंकों की तुलना में कम लाभ सीमा पर कार्य करते है।

पूँजी बाजार:- यह दीर्घकालीन फण्ड का बाजार है। जिसमें इक्विटी तथा ऋण के माध्यम से पूंजी की उगाही सम्मिलित है। इसका प्रमुख कार्य उन क्षेत्रों से जहाँ बचत अधिक्य है, निकालकर उन क्षेत्रों तक पहुँचाना है, जिनमें बचत की माँग है।

सामाजिक गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं में विनिमय प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। इस प्रक्रिया को सरल तथा कार्यशील बनाने के लिए मुद्रा का आविष्कार किया गया था। वर्तमान में मुद्रा सभी आर्थिक व्यवहारों का आधार है। दूसरे शब्दों में सभी अर्थव्यवस्थाएँ मुद्रा पर ही आधारित हैं। इस प्रकार मुद्रा विनिमय का वह माध्यम है जिसमें क्रयशीलता होती है। इस कारण किसी उत्पादन के मूल्य का संचय तथा उसकी कीमत के निर्धारण का कार्य भी मुद्रा द्वारा ही किया जाता है। लेकिन इसे सुग्राहय होना भी अनिवार्य है। इन सभी विशेषताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मुद्रा की तरलता अथवा क्रयशीलता है।

भारतीय मौद्रिक प्रणाली (Indian Monetary System)

भारतीय करेंसी अधिनियम 1835 के अधिनियमित किये जाने के उपरांत भारत की मौद्रिक प्रणाली का आरंभ हुआ था। इसे स्वर्ण एवं रजत सिक्का कानून, 1835 भी कहा जाता है। इसके पूर्व भारत में एक हजार से भी अधिक प्रकार के स्वर्ण एवं रजत सिक्के प्रचलन में थे। इस अधिनियम द्वारा रुपए को विनिमय के माध्यम के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी। इसके उपरांत इसे भारतीय करेंसी के रूप में अधिकारिक स्वीकृति प्रदान की गई। तब रुपया 180 ग्रेन का एक रजत सिक्का था जिसमें 11/12 शुद्ध रजत था। 1 जनवरी 1835 को लार्ड डलहॉजी ने अन्ततः स्वर्ण सिक्कों के प्रचलन में रोक लगा दी थी।

भारत में पत्र मुद्रा का प्रचलन पत्र मुद्रा कानून 1861 के अधिनियमित होने के साथ किया गया। कानून के प्रावधानों के अनुरूप सरकारी प्रतिभूतियों, स्वर्ण तथा रजत सिक्कों के बदले रुपए का निर्गमन किया जाने लगा। 1892 में भारत सरकार ने हर्शल समिति का गठन किया था जिसने स्वर्ण प्रणाली के तहत नोटों के निर्गमन का सुझाव दिया था। समिति की सिफारिशों के अनुरूप एक विधि के तहत 1893 में स्वर्ण तथा रजत सिक्कों के प्रचलन पर रोक लगा दी गई। पुनः 1898 में फाउलर समिति का गठन किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय मुद्रा प्रणाली में संभावित परिवर्तनों से संबंधित सुझाव देना था। समिति ने स्वर्ण विनिमय प्रतिमान प्रणाली (Gold Exchange Standard) के क्रियान्वयन का सुझाव दिया था। पत्र मुद्रा कानून 1899 के पारित होने के उपरांत उसी वर्ष इस प्रणाली का क्रियान्वयन किया गया। इसके बाद 1925 में गठित हिल्टन-यंग आयोग ने प्रणाली की समाप्ति तथा एक विनियामक प्राधिकरण के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना का सुझाव दिया।

मुद्रा आपूर्ति (Money Supply)

वर्ष 1977 में भारतीय रिजर्व बैंक के द्वितीय कार्य समूह की सिफारिशों के आधार पर मुद्रा आपूर्ति की निम्नांकित प्रणालियों को स्वीकृति प्रदान की गई–

1. M_1 = नोट, सिक्के, वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों के पास मांग जमाएं, रिजर्व बैंक के पास जमाएं
2. M_2 = M_1, डाकघर जमाएं

Downloaded From www.studynagarofficial.com
DISCOVERY

3. $M_3 = M_2$ वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों के पास सावधि जमाएं

4. $M_4 = M_3$ डाकघर जमाएं

इनमें से M_1 को सर्वाधिक तरल तथा M_4 की तरलता को न्यूनतम कहा गया है। दूसरे शब्दों में M_1 से M_4 की ओर बढ़ने पर मुद्रा की संचय क्षमता में वृद्धि होती है।

मुद्रा आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

यह विदित है कि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा आपूर्ति को विनियमित करने वाली शीर्षस्थ संस्था के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक की मौद्रिक देयताओं को सुरक्षित मुद्रा (Reserve Money) अथवा उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money - H) भी कहा जाता है। इन देयताओं में लोगों के पास सिक्के तथा नोट, रिजर्व बैंक के पास वाणिज्यिक बैंकों की जमाएं, रिजर्व बैंक की वित्तीय परिसंपतियां, सरकार तथा विकास बैंकों को दिये गये ऋण आदि शामिल हैं, भारत में मुद्रा आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. **हीनार्थ प्रबंधन** (Deficit Financing):– सामान्यत: सरकार अपने घाटे की पूर्ति के लिए ऋण प्राप्त करती है। अथवा नये नोटों की वित्त व्यवस्था अथवा हीनर्थ प्रबंधन कहते हैं। चूंकि योजनाओं के वित्तीयन के लिए आवश्यक धनराशि का संपूर्ण भाग आंतरिक स्रोतों से प्राप्त करना दुष्कर होता है। अत: हीनार्थ प्रबंधन के लिए विशिष्ट प्रावधान किये जाते हैं। आरंभिक चरणों में हीनार्थ प्रबंधन से मुद्रा आपूर्ति का प्रसार होता है लेकिन इसके दूरगामी प्रभाव के रूप में मुद्रा स्फीति में वृद्धि हो जाती है। उल्लेखनीय है कि नवीं योजना से हीनार्थ प्रबंधन शून्य कर दिया गया है।
2. **बैंक साख** (Bank Credit):– मुद्रा आपूर्ति के प्रसार के दृष्टिकोण से बैंक साख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से उत्पादकों एवं व्यापारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास किया जाता है। योजनाओं के अन्तर्गत कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में होने वाली वृद्धि से बैंक साख की दर में भी वृद्धि की गई है।
3. **विदेशी मुद्रा भंडार** (Forex Reserve):– विदेशी मुद्रा भंडार के आकार में वृद्धि होने से भी मुद्रा आपूर्ति का प्रसार होता है। तकनीकी रूप से इससे घरेलू मुद्रा पर पड़ने वाला दबाव कम होता है जिससे मुद्रा आपूर्ति का प्रसार होता है।

मुद्रा बाजार (Money Market)

मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार वस्तुत: प्रतिभूति बाजार के ही भाग हैं। मुद्रा बाजार में मुद्रा का अल्पकालिक लेन-देन किया जाता है। जबकि मुद्रा के दीर्घकालिक लेन-देन को पूंजी बाजार की संज्ञा दी गई है। मुद्रा बाजार सभी प्रकार की उत्पादक एवं वाणिज्यिक प्रक्रियाओं की अनिवार्यता है। इस कारण सभी अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा बाजार किसी न किसी रूप में विद्यमान होता है। भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं:–

1. भारत का मुद्रा बाजार संगठित तथा असंगठित दोनों ही स्वरूपों में अस्तित्व में है।
2. असंगठित मुद्रा बाजार में महाजनों तथा विदेशी बैंकरों को शामिल किया जाता है।
3. संगठित मुद्रा बाजार में वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों द्वारा वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

संगठित मुद्रा बाजार द्वारा परिसंपत्तियों की तरलता बढ़ाई जा सकती है। यह कार्य समयानुसार वित्तीय संस्थानों द्वारा किया जाता है। मुद्रा बाजार व्यापारिक क्रियाकलापों की आधारिक आवश्यकता है। वस्तुत: इस प्रकार के बाजार से बचत तथा पूँजी निर्माण की प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संगठित मुद्रा बाजार सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक है।

मुद्रा बाजार के प्रकार

1. **मांग मुद्रा बाजार** (Call Money Market) :– इसे अन्तर-बैंकिंग बाजार की भी संज्ञा दी गई है। वस्तुत: अपनी दैनिक नकद सुरक्षा बनाये रखने के लिए बैंकों द्वारा 24 घंटे की अवधि के लिए पारस्परिक लेन-देन किया जाता है। ऐसी मुद्रा को मांग मुद्रा कहा जाता है।

Downloaded From www.studentsofficial.com
DISCOVERY

2. **राजकोषीय हुंडी बाजार** (Treasury Bills Market) :- राजकोषीय हुंडियां भारत सरकार की अल्पकालिक देयताएं हैं। ये हुंडियां 91, 182 तथा 364 दिनों की अवधि के लिए जारी की जाती है।

3. **जमापत्र बाजार** (Certificate of Deposit Market) :- वर्ष 1989 में जमा पत्र बाजार की संकल्पना भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विकसित की गई थी। ये पत्र व्यापारिक बैंकों द्वारा जारी किया जाता है। अप्रैल 2000 से जमा पत्रों की न्यूनतम अवधि 15 दिन कर दी गई है। जमा पत्रों द्वारा निवेशकों की बचत को सही दिशा प्रदान की जाती है।

4. **व्यापारिक पत्र बाजार** (Commercial Paper Market) :- इनका निर्गमन अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं एवं गैर बैंकिंग कंपनियों द्वारा किया जाता है। पूर्व में इनकी अवधि 91 दिन 6 माह थी लेकिन वर्तमान में इन्हें 15 दिन 1 वर्ष की अवधि के लिए जारी किया जाता है। व्यापारिक पत्रों का आकार भी 1 करोड़ रुपए से घटाकर 5 लाख रुपए कर दिया गया है।

भारतीय मुद्रा बाजार की कमियाँ

1. भारतीय मुद्रा बाजार की असंगठित व्यवस्था का मुख्य कारण साहूकार तथा देशी बैंकर हैं जो कि न तो रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में हैं और न ही बाजार की दरों से प्रभावित होते हैं।
2. भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित अंग (रिजर्व बैंक, मिश्रित पूंजी बैंक, सहकारी बैंक एवं विदेशी विनिमय बैंक आदि) तथा असंगठित अंग (साहूकार, महाजन आदि) के बीच किसी भी प्रकार का सम्पर्क और सहायोग नहीं है। कभी-कभी तो इनके बीच अपव्ययपूर्ण प्रतियोगिता भी होती है।
3. भारतीय मुद्रा बाजार छोटे-छोटे एवं स्थानीय क्षेत्रों में बंटा है और इनमें आपसी सम्पर्क का अभाव है। वास्तव में एक अखिल भारतीय मुद्रा बाजार का अभाव है।
4. प्राय: नवम्बर से अप्रैल-मई तक व्यस्त काल रहता है जबकि मुद्रा की मांग व मुद्रा की पूर्ति जिससे इस अवधि में ब्याज दरें बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत अप्रैल-मई तक फसलों का अधिकांश भाग बिक जाता है और नई फसल आने की आशा में व्यापारी पुराने भण्डार जल्दी-जल्दी बेचने लगते हैं। परिणामत: मुद्रा की मांग काफी कम हो जाने से ब्याज दरों मेंभी कमी हो जाती हैं। यद्यपि रिजर्व बैंक तदनुसार कार्यवाही करता रहता है तथापि मुद्रा की मौसमी कमी और ब्याज दरों के उच्चावचनों को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सका है।
5. बैंकिंग आदतों के अल्पविकास के साथ-साथ बैंकिंग सुविधाएँ भी अपर्याप्त है।
6. वित्त बाजार अविकसित है।
7. पूंजी का अभाव है।
8. विशेष वित्तीय संस्थाओं का अभाव है।

भारतीय मुद्रा बाजार में सुधार के उपाय

बैंकिंग व्यवस्था का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार करने के साथ-साथ पंचायतों द्वारा सहकारी व्यवस्था के पक्ष में वातावरण तैयार करने से साहूकारों व बैंकरों पर निर्भरता में कमी आयेगी।

- मुद्रा बाजार में बिलों का अधिक प्रचार करने के लिये भारत में भी अमरीका तथा इंग्लैण्ड की भांति स्वीकृति गृह तथा कटौती गृह स्थापित किये जाने चाहिये।
- सरकार अथवा गोदाम निगमों द्वारा अधिकाधिक मालगोदामों की स्थापना की जानी चाहिये जिससे बैंक उनकी रसीदों पर नि:संकोच ऋण दे सके। इससे मुद्रा बाजार के व्यवसाय में वृद्धि होगी।
- देश के सभी कस्बों में, जहाँ कम से कम 5 बैंकिंग कार्यालय हो, समाशोधन गृह स्थापित किये जाने चाहिये। इससे देश में चैकों का प्रयोग बढ़ेगा।
- रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक द्वारा धनराशियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की सुविधाओं में वृद्धि की जानी चाहिये ताकि धन

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

का लेन-देन सरलता से हो सके और व्यापारिक सुविधाओं में वृद्धि हो सके।

- हुण्डियों का प्रमाणीकरण किया जाना चाहिये।

भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)

रिजर्व बैंक की स्थापना 1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के तहत 5 करोड़ रुपए की अधिकृत पूंजी के साथ की गई थी। इसका राष्ट्रीयकरण 1 जनवरी 1949 को किया गया था। रिजर्व बैंक का संचालन एक 20 सदस्यीय केन्द्रीय निदेशक मंडल द्वारा किया जाता है। इसमें 1 गवर्नर 4 डिप्टी गवर्नर, भारत सरकार द्वारा मनोनीत 10 सदस्य, रिजर्व बैंक के चार क्षेत्रीय बोर्ड के एक-एक सदस्य तथा वित्त मंत्रालय का एक अधिकारी सम्मिलित होते हैं। रिजर्व बैंक के चार क्षेत्रीय बोर्ड मुम्बई, कोलकता, नई दिल्ली तथा चेन्नई में कार्यरत हैं।

रिजर्व बैंक के कार्य

1. भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 24 के तहत बैंक को नोटों का निर्गमन का अधिकार प्राप्त है। वर्ष 1956 से नोटों के निर्गमन के लिए 115 करोड़ रुपए का स्वर्ण तथा 85 करोड़ रुपए के विदेशी ऋण-पत्र की प्रतिभूति अनिवार्य है। यह प्रावधान भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम 1957 से किया गया है।
2. रिजर्व बैंक सरकार का बैंकर है। यह सरकारों से वित्त प्राप्त कर उनके द्वारा दिये गये मार्गदर्शनों के आधार पर उसका वितरण करता है। इसके अतिरिक्त यह केन्द्र और राज्य सरकारों की वित्तीय नीतियों के निर्धारण तथा उनकी वित्तीय परिसंपत्तियों के विनियमन में उनकी सहायता करता है। रिजर्व बैंक सामान्यत: 90 दिनों की अवधि के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों को ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराता है। साथ ही, वित्तीय निर्णय लेने में भी यह सरकारों को सहयोग प्रदान करता है।
3. रिजर्व बैंक बैंकों का बैंकर है। यह वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों को ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त उनके माध्यम से साख प्रवाह सुनिश्चित करता है।
4. विदेशी मुद्रा की दर पर नियंत्रण रखना भी रिजर्व बैंक का प्रमुख कार्य है। वस्तुत: रिजर्व बैंक को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों की मुद्राओं के क्रय-विक्रय का अधिकार प्राप्त है।
5. भारतीय रिजर्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करता है।
6. रिजर्व बैंक परिमाणात्मक एवं चयनात्मक साख नियंत्रक है।
7. कई नीतियों, तथा मौद्रिक एवं साख नीति, स्वच्छ नोट नीति आदि के निर्धारण में रिजर्व बैंक की भूमिका है।

मुद्रा स्फीति (Inflation)

मुद्रा स्फीति मूल्य स्तर में लगातार तेज संचयी तथा स्थायी वृद्धि की अवस्था है। यह मांग में वृद्धि, पूर्ति में कमी, मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि, लागत में वृद्धि आदि किसी भी कारण से हो सकती है।

मुद्रा स्फीति की माप- किसी भी अर्थव्यवस्था में स्फीति की दर के मापने के सामान्यतया दो तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं (क) मूल्य सूचकांक (PIN) में विभिन्न वर्षों में प्रतिशत परिवर्तन- इसके लिये हम विभिन्न अवधियों में PIN में होने वाले परिवर्तन ज्ञात करते हैं, इसके अनुसार, PIN के तीन रूप हो सकते हैं- थोक मूल्य निर्देशांक (W PI) औद्योगिक श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (CPI-IW) तथा कृषि श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (CPI-AL)। मुद्रास्फीति का आकलन भारत में थोक मूल्य निर्देशांक के आधार पर किया जाता है। थोक मूल्य निर्देशांक का संकलन उद्योग मंत्रालय में आर्थिक सलाहकार कार्यालय में साप्ताहिक स्तर पर होता है। पहला थोक मूल्य सूचकांक जनवरी 10, 1942 से शुरू होने वाले सप्ताह से शुरू हुआ जबकि आधार वर्ष 1939=100 लिया गया। तब से यह अनेक बार परिवर्तित हुआ है। उल्लेखनीय है कि अभिजीत सेन की अध्यक्षता में गठित कार्यदल ने आधार वर्ष 1993-94 को

हटाकर 2000-01 करने का सुझाव दिया या जिसे वर्तमान में 2004-05 कर दिया गया है।

- सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) अवस्फीतक (डिफ्लेटर)- मौद्रिक जीडीपी में वृद्धि वास्तविक जीडीपी की वृद्धि का अन्तर ही जी डी पी की कीमत में वृद्धि है और इसे ही हम जीडीपी डिफ्लेटर कहते हैं।

$$\text{जीडीपी अवस्फीतक} = \frac{\text{चुने गये या चालू वर्ष का PIN}}{\text{आधार वर्ष का PIN या 100}}$$

भारत में मुद्रा स्फीति के प्रमुख कारण

(क) मांग को प्रभावित करने वाले कारण

1. सरकारी घाटे की मुद्रास्फीतीय वित्तीय व्यवस्था से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है जिससे मुद्रा के मूल्य में कमी आती है। योजनाओं में हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा भारी घाटे की पूर्ति की गयी जिससे मुद्रास्फीति को बढ़ावा मिला।
2. सरकारी व्यय की वृद्धि अर्थव्यवस्था में मौद्रिक आय तथा कुल वस्तुओं की मांग में वृद्धि लाती है। 1950 से लेकर अब तक विकासोत्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय दोनों ही पर विशेष रूप से गैर विकासात्मक व्यय बहुत तेजी से बढ़े हैं।
3. विदेशी पूंजी के अन्तर्प्रवाह तथा विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि के परिणामस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हुई है जिससे मुद्रा स्फीति बढ़ी है।
4. उत्पादकों तथा उद्यमियों की निवेश संबंधी आवश्यकता की पूर्ति विशेष रूप से नयी सुधार नीति के बाद के वर्षों में बैंक साख या बैंक मुद्रा में वृद्धि हुई है।
5. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि जिसके परिणामस्वरूप मांग में वृद्धि फलतः मूल्य में वृद्धि।

(ख) पूर्ति तथा लागत को प्रभावित करने वाले कारण-कारक

1. कुछ आवश्यक खाद्य वस्तुओं जैसे सब्जी, फल दाल, तेल आदि की पूर्ति में कमी से मूल्य में तेजी से वृद्धि।
2. कृषि वृद्धि दर असन्तोषजनक।
3. प्रशासित मूल्य नीति रेलवे सेवा, स्टील, सीमेण्ट, कोयला, पैट्रोल, डीजल आदि के मूल्य में वृद्धि के कारण उद्योगों के आगत मूल्य में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।
4. तेल संकट तथा पेट्रोल के अंतर्राष्ट्रीय मूल्य में तेजी से वृद्धि।
5. कालाबाजारी तथा जमाखोरी से बाजार में पूर्ति में कृत्रिम कमी।

मुद्रास्फीति रोकने के उपाय

1. **मौद्रिक नीति-** बैंक दर में वृद्धि, खुले बाजार की क्रियाओं के द्वारा प्रतिभूतियों का विक्रय, नगद कोष अनुपात (CRR) में वृद्धि, संवैधानिक तरलता अनुपात (SLR) में वृद्धि तथा गुणात्मक साख नियन्त्रण के उपायों के अन्तर्गत स्फीति कारक या स्फीति संवेदनशील वस्तुओं के संबंध में मार्जिन का बढ़ाना।
2. **राजकोषीय नीति-** करारोपण में वृद्धि के द्वारा लोगों की व्यय योग्य आय में कमी लाना, सार्वजनिक व्यय में कटौती ऋण के प्रतिदान को स्थगित करना तथा ऋण के माध्यम से लोगों से क्रयशक्ति प्राप्त करना।
3. **आयात तथा निर्यात नीति-** स्फीति संवेदनशील उपयोग वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहित करना तथा निर्यात को हतोत्साहित करना, पूंजीगत वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहित करना जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके।
4. **उत्पादन की वृद्धि तथा लागत में कमी के उपाय-** आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना, निष्क्रिय उत्पादन क्षमता के प्रयोग पर बल, वस्तुओं की राशनिंग, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रयोग, मजदूरी तथा लाभ की वृद्धि पर रोक, लाभांश के वितरण पर रोक।

भारत में बैंकिंग संरचना (Banking Structure in India)

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश प्रणाली के अनुरूप भारत में बैंकिंग प्रणाली का आरंभ किया गया था। उन दिनों सभी बैंक संयुक्त स्टॉक बैंक हुआ करते थे। द्वितीय विश्व युद्ध के काल में भारत में ऐसे बैंकों की संख्या लगभग 1500 थी। इनमें से 1400 बैंक गैर-अनुसूचित थे।

वर्ष 1949 में भारत सरकार द्वारा बैंकिंग कंपनी अधिनियम 1949 (जिसे बाद में बैंकिंग विनियमन कानून कहा गया) पारित किया गया था। सितम्बर 1960 में इस अधिनियम में धारा 45 का समावेश कर भारत सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई कि वह कमजोर इकाइयों को सुदृढ़ इकाइयों में विलय करने का निर्णय ले।

वर्तमान में बैंकों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

1. अनुसूचित बैंक
2. गैर-अनुसूचित बैंक

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची में उल्लिखित बैंकों को अनुसूचित बैंक कहते हैं। इस अधिनियम की धारा 42 (6) (A) के अनुसार ऐसे बैंकों द्वारा निम्नांकित शर्तों को पूरा किया जाना अनिवार्य है–

1. इनकी प्रदत्त पूंजी तथा जमाओं का सकल मूल्य 5 लाख रुपए से कम नहीं होना चाहिए।
2. उसके द्वारा रिजर्व बैंक को यह विश्वास दिलाना अनिवार्य है कि वह निवेशकों के हितों की रक्षा के प्रति कटिबद्ध है।

अनुसूचित बैंकों को कई सुविधाएं भी प्रदान की गई है। भारत में अनुसूचित बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक एवं उसकी अनुषंगी इकाइयाँ, राष्ट्रीयकृत बैंक, निजी बैंक, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सम्मिलित हैं।

दूसरी ओर गैर-अनुसूचित बैंक उन बैंकों को कहा गया है जिनका उल्लेख रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की दूसरी अनुसूची में नहीं है।

31 मार्च, 2003 तक भारत में कुल 290 अनुसूचित बैंक कार्यरत थे। इनमें 223 सार्वजनिक क्षेत्र में थे। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, 27 राष्ट्रीयकृत बैंक (1 स्टेट बैंक, 7 अनुषंगी इकाइयां तथा 19 अन्य) सम्मिलित हैं।

वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण

देश के वाणिज्यिक बैंकिंग संस्थानों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

अ. अनुसूचित बैंक :- अनुसूचित बैंक वह बैंक है, जिनका नाम रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की अनुसूची द्वितीय में सम्मिलित किया गया है। इस अनुसूची में उन्हीं बैंकों को सम्मिलित किया जाता है।, जो कि निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करते हैं-

1. बैंक की प्रदत्त पूँजी और संचित कोष 5 लाख रू. से कम न हो।
2. भारतीय रिजर्व बैंक को इस बात की संतुष्टि हो कि बैंक का कोई भी कार्यकलाप जमाकर्ताओं के हित तक हानिकारक नहीं होगा।

अनुसूचित बैंक को निम्नलिखित सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं-

1. वह बैंक रिजर्व बैंक से बैंक दर पर ऋण प्राप्त करने के लिए अधिकृत हो जाती है।
2. प्रत्येक अनुसूचित बैंक स्वत: ही समाशोधन गृह की सदस्यता प्राप्त कर लेता है।
3. ऐसे बैंको को रिजर्व बैंक प्रथम श्रेणी के विनिमय पत्रों की पुनर्कटौती की सुविधा भी प्रदान करता है, किन्तु इन सुविधाओं के बदले अनुसूचित बैंको को भारतीय रिजर्व अधिनियम 1934 एवं बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 के विभिन्न प्रावधानों के अन्तर्गत आवर्ती विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है।

www.studymasterofficial.com Downloaded From

(ब) **गैर अनुसूचित बैंक**:-जो बैंक अनुसूचित नहीं होती हैं वे गैर अनुसूचित कहलाते है। इस प्रकार के बैकों की संख्या में अब निरन्तर कमी हो रही है। इन बैंको को भी सांविधिक नकद कोष शर्तो को मानना पड़ता है। लेकिन इस कोष को ये बैंक रिजर्व बैंक के पास रखने को बाध्य नहीं है। ये बैंक इस राशि को अपने पास रख सकते है। ये बैंक सामान्य कार्य उद्देश्यों हेतु रिजर्व बैंक से उधार लेने के अधिकारी नहीं होते, किन्तु असामान्य परिस्थितियों में ये रिजर्व बैंक से सम्पर्क करके उधार प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में इस्लामी बैंकिंग (Islamic Banking in India)

शरीयत सिद्धांतो पर कार्य करने वाली ब्याजरहित बैंकिंग को इस्लामी बैंकिंग कहा जाता है। इस आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि यह धर्म पर आधारित प्रणाली है। इसके विपरीत शरीयत सिद्धांतों पर आधारित होने के कारण यह सामाजिक और सामुदायिक विकास तथा वित्तीय समावेशन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकती है। बल्कि यह आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के विरूद्ध होगा, लेकिन शरीयत सिद्धांतों में यह शामिल है कि निवेश को ब्याज के रूप में मुनाफे पर आधारित नहीं होना चाहिए। इस संकल्पना को सामाजिक रूप से उत्तरदायी निवेश कहा गया है।

इस्लामी बांड (Islamic Bond)

ऐसे बांड बिलियन मुख्य रूप में मलेशिया, बहरीन और दुबई में जारी किए जाते रहे है। वर्ष 2010 में इनके माध्यम से 13.5 डालर का कारोबार किया गया था जबकि वर्ष 2011 में यह बढ़कर 18.96 डालर हो गया था। अगले दो वर्षों में यह आशा व्यक्त की गई है कि कई राष्ट्रों जैसे नाईजीरिया, ट्यूनिशिया और सेनेगल, मिश्र में भी ऐसे बांड जारी किए जाएगें।

भारत में स्थिति

रघुराम राजन समिति (वर्ष 2009) में ऐसी बैंकिंग प्रणाली के आरम्भ की अनुशंसा की थी। इसी प्रकार केरल उच्च न्यायालय ने सुब्रमन्यम स्वामी बनाम केरल राज्य, 2009 मामले में यह कहा है कि इस्लामी शब्द को धार्मिक परिपेक्ष मे नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि इसका सम्बन्ध सामुदायिक विकास से है, अत: भारत में ऐसी बैंकिंग आरम्भ करने में समस्या नहीं है। दूसरी ओर रिजर्व बैंक के अनुसार बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 में ऐसी बैंकिंग के विनियमन का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।

बम्बई स्टाक एक्सचेंज में एक शरियत सूचकांक वर्ष 2011 से आरम्भ किया गया है। इसे BSE-TASIS Shariah-50 कहते हैं। इस सूचकांक में शरियत सिद्धांतों का पालन करने वाली 50 कम्पनियां शामिल होंगी।

इस्लामी बैंकिंग तथा हरित वित्तीयन

हरित वित्तीयन वह प्रक्रिया है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विभिन्न संस्थाओं को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इस्लामी बैंकिंग के समर्थकों का यह मानना है कि चूंकि दोनों ही सामाजिक और पर्यावरणीय मूल्यों को महत्व देते हैं अत: दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

सार्वत्रिक बैंकिंग (Universal Banking)

सार्वत्रिक बैंकिंग एक बहुआयामी, बहुउद्देशीय और बहुकार्यात्मक वित्तीय सुपर बाजार है। दूसरे शब्दों में इसमें बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था के लिए एकल खिड़की की व्यवस्था की गई है।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 1991 में आर्थिक उदारीकरण के बाद मौद्रिक और वित्त बाजार में संरचनात्मक और कार्यात्मक परिवर्तन किए गए थे। यह अनिवार्य थी कि निवेश में वृद्धि के लिए वित्त का उदारीकरण किया जाए। इसी पृष्ठभूमि में बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं की एकीकरण की संकल्पना प्रचलित हुई।

भारत में बैंकिंग की प्रगति एवं प्रवृतियां (Progress and trends of Banking in India)

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2002-03 में औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। लेकिन सूखे की स्थिति के कारण सकल घरेलू उत्पाद में सामान्य वृद्धि रिकार्ड की गई थी। इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक वृद्धि के सापेक्ष अनुसूचित बैंकों

www.studypaperofficial.com Downloaded From

के कार्य निष्पादन में भी वृद्धि हुई थी। रिजर्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि बैंकों की गैर-निष्पादनकारी परिसंपत्तियों में गिरावट हुई है। साथ ही बैंकों ने जोखिम प्रबंधन तथा ऋण वसूली की प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए वित्तीय परिसंपत्ति पुर्ननिर्माण एवं प्रतिभूतिकरण तथा प्रतिभूति ब्याज अधिनियम, 2002 (Securitisation and Reconstruction of financial Assets and Enforcement of Security Interest (SARFAESI) Act, 2002 को अधिनियमित किया है। इस कानून द्वारा बैंक अपनी वित्तीय परिसंपत्तियों को वित्तीय संस्थानों को बेच सकते हैं। इनके अतिरिक्त ये परिसंपत्तियां प्रतिभूतिकरण अथवा पुनर्निर्माण करने वाली कंपनियों को भी बेची जा सकती है। हाल ही में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, स्टेट बैंक तथा कई अन्य बैंकों ने संयुक्त रूप से एक परिसंपत्ति पुर्ननिर्माण कंपनी (Assets Recunstruction Company India Ltd. (ARCIL) की स्थापना की है। जिसकी अधिकृत पूंजी 20 करोड़ रुपए तथा प्रदत्त पूंजी 10 करोड़ रुपए है। रिजर्व बैंक ने कंपनी के लाइसेंस को स्वीकृति प्रदान कर दी है।

गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (Non–Banking Financial Companies)

मध्यस्थों के विविध समूहों का प्रतिबिंबन करने वाली कंपनियों के रूप में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों द्वारा कार्य किया जा रहा है। इन कंपनियों में पाई जाने वाली भिन्नता का आधार उनका आकार, प्रकृति पंजीकरण तथा विनियमन पद्धति है। अपनी विविधताओं के बावजूद ये कंपनियां भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्त की सेवाएं उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इन कंपनियों का विकास 1990 के दशक में हुआ था। दशक के उत्तरार्द्ध तक वित्तीय क्षेत्र में किये गये सुधारों के कारण इन कंपनियों ने आवास तथा निवेश के क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर कार्य करना आरंभ किया था। जनवरी 1998 में रिजर्व बैंक ने इन कंपनियों के विनियमन के लिए विशिष्ट मार्गदर्शन दिये जिनका आधार रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम-1997 था। वर्ष 2002-03 में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के रिजर्व बैंक में पंजीकरण को अनिवार्य बना दिया गया। इसके अतिरिक्त एक परिसंपत्ति-देयता प्रबंधन प्रणाली भी विकसित की गई है। हाल के वर्षों में इन कंपनियों के कार्य निष्पादन में सुधार परिलक्षित हुए हैं। अधिकांश कंपनियों का पूंजी पर्याप्तता अनुपात 12 प्रतिशत था। साथ ही उनके गैर निष्पादनकारी परिसंपत्तियों में भी कमी दृष्टिगोचर हुई है। रिजर्व बैंक द्वारा आंशिक अथवा पूर्ण रूप से विनियमित होने वाली गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों में निम्नांकित को सम्मिलित किया जाता है–

1. निधि कंपनियां
2. चिट फंड कंपनियां
3. आवासीय तथा निवेश के क्षेत्र में कार्य करनेवाली कंपनियों कई अन्य प्रकार की वित्तीय कंपनियों, जैसे- बीमा कंपनी, आवासीय वित्त कंपनी, स्टॉक ब्रोकर कंपनी तथा कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 620। के तहत उल्लिखित निधि कंपनियों को रिजर्व बैंक की विनियमन प्रणाली से बाहर रखा गया है।

गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की परिसंपत्ति-देयता प्रबंधन (Asset Liability Management, ALM) प्रणाली जो जून 2001 में विकसित की गई थी, को 31 मार्च, 2002 से प्रभावी बनाया गया है। ऐसी सभी कंपनियों को यह निर्देश दिये गये थे कि उन्हें अपने निवेश को सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में सुरक्षित रखना होगा। सैद्धांतिक रूप से इन कंपनियों में जमा की गई राशि का बीमा नहीं होता। इस संदर्भ में इन्हें यह निर्देश दिया गया है कि अधिक पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए उन्हें अपने विज्ञापन में यह उल्लेख करना होगा कि उनकी जमाएं सीमित नहीं है।

रिजर्व बैंक द्वारा जारी मार्गदर्शन का उल्लेख इन कंपनियों को हतोत्साहित करना नहीं बल्कि निवेशकों के हितों की रक्षा है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank)

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का मूल उद्देश्य देश के दूरस्थ क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधा की उपलब्धता सुनिश्चित करना था। वर्ष 1975 में पांच ऐसे बैंक उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद एवं गोरखपुर, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में जयपुर तथा पश्चिम बंगाल में मालदा में स्थापित किए गये। इन बैंकों ने 2 अक्टूबर, 1975 से कार्य करना आरंभ किया। कालांतर में इस ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली का राष्ट्रीय

Downloaded From www.studymasterofficial.com

स्तर पर विस्तार कर दिया गया। वर्तमान में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की लगभग 14350 शाखाएं कार्यरत हैं जिनके द्वारा अनुसूचित बैंकों के माध्यम से दी जाने वाली कुल साख का लगभग 37 प्रतिशत उपलब्ध कराया जाता है। 22 मार्च, 1997 से इन बैंकों को अपने क्षेत्र से बाहर जाकर भी साख उपलब्ध कराने की अनुमति दी गई है।

भारतीय आयात-निर्यात बैंक (Export–Import Bank of India)

सितम्बर 1981 में पारित एक संसदीय कानून के तहत भारत के आयात-निर्यात बैंक की स्थापना की गई थी। जो मार्च, 1982 से कार्य कर रहा है। पूर्णतः भारत सरकार के अधीन कार्य करने वाला यह बैंक भारत के विदेशी व्यापार को सुदृढ़ बनाने के लिए ऋण सुविधा उपलब्ध कराता है। आयात और निर्यात के लिए वित्त उपलब्ध कराने वाली एजेंसियों के मध्य एक समन्वयकारी संस्था के रूप में यह कार्य करता है। साथ ही, निर्यात क्षमता में वृद्धि के उद्देश्य से यह निर्यात की चक्रीय प्रणाली के प्रत्येक चरण पर ऋण सुविधा उपलब्ध कराता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कंपनियों को उत्पादों एवं सेवाओं की बेहतर सुविधा देने का प्रावधान कर उनकी अन्तर्राष्ट्रीय सेवाओं का विस्तार भी करता है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई.डी.बी.आई) की स्थापना 1 जुलाई 1964 को भारतीय रिजर्व बैंक के स्वामित्व वाली इकाई के रूप में एक संसदीय विधि के तहत की गई थी। इसकी भूमिका के विस्तार के आलोक में बैंक का स्वामित्व फरवरी 1976 में भारत सरकार को सौंप दिया गया था। इसके बाद इसका मुख्य उद्देश्य देश भर में औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक समन्वय स्थापित करने के अतिरिक्त उद्योगों की स्थापना तथा विकास के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना हो गया। वर्ष 1994 में आई.डी.बी.आई. कानून में संशोधन किये जाने के पश्चात् 1995 में बैंक ने अपना पहला शेयर जारी किया ताकि सार्वजनिक समता को 49 प्रतिशत किया जा सके। वर्तमान में आई.डी.बी.आई. में भारत सरकार का समता अंश 58 प्रतिशत है। वर्ष 1964-91 के मध्य आई.डी.बी.आई. ने भारत के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसका मूल उद्देश्य सरकार के विकासोन्मुखी बैंकिंग प्रणाली को आधार प्रदान करना रहा है। औद्योगिक विकास के माध्यम से यह रोजगार के अवसरों के सृजन तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास को भी प्रोत्साहित करता है। 1990 के दशक में सरकार द्वारा किये गये वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के तहत आई.डी.बी.आई. की भूमिका का और विस्तार हुआ है। आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2002-03 में बैंक के माध्यम से 28.89 अरब रुपए निर्गत किये गये थे। आधारिक रूप से आई.डी.बी.आई. एक सुदृढ़ संस्था है। रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार बैंक की पूंजी पर्याप्तता अनुपात 9 प्रतिशत होनी चाहिए। इसके सापेक्ष मार्च 2003 तक आई.डी.बी.आई. की पूंजी पर्याप्तता अनुपात 18.7 प्रतिशत थी। आई.डी.बी.आई. विश्व का दसवां वृहततम बैंक है तथा भारतीय वित्तीय एवं पूंजी बाजार में इसकी साख अत्यन्त सुदृढ़ बनी हुई है।

वाणिज्यिक बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए संस्था ने आई.डी.बी.आई. बैंक की स्थापना की है। नवम्बर 1995 में इंदौर में इसकी पहली शाखा स्थापित की गई थी। आई.डी.बी.आई. बैंक का आरंभिक समता आधार 1000 मिलियन रुपया था जिसमें से बैंक द्वारा 800 मिलियन तथा लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा 200 मिलियन रुपए प्रदान किये गये थे। जनवरी 1993 में रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार, निजी क्षेत्र के बैंकों की स्थापना की प्रक्रिया के तहत आई.डी.बी.आई. बैंक की स्थापना की गई थी।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) (SIDBI)

सिडबी की स्थापना अप्रैल 1990 में संसदीय कानून के अन्तर्गत की गई थी इसके उद्देश्यों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. लघु उद्योगों का प्रवर्तन
2. लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता
3. लघु उद्योगों की स्थापना और विकास

4. ऐसे कार्य करने वाली संस्थाओं के मध्य समन्वय की स्थापना

अपनी स्थापना के समय से ही सिडबी ने सम्पूर्ण लघु उद्योग क्षेत्र के विकास के प्रति कटिबद्धता प्रदर्शित की है। साथ ही, अति लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके लिए नई परियोजनाओं के निर्धारण, प्रवर्तन, आधुनिकीकरण तथा पुनर्वास पर भी विशेष बल दिया गया है।

यह विदित है कि भारत की अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का विशेष योगदान रहा है। इसका मूल कारण यह है कि इनके माध्यम से रोजगार सृजन तथा निर्गम की प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलती है। लघु उद्योगों के लिए आवश्यक आधारभूत संरचनाओं के निर्माण और विकास के लिए भी बैंक द्वारा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। सिडबी द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता के तीन आयाम हैं:

1. प्राथमिक वित्तीय संस्थानों को अप्रत्यक्ष सहायता
2. लघु इकाइयों को प्रत्यक्ष सहायता
3. विकास एवं समर्थन सेवाओं की उपलब्धता

प्राथमिक वित्तीय संस्थानों की संख्या वर्तमान में 913 है जिनकी 65000 से अधिक शाखाएं कार्यरत हैं। इन संस्थाओं को सिडबी द्वारा अप्रत्यक्ष सहायता प्रदान की जाती है। दूसरी ओर, सिडबी द्वारा दी जाने वाली प्रत्यक्ष सहायता का मूल उद्देश्य लघु उद्योगों के लिए वित्त आपूर्ति प्रणाली का सुदृढ़ीकरण है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष सहायता सिडबी की 41 क्षेत्रीय शाखाओं के माध्यम से प्रदान की जाती है जो देश भर में विस्तृत हैं। लघु उद्योगों के विकास की दिशा में कार्यरत विभिन्न एजेंसियों तथा संस्थाओं को सिडबी द्वारा अनुदान एवं ऋण के रूप में भी वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। विगत वर्षों में सिडबी के माध्यम से निम्नांकित क्षेत्रों में वित्तीय सहायता देने का कार्य किया गया है :

1. लघु उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुरूप मानव संसाधन विकास
2. प्रौद्योगिकीय उन्नयन
3. गुणवत्ता एवं पर्यावरण प्रबंधन
4. विपणन एवं प्रवर्द्धन
5. सूचनाओं का प्रचार-प्रसार

राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank)

इसकी स्थापना 9 जुलाई 1988 को राष्ट्रीय आवास बैंक अधिनियम, 1987 के अन्तर्गत की गई थी। इसका मूल उद्देश्य आवासीय वित्त की सुविधाओं का विस्तार करना है। इसके यह कानून बैंक को निम्नांकित अधिकार प्रदान करता है :

1. आवासीय वित्त उपलब्ध कराने वाली सभी संस्थाओं को दिशा निर्देश
2. अनुसूचित बैंकों तथा आवासीय वित्त उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं को ऋण तथा अग्रिम की सुविधा उपलब्ध कराने के अतिरिक्त किसी विधि के तहत स्थापित केन्द्रीय, राज्य-स्तरीय तथा अन्य एजेंसियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
3. संसाधनों को गत्यात्मक बनाने तथा आवासीय वित्त सुविधा का विस्तार करने का अधिकार।

उद्देश्य :

1. एक सुदृढ़, स्वस्थ एवं व्यावहारिक आवासीय वित्त सुविधा उपलब्ध कराने वाली प्रणाली का विकास।
2. आवासीय वित्त उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न आय वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक नेटवर्क का निर्माण।
3. संसाधनों का प्रवर्द्धन तथा उन्हें आवासीय वित्त के रूप परिवर्तित करने का प्रयास।
4. आवासीय ऋणों को आय के अनुरूप बनाने का प्रयास।

5. विनियामक तथा अधीक्षण प्राधिकरण के माध्यम से आवासीय वित्त उपलब्ध कराने वाली प्रणाली का सुदृढ़ीकरण।
6. सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाली एजेंसियों को आवास निर्माण के लिए भू-खंड उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रोत्साहन।

सहकारी बैंक (Co–Operative Bank)

भारत में सहकारी आंदोलन पूर्ण रूप से स्थापित होते ही, वर्ष 1904 में सर्वप्रथम सहकारिता संबंधी कानून बनाया गया था। इसके उपरांत 1914 में मैक्लीगन समिति ने सहकारिता की त्रि-स्तरीय संरचना का सुझाव दिया था। निम्नतर स्तर पर प्राथमिक कृषि साख समिति, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंकों की स्थापना का सुझाव दिया गया था। लगभग 100 वर्ष पूर्व भारत में पहले शहरी सहकारी बैंक की स्थापना की गई थी।

सहकारी संस्थाएं कमोबेश सभी क्षेत्रों में कार्य करती हैं जिनमें उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन, वितरण सेवा व बैंकिंग महत्वपूर्ण हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में कृषि साख प्रवाह लगभग नगण्य था। दूसरे शब्दों में, संगठित एवं संस्थागत साख प्रवाह अतयन्त न्यून था। इस कारण ग्रामीणों को महाजनों तथा साहूकारों पर निर्भर होना होता था। भारतीय स्थितियों तथा दशाओं के अनुरूप सहकारी बैंकों की स्थापना बीसवीं सदी के आरंभ में की गई थी। इसकी स्थापना से महाजनों एवं साहूकारों वाली साख प्रणाली को प्रतिस्थापित करना था।

शहरी सहकारी बैंक सामुदायिक समितियों के रूप में कार्य करती हैं। इनकी संकल्पना सर्वप्रथम 1939 में मेहता भंसाली समिति द्वारा विकसित की गई थी। बाद में बैंकिंग (विनियमन) कानून, 1949 के तहत इस संकल्पना का विकास विस्तार से किया गया।

कालांतर में शहरी सहकारी बैंकों को आर्थिक विकास का समर्थन प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप अपने साख में वृद्धि का भी लाभ प्राप्त हुआ।

मई 1999 में रिर्जव बैंक द्वारा एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य शहरी सहकारी बैंकों के कार्यों का पुनरीक्षण था। समिति ने इस संदर्भ में निम्नांकित सुझाव दिए-

1. शहरी सहकारी बैंकों की सहकारिता की भावना का संरक्षण।
2. निवेशकों के हितों की रक्षा।
3. वित्तीय प्रणाली के जोखिम में कमी।
4. प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण।
5. सहकारी बैंकों तथा बैंकिंग क्षेत्र के अन्य पक्षों के साथ समायोजन।

विदेशी वाणिज्यिक बैंक (Foregin Commercial Bank)

30 सितम्बर, 2006 की स्थिति के अनुसार भारत में कार्यरत विदेशी बैंको की संख्या 29 है। जिनकी शाखाओं की संख्या 258 बताई गई है। विश्व व्यापार संगठन के साथ किए गए वायदों के अनुरूप देश में विदेशी बैंकों की शाखाओं का विस्तार किया जा रहा है तथा वर्ष 2006 में 4 विदेशी बैंकों को 13 शाखाओं की स्थापना के लिए लाइसेंस प्रदान किए गए हैं। 7 अन्य विदेशी बैकों को भारत में अपने प्रतिनिधि कार्यालय स्थापित करने की स्रोत-लोक सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 2565 (वित्त मंत्रालय) अनुमति रिजर्व बैंक द्वारा वर्ष 2006 में प्रदान की जा चुकी है। रिपोर्ट के अनुसार विश्व व्यापार संगठन के साथ किए गए वायदों के तहत विदेशी बैंकों की कम से कम 12 शाखाओं की स्थापना की अनुमति प्रतिवर्ष रिजर्व बैंक को प्रदान करनी है। पिछले वर्ष 2005 में भारत में 13 नई शाखाएं स्थापित करने की अनुमति रिजर्व बैंक द्वारा 8 विभिन्न विदेशी बैंकों को प्रदान की गई थी।

नए प्रावधानों के तहत् विदेशी बैकों को भारत में अपनी पहली शाखा खोलते समय केवल 10 मिलियन डॉलर की पूँजी साथ लेकर आनी होती है। दूसरी व तीसरी शाखा के लिए अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता क्रमशः 10 मिलियन डॉलर व 5 मिलियन डॉलर होगी। ब्रिटेन के स्टैण्डर्ड चार्टर्ड बैंक की भारत में अधिकतम शाखाएं (81 शाखाएं) है। 30 जून 2006 को भारत में कार्यरत् समस्त विदेशी बैंकों की

Downloaded From www.discoverymasterofficial.com

225 शाखाएं थी। जर्मनी के प्रसिद्ध डयूश बैंक ने अब भारत में खुदरा बैंकिंग कारोबार प्रारम्भ किया है। देश में इसकी पहली शाखा ने मुम्बई में कारोबार 18 अक्टूबर, 2005 को प्रारंभ किया था।

निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks)

31 मार्च, 2001 को देश में निजी क्षेत्र में 23 पुराने तथा 10 नए बैंक कार्यरत थे। देश में निजी क्षेत्र के नए बैंको में एक और बैंक ने कोटक महिन्द्रा बैंक लि. नाम से 22 मार्च, 2003 से बैंकिंग कारोबार प्रारम्भ किया है। इससे पूर्व कोटक महिन्द्रा फाइनेंस कम्पनी नाम से एक गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनी के रूप में यह कार्यरत् था तथा गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनी से बैंकिंग कम्पनी के रूप में रूपान्तरण की अनुमति रिजर्व बैंक ने इसे प्रदान की थी। गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनी से बैंकिंग बैंक के रूप में रूपान्तरित होने वाला यह देश में पहला बैंक हैं देश के निजी क्षेत्र में एक और नए बैंक ने 16 अगस्त, 2004 से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। यस बैंक नाम के इस बैंक के प्रवक्ताओं में अशोक कपूर व राणा कपूर के अतिरिक्त हॉलैण्ड का राबो बैंक भी शामिल है। बैंक की 200 करोड़ रूपए की प्रारम्भिक चुकता पूँजी में दोनों कपूरों की भागीदारी 20 प्रतिशत है।

निजी क्षेत्र में नए बैंकों की स्थापना हेतु नए दिशा निर्देश RBIद्वारा 28 फरवरी, 2005 को जारी किए गए थे। इसका संक्षेप ब्यौरा निम्नलिखित प्रकार से है-

1. आरम्भिक न्यूनतम चुकता पूँजी 200 करोड़ रूपंए होगी। कारोबार शुरू करने के तीन वर्ष के भीतर इसे 300 करोड़ रूपए करना आवश्यक किया गया है।
2. प्रमोटरों का अंशदान किसी भी समय पर बैंक की चुकता पूँजी का न्यूनतम 40 प्रतिशत रखा गया है।
3. प्रमोटरों के अंशदान के अतिरिक्त आरंभिक पूँजी के शेष भाग को पब्लिक इश्यू या प्राइवेट प्लेसमेंट के माध्यम से जुटाया जा सकता है।
4. निजी क्षेत्र में स्थापित होने वाले बैंकों को अपनी उधारियों का 40 प्रतिशत भाग प्राथमिकता क्षेत्र को उपलब्ध कराना होगा। इन बैंको को अपना पूँजी पर्याप्तता मानक 10 प्रतिशत रखना होगा तथा अपनी 25 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रो में स्थापित करनी होंगी।
5. गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों को बैंक के रूप में रूपान्तरित होने की अनुमति प्राप्त करने के लिए पूँजी पर्याप्तता मानक कम से कम 12 प्रतिशत होना चाहिए तथा उनकी गैर निष्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (NPAs) 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा कम से कम AAA की क्रेडिट रेटिंग उन्हें प्राप्त होनी चाहिए।
6. नए बैंक कारोबार प्रारम्भ करने के कम से कम तीन वर्ष तक कोई म्यूचुअल फण्ड अथवा अनुषंगी इकाई स्थापित नहीं कर सकेंगी।
7. दिशा निर्देश में 6 जुलाई 2004 को जारी परिपत्र में किए गए प्रावधानों के अनुसार एक बैंक/वित्तीय संस्थान द्वारा अन्य बैंक वित्तीय संस्थान के 5 प्रतिशत या अधिक शेयर रखने पर प्रतिबन्ध लगाने और सुदृढ़ कम्पनी प्रशासन सिद्धान्तों का पालन करने की भी व्यवस्था है।
8. निजी क्षेत्र के बैंकों में सभी श्रेणियों के विदेश प्रत्यक्ष निवेश की उच्चतम सीमा 20 प्रतिशत से बढ़कर 49 प्रतिशत करने की घोषणा रिजर्व बैंक ने 16 फरवरी, 2002 को की थी। स्टेट बैंक सहित सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में विदेशी निवेश की उच्चतम सीमा 20 प्रतिशत ही बनी रहेगी। इसमें विदेशी संस्थागत निवेश भी शामिल है। वर्ष 2003-04 के बजट में बैंकिंग कम्पनी के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा 49 से बढ़कर 74 प्रतिशत कर दी गई है।
9. रिजर्व बैंक के ताजा दिशा निर्देशों के अनुसार निजी क्षेत्र के बैंको में किसी शेयरधारक की मत क्षमता कुल क्षमता के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकेगी। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के मामले में (स्टेट बैंक को छोड़कर) यह सीमा 1 प्रतिशत ही है। स्टेट बैंक के मामले में रिजर्व बैंक के अतिरिक्त अन्य शेयरधारकों की अधिकतम मतक्षमता 10 प्रतिशत हो सकती है।

Downloaded from www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

वित्तीय संस्थाओं के लिए पूंजी पर्याप्तता मानक (Capital Adequacy Standard for Financial Industries)

वैश्विक स्तर पर बैंक ऑफ इंटरनेशनल सैटलमेन्ट द्वारा गठित बास्ले समिति ने सन् 1988 में सर्वप्रथम पूंजी पर्याप्तता मानक की अवधारणा को प्रस्तुत किया। पूंजी पर्याप्तता से तात्पर्य ऐसी पूंजी से है जिसे उस कम्पनी द्वारा किसी व्यावसायिक परिसंपत्ति के सृजन के एक निश्चित स्तर तक अपने पास रखना चाहिए। पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CRAR) व्यवसाय के उस स्तर को निर्धारित करती है जिसे कोई वाणिज्यिक बैंक या वित्तीय संस्थान या गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनी कर सकती है। उदाहरण के लिए यदि पूंजी पर्याप्तता अनुपात 8% निर्धारित किया जाता है, तो इसका अर्थ यह है कि वित्तीय संस्थान को प्रत्येक एक सौ रुपए की व्यावसायिक आस्ति के लिए 8 रुपए की पूंजी अनिवार्य रूप से अपने पास रखनी चाहिए।

भारत में बास्ले समिति की सिफारिशों के अनुरूप समस्त बैंकों में पूंजी पर्याप्तता मानक वर्ष 1992-93 से लागू करना प्रारम्भ कर दिया था। नरसिंहम समिति (दूसरी) की सिफारिशों के अनुसरण में CRAR को चरणबद्ध रूप से वर्तमान 8% से बढ़ाकर 10% करने का निर्णय लिया गया। तदनुसार RBI ने 31 मार्च, 2000 से CRAR को बढ़ाकर 9% करने का निर्णय लिया। वर्ष 2002-03 के लिए भी न्यूनतम CRAR को 9% ही रखा गया। लेकिन वर्ष 2005-06 में इसे बढ़ाकर 12% कर दिया गया था।

उपर्युक्त नीतिगत निर्णय के अनुसार देश के सभी बैंकों ने अपनी कार्यप्रणाली में सुधार किया। पूंजी आधार को बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने कानूनों में संशोधन करके भारतीय स्टेट बैंक एवं उसके सहयोगी बैंकों सहित सभी वाणिज्यिक बैंको को खुले बाजार में निर्गम जारी करके, पूंजी जुटाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इसके साथ-साथ बैंको के पुनः पूंजीकरण हेतु भारत सरकार ने वर्ष 1993-94 में 5,400 करोड़ रुपए, 1994-95 में 5,287 करोड़ रुपए तथा 1995-96 में 850 करोड़ रुपए बजटीय संसाधनों से उपलब्ध कराए।

31 मार्च, 2003 की स्थिति के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के 27 में से 26 बैंकों (19 राष्ट्रीयकृत बैंकों सहित SBI) के पास 10% का CRAR था। भारतीय बैंकों में सर्वाधिक पूंजी पर्याप्तता अनुपात आन्ध्रा बैंक (13.40%) का है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का CRAR कुल मिलाकर मार्च 2003 के अन्त में 12.6% हो गया। वर्तमान में भी लगभग यही स्तर बना हुआ है।

पूंजी पर्याप्तता निर्धारण में पूंजी से तात्पर्य (Meaning of Capital in Determining Capital Adequacy)

वाणिज्यिक बैंकों, वित्तीय संस्थानों तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों की पूंजी दो प्रकार की होती है :

टीयर-I पूंजी या मुख्य पूंजी- वह पूंजी जो सर्वाधिक स्थायी तथा अनापेक्षित हानियों के विरुद्ध तत्काल उपलब्ध सहायता के रूप में होती है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार की पूंजी आती है :

(i) चुकता शेयर पूंजी (प्रदत्त पूंजी), (ii) सांविधिक संचित निधियां, (iii) शेयरों पर प्राप्त प्रीमियम, (iv) परिसंपत्तियों की बिक्री से प्राप्त धनराशि जिसे अलग खाते में रखा गया है, से उत्पन्न पूंजी प्रारक्षित निधियां, (v) अन्य सभी मुक्ति निधियां जिन्हें घोषित कर दिया गया है। उपर्युक्त निधियों के योग में से निम्न निधियों में किए गए निवेश को घटाया भी जाता है : (i) सहायक कम्पनियों में किया गया निवेश, (ii) अदृश्य परिसंपत्तियों का लाभ (iii) चालू हानियां एवं पुरानी अवधियों की कुल हानियां।

टीयर-II पूंजी अथवा द्वितीय श्रेणी की पूंजी- इसमें निम्नलिखित प्रकार की पूंजी को शामिल किया जाता है: (i) घोषित न की गई संचित निधियाँ (Undisclosed reserves), (ii) पूर्णरूप से चुकता क्रमिक प्राथमिकता शेयर पूंजी, (iii) बैंक परिसर एवं विपणन योग्य प्रतिभूतियां, जिनका बैंकों के रिकॉर्ड में मूल्य निर्धारित है, के पुर्नमूल्य से सृजित संचित निधियां, (iv) सामान्य प्रावधानित एवं हानि संचित निधियां, जिनमें अनापेक्षित हानियों को पूरा करने के लिए उपलब्ध विशिष्ट परिसंपत्तियों को शामिल नहीं किया जाता है, (v) हायब्रिड ऋण पूंजी प्रपत्र जिनमें इक्विटी एवं ऋण दोनों की विशिष्टताएं मौजूद होती हैं, (vi) पूर्णरूपेण चुकता असुरक्षित अन्य उधार देने वालों के दावों के अधीनस्थ प्रतिबन्धात्मक प्रावधानों से मुक्त तथा धारक की इच्छा पर भुगतान हो सकने वाले अधीनस्थ ऋण। यदि अधीनस्थ

www.studymasterofficial.com

ऋण की परिपक्वता निर्धारित अवधि की है, तो इस पर प्रगतिशील दर से बट्टा लगाया जाना चाहिए तथा परिपक्वता अवधि पांच वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

पूंजी पर्याप्तता मानक निर्धारण के मामले में टीयर-II की पूंजी किसी भी देश में किसी भी समय टीयर-I के 100 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा अधीनस्थ ऋण इन्स्टुमेन्ट्स टीयर-II पूंजी के 50 प्रतिशत डिसकाउण्ट दर पर ही टीयर-II पूंजी में शामिल किया जाना चाहिए सामान्य प्रावधानित/हानि संचित निधियां कुल जोखिम भारित परिसंपत्तियों के 1.25 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

चूंकि पूंजी पर्याप्तता मानकों को लागू किए जाने का उद्देश्य वित्तीय फर्मों/पूंजी द्वारा आस्ति-सृजन में विवेकपूर्णता सुनिश्चित करना तथा नीचे पूंजी आधार के साथ अन्धाधुन्ध आस्ति-सृजन/कार्य संचालन से प्रणाली की रक्षा करना है, इसलिए किसी भी समय बिन्दु पर टीयर-II की पूंजी टीयर-I की पूंजी से अधिक नहीं होनी चाहिए। कभी-कभी बैंक, वित्तीय संस्थान, गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ पर्याप्त इक्विटी के बिना ही अधिक व्यवसाय करने के लिए अपनी टीयर-I की पूंजी के स्तर को बढ़ा लेती हैं। ऐसा किए जाने से ठीक उसी प्रकार का खतरा उत्पन्न हो जाता है, जैसाकि बिना पर्याप्त पूंजी आधार के नई आस्तियों के सृजन से होता है।

परिसम्पत्ति प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन तथा प्रतिभूति लाभ प्रवर्तन अध्यादेश 2002

बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के डूबते ऋणों की वसूली तथा गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियों (NPA's) की समस्या के समाधान के लिए 22 अगस्त, 2002 को परिसम्पत्ति प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन तथा प्रतिभूति लाभ प्रवर्तन अध्यादेश 2002 (Securitisation and Reconstruction of Financial Assets and Enforcement of Security Interest Ordinance 2002) जारी किया गया। इस अध्यादेश के अन्तर्गत बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि डूबते ऋणों की वसूली के लिए तथा गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियों (NPAs) की वसूली के लिए बैंक एवं वित्तीय संस्थान बकाएदारों की गारण्टी के रूप में रखी गई प्रतिभूतियों को जब्त करके उनकी बिक्री कर लें। इस अध्यादेश में बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को परिसम्पत्ति पुनर्गठन कम्पनियां (Asset Reconstruction Companies-ARCs) भी गठित करने का अधिकार दिया गया है। इन कम्पनियों की सहायता से बैंक एवं वित्तीय संस्थान गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियों को खरीद कर उनका प्रतिभूतिकरण करने में सफल होंगे।

बैंकिंग लोकपाल योजना (Banking Ombudsman Scheme)

बैंकों के ग्राहकों की शिकायतों का निदान कराने के लिए रिजर्व बैंक ने 14 जून, 1995 (नई योजना, 2006) से देशभर में बैंकिंग ओम्बुडसमैन स्कीम लागू कर दी है। इसके तहत अलग-अलग क्षेत्रों के लिए 15 ग्राहक प्रहरी नियुक्त किए जा चुके है। इनकी नियुक्ति नई दिल्ली, भोपाल, बंगलौर, चण्डीगढ़, हैदराबाद, मुम्बई, पटना, जयपुर, कानपुर, गुवाहाटी, भुवनेश्वर, चेन्नई, कोलकाता, अहमदाबाद तथा त्रिवेन्द्रम में की गई है।

रिजर्व बैंक की अधिसूचना के अनुसार सभी अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक ग्राहक प्रहरियों के दायरे में आते है। किन्तु क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक इसके दायरे से बाहर रखे गए है।

कोई भी ग्राहक जिसकी सेवा सम्बन्धी शिकायतों का निपटारा सन्तोषजनक तरीके से सम्बन्धित बैंक शाखा तथा उसके शीर्ष प्रबन्धन द्वारा 2 माह के भीतर नहीं किया जाता, बैंकिंग लोकपाल के पास एक वर्ष के भीतर शिकायत कर सकता है। ये शिकायतें निम्नलिखित क्षेत्रों में की जा सकती हैं-

1. चेकों, ड्राफ्ट, बिलों आदि के भुगतान में अनावश्यक रूप से विलम्ब करना।
2. छोटे नोटों को बिना किसी उचित कारण बताए स्वीकार न करना।
3. बैंक ड्राफ्ट निर्गत न करना।
4. बैंक द्वारा परिचालित किसी भी खाते के परिचालन से संबंधी शिकायतें, विशेष रूप से ब्याज दरों से संबंधित।
5. भारत में कार्यरत किसी भी बैंक से संबंधित निर्यातकों तथा अनिवासी भारतीयों की शिकायतें।

उपर्युक्त शिकायतों के संबंध में लोकपाल पहले प्रयास में शिकायतकर्ता तथा संबंधित बैंक के मध्य समझौता कराने का प्रयास करता है, किन्तु इससे समाधान प्राप्त न होने पर वह शिकायतकर्ता को हुई हानि की राशि का (जो अधिकतम 10 लाख रू. तक हो सकती है) एवार्ड घोषित कर सकता है। बैंक द्वारा एवार्ड का भुगतान न करने पर लोकपाल उसकी शिकायत भारतीय रिजर्व बैंक को कर सकता है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकिंग लोकपाल योजना का दायरा बढ़ाकर इसमें सभी बैंकिंग व्यवहार अब शामिल किए है। क्रेडिट कार्ड से सम्बन्धित शिकायतों, वायदा की गई सुविधाएं देने में विलम्ब, बैंकों के ब्रिकी एजेंटों द्वारा किए गए वायदे पूरे नहीं करने तथा ग्राहकों पर पूर्व सूचना के बिना सेवा प्रभार लगाने आदि को भी अब इस योजना के दायरे में शामिल किया गया है। बैंक सेवाओं में विलम्ब, बैंकों द्वारा छोटे मूल्य वर्ग के नोट और सिक्के स्वीकार नही करने अथवा इन पर कमीशन माँगने की शिकायतें भी बैंकिंग लोकपाल से की जा सकती है।

बैंकिंग लोकपाल योजना 2006 (Banking Ombudsman Scheme 2006)

भारतीय रिजर्व बैंक ने नई बैंकिंग लोकपाल योजना लागू कर दी है। पुरानी बैंकिंग लोकपाल 1995 योजना में कई संशोधन किए गए हैं, और इसको अधिक प्रभावशाली बनाया गया है। नई योजना में बैंकिंग लोकपाल का कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया गया है। वाणिज्यिक, अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के संबंध में शिकायतों के शीघ्र प्रभावी तथा मितव्ययी निवारण हेतु बैंकिंग लोकपाल को उचित कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान किया है। अब बैंकिंग लोकपाल को उचित कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान किया है। अब बैंकिंग लोकपाल बैंक और उसके ग्राहक या दो बैंकों के बीच विवाद में 'अभिनिर्णायक (Arbitrator) के रूप में भी कार्य करेंगे, यदि दोनों पक्ष इसके लिए सहमत हैं। बैंक द्वारा बिना कारण जमा खाता खोलने से इन्कार करना और ऋण के मामले में बिना वजह ऋण के आवेदन को लेने से मना करने के संबंध में भी लोकपाल शिकायतें सुन सकता है।

बैंकिग क्षेत्र के सुधार (Banking Sector Reforms)

1991 के पूर्व भारतीय बैंकिंग प्रणाली पूर्णतः अनम्य थी। इस अनम्यता का मुख्य कारण रिजर्व बैंक द्वारा साख प्रवाह तथा मुद्रा आपूर्ति में नियमन के लिए नियमों का निर्धारण था। साथ ही, बैंकों को सांविधिक तरलता अनुपात के रूप में अपनी कुल जमा का एक बड़ा भाग सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद के लिए रखा जाना निर्धारित था। इसके फलस्वरूप साख प्रवाह में कमी दृष्टिगोचर थी। दूसरी ओर, बैंकिग प्रणाली का पर्याप्त विस्तार भी नहीं था। 1969 में प्रत्येक 65,000 की जनसंख्या पर एक बैंक कार्यरत था। कार्यात्मक स्वायत्तता के अभाव के कारण बैंकों का कार्य निष्पादन भी संतोषजनक नहीं था।

भारत में बैंकिग क्षेत्र के सुधार से संबंधित तथ्यों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि भारत की बैंकिंग संरचना की पर्याप्तता सुनिश्चित करने के साथ-साथ कार्य क्षमता में वृद्धि तथा बैंक उपभोक्ता संबंधों को बेहतर बनाने की प्रक्रियाओं पर बल दिया गया है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1991 में भारत में संरचनात्मक आर्थिक सुधारों के आरंभ के साथ ही बैंकिंग संरचना में सुधार की आवश्यकता भी महसूस की गयी थी।

संरचनात्मक रूप से बैंकिंग संरचना को राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार करने के साथ-साथ उन्हें कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता भी उत्पन्न हो गयी थी। इस संबंध में वर्ष 1991 तथा पुनः 1998 में गठित नरसिंहम समिति का विशेष योगदान है। समिति ने अपने आकलन में यह स्पष्ट किया था कि एक ओर जहाँ भारत में बैंकिंग प्रणाली का अपर्याप्त विस्तार है वहीं दूसरी ओर प्रति व्यक्ति औसत जमा भी अतयंत कम है। साथ ही बैंकों की कार्यप्रणाली में विद्यमान जटिलता के कारण बैंक उपभोक्ता संबंधों को भी सुदृढ़ता प्रदान नहीं की जा सकती है। अतः इनमें संरचनात्मक एवं कार्यात्मक सुधारों की नितांत आवश्यकता है।

नरसिंहम समिति (Narshimham Commettee)

नरसिंहम समिति का गठन 1991 तथा 1998 में किया गया था। समिति ने व्यापारिक बैंकों, वित्तीय संस्थानों तथा पूंजी बाजार में सुधार के महत्वपूर्ण सुझाव दिए थे। नरसिंहम समिति ने बैंकिंग ढांचे को चार स्तरीय बनाने का सुझाव दिया था। उच्चतम स्तर पर भारतीय

स्टेट बैंक के साथ तीन अथवा चार अंतरराष्ट्रीय स्तर के वृहद बैंक एवं निचले स्तर पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को रखने का सुझाव दिया गया था, साथ ही ग्रामीण बैंको की कार्यप्रणाली को सीमित कर कृषि तथा संबद्ध कार्यों के लिए ऋण सुविधायें उपलब्ध कराने का प्रयास अपेक्षित था।

स्थापना लागत को कम करने के लिए नयी शाखाओं के खोले जाने की प्रक्रिया को विनियमित करने का सुझाव भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त समिति द्वारा दिये गये सुधारों में निम्नांकित प्रमुख है।

1. सम्पूर्ण वित्तीय प्रणाली को बाजारोन्मुखी बनाने का प्रयास। समिति के अनुसार, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कार्यात्मक स्वायत्तता होनी चाहिए जिसके लिए इन पर आरोपित सरकारी नियंत्रण में कमी लाया जाना आवश्यक है। इसके लिए समिति ने वित्त मंत्रालय के अधीन बैंकिंग प्रभाग के नियंत्रण को समाप्त करने का सुझाव दिया है।
2. बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण।
3. बैंकिंग क्षेत्र में निजी बैंकों के प्रवेश को अनुमति।
4. बैंकों द्वारा मुनाफा अर्जित करने वाले प्रयासों पर बल।
5. सांविधानिक तरलता अनुपात की सीमा 25 प्रतिशत निर्धारित करने का सुझाव।
6. नकद आरक्षित अनुपात में कमी।
7. निर्देशित साख कार्यक्रमों की समाप्ति।
8. बाजार आधारित ब्याज निर्धारण प्रणाली का विकास।
9. बैंकों की पूंजी पर्याप्तता अनुपात को न्यूनतम 8 प्रतिशत करने का सुझाव।
10. ऋण वसूली को बेहतर बनाने के लिए विशेष न्यायाधिकरणों का गठन।
11. परिसंपत्ति पुनर्निमाण कोष का गठन कर बैंकों की गैर-निष्पादनकारी परिसंपत्तियों में कमी लाने का प्रयास।
12. बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थानों के निरीक्षण के लिए रिजर्व बैंक के अधीन गठित अर्थ स्वयायत्त निकाय को विशेषाधिकार।
13. प्रति व्यक्ति औसत जमा में वृद्धि के मध्य विभेदीकरण का प्रतिषेध।
14. प्रशासनिक एवं राजनीतिक हस्तक्षेप में कमी।
15. नये राष्ट्रीयकरण पर अंकुश।

नरसिंहम समिति के अतिरिक्त वर्ष 1999 में 'वर्मा समिति' ने कमजोर बैंको की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए प्रयास करने के उद्देश्य से सुझाव दिया था। समिति ने निम्नांकित तीन बैंको को कमजोर बैंको की श्रेणी में रखा था।

1. इण्डियन बैंक
2. यूनाइटेड कामर्शियल बैंक
3. यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया

समिति द्वारा दिये गये सुझावों पर वर्ष 2000-01 में भारतीय रिजर्व बैंक ने निजी तथा अन्य बैंको के लिए विशिष्ट मार्गदर्शन दिया था।

बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि रिटेल बैंकिंग का विस्तार कर बैंक उपभोक्ता संबंधों को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। दूसरी ओर बैंको द्वारा अर्जित मुनाफे की पुनर्विनियोग को प्रोत्साहित कर उनके मुनाफे की निरन्तरता बनाये रखने के साथ-साथ साख प्रवाह में भी वृद्धि की जा सकती है। माँग मुद्रा बाजार को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से एक निगरानी प्रक्रिया का भी आरंभ किया जा सकता है जो बैंको की तरलता संबंधी समस्याओं के निराकरण में सहायक होगा।

DISCOVERY
www.studymasterofficial.com

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में गैर निष्पादनीय परिसम्पत्तियाँ (N.P.A. in Indian Banking System)

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद से भारत के सर्वांगीण विकास में वाणिज्यिक बैंकों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है, लेकिन इसी के साथ साथ विगत वर्षो में बैंकों की लाभप्रदता गिरी है। नीची लाभप्रदता का एक प्रमुख कारण बैंको की गैर निष्पादनीय परिसम्पतिंयों में भारी वृद्धि हो जाना है।

गैर-निष्पादनीय परिसम्पतियाँ बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों द्वारा वितरित वे ऋण हैं जिनके मूलधन एवं उस पर देय ब्याज की वापसी समय से नहीं हो पाती या बिलकुल नहीं हो पाती। मार्च 2006 के अन्त में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की सकल गैर-निष्पादन परिसम्पतियाँ 51,815 करोड़ रूपए की थी, जबकि मार्च 2005 के अन्त में यह 59,373 करोड़ रूपए तथा मार्च 2004 के अन्त में यह 64,787 करोड़ रूपए थी। इस प्रकार अनुसूचित व्यापारिक बैंको की सकल गैर-निष्पादित परिसम्पतियाँ पछले वर्षो में उत्तरोत्तर घटी है। मार्च 2006 के अन्त में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, निजी क्षेत्र के बैंकों तथा विदेशी बैंकों की गैर-निष्पादन परिसम्पतियाँ क्रमशः 42,106 करोड़ रूपए, 7,782 करोड़ रूपए तथा 1,927 करोड़ रूपए थी। मार्च 2006 के अन्त में अनुसूचित व्यापारिक बैंको की शुद्ध गैर-निष्पादित परिसम्पतियाँ 18,530 करोड़ रूपए रह गई जो मार्च 2005 के अन्त में 21,755 करोड़ रूपए के ऊँचे स्तर पर थी। भारतीय बैंकों ने 2008-09 के दौरान पिछले वर्ष की तुलना में NPA से अधिक मात्रा में राशियों की वसूली की, जो बैंकों की परिसम्पत्ति गुणवत्ता में सुधार के लिए किए जा रहे प्रयासों को इंगित करता है। 2008-09 में वसूली गई और बट्टे खाते डाली गई कुल राशि 38828 करोड़ रूपए थी।

रिजर्व बैंक की सूचना के अनुसार अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कुल परिसम्पत्तियों के प्रतिशत के रूप में इनकी गैर-निष्पादन परिसम्पत्तियाँ 2006-07 के दौरान 1.5 प्रतिशत से गिरकर 2007-08 में 1.3 प्रतिशत रह गई थी।

सकल NPA से सकल अग्रिमों का अनुपात मार्च 2009 के अन्त में अनुसूचित व्यापारिक बैंको के लिए 2.3 था, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, निजी बैंकों तथा विदेशी बैंको के लिए यह क्रमशः 2 प्रतिशत, 2.4 प्रतिशत तथा 4 प्रतिशत था। निबल NPA अनुपात (निबल अग्रिमों के रूप में निबल NPA) अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के मामले में मार्च 2008 में 1 प्रतिशत से मामूली रूप से बढ़कर मार्च 2009 में 1.1 प्रतिशत हो गया। बैंक से वितरित ऋणों को निष्पादनीय एवं गैर निष्पादनीय रूपों में वर्गीकृत किया जाता है।

निष्पादनीय अथवा मानक परिसम्पत्तियाँ (Performing or Standerd Assets)

बैंको द्वारा वितरित ऐसे सभी ऋण निष्पादनीय परिसम्पतियाँ माने जाते हैं, जिनका मूलधन एवं उस पर देय ब्याज समय से बैंक को प्राप्त होता रहता है। इसलिए इन्हें मानक परिसम्पतियों की संज्ञा दी जाती है। इसमें ऐसे ऋणों को भी शामिल किया जाता है जिनमें बकाया मूलधन तथा उस पर देय ब्याज का भुगतान क्रमशः 180 दिन तथा 365 दिन से अधिक समय तक किसी वित्तीय वर्ष में नहीं रोका जाता। इस प्रकार की परिसम्पतियों के लिए बैंकों को किसी प्रकार का प्रावधान नहीं करना पड़ता।

गैर निष्पादनीय परिसम्पतियाँ (Non-Performing Assets)

बैंको द्वारा वितरित ऐसे सभी ऋण और उस पर देय ब्याज गैर निष्पादनीय परिसम्पत्ति के रूप में पहचाने जाते हैं जिनमें किसी वित्तीय वर्ष में मूलधन का भुगतान 180 दिन तथा ब्याज का भुगतान 365 दिन से अधिक दिनों तक रोक लिया जाता है।

भारत में म्यूचुअल फण्ड (Mutual Funds in India)

म्यूचुअल फंड अथवा साझा कोष से तात्पर्य उस वित्तीय व्यवस्था से है, जिसमें जनसाधारण के निवेश योग्य धन को ऐच्छिक आधार पर एकत्रित करके विनियोग के सर्वोत्तम अवसरों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रायः साझा कोष की स्थापना दक्ष वित्तीय संस्थानों, बैंकिंग कम्पनियों, बीमा कम्पनियों या अन्य विशिष्ट संस्थानों द्वारा की जाती है। ये संस्थानें यूनिट्स या स्टॉक का निर्गमन करके जनता से धन एकत्रित करती है तथा उस धन को श्रेष्ठ तथा लाभप्रद परियोजनाओं में विनियोजित करने का प्रयास करती हैं निःसंदेह साझा कोष एक

सामूहिक बचत योजना है जो लघु निवेशकों की बचतों को प्रगतिशील और लाभप्रद परियोजनाओं में विनियोजित करती है।

भारत में साझा कोष व्यवस्था का शुभारम्भ यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा 1964 में किया गया। अमरीकन पद्धति पर आधारित इस प्रथम खुले साझा कोष को यूएस-64 के नाम से पुकारा गया। तत्पश्चात् यू.टी.आई. द्वारा वर्ष 1987 तक पांच योजनाओं के साथ मास्टर शेयर नामक योजना का संचालन भी शुरू कर दिया गया। लन्दन स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध इस मास्टर शेयर स्कीम ने सफलता के अनेक आयाम स्थापित किए।

वर्ष 1987 में एस.बी.आई. साझा कोष तथा केनबैंक साझा कोष ने भारतीय साझा कोष उद्योग में प्रवेश किया। वर्ष 1990 में पंजाब नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, इण्डियन बैंक के साथ-साथ दो राष्ट्रीयकृत बीमा कम्पनियों द्वारा आश्वस्त प्रतिफल आधारित साझा कोष योजनाओं के साथ पदार्पण किया गया।

भारतीय साझा कोष उद्योग में नवीन युग का अभ्युदय तब हुआ जब जनवरी 1993 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के द्वारा देश में सर्वप्रथम साझा कोष नियामक जारी किए गए, वर्ष 1993 से पूर्व हमारे देश में केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा ही साझा कोष योजनाओं का संचालन किया जाता था, किन्तु 1993 में सेबी द्वारा जारी दिशा निर्देशों के अन्तर्गत देशी विदेशी निजी उद्यमियों को भी साझा कोष योजनाओं के संचालन की छूट दी गई। वर्ष 1993 में कठोरी समूह द्वारा अमरीकन कम्पनी के साथ मिलकर प्रथम निजी साझा कोष की स्थापना की गई। तत्पश्चात अनेक निजी साझा कोष योजनाएं प्रारम्भ हो गई।

विदेशी मुद्रा कोषों में लगातार हो रही वृद्धि को देखते हुए भारतीय रिजर्व बैंक ने घरेलू म्यूचुअल फंडों को विदेश में और अधिक निवेश की अनुमति अप्रैल 2008 में प्रदान की है। इन फंडों के लिए विदेशों में निवेश की सीमा को 5 अरब डॉलर से बढ़ाकर उसने 7 अरब डालर कर दिया।

साझा कोष योजनाओं के प्रकार (Types of Muntual Fund Schemes)

1. **खुला साझा कोष योजनाएँ :-** इस योजना के तहत् यूनिट्स का क्रय और विक्रय वर्ष पर्यन्त चालू रहता है। फलतः यूनिटस का धारक अपनी इच्छानुसार किसी भी समय अपने विनियोजित धन को वापस प्राप्त कर सकता है। इस योजना का सर्वोत्तम उदाहरण यू.एस.-64 है। इसके अन्तर्गत एक निवेशक प्रतिमाह आहरण वाली योजना को भी पंसद कर सकता है। वहीं दूसरी और वह प्रतिमाह आहरण वाली योजना को भी पंसद करता है। इस योजना की एक अन्य खास बात यह भी है कि इनमें एक निवेशक बिना किसी शुल्क के प्रवेश ले सकता है। बना रह सकता है तथा बाहर आ सकता है।
2. **बन्द साझा कोष योजनाएँ :-** इस योजना का संचालन एक निश्चित अवधि (प्रायः 2 से 5 वर्ष) के लिए किया जाता है। इस योजना में सदस्यों से निर्धारित अवधि तक अंशदान एकत्रित किया जाता है और अवधि के पूरा होने के बाद यूनिट्स के पूँजी मूल्य में होने वाली वृद्धि को सदस्यों में वितरित कर दिया जाता है। इसका क्रय मूल्य उसी स्टॉक एक्सचेंज में किया जा सकता है। जहाँ ये सूचीबद्ध हों केन विकास फण्ड इसका उत्तम उदाहरण है।
3. **आय फण्ड:-** इसके निवेशकों या सदस्यों को नियमित आय प्राप्त होती है। इस योजना से प्राप्त कोषों को कम जोखिम वाली तथा अच्छी प्रत्याय दर वाली कम्पनियों में ही विनियोजित किया जाता है। प्रायः ऐसा विनियोजन बॉण्डस, ऋणपत्र, वाणिज्यिक पत्र, सरकारी प्रतिभूतियों आदि में किया जाता है। आय कोष योजनाओं में विकास कोष योजनाओं की तुलना में आय और जोखिम दोनों ही कम होती है।
4. **कर बचत योजनाएँ:-** इस योजना से प्राप्त कोषों को प्रायः सार्वजनिक कम्पनियों के नवीन निर्गमों में विनियोति किया जाता है और निवेशकों को कर बचत की सुविधा भी प्रदान की जाती है। आय विकास या पूँजी वृद्धि वाले विकल्पों की सुविधा प्रदान करने वाली इन योजनाओं का संचालन कर नीति के आधार पर किया जाता है तथा इनकी अवधि 10 वर्ष होती है। एक निवेशक चाहे तो 3 वर्ष बाद अपना धन वापस माँग सकता है।

भारत में गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों की भूमिका (Role of NBFCs in India)

वर्तमान में गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के व्यापारिक लेनेदेन की संख्या तथा मात्रा दोनों में ही पर्याप्त वृद्धि हुई है। एन.बी.एफ.

Downloaded From www.studymasterofficial.com

सी. प्राय: उन क्षेत्रों के लिए ऋण की व्यवस्था करती है जहाँ ऋण अन्तराल विद्यमान है। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं और मोटरकारों के लिए वित्त पोषण करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। एन.बी.एफ.सी. के कारोबार में तीव्र वृद्धि ने निवेशकों के हितों की रक्षा करने के लिए प्रभावी नियामक कार्यवाही की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है इसके लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने एन.बी.एफ.सी. की गतिविधियों को नियमित करना प्रारम्भ कर दिया है।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 3 जनवरी, 2010 को जारी निजी क्षेत्र में नए बैंक के प्रवेश सम्बन्धी दिशा निर्देशों में अच्छे विगत रिकॉर्ड वाली एन.बी.एफ.सी. को निम्नलिखित मानदण्डों के आधार पर निजी क्षेत्र के बैंक बनने की अनुमतिम दे दी गई है।

1. NBFC. की अद्यतन तुलन पत्र के अनुसार कम से कम 200 करोड़ रू. की निवल सम्पत्ति होनी चाहिए। जिसे रूपान्तरण की तारीख से तीन वर्षो के भीतर 300 करोड़ रू. तक बढ़ाया जाना होगा।
2. NBFC. को किसी बड़े औद्योगिक घराने द्वारा प्रमोट किया हुआ नहीं होना चाहिए अथवा स्थानीय राज्य सरकारी प्राधिकरणों के स्वामित्वाधीन/ नियंत्रणाधीन नहीं होना चाहिए।
3. NBFC.को पूर्व वर्ष AAA रेटिंग (अथवा इसके समकक्ष) से कमतर क्रेडिट प्राप्त नहीं होना चाहिए।
4. NBFC. का भारतीय रिजर्व बैंक के विनियमों/निदेर्शे के अनुपालन और सार्वजनिक जमाओं की वापसी अदायगी में विगत रिकॉर्ड त्रुटिहीन होना चाहिए।
5. NBFC. के पास कम से कम 12 प्रतिशत की पूँजी पर्याप्तता होनी चाहिए और इनकी निवल एन.पी.ए. 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।
6. NBFC. के पास कम से कम 25 लाख रू. का शुद्ध निजी कोष होना रिजर्व बैंक ने अनिवार्य किया है। इस मानक को पूरा न करने वाली गैर वित्तीय कम्पनियों को कारोबार करने से प्रतिबंधित करने की घोषणा रिजर्व बैंक ने फरवरी 2003 में की थी।
7. NBFC. द्वारा सार्वजनिक जमाओं पर अब अधिकतम 11 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ही ब्याज दिया जा सकेगा। अभी तक इसके लिए 12.5 प्रतिशत की उच्चतम सीमा निर्धारित थी। ब्याज की नई उच्चतम सीमा 4 मार्च 2003 से प्रभवी की गई थी। ब्याज दर की नई उच्चतम सीमा घोषणा करते हुए रिजर्व बैंक ने कहा था कि कम्पनियों (गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों) इससे कम ब्याज देने का स्वतंत्र है। ब्याज की यह नई उच्चतम सीमा 4 मार्च-2003 व इसके पश्चात् स्वीकार की गई या नवीकृत की गई जमाओं पर लागू होगी।

भारत में पूँजी बाजार (Capital Market in India)

पूंजी बाजार से संबंधित प्रमुख शब्दावली (Important Terms regarding Capital Market)

प्रतिभूति (Securities) :- वित्तीय परिसंपत्तियों के लिये प्रपत्रों के रुप में विभिन्न तथ्यों का उल्लेख करने वाले ऋणपत्रों को प्रतिभूति कहते हैं। वस्तुत: प्रतिभूति ऋण की वसूली नहीं होने की स्थिति में बीमे (ऋण जमानत के रूप में) के रुप में प्रयुक्त होती है।

अंश और ऋण पत्र (Share & Debenture):- कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार अंश किसी कम्पनी की पूंजी का वह भाग है, जिसमें जबबा सम्मिलित है, जब तक की दोनों में स्पष्ट अन्तर नहीं किया जाता। दूसरी ओर, ऋण पत्र एक ऐसा प्रमाण पत्र है, जिसमें धारक द्वारा कम्पनी को दिए गए ऋण के उल्लेख के साथ-साथ निश्चित ब्याज दर पर एक नियत अवधि के उपरान्त मूलधन वापस करना अनुबंधित होता है। भारत में दो प्रकार के अंश प्रचलित हैं-

1. समता अंश (Equity shares)
2. अधिमान/वरीयता अंश (Preference share)

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

समता अंश को पहले साधारण अंश भी कहा जाता था ऐसे अंशों पर सामान्यत: कम्पनी के प्रवर्तकों अथवा निदेशकों का अधिकार होता है, तथा शेयर धारक पर उद्यमशीलता से संबंधित जोखिम भारित होती है। लेकिन इसके बावजूद धारकों को कम्पनी के नीति निर्धारण में मतदान का अधिकार होता है। दूसरी ओर अधिमान अंश के धारकों को एक निश्चित अंश पर लाभांश दिया जाता है। दो प्रकार के अधिमान अंश प्रचलित हैं-

1. संचित (cumulative)
2. असंचित (non-cumulative)

संचित वरीयता अंशों पर प्रतिवर्ष एक निश्चित दर पर लाभांश प्राप्त होता है, जबकि असंचित अंशों पर लाभ अर्जित करने वाले वर्ष में ही लाभांश दिया जाता है। अत: संचित वरीयता अंशों की प्रकृति ऋण पत्रों की भांति होती है।

इक्विटी अंश (Equity Share) :- वे अंश हैं जिन्हें कम्पनी में मताधिकार प्राप्त होता है, ये अंशधारी ही धारित अंशों के अनुपात में कम्पनी के स्वामित्वाधिकारी होते हैं। इन्हे लाभांश प्राप्ति की कोई वरीयता प्राप्त नहीं होती।

ऋण पत्र (Debentures) :- यह एक ऐसा प्रपत्र है जिसके आधार पर कम्पनियां ऋण प्राप्त करती हैं। सुरक्षा, अवधि, परिवर्तनीयता आदि के आधार पर ऋणपत्रों के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे वाहक तथा पंजीकृत ऋणपत्र, सुरक्षित तथा असुरक्षित ऋणपत्र, परिवर्तनीय तथा अपरिवर्तनीय ऋण पत्र। ऋण पत्र के धारकों को एक निश्चित दर पर ब्याज प्राप्त होता है। ऋण पत्र के प्रकार-

- सुरक्षित
- परिवर्तनीय

सुरक्षित ऋणपत्रों पर कम्पनी द्वारा अपनी परिसम्पतियों की गारंटी दी जाती है, जबकि परिवर्तनीय ऋण पत्र ऐसे ऋण पत्र हैं, जिसमें धारक को एक विकल्प के रूप में यह सुविधा दी जाती है, कि एक नियत अवधि के उपरान्त उसे वरीयता अंशो में परिवर्तित कर सकता है।

बॉण्ड या डिबेन्चर :- केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या संस्थाओं द्वारा जारी किये जाने वाले ऋण पत्रों को बॉण्ड या डिबेंचर कहते हैं जिन्हें ऋण के स्थान पर जारी करने का प्रावधान होता है। इन ऋण पत्रों पर ब्याज की एक निश्चित राशि देय होती है।

धारक बॉण्ड :- जिन ऋण पत्रों का प्रयोग काले धन को श्वेत बनाने के लिए किया जाता है, उन्हें धारक बॉण्ड कहते हैं। ऐसे ऋण पत्रों पर कोई भी नाम अंकित नहीं किया जाता है।

अभिगोपक (Underwriter) :- ऐसे व्यक्ति या संस्था जो कमीशन के आधार पर किसी कंपनी के शेयरों या ऋण पत्रों की एक निश्चित मात्रा की बिक्री की गारंटी देता है। यदि गारंटी दिए गए शेयर या ऋण पत्र सामान्य जनता द्वारा नहीं क्रय किए जाते हैं तो अभिगोपक को ये प्रतिभूतियां स्वयं क्रय करनी होती हैं।

तेजड़िया :- स्टॉक एक्सचेंज में स्टॉक की कीमत में वृद्धि करने वाले व्यक्तियों को तेजड़िया (Bull) कहते हैं। इसके विपरीत स्टॉक की कीमतों में कमी करने वाले व्यक्तियों को मंदड़िया (Bears) कहते हैं।

विनिमय दर :- जिस दर पर किसी देश की मुद्रा के दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित होती है, उसे विनिमय दर कहते हैं।

संविभाग निवेश :- वित्तीय विपत्रों में किये जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय निवेश को संविभाग निवेश (Portfolio investment) कहते हैं।

म्युचुअल फंड :- विनियोग के लिए जनसाधारण से एच्छिक स्तर पर प्राप्त धनराशि को म्युचुअल फंड की श्रेणी में रखा गया है।

संयुक्त क्षेत्र :- सरकारी एवं निजी उद्यमियों की युग्मीय भागीदारी से निर्मित एवं कार्यरत प्रतिष्ठानों को संयुक्त क्षेत्र की श्रेणी में समावेशित किया गया है।

राईट इश्यू (Right Issue) :- कंपनियों द्वारा रकम जुटाने के लिए जारी किए जाने वाले वे शेयर जो मौजूदा शेयरधारकों को दिए जाते हैं। आम तौर पर वे शेयर भारी डिस्काउंट (मौजूदा भाव से कम) पर दिए जाते हैं और शेयर धारकों के पास मौजूदा शेयरों के अनुपात में होते हैं। जैसे, अगर कोई कंपनी 2.5। में राइट्स इश्यू देने की घोषणा करती है, तो आपको उस कंपनी के हर पांच शेयर पर दो शेयर

खरीदने का अधिकार होगा। राइट्स इश्यू में जारी शेयर सूचीबद्ध होने के बाद आम शेयरों की तरह ही खरीदे-बेचे जा सकते हैं।

शेयर विभाजन (Stock Split) :- इस प्रक्रिया के तहत एक शेयर को कई शेयरों में विभाजित कर दिया जाता है, जिससे शेयरों का बाजार भाव विभाजन के अनुपात में कम हो जाता है। साथ ही उसका फेस वैल्यू भी उसी अनुपात में कम हो जाता है। जैसे 10 रू. फेस वैल्यू वाले शेयर की कंपनी अगर 5:1 में शेयर विभाजन की घोषणा करती है और उसका बाजार भाव 2,000 रू. चल रहा हो, तो एक्स स्प्लिट होने के बाद उसके शेयर का भाव लगभग 4000 रू.पर आ आएगा और उसका फेस वैल्यू घटकर 2रू. हो जाएगा। आम तौर पर कंपनियां अपने शेयरों का कारोबार बढ़ाने के लिए ही शेयर विभाजन का सहारा लेती है।

शेयर पुनर्खरीद (Buy Back Offer) :- प्रमोटर कंपनी में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए दो तरीके अपनाते हैं। या तो वे खुले बाजार से धीरे-धीरे अपनी कंपनी के शेयर खरीदते हैं या फिर मौजूदा शेयरधारकों को एक खास भाव पर अपने शेयर प्रमोटर को बेचने को कहते हैं। दूसरी प्रक्रिया को पुनर्खरीद यानी **'बाय बैंक'** कहा जाता है। बाय बैंक में प्रमोटर एक खास तारीख तक शेयरधारकों को अपने शेयर बेचने का प्रस्ताव करता है। इससे कंपनी में एक ओर तो प्रमोटर की हिस्सेदारी बढ़ती है और दूसरी ओर आम जनता की हिस्सेदारी घटती है। इससे शेयर के भाव पर सकारात्मक दबाव पड़ता है। आम तौर पर बाय बैंक को कंपनी के लिए काफी अच्छा माना जाता है क्योंकि इससे पता चलता है कि उसके प्रमोटरों को अपनी योजनाओं और कंपनी के भविष्य पर पूरा भरोसा है।

ओपन आफॅर (Open Offer) :- यह राइट्स इश्यू की ही तरह कंपनी के लिए रकम जुटाने का एक जरिया है, जिसमें कंपनी अपने शेयरधारकों को मौजूदा बाजार भाव से कम पर शेयरों की खरीद के लिए प्रस्ताव करती है। राइट्स इश्यू से यह इस मायने में अलग होता है कि शेयरधारक राइट्स में मिले शेयरों को तुरंत बाजार में बेच सकते हैं, लेकिन ओपन ऑफर में मिले शेयरों को तुरंत नहीं बेचा जा सकता।

चुकता शेयर (Paid Share) :- ऐसे शेयर, जिनका निर्गमन के बाद पूर्ण मूल्य का भुगतान कंपनी को प्राप्त हो चुकी है, उन्हें चुकता शेयर कहते हैं।

जबरन अधिग्रहण (Hostile Take Over) :- जब एक कंपनी द्वारा दूसरी कंपनी के शेयर अधिक मात्रा में खरीदकर येन-केन प्रकारेण कंपनी पर कब्जा जमाने की कोशिश की जाती है तो इसे जबरन अधिग्रहण कहा जाता है।

जीरो कूपन बॉन्ड (Zero Coupan Bond) :- जब किसी बॉन्ड पर देय ब्याज का भुगतान उसकी परिपक्वता तिथि पर मूलधन के साथ किया जाता है तो उसे जीरो कूपन बॉन्ड कहते हैं। इसमें परिपक्वता तिथि पर एकमुश्त राशि का भुगतान किया जाता है।

दीवालिया कंपनी (Bankrupt Company) :- ऐसी कंपनी को दीवालिया कंपनी कहा जाता है जिसके लिए न्यायालय ने यह निर्णय दे दिया हो कि कंपनी अपनी देनदारियों का भुगतान करने में असमर्थ है। इस हालत में कंपनी के पास उपलब्ध सभी संपत्तियों की नीलामी कर दी जाती है। नीलामी से प्राप्त धन को प्राथमिकता के आधार पर लेनदारों के बीच बांटा जाता है।

दीर्घ प्रतिभूतियां (Long Securities) :- इस श्रेणी में उन प्रतिभूतियों को शामिल किया जाता है जिनकी परिपक्वता अवधि 10 वर्ष या उससे अधिक होती हैं। इसमें सरकारी बॉन्ड आदि आते हैं।

दैनिक मार्जिन (Daily Margin) :- बाजार के सदस्यों को अपने दैनिक सौदे संपन्न करने के लिए शेयर बाजार में कुछ राशि जमा करानी पड़ती है, इसे दैनिक मार्जिन कहते हैं।

संचयी तरजीही शेयर (Cumulative Preference Share) :- जब तरजीही शेयरों पर वर्तमान वर्ष में कंपनी के लाभ न होने पर उनका लाभांश अगले वर्षों के लिए संचित होता रहता है, तथा जिस वर्ष में कंपनी को लाभ होता है, सबसे पहले इस प्रकार के संचित लाभांश के भुगतान की तरजीह होती है तो इन्हें संचयी तरजीही शेयर कहा जाता है।

अयाचित पूँजी (Uncalled up Capital) :- आवंटित पूँजी का वह हिस्सा, जो अभी शेयरधारकों से कंपनी द्वारा मांगा नहीं गया है। अयाचित पूँजी कहा जाता है।

अयाचित लाभांश (Undaimed Dividend) :- लाभांश घोषणा के बाद और भुगतान भेजने के बाद भी यदि किसी शेयरधारक द्वारा

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

लाभांश का भुगतान नहीं लिया जाता है तो इसे अयाचित लाभांश कहा जाता है।

प्रस्ताव मूल्य (Offer Price) :- कंपनी जिस मूल्य पर आम निवेशक को शेयर बेचने की पेशकश करती है उसे प्रस्ताव मूल्य कहा जाता है। यह शेयर के अंकित मूल्य से ज्यादा या कम हो सकता है।

शेयर पूँजी (Share Capital) :- किसी कंपनी द्वारा जो पूँजी शेयरों के माध्यम से एकत्र की जाती है, उसे शेयर पूँजी कहा जाता है।

शेयरधारक (Share Holder) :- किसी कंपनी के शेयरों के धारक को शेयरधारक कहा जाता है। ये व्यक्ति सामान्यत: विनियोक्ता होते हैं। समता शेयरों के धारक कंपनी के स्वामी होते हैं।

शेयर आवंटन (Allotment of Share) :- जिन व्यक्तियों ने शेयर क्रय करने के लिए संबंधित कंपनी के पास प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं, अर्थात आवेदन पत्र दिए हैं, उन प्रस्तावों को यदि कंपनी स्वीकार कर लेती है, तो इसे शेयरों का आवंटन कहा जाता है।

सट्टेबाज (Speculator) :- ऐसे व्यक्ति, जिनका बाजार में आने का या सौदे करने का एकमात्र उद्देश्य कीमतों में उतार-चढ़ाव से लाभ कमाना होता है, सट्टेबाज कहलाते हैं। ऐसे व्यक्ति सामान्यत: सभी बाजारों में होते हैं। ऐसे व्यक्ति दलाल की श्रेणी के होते हैं तथा बड़े साहसी होते हैं।

सममूल्य (Par Value) :- किसी प्रतिभूति के प्रमाण पत्र में प्रतिभूति का जो मूल्य छपा रहता है, उसे सममूल्य या अंकित मूल्य कहा जाता है। बाजार मूल्य इससे भिन्न हो सकता है।

संयुक्त धारक (Joint Holder) :- जब किसी प्रतिभूति सामान्यत: शेयर को दो विनियोक्ता एक साथ क्रय करके संयुक्त रूप से पंजीकृत कराते हैं, तो इन्हें संयुक्त धारक कहा जाता है। इस व्यवस्था में कंपनी की ओर से प्रथम नाम को ही नोटिस दिया जाता है।

अधिकार का पत्र (Later of Right) :- राइट शेयरों को क्रय करने के लिए कंपनी द्वारा वर्तमान शेयरधारकों को जो पत्र भेजा जाता है, उसे अधिकार का पत्र कहा जाता है।

अधिकार सहित (Cum- Right) :- जब कंपनी द्वारा जारी किए जाने वाले अतिरिक्त नए शेयरों को क्रय करने का अधिकार विद्यमान शेयरधारकों को होता है तो इसे अधिकार सहित क्रय कहा जाता है।

अधिकार रहित (Ex- Right) :- जब कंपनी के विद्यमान शेयरधारकों को अतिरिक्त निर्गमन में प्राथमिकता से भाग लेने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है तो इसे अधिकार रहित कहा जाता है। इस व्यवस्था में विद्यमान शेयरधारक भी नए विनियोक्ताओं की श्रेणी में रहते हैं।

अंत: बाजार प्रतिभूतियां (Inter Bourse Securities) :- जो प्रतिभूतियां देश विदेश के कई शेयर बाजारों में व्यापार करने के लिए सूचीबद्ध होती हैं, उन्हें अंत: बाजार प्रतिभूतियां कहा जाता है।

अभिदान मूल्य (Subscription Price) :- कंपनी द्वारा जिस मूल्य पर जनता को या विद्यमान अंशधारियों को शेयर निर्गमित किए जाते हैं, उस मूल्य को अभिदान मूल्य कहा जाता है। इस मूल्य में प्रीमियम या कटौती भी सम्मिलित होती है।

असूचीयन (Delisting) :- जब किसी शेयर बाजार की अधिकृत सूची से किसी प्रतिभूति-विशेष का नाम हटा दिया जाता है तो इसे प्रतिभूति का असूचीयन कहते हैं।

आकर्षक मूल्य (Striking Price) :- जिस मूल्य पर प्रतिभूतियों के लिए निविदा या बिक्री का प्रस्ताव किया जाता है, उसे आकर्षक मूल्य कहा जाता है। यह मूल्य सामान्यत: क्रेताओं के लिए आकर्षक होता है।

आक्रात्मक वृद्धि कोष (Aggressive Groth Fund) :- भारी जोखिम वाली प्रतिभूतियों को अक्रामक प्रतिभूतियां कहा जाता है। गणना के लिए जोखिम की दृष्टि से जिस प्रतिभूति का बीटा-1 से अधिक होता है, उसे आक्रामक प्रतिभूति कहा जाता है।

आंतरिक नियम (House Rules) :- शेयर दलालों द्वारा अपने ग्राहकों के खातों के संचयन के लिए शेयर बाजार के अधिकारियों के निर्देशन में जो नियम बनाए जाते हैं उन्हें आंतरिक नियम कहा जाता है।

Downloaded from www.studymasterofficial.com

पूंजी बाजार (Capital Market)

पूंजी बाजार में विभिन्न संस्थाएं और प्रक्रियाएं होती हैं जिनके माध्यम से मध्यम अवधि और दीर्घावधि की निधियां एकत्र की जाती है और व्यक्तियों, व्यवसायियों तथा सरकार को ऋण दिए जाते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियां शामिल हैं जिन्हें ऋणियों को निधियां प्रदान करने और निवेशकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खरीदा और बेचा जाता है।

पूंजी बाजार दीर्घकालीन कोषों की मांग करने वाले (ऋणियों) और उनकी पूर्ति करने वाले (ऋणदाताओं) से मिलकर बना है इस प्रकार पूंजी बाजार में निम्नलिखित दो पक्ष होते हैं:

A. **पूंजी की मांग** : पूंजी बाजार में दीर्घकालीन कोषों की मांग साधारणत: निगमीय संस्थाओं और सरकार द्वारा की जाती है।

(i) **निगम संस्थाएं** : निजी निगमीय क्षेत्र द्वारा दीर्घकालिक साख की मांग अनेक तरह के कार्यक्रमों के वित्तीयन के लिए की जाती है। इसी तरह यदा-कदा कृषि क्षेत्र द्वारा भी दीर्घकालिक निधियों की मांग की जाती है।

(ii) **सरकार**: सामान्यत: सरकारों (इसमें केंद्रीय, राज्य एवं स्थानीय सभी स्तर की सरकारें शामिल हैं।) के पास उपलब्ध वित्तीय संसाधन उनकी आवश्यकता की तुलना में कम पड़ जाते हैं। इन वित्तीय घाटों की आपूर्ति पूंजी बाजार से संसाधन जुटा कर की जाती है।

B. **पूंजी की पूर्ति पक्ष** : पूंजी बाजार में कोषों की पूर्ति व्यक्तिगत एवं संस्थागत बचतकर्त्ताओं तथा सरकारी अधिक्यों का उपयोग किया जाता है। मोटे तौर पर पूंजी बाजार में कोषों की पूर्ति निम्नलिखित संस्थाओं द्वारा की जाती है-

(i) व्यापारिक बैंक (ii) भारतीय जीवन बीमा निगम (iii) भारतीय साधारण बीमा निगम (iv) प्रॉविडेण्ट फण्ड (v) विशिष्ट संस्थाएं जैसे-भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया एवं (vi) पारिस्पारिक निधियां आदि।

पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में अंतर (Differences between Capital Market and Money Market)

1. पूंजी बाजार में दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था की जाती है। जबकि मुद्रा बाजार मे तरल कोषों के व्यवस्था तथा बैंकिग व्यवस्था के माध्यम से इनका व्यापार तथा उद्योग में अल्पकालीन नियोजन किया जाता है।
2. पूंजी बाजार औद्योगिक इकाइयों के अंश पत्र, ऋण पत्र और बॉण्ड तथा सरकार के बॉण्डस एवं प्रतिभूतियों जैसे-दीर्घकालीन प्रतिभूतियों आदि उपकरणों का उपयोग किया जाता है जबकि मुद्रा बाजार में वचन पत्र-विनिमय बिल, ट्रेजरी बिल, जमा प्रमाण पत्र-वाणिज्य, कागज पत्र आदि प्रपत्रों का प्रयोग किया जाता है।
3. पूंजी बाजार और मुद्रा बाजार में कार्यरत संस्थाएं एक दूसरे से पृथक होती हैं पूंजी बाजार में वाणिज्य बैंक, जनता भविष्य निधियां, बीमा निगम, विकास बैंक, निवेश, ट्रस्ट आदि व्यवहार करते हैं जबकि केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, मध्यस्थ तथा बिल, दलाल मुद्रा बाजार में व्यवहार करते हैं।
4. पूंजी बाजार के उपकरण सामान्यतया द्वितीयक बाजार होते है जबकि मुद्रा बाजार के उपकरणों के द्वितीय बाजार नहीं होते हैं।
5. पूंजी बाजार में औपचारिक स्थान स्टॉक केंद्र में सौदों का लेन-देन होता है जबकि मुद्रा बाजार में सामान्यत:फोन व ई-मेल, इंटरनेट पर सौदे होते है। अर्थात् कोई औपचारिक स्थान नहीं होता है।
6. पूंजी बाजार में संव्यवहार केवल अधिकृत डीलर्स के द्वारा संपादित किए जाते है जबकि मुद्रा बाजार में बिना दलाल के सौदे संपादित किए जाते हैं।
7. पूंजी बाजार में प्रत्येक उपकरण कम मूल्य के होते है जैसे - प्रत्येक अंश पत्र का मूल्य 10 रूपये या 100 रूपये होता है। प्रत्येक

Downloaded From www.studymasterofficial.com

ऋण-पत्र का मूल्य 100 रूपये या 1,000 रूपये आदि होते हैं। जबकि मुद्रा बाजार में प्रत्येक उपकरण बड़े मूल्य का होता हैं जैसे-भारत में प्रत्येक ट्रेजरी बिल का न्यूनतम मूल्य एक लाख रूपये होता है।

पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में परस्पर संबंध (Relations between Capital Market and Money Market)

व्यावहारिक दृष्टि से पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार दोनों एक-दूसरे पर आधारित होते हैं। और उसी के अनुसार दोनों बाजारों में सबंधित प्रक्रियाएं निदेशित होती हैं। उदाहरणार्थ यदि मुद्रा बाजार में पूंजी की बढ़ती मांग का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। तो पूंजी बाजार में ब्याज दर अथवा प्राप्ति दर में वृद्धि होने से वह मुद्रा बाजार में भी कोषों की मांग में वृद्धि लाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुद्रा बाजार ओर पूंजी बाजार की गतिविधियां एक-दूसरे से अंतर्निहित होती है। पूंजी बाजार व मुद्रा बाजारो में परस्पर निर्भरता निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होती है।

i. कुछ संस्थाएं मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार दोनों जगह काम करती है।

ii. मुद्रा लेन-देन के कुछ सौदे दोनों ही बाजारों में हो पाते है

iii. दोनों तरह के बाजारों पर केंद्रीय बैंक का नियंत्रण रहता है

iv. दोनों बाजारों में ब्याज दरें प्राय: समान दिशा में परिवर्तित होती है यदि मुद्रा बाजार में अल्पकालिक साख की ब्याज दर बढ़ जाती है। तो प्राय: पूंजी बाजार में दीर्घकालिक निधियों की भी ब्याज दर बढ़ जाती है।

v. जब खजाना राजकोषीय प्रतिभूतियां वाले परिपक्वता बिलो को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। अथवा जब कोई बैंक परिपक्व ऋण की प्राप्ति को किसी फर्म को अल्पकालीन आधार पर देता है तो निधियां दोनों बाजारों के बीच इधर-उधर प्रवाहित होती है।

पूंजी बाजार के अवयव (Components of Capital Market)

- गिल्ट एज्ड बाजार (Gilt-Edged Market)
- प्रतिभूति बाजार (Securities Market)
- विकास वित्त संस्थान DFIs (Development Finance Institutions)
- वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intermediaries) FIs

1. श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार (गिल्ट एण्ड बाजार)

अर्थ : श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार सरकारी और अर्द्ध-सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार है। जिन्हें सरकार या केंद्रीय बैंक का समर्थन प्राप्त होता है। सरकारी प्रतिभूति से अभिप्राय सरकार पर बाजार में लेन-देन योग्य वित्तीय दावों से है। ये पूरी तरह सुरक्षित वित्तीय निधियां होती है जिनके मूलधन और ब्याज के पुनर्भुगतान के बारे मे कोई जोखिम नहीं होता इस कारण इससे इन प्रतिभूतियों को श्रेष्ठ प्रतिभूति स्वर्ण-रेखांकित प्रतिभूति का नाम दिया जाता है।

भारतीय सन्दर्भ के केन्द्र / राज्य सरकारों द्वारा निर्गमित रेखांकित/गारण्टी की गयी प्रतिभूतियों को स्वर्ण रेखांकित या श्रेष्ठ प्रतिभूति कहा जाता हैं। सक्षेंप में ऐसी प्रतिभूतियाँ जिनमें अंकित मूलधन और ब्याज के वसूल करने में कोई विलम्ब या परेशानी नहीं होती उसे श्रेष्ठ प्रतिभूति कहते है।

सरकारी प्रतिभूतियां जारी करने का अधिकार

सरकारी प्रतिभूतियों को निर्गमित करने का अधिकार निम्नलिखित को है 1. केंद्रीय सरकार 2. राज्य सरकारें 3. स्थानीय सरकारें जैसे -म्यूनिसिपल कमेटी 4. स्वायत्तता प्राप्त सार्वजनिक संस्थान जैसे-मेट्रोपोलिटन अधिकरण पोर्ट ट्रस्ट इम्प्रूवमेंट या डिवेलपमेंट ट्रस्ट राजकीय

Download from www.studymasterofficial.com DISCOVERY

विद्युत बोर्ड आदि 5. सार्वजनिक क्षेत्र के निगम

सरकारी प्रतिभूतियों के निर्गमन के उद्देश्य

सरकारी प्रतिभूतियों के निर्गमन करने के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं- 1. सरकारी खर्चे के वित्तीयन के लिए नकदी जुटाना 2. परिपक्व हुए ऋण के पुनर्भुगतान के लिए वित्तीय संसाधनों को जुटाना 3. पुराने ऋणों का पुनर्निर्गमन

श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार की विशेषताएं

1. इस बाजार में सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रतिभूतियों का लेन-देन होता है।
2. सरकारी प्रतिभूतियों से अभिप्राय सरकार पर बाजार में लेन-देन योग्य वित्तीय दावों से है।
3. ये पूरी तरह सुरक्षित वित्तीय निधियां होती है। इसीलिए ये स्वर्ण रेखांकित प्रतिभूति कहलाती है।
4. पूंजी पर्याप्तता मापदण्डों में इन प्रतिभूतियों को शून्य जोखिम भार दिए जाते हैं।
5. सरकारी प्रतिभूति बाजार में लाभांश प्रबंध पूंजी में वृद्धि आदि के बारे मे कोई अनिश्चितताएं न होने के कारण सट्टेबाजी नहीं होती।
6. सरकारी प्रतिभूतियो में अधिकांशतः संस्थाएं सौदे करती है। जिनको कानूनी रूप से अपने कोषों का एक भाग इन प्रतिभूतियो में निवेशित करना पड़ता है। इन संस्थाओं में वाणिज्य बैंक LIC, GIC भविष्य निधियां आदि उल्लेखनीय है।
7. अंशपत्रों की तुलना में सरकारी प्रतिभूतियों में सौदों का औसत मूल्य बहुत अधिक होता है। एक सौदा लाखों व करोड़ों रूपयों का हो सकता है।
8. अंशपत्र बाजार की भांति यह 'नीलामी' बाजार नहीं होता। संव्यवहारों का औसत मूल्य इतना अधिक होता है। कि प्रत्येक संव्यवहार के बारे में समझौता करना पड़ता हैं।
9. रिजर्व बैंक अपनी खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के बाजार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रिज़र्व बैंक मौद्रिक स्थिरता और सरकार के उधार कार्यक्रम मे सहयोग के उद्देश्य से इस बाजार में हिस्सा लेता है।

2. औद्योगिक प्रतिभूति बाजार:

(A) प्रथमिक बाजार (New Issue Market) (B) द्वितीयक बाजार (Old Issue Market)। इस बाजार से आशय नई और पुरानी कंपनियों के शेयरों और ऋण -पत्रों के बाजार से है। शेयरों तथा अन्य प्रतिभूतियों की खरीद।बिक्री का केंद्र शेयर बाजार या स्टॉक एक्सचेंज कहलाता है। यह बाजार कर नीतियों, राजनीतिक स्थितियों, कंपनियों के उत्पादन की खबरों आदि से प्रभावित होता है।

1. **प्राथमिक बाजार :** इस बाजार में नए अंशपत्र व ऋण-पत्र जारी करके नई पूंजी का संग्रह किया जाता है जबकि पश्चिमी देशों में प्रतिभूतियों के प्रवर्तन, निर्गमन, अभिगोपन के लिए विशिष्ट संस्थाओं का विकास नहीं हो सका है। भारत में अंशपत्रों के अभिगोपन का कार्य स्टॉक दलालों, बड़े अनुसूचित बैंकों, बीमा कंपनियों, निवेश ट्रस्टों तथा व्यक्तिगत वित्तकर्त्ताओं द्वारा किया जांता है। बाद में ICICI तथा LIC भी अभिगोपन का व्यवसाय करने लगे हैं।

   किसी नई अथवा पहले से कार्य करने वाली किसी कंपनी द्वारा पहले अवसर पर जारी अंशो (Share) तथा ऋण पत्रों (Debenture) का व्यापार करने वाले बाजार को प्राथमिक बाजार कहते हैं। इससे समता अथवा अधिमान/वरीयता अंश अथवा ऋण पत्रों का व्यापार होता है। ऐसे निवेश के लिए विशिष्ट संस्थाओं की आवश्यकता होती हैं, जिन्हे दो श्रेणियों में रखा जा सकता है-

   1. Underwriters (अधिगोपक)
   2. Stock Brokers (स्टॉक ब्रोकर्स)

   Underwriting एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी नए अंश अथवा ऋण पत्र की एक निश्चित मूल्य पर खरीद के लिए गारंटी दी जाती है। भारत में Underwriting की प्रक्रिया का आरंभ 1951 में किया गया था। उदाहरण :- ICICI, IDBI, UTI, LIC

2. **द्वितीयक बाजार :** द्वितीयक बाजार जिसमें विद्यमान कंपनियों के अंश-पत्रों व ऋण-पत्रों का क्रय-विक्रय किया जाता है। इसे स्कंध

DISCOVERY www.Downloadmasterofficial.com

बाजार या स्कंध विनिमय भी कहते हैं। पुराने निर्गमन बाजार या स्कंध (स्टॉक) विनिमय में पुराने अंश-पत्रों व ऋण-पत्रों का क्रय-विक्रय किया जाता है। इसी का देश के पूंजी बाजार की संज्ञा भी दी जाती है। स्कंध (स्टॉक) विनिमय देश के विशिष्ट शहरों में स्थित है। इस समय देश में बंबई स्कंध विनिमय सबसे महत्वपूर्ण है। इस बाजार को द्वितीयक या गौण भी कहते हैं।

- पिछले कुछ वर्षो में द्वितीयक बाजार में सुधार, सेबी को मजबूती, कार्यक्षमता में वृद्धि, स्टाक एक्सचेंज का डिम्यूच्लाइजेशन और ऋण बाजार के निर्माण हेतु व्यापक प्रयास किए गए है। उसमें से कुछ निम्नलिखित है-

1. **सरकारी प्रत्याभूतियों की खरीद (आर्डर ड्राइवेन स्क्रीन बेस्ड सिस्टम):-** सभी वर्गो के निवेशकों की ज्यादा से ज्यादा प्रतिभागिता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इस पद्धति को अपनाया गया है। (सरकारी प्रत्याभूतियों की खरीद हेतु) यह ठीक उसी प्रकार का होगा जैसा कि इक्विटी के मामले में होता है। इसका प्रारम्भ 2003, जनवरी से NSE, BSE और OTCEI में शुरू हुआ।

2. **रोलिंग सेटलमेंट (चल निपटान):-** चल निपटान वह संकल्पना है जिसमें व्यापार की बकाया राशियों का निपटान दिन के अन्त में किया जाता है। इसमें प्रतिभूतियों के विक्रय के मामले में किया जाने वाला भुगतान शामिल है। इसका उद्देश्य जोखिम को कम करना है। आर्थिक सुधारों के बाद इसमें लगने वाले समय को 14 दिन से कम कर के 7 दिन कर दिया गया है। इसे कम करने के लिए रोलिंग सेटलमेंट को क्रमिकरूप से कम किया गया। भारतीय स्टाक में इस पद्धति का प्रारम्भ इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ है क्योंकि इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जा रहा है। अप्रैल 2003 से T+2 सिस्टम लागू किया गया अर्थात व्यवहार के दिन के बाद दो दिनों के भीतर अंतिम सेटलमेंट का होना आवश्यक है।

3. **एक्सचेंज में शासन:-** प्रतिभूति बाजार में जोखिम की संभावना की तीव्रता को देखते हुए सरकार ने सेक्यूरिटी कांट्रेक्ट (रेग्यूलेशन) अधिनियम, 1956 को संशोधित करने का निर्णय लिया है। इससे नीतियों के निगमीकरण और स्टाक एक्सचेंज के डिम्यूच्लाइजेशन को प्रभावी बनाने में मदद मिलेगी। डिम्यूच्लाइजेशन से मालिकाना एवं प्रबंधन के अधिकार को 'व्यापार करने के अधिकार तक पहुँच' से अलग किया जाएगा जिससे इस संदर्भ में वोटिंग अधिकार भी शामिल होगा। इसी प्रकार हितों के टकरावों आदि को भी रोकने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। इसके साथ ही बाजार की माँग के अनुसार परिवर्तन, इनसाइडर ट्रेडिंग आदि संदर्भ में प्रयास किए जा रहे हैं जिससे निवेशकों को बेहतर माहौल मिले और प्रबंधन का तरीका पेशेवर हो जिससे पूँजी उगाहने की क्षमता बढ़े।

4. **डीमैट-ट्रेडिंग :-** इस अवधारणा से अर्थ है कि व्यापार कागज रहित डिपाजटरी क्रियाविधि के आधार पर हो। अर्थात इलेक्ट्रानिक विधि से शेयर प्रतिभूति का रखना डीमेटाइजेशन/डीमैट कहलाता है। इससे शेयर धारक को एक कोड नंबर (उसके इलेक्ट्रानिक ट्रेडिंग के आधार पर) दिया जाता है जिससे शेयर धारक को किसी बैंक/ वित्तीय संस्थान में डिमैट खाता खोलना होता है। डीमैट ट्रेडिंग ने भारतीय स्टॉक मार्केट के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे देश के विभिन्न भागों से आम आदमी इस विकास की प्रक्रिया में भागीदार बना है। अब वह इस माध्यम से पर्याप्त सुविधा के साथ अपने एकाउंट बैलेंस की जानकारी और प्रत्याभूतियों का स्थानांतरण कर रहा है। रोलिंग सेटलमेंट प्रक्रिया के लिए भी डीमैट ट्रेडिंग बहुत आवश्यक है।

5. **इक्विटी डेरिवेटिब्स का विकास:-** हालि के वर्षो की कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में से यह एक रहा है। इसे भारत का पारदर्शिता, आधुनिकीकरण और उचित रूप से नियंत्रित बाजार बनने की दिशा में होने वाला पहला कदम माना जा सकता है। इसका सबसे सरल रूप स्टॉक पर वायदा कारोबार है। केन्द्र सरकार ने 1 मार्च 2000 से प्रतिभूतियों के वायदा कारोबार पर प्रतिबंध समाप्त कर दिया है जो कि 1969 से लागू था। एकल स्टॉक वायदा बाजार में नवम्बर, 2001 से, वहीं इंडेक्स (सूचकांक) वायदा कारोबार में जून 2000 से छूट दी गई है। संक्षेप में डेरिवेटिव ट्रेडिंग व्यापार को वायदा और विकल्प के आधार पर चलाया जाता है। डेरिवेटिव ट्रेडिंग में जहाँ एक अनुबंध को, वहीं वायदा बाजार में कोई भी विकल्प प्रयोग किया जाता है। वायदा बाजार में ऐसा नहीं करने हेतु भी छूट है।

6. **कमोडिटी डेरिवेटिव का विकास:-** वर्ष 2003-04 में एक और महत्वपूर्ण कदम उठाया गया था, कमोडिटी वायदा बाजार की शुरूआत। सरकार ने 1 अप्रैल 2003 से एक अधिसूचना द्वारा इसकी इजाजत दी। इसके माध्यम से उन सभी पूर्व प्रावधानों को खारिज कर दिया गया जिससे कि कमोडिटी वायदा व्यापार को प्रतिबंधित किया गया था। फारवर्ड मार्केट कमीशन की सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने राष्ट्रीय मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज अहमदाबाद, मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज मुंबई और राष्ट्रीय स्तर पर कमोडिटी एक्सचेंज के रूप में मान्यता प्रदान की।

www.studymasterofficial.com

7. **ऋण बाजार का विकास:-** अधिकतर बाजारों में इलेक्ट्रानिक व्यापार में हुए प्रभावशाली सुधारों ने अन्य बाजारों में आधुनिकीकरण के रास्ते को खोला इस दिशा में किया गया सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था। भारतीय समाशोधन निगम द्वारा जारी नया CBLO । CBLO रेपो की तरह होता है जिससे उधारियों को प्रतिभूतियों के माध्यम से प्रवाहित किया जाता है।

8. **वास्तविक समय निपटान प्रणाली** (RTGS: Real time Gross Settlement) :-इस पद्धति को मार्च 2004 में प्रारंभ किया गया जब रिजर्व बैंक ने यह आश्वासन दिया कि कोषों का स्थानांतरण वास्तविक समय पर वन-टू-वन आधार (भेजने वाले और प्राप्तकर्ता) पर इलेक्ट्रानिक मोड में हो सकेगा। यह सेटलमेंट आदि पर होने वाले जोखिमों में कमी लाता है। विशेषकर अधिक मूल्य वाले बेंक से बैंक कारोबार पर। RTGS पद्धति के अंतर्गत अंतर बैंकीय कारोबार, ग्राहक आधारित अंतर बैंकीय कारोबार और निवल समाशोधन कारोबार का निपटान किया जाता है। यह पूरे भारत में एक समान पद्धति पर लागू होता है।

9. **जोखिम पूँजी :-**भारतीय पूँजी बाजार में जोखिम पूँजी उद्योग का भी आगमन हो गया है। यह उन उद्यमियों को पूँजी उपलब्ध कराता है जिनके पास शुरूआत हेतु विचार तो हैं पर पर्याप्त मात्रा में पूँजी नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जोखिम पूँजी उद्यम ने प्रथम पीढ़ी के उद्यमियों को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। अब भारतीय जोखिम उद्यम भी एक महत्वपूर्ण आकार तक विकसित हो चुका है। मार्च 31, 2004 तक सेबी ने 44 इस तरह की कंपनियों का पंजीकरण किया था।

   इस सब के अलावा पूँजी बाजार का एक और महत्वपूर्ण संघटक है म्यूचुअल फंड, जो कि इक्विटी और ऋण कोष दोनों में उपलब्ध है। म्यूचुअल फंड को नियमों के अनुसार अपने निष्पादन को सार्वजनिक करना होता है। साथ ही अपनी योजनाओं को भी।

स्टाक एक्सचेंज:- यह पूँजी बाजार का हृदय है। स्टाक एक्सचेंज एक प्रकार का बाजार है जहां प्रतिभूतियों, सरकारी बांडों, विदेशी सरकारों के ऋण, स्टॉक कंपनियों के शेयर, डिबेंचर की खरीद-बिक्री होती है। स्टाक एक्सचेंज प्रतिभूतियों की क्षमता इस अर्थ में बढ़ाता है कि वह उसकी खरीद-बिक्री के लिए अपेक्षाकृत एक सरल और साधारण तरीका प्रस्तुत करता है। अप्रत्यक्ष रूप से यह किसी उद्यम को पूँजी उगाने में सहायता देता है। यदि निवेशकों को यह लगे कि बाद में वह इन शेयरों को अपेक्षाकृत आसानी से बेच सकता है। यह एक ऐसा माध्यम है जिससे छोटे बचत धारकों को बचत को निवेश करने का मौका मिलता है। यह बाजार की समृद्धि और स्वस्थ अर्थव्यवस्था के संकेतक के रूप में कार्य करता है। यह शेयरों के मूल्य में वृद्धि से परिलक्षित होता है।

भारत का सबसे प्राचीन स्टॉक एक्सचेंज बम्बई स्टॉक एक्सचेंज है। कुछ ब्रोकरों के एक संघ ने 1875 में इसे स्थापित किया। 1956 में सरकार ने इसके लिए नियमों का संकलन किया कि किस प्रकार इसके क्रियाकलाप संचालित होंगे। सेक्यूरिटी कांट्रेक्ट (रेग्यूलेशन) अधिनियम, 1956 के माध्यम से वर्तमान में 24 स्टॉक एक्सचेंज है जिसमें दो प्रमुखतम बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज और राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज हैं। इन स्टॉक एक्सचेंजों के प्रबंधन की व्यवस्था अपर्याप्त और कमजोर है। इस संदर्भ में इसके सुधार, पारदर्शिता और कार्यक्षमता में वृद्धि हेतु सेबी ने पिछले कुछ वर्षों में बहुत से कदम उठाए हैं। ये सुधार दोनों बाजारों अर्थात प्राथमिक और द्वितीयक में किए गए। इन सुधारों में प्रमुखतम इलेक्ट्रानिक ट्रेडिंग, डीमैट, डेरिवेट्रिब्स ट्रेडिंग का प्रारम्भ, रोलिंग सेटलमेंट, इनीशियल पब्लिक ऑफरिंग, इंटरनेट ट्रेड आदि से जुड़े मुद्दों में सुधार भी शामिल रहे हैं। पूँजी बाजार में सुधार इस प्रकार से प्रक्रियारत हैं जिससे कि इसे आधुनिक स्वरूप दिया जा सके और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी पहचान बने तथा इसे आधारिक संरचना, निवेशक-मित्र, कुशलता, सुरक्षित और प्रतिस्पर्धा के स्तर पर विश्व में पहचान मिले।

विकास वित्त संस्थान DFIs :- ऐसे संस्थानों का मुख्य कार्य निजी क्षेत्र की इकाइयों के लिए निवेश उपलब्ध कराने में सहायता करना है। भारत में 1948 में सर्वप्रथम IFCI के रूप में पहले DFI की स्थापना की गई थी।

वित्तीय मध्यस्थ (FIs– Financial Intermediaries)

(a) **गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ** (NBFIs)- इनकी प्रकृति वाणिज्यिक और सहकारी बैंको से अलग होती है, तथा इनका कार्य जनता से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निवेश प्राप्त करना है।

(b) **मर्चेन्ट बैंक**- मुख्य रूप से नए अंशों की underwriting इनका कार्य है, तथा उद्यमियों और निवेशकों के बीच संबंध बनाना इनका

दायित्व है। LIC Mutual Fund, SBI Capitals Ltd.,

(c) **जोखिम पूंजी** (Venture Capital) - जोखिम पूंजी का अर्थ ऐसी पूंजी से है, जो नई प्रौद्योगिकी के आधार पर कार्य करने वाली कम्पनी को प्रदान की जाती है। दूसरे शब्दों में नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने वली इकाइयों को यदि समता अंशो से पर्याप्त पूंजी प्राप्त नहीं हो पाती तो बाह्य श्रोतों से उन्हे पूंजी की आवश्यकता होती है, ऐसी पूंजी को ही जोखिम पूंजी कहते है। जनवरी 2000 में K B .Chandrashekhar समिति के सिफारिशों के आधार पर SEBI द्वारा इस प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाया गया है। जोखिम पूंजी प्रदान करने वाली कम्पनियों में निम्न महत्वपूर्ण हैं-

CRISIL - Credit Rating and Information Services of India Ltd.

RCTC - Risk Capital and Technology Corporation

SHCIL - Stock Holiding Corporation of India Ltd.

TDICIL - Technology Development and Information Corporation of India Ltd.

भारत का पूँजी बाजार (Capital Market in India)

भारतीय पूँजी बाजार पिछले दशक के प्रारंभ से नए-नए परिवर्तनों का साक्षी रहा है। इसकी बाजारी अवसंरचना लगातार विकसित हो रही है। कारपोरेट गवर्नेंस बहुत सी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं से बेहतर है पर विकासशील और एशिया के बड़े पूँजी बाजारों की तुलना में अभी भी यह काफी पीछे प्रतीत होता है तथा अधिक सुधारों की आवश्यकता को दर्शाता है।

भारत सरकार का बांड बाजार, जो कि जी.डी.पी. का लगभग 40 प्रतिशत है निश्चित रूप से विकसित देशों से बराबरी के स्तर पर है। पर इसका कारपोरेट बांड बाजार अभी भी यू.एस.ए, द.कोरिया और मलेशिया की तुलना में छोटा है।

इसका इक्विटी बाजार तेजी से बढ़ रहा है। बाजार में बृहद् गति से 2003 से तेजी रही है जो कि इसके सुधरते हुए रूप का संकेत है। पर इनसाइडर होल्डिंग का पर्याप्त बड़ा आकार और संस्थागत निवेशकों की निम्न छोटी (मामूली) उपस्थिति चिंता का विषय है।

नए-नए उठाये जा रहे कदमों जैसे प्रतिभूति ऋण फंड प्रोडक्ट वैकल्पिक परिसंपत्तियों पर आधारित पर्याप्त नवाचार दर्शाते हैं पर अभी भी घरेलू निवेशकों की कमी को पूरा करने के प्रयास सफल नहीं हो पा रहे हैं। घरेलू निवेशकों की इस संदर्भ में अपेक्षित जानकारी का अभाव इसका प्रमुख कारण रहा है।

निवेश बढ़ोत्तरी और आर्थिक विकास के लिए एक तीव्र और अच्छी तरह से विकसित पूँजी बाजार की आवश्यकता होती है। इस बात पर विश्वास है कि लगातार हो रहे सुधार भारत के आकर्षक विकास की दर के चलन को आगे भी बनाये रखने में सफल होंगे। सुधारती आर्थिक दशा, बड़ी, कुशल श्रम शक्ति और विश्व अर्थव्यवस्था से बढ़ते जुड़ाव ने भारत की वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि करते हुए देश को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निवेशकों की नजर में ला दिया है। वैश्विक रेटिंग एजेंसी मूडीज और फिज ने भारत को निवेश स्तर की रेटिंग देते हुए यहाँ जोखिम में पर्याप्त कमी को दर्शाया है।

सकारात्मक कदमों ने भारतीय शेयर बाजार में 2003 में सुधार दर्शाया गया है जिससे विदेशी निवेशकों द्वारा भारी मात्रा में निवेश आकर्षित करने में सफलता प्राप्त हुई है। 2003-2006 तक निवल पोर्टफोलियो करीब 35 बिलियन डालर का रहा। इस प्रकार भारतीय स्टाक मार्केट ने पर्याप्त गति में विश्व की तुलना करने पर तेजी दर्शायी है। और विश्व अर्थव्यवस्था से बढ़ते एकीकरण के साथ अभी भी भारत वैश्विक पोर्टफोलियो में पर्याप्त विविधता की सुविधा दे रहा है।

बांड बाजार में सरकारी बांडों का बोलबाला है। लगभग घरेलू बोडों का 90 प्रतिशत सरकार द्वारा जारी किया जाता है (ट्रेंजरी, बिल, नोट्स, बांड के रूप में)। कारपोरेट बांड बाजार के आगे बढ़ने की गति अभी काफी धीमी है जो कि कंपनियों को पर्याप्त अक्षम सिद्ध करता है, संरचनात्मक सुधारों से समर्थित पूंजी बाजार का वास्तविक विकास 1990 के दशक से आरंभ हुआ। सही अर्थों में यह पूंजी बाजार के आधुनिकीकरण और रूपान्तर की अवधि रही है। बैंकिंग क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए जिसमें बाजार दर नियंत्रण का उन्मूलन, आरक्षित और तरलता आवश्यकता में कमी और प्राथमिक क्षेत्रक ऋण में सुधार जैसे प्रयास सम्मिलित रहे हैं। आर.बी.आई के लगातार

DISCOVERY
www.studymasterofficial.com

सुधारों ने जिसमें जरूरी नियंत्रण पद्धति और अन्य नियम शामिल हैं, ने देश को विश्व स्तर पर ला खड़ा किया है।

लगभग इसी समय भारतीय पूँजी बाजार में भी व्यापक परिवर्तन प्रारंभ हुए। 1992 में निवेशकों के हितों की सुरक्षा, पूँजी बाजार की व्यष्टि संरचना में सुधार के लिए सेबी की स्थापना हुई, वहीं सी.सी.आई. (कंट्रोलर आफ कैपिटल इश्यू) का इसी वर्ष उन्मूलन हुआ जिससे नए इक्विटी इश्यू के मूल्यों पर से प्रशासनिक नियंत्रण कम हुआ। 1994 में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना से बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ी जिससे कारोबार के आकार में वृद्धि हुई और वित्तीय प्रणाली में नए महत्वपूर्ण उपकरणों को उभरने का मौका मिला।

वृहद पूँजी बाजार (Macro Capital Market)

पिछले एक दशक से भारतीय पूँजी बाजार जो प्राथमिक रूप से ऋण और इक्विटी मार्केट है, ने निजी और सार्वजनिक उद्यमों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोष को गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। 2000 में एक्सचेंज ट्रेटेड डेरिवेटिव इंस्ट्रूमेंट जैसे वैकल्पिक और वायदा बाजारों के द्वारा निवेशकों की स्थिति में सुधार हुआ और जोखिम में कमी आई।

2005 के अंत तक भारत का ऋण और इक्विटी बाजार जी.डी.पी. के 130 प्रतिशत के बराबर था। यह एक आकर्षित करने वाला आँकड़ा है जबकि 1995 में यह सिर्फ 75 प्रतिशत था। यह इश्यूदर के बढ़ते हुए भरोसे का भी प्रतीक है जबकि अभी भी भारतीय पूँजी बाजार का आकार यू.एस., द.कोरिया और मलेशिया की तुलना में छोटा ही है।

ऋण बाजार (Debt Market)

भारतीय ऋण बाजार को दो भागों में बॉट सकते हैं जहाँ सरकारी बांड बाजार ज्यादा वृहद् और सक्रिय है और इश्यूकर्ता सरकार है, आर.बी.आई. की भूमिका सरकार के ऋण प्रबंधक और सरकार द्वारा जारी दस्तावेजों के नियंत्रक की है।

दूसरा हिस्सा कारपोरेट बांड बाजार का है। इसमें लोक उपक्रम, वित्तीय संस्थान और बैंक शामिल हैं। यहां नियंत्रण का कार्य सेबी के हिस्से है।

प्रत्येक इश्यूकर्ता के पास बाजार में ढेर सारे उपकरण होते हैं। संस्थागत निवेशकों में, विशेषकर बैंक निश्चित आय प्रतिभूतियों में अभी भी प्राथमिक भागीदार बने रहे हैं। भारत का बांड बाजार ज्यादातर थोक ही रहा है।

वेज एव मीन कमेटी (W ays & M eans)

इसकी नियुक्ति (1997) इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुई क्योंकि इसने सरकारी घाटों के स्वचालित मौद्रिकरण को समाप्त कर दिया। इसी वर्ष विदेशी संस्थाओं को सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने की अनुमति प्रदान की गई। इससे विदेशी निवेशकों की संख्या का विस्तार हुआ। जीरो कूपन बांड, और इंडेक्स बांड संभावनाएं जगाने का उपकरण सिद्ध हो सकते हैं पर बाजार के भागीदारों से इन्हें प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ।

सरकारी बांड (Government Bonds)

सरकारी बाजार, ऋण बाजार का सबसे पुराना और बड़ा हिस्सा रहा है। यह पिछले दशकों में बढ़ता ही रहा है।

वृहद स्तर पर सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के फलस्वरूप 1992 के आस पास सरकारी बांड के बाजार की रूपरेखा तैयार हुई। सुधारों के कारण इसे लगातार फायदा हुआ जैसे सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी आधारित बिक्री, प्राथमिक डीलरों की नियुक्ति, डिलीवरी वर्सेस पेमेंट की शुरूआत ने व्यापार और निपटान में जोखिम के खतरों को कम किया।

लगातार बढ़ते राजस्व घाटे के कारण सरकारी बांड बाजार लगातार बढ़ता जा रहा है यह सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़ते घाटे का कारण रहा है। हांलाकि कुल सार्वजनिक घाटे में 2003 से कमी आ रही है पर सरकारी घाटा लगातार बढ़ता जा रहा है, और पिछले पांच

Downloaded From www.studymasterofficial.com

वर्षों में कुल जी.डी.पी. के 85 प्रतिशत के स्तर तक पहुँच गया है। इससे रेटेड देशों के समूह में भारत का सार्वजनिक घाटा लगातार बढ़ रहा है।

बैंकों के विनियमन ने समस्याएं बढ़ाई हैं। बैंकों को अपनी माँग का 25 प्रतिशत निवेश सरकारी बांड प्रतिभूतियों में निवेश करना पड़ता है। यद्यपि सांविधिक तरलता अनुपात (एस.एल.आर.) अब भी 25% है। पर इन के जोखिम रहित स्वरूप के कारण बैंक इन पर 25 प्रतिशत से ज्यादा भी निवेश करते हैं। इस प्रकार सरकारी बांडों और प्रतिभूतियों की वजह से बैंकों की आय प्रभावित होती है। इससे बैंकों की पूँजी उपलब्धता प्रभावित होती है क्योंकि इस प्रकार ब्याज दर में तेजी से बढ़ोत्तरी होती है। इस प्रकार बैंकों में लगातार होते विकास के बावजूद भारत में साख जी.डी.पी. अनुपात अन्य एशियाई देशों की तुलना में कम बना हुआ है।

इसी प्रकार के प्रतिबंधात्मक नियम, बीमा और पेंशन कोष क्षेत्रक पर भी लागू हैं। इस प्रकार इनकी पूँजी ऐसे निवेश में प्रवाहित नहीं हो पती। बीमा कंपनियाँ जो कि आई.आर.डी.ए. (इरड़ा) द्वारा नियंत्रित होती है, को अपने निवेश का कम से कम 25 प्रतिशत सरकारी बांड एवं प्रतिभूतियों में निवेश करना पड़ता है। पेंशन फंड को इससे थोड़ी ज्यादा आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है। बहरहाल, दोनों स्थितियों में सरकारी बांडों में निवेश सांविधिक स्तर में ऊपर भी हो सकती है।

कारपोरेट बांड बाजार (Corporate Bond Market)

सरकारी बांड बाजार की तुलना में ये काफी छोटे हैं। ये सिर्फ 16.8 बिलियन डालर और जी.डी.ए. का मात्र 2 प्रतिशत थे। एक अच्छी तरह से विकसित कारपोरेट बांड बाजार कई तरह से लाभकारी हो सकता है। ये कंपनियों को ज्यादा लचीलापन प्रदान करेगा, अपनी पूँजी संरचना को सुधारों के संदर्भ के साथ ही निवेशकों को भी अपने निवेश हेतु ज्यादा विकल्प प्राप्त होंगे।

भारतीय कारपोरेट बांड बाजार में राज्य स्वामित्व वाले ज्यादा तेजी से बढ़ते हैं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम सभी कंपनियां पूँजी की उगाही या तो निजी प्लेसमेंट या पब्लिक इश्यू के द्वारा कर सकती हैं। निजी प्लेसमेंट ऋण में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है पिछले कुछ दशकों में लगभग 4 गुना की बढ़ोत्तरी 3 विलियन डालर (1995) से 12 विलियन डालर (2004-05)। निजी प्लेसमेंट को वरीयता देने के पीछे इसका कम नियंत्रक स्वरूप है। पब्लिक इश्यू की तुलना में इसके साथ ही पब्लिक इश्यू के साथ ज्यादा दाम का होना भी निजी कंपनियों को इसके लिए रोकता है। 2009-10 में लगभग 93 प्रतिशत कंपनियों ने इसे प्राथमिकता दी। तीन से पांच वर्ष की परिपक्वता अवधि को दी जाने वाली वरीयता इस बात की ओर इशारा करती है कि कंपनी और निवेशकों की बड़े अवधि वाले कोष के प्रति कम दिलचस्पी है। ट्रेडिंग क्लीयरिंग और सेटलमेंट प्रक्रिया की सुविधा कारपोरेट बांड बाजार में सरकारी बांड बाजार की तुलना में कम विकसित है।

सरकारी बांड बाजार का बड़ा आकार द्वितीयक बाजार में बड़ी व्यापारिक गतिविधियों का कारक रहा है जो कि कुल टर्नओवर का लगभग 70 प्रतिशत है। इसके ठीक विपरीत कारपोरेट बाजार में टर्नओवर कुल कारोबार का केवल 3.6% है। यह निजी प्लेसमेंट की सीमित मात्रा के कारण है। इसके साथ बड़े घरेलू संस्थागत निवेशकों जैसे बीमा और पेंशन कोष कंपनियों को अभी भी अपने निवेश का हिस्सा कारपोरेट बांड बाजार में लगाने का अधिकार नहीं है। ये केवल बाजार के विकास में ही बाधक नहीं बल्कि निवेशकों की अपने रिटर्न (निश्चित निवेश द्वारा) पर फायदा प्राप्त करने की क्षमता को भी सीमित करता है। इस बाजार की संभावनाओं के बारे में कोई संदेह नहीं है क्योंकि इसने वैश्विक पूंजी बाजार से भारी मात्रा में कारपोरेट ऋण की उगाही की है। यह मात्रा अभी और बढ़ने की सम्भावना है। उनके वित्तीयन का लगभग 50 प्रतिशत पुनर्निवेशित पूँजी से प्राप्त होता है जबकि शेष बाहरी कारकों जैसे बैंक और वित्तीय संस्थाओं के सहयोग से उगाहा जाता है।

निवेशकों के लिए ऊँचा डिविडेंट पेमेंट और कारपोरेट पूँजी को उच्चतम स्तर पर ले जाने के प्रयासों से पूँजी बाजार के वित्तीयन में सुधार की संभावनाएं निकट भविष्य में बनी हुई है। ठीक इसी समय पेंशन फंड पद्धति एक निश्चित योगदान की तरफ बढ़ रही है जो कि कारपोरेट बांड की मांग को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा।

भारतीय पूँजी बाजार में हाल के वर्षों में बाहरी उधारियों को बढ़ाने का एक बिल्कुल ही नया और आक्रामक तरीका देखने को मिला हैं जिसे कुछ सूचीबद्ध आवश्यकताओं, फंडिंग के क्रय मूल्य और द्वितीयक बाजार में बेहतर हो रही तरलता से बल मिला है। यह चलन अंतर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार में संप्रभुता की अनुपस्थिति के विपरीत है जो कि सरकारी रूढ़िवादी अवधारणा को व्यक्त करता है। यह बाहरी

ऋण प्रबंधन, 1991-92 के चालू खाता संकट के संदर्भ में है।

2005 के अंत में कुल बांड बकाया की मात्रा जो कि कारपोरेट द्वारा बाहर से उगाही गई थी वह लगभग $6.5 बिलियन डालर थी। यह स्थानीय या क्षेत्रीय बाजारों में कारपोरेट द्वारा जारी प्रपत्रों को लगभग 60 प्रतिशत मूल्य के बराबर था। अगर इसे हम घरेलू पूँजी बाजार के संदर्भ में देखें तो भारतीय कारपोरेट के ऋण बाजार का आकार जी.डी.पी. के 1.5 प्रतिशत की जगह 2.5 प्रतिशत होगा। भारतीय कंपनियों की उपस्थिति लगातार अंतर्राष्ट्रीय बांड बाजार में बनी रही है। यह प्राकृतिक बढ़त अपेक्षाकृत नीची अंतर्राष्ट्रीय ब्याज दर के साथ आई है। इसी के साथ विदेशी निवेशकों का भारतीय कंपनियों का उच्च स्तर पर मूल्यांकन भी भारतीय कंपनियों की बढ़ती वैश्विक प्रतिस्पर्धक क्षमता का संकेत है।

डिपाजिटरी रिसीट (Depositry Receipts)

सभी डिपाजिटरी रिसीट,ए.डी.आर या जी.डी. आर आवश्यक रूप से समता विलेख (Equity instrument) हैं जो विदेशों में भारतीय कम्पनियों द्वारा प्रत्यक्ष निर्गमित नहीं किये जाते बल्कि भारतीय कम्पनियों द्वारा अधिकृत ओवरसीज डिपाजिटरी बैंकों (ओ.डी.वी.) द्वारा भारतीय कम्पनियों के समता अंशों की आड़ में विदेशी निवेशकों को निर्गत किये जाते हैं। भारतीय कम्पनियों के ये समता अंश जिनकी आड़ में डिपाजिटरी रिसीट निर्गत की जाती है, वे ओ.डी.बी. द्वारा अधिकृत किसी भारत स्थित बैंक या डिपाजिटरी में जमा रखे रहते हैं। कम्पनी के रिकार्ड में उनके समता अंश के धारक के रूप में ओ.डी.बी. का नाम रहता है। सभी डिपाजिटरी रिसीट पर क्रय विलेख होती हैं अर्थात् इनका हस्तानान्तरण हो सकता है। इनकी खरीद तथा बिक्री उसे स्टॉक एक्सचेंज में होगी जिसमें इनकी लिस्टिंग होगी। ए.डी.आर. तथा जी.डी.आर. के बीच कोई टेक्निकल कानूनी अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों की लिस्टिंग न्यूयार्क स्टाक एक्सचेंज या NASDAQ में हो सकती है। ए.डी.आर. यू.एस.ए. में सार्वजनिक निर्गमनों तथा ट्रेडिंग के लिए निर्गत किये जाते हैं।

जी.डी.आर. की यूरो मार्केट तथा यू.एस.ए. में तथा आई.डी.आर. को यूरोप में निर्गमन तथा ट्रेडिंग को सुविधा जनक बनाने के लिए किया जाता है। ए.डी.आर. में व्यक्ति तथा संस्थागत निवेशक दोनों ही निवेश कर सकते हैं जबकि जी.डी.आर. में केवल संस्थागत निवेशक ही निवेश कर सकते हैं। ए.डी.आर. को अंशों में तथा अंशो को पुनः ए.डी.आर. में परिवर्तित किया जाय तो उसे पुनः जी.डी.आर. में परिवर्तित किया जा सकता है। जी.डी.आर. की तुलना में ए.डी.आर. में तरलता अधिक है।

जी.डी.आर. तथा ए.डी.आर. को अपने में मताधिकार नहीं प्राप्त होता पर उसके साथ जुड़े समता अंशों को मताधिकार प्राप्त रहता है। और चूँकि इक्विटी अंश डिपाजिटरी के पास होते हैं, विनियोग कर्ता के पास उनकी रिसीट्स रहती है, इसलिए मताधिकार डिपाजिटरी के पास होता है। ए.डी.आर. तथा जी.डी.आर. को मताधिकार मिलेगा या नहीं यह डिपाजिटरी तथा ए.डी.आर./ जी.डी.आर. निर्गत करने वाली कम्पनी के बीच समझौते पर निर्भर करेगा। ए.डी.आर./जी.डी.आर. के शुरू के वर्षों में यह अनिवार्यता थी। डिपाजिटरी प्रबन्धक के अनुसार मत दे पर अब ए.डी.आर./जी.डी.आर. के धारक डिपाजिटरी को उनके अनुसार वोट देने के लिए कह सकते हैं।

उल्लेखनीय है ए.डी.आर./जी.डी.आर. को प्रत्यक्ष-निवेश के एक भाग के रूप में लिया जाता है, इसलिए यह आवश्यक है कि इनका निगर्मन वर्तमान एफ.डी.आई. नीति के अन्तर्गत हो तथा उन्हीं क्षेत्रों में हो जो वर्तमान एफ.डी.आर. नीति अनुमति देती हो।

रिलायंस पहली भारतीय कम्पनी थी जिसने मई 1992 में पहली बार जी.डी.आर. के द्वारा यूरो इशू मार्केट से पूँजी उगाही की।

इफॉसिस टेक्नालॉजी पहली कम्पनी थी जिसने मार्च 1999 में ए.डी.आर. के द्वारा अमेरिकन बाजार में पूंजी की उगाही की जिसके बाद आई.सी.आई.सी.आई. तथा सत्यम् इन्फॉसिस ने ए.डी.आर. निर्गमित किया।

पूँजी बाजार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य (Importnat facts regarding Capital Market)

प्रतिभूतियों का सूचीकरण या सिक्योरिटीज की लिस्टिंग

स्टाक एक्सचेंज में ट्रेडिंग के लिए यह आवश्यक है कि शेयर को एक स्टाक एक्सचेंज में रिकार्ड कराया जाय। शेयर की रिकार्डिंग ही सूचीकरण या लिस्टिंग कहलाती है। कोई भी कम्पनी एक से अधिक स्टाक एक्सचेंज में लिस्टिंग करा सकती है, पर यह अनिवार्य

www.studentmasterofficial.com Downloaded From

है कि कम्पनी अपनी रजिस्टर्ड आफिस से सबसे करीबी क्षेत्रीय स्टाक एक्सचेंज में लिस्टिंग कराये। एक स्टाक एक्सचेंज में लिस्टिंग के बाद कम्पनी को किसी भी स्टाक एक्सचेंज में लिस्टिंग में ट्रेडिंग की अनुमति मिल जाती है।

म्युचुअल फण्ड

अधिकांश निवेशकों में पूँजी बाजार की जटिलताओं तथा उसे समझने की क्षमता नहीं होती है। बहुतों के पास समय, संसाधन तथा विशेषज्ञता की कमी होती है जिससे वे समय-समय पर स्टाक मार्केट की गतिविधियों का मूल्यांकन करके शेयर में अपने धन को लगा सकें। इतना ही नहीं शेयर के मूल्यों में होने वाले परिवर्तन तथा उसके कारण पूंजी हानि की सम्भावना के कारण उत्पन्न जोखिम के डर से भी निवेशक शेयर में निवेश नहीं करते हैं। म्युचूअल फण्ड एक निवेश वित्तीय मध्यस्थ है जो छोटे निवेशकों की बचत का गतिशीलन करता है, इन प्राप्त बचतों को अनुभव तथा कुशलता के साथ सन्तुलित तथा विविधीकृत पोर्टफोलियों में विनियोजित करता है तथा विनियोग पर उच्च प्रतिफल प्राप्त कराता है। इस प्रकार छोटे निवेशक बिना जोखिम उठाये हुए स्टाक में निवेश से मिलने वाले लाभ का लाभ उठा पाते हैं। **यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया जिसे 1964 में स्थापित किया गया, भारत का प्रथम म्युचुअल फंड था।** 1984 में पूंजी बाजार के विस्तार के साथ सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्रीय बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को म्युचुअल फण्ड खोलने की अनुमति दी पर 1992 में म्युचुअल फण्ड को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया जिस पर अब तक यूटीआई का एकाधिकार था।

म्युचुअल फण्ड से प्राप्त किसी भी आय पर आय प्राप्त कर्ता को कोई आयकर नहीं देना पड़ता पर यदि कोई निवेशक म्युचुअल फण्ड से निर्गत किसी प्रतिभूति को 1 वर्ष के भीतर बेचता है तो इस पर 15 प्रतिशत की दर से पूंजीलाभ कर देना पड़ता है। म्युचुअल फण्ड को उसके द्वारा वितरित लाभांश पर लाभांश वितरण कर देना पड़ता है।

प्रतिभूतियों या शेयर का डीमैटाइजेशन

किसी डिपाजिटरी के साथ इलेक्ट्रानिक विधि से शेयर या प्रतिभूति को रखना डीमैटाइजेशन कहलाता है। इसके अन्तर्गत शेयर का धारक शेयर को भौतिक रूप में अपने पास नहीं रखता बल्कि किसी डिपाजिटरी को सौंप देता है जो उसे अपने पास इलेक्ट्रानिक माध्यम से रखती है। इस प्रकार के शेयर को हम डीमैट शेयर कहते हैं। इसके परिणाम स्वरूप, शेयरों की चोरी, कपटपूर्ण व्यवहार या जालसाजी के द्वारा स्थानान्तरण, हस्तानान्तरण में बिलम्ब, सर्टीफिकेट के सम्बन्ध में रिकार्ड रखने की कागजी कार्यवाही से बचत हो जाती है। इस प्रकार रखी हुयी प्रतिभूतियों में व्यवहार के लिए यह आवश्यक है कि शेयर धारक बैंक में डीमैट एकाउन्ट रखे। डीमैटाइजेशन की क्रिया को तेज करने के लिए सेबी ने कुछ चुने हुए शेयरों में व्यापार के लिए डीमैट करना अनिवार्य कर दिया है। और सभी इनीशियल पब्लिक इशू (IPO) डीमैटाइज्ड रूप में ही होगा। नेशनल डिपाजिटरी सर्विस लि. (NDSL) डीमैटाइज्ड फार्म में व्यवहार की सुविधा प्रदान करती है।

मार्जिन ट्रेडिंग

मार्जिन ट्रेडिंग भारत में एक नयी धारणा है। सितम्बर 18, 2001 से रिजर्व बैंक ने शेयर में मार्जिन ट्रेडिंग की वित्तीय व्यवस्था करने की अनुमति दे दी है। मार्जिन ट्रेडिंग के अन्तर्गत कोई भी निवेशक अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक विनियोग कर पाता है। इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति शेयर के क्रय मूल्य का केवल 40 प्रतिशत मार्जिन के रूप में लगाता है, शेष रकम की वित्तीय व्यवस्था, बैंक अथवा स्टाक ब्रोकर के द्वारा करता है। शेयर का स्वामित्व तो विनियोजक के पास होता है पर बैंक द्वारा दिये गये ऋण के पीछे शेयर प्रत्याभूति के रूप में बने रहते हैं। मार्जिन ट्रेडिंग का प्रमुख उद्देश्य बाजार में तरलता की वृद्धि करना है।

क्रेडिट रेटिंग

क्रेडिट रेटिंग ऋणी या उधार लेने वाले की साख क्षमता या उधार लौटाने की क्षमता का निर्धारण है। क्रेडिट रेटिंग का मुख्य उद्देश्य उधार देने वाले को उधार लेने वाले की प्रत्याशित भुगतान क्षमता का मूल्यांकन प्रस्तुत करना है जिससे वह उधार देने के पहले यह जान सके कि जिसको वह उधार दे रहा है, उससे उसके मूलधन तथा ब्याज की अदायगी की सम्भावना की स्थिति क्या है। क्रेडिट रेटिंग वित्तीय बाजार के विकसित होने में सहायक होता है। क्रेडिट रेटिंग की धारणा की शुरूआत 1909 में यू.एस.ए. में हुयी। जबकि मूडी इनवेस्टर सर्विस के संस्थापक जान मूडी ने यू.एस. रेल रोड बाण्ड की क्रेडिट रेटिंग की। भारत में प्रमुख क्रेडिट रेटिंग एजेन्सीज निम्नांकित हैं–

CRISIL- क्रेडिट रेटिंग इनफार्मेशन सर्विसेज आफ इण्डिया लि.।

ICRA- इनवेस्टमेंट इनफार्मेशन एण्ड क्रेडिट रेटिंग एजेन्सी आफ इण्डिया लि.

CARE- क्रेडिट एनालिसिस एण्ड रिसर्च लि.

FRIPL- फिच रेटिंग इण्डिया प्राइवेट लि. जिसे डफ एण्ड फेल्पस क्रेडिट रेटिंग कम्पनी यू.एस.ए. तथा डी.सी.आर. को मिलाकर स्थापित किया गया।

उल्लेखनीय है कि AAA रेटिंग प्रदर्शित करती है कि मूलधन तथा ब्याज दायित्व के समय पर भुगतान की दृष्टि से कम्पनी बहुत सुदृढ़ तथा कोई प्रतिकूल परिवर्तन इसे प्रभावित नहीं करेगा। AA इससे थोड़ा खराब है। BBB यह व्यक्त करता है मूलधन तथा ब्याज दायित्व के समय पर भुगतान की दृष्टि से सामान्य सुरक्षा है। C रेटिंग पर्याप्त जोखिम प्रदर्शित करता है।

पूंजीकरण निगर्मन

यदि किसी कम्पनी द्वारा वर्षो से एकत्रित संचित निधि जो अवितरित लाभ के संचय से बनती है, बहुत अधिक हो जाय या उसने अपनी स्थिर सम्पत्ति का पुनर्मूल्यांकन किया हो या पूंजी संचित निधि अधिक हो तो अपने वर्तमान अंश धारियों को बिना किसी अतिरिक्त भुगतान के अतिरिक्त अंश निर्गत करती है तो इसे पूंजीकरण निगर्मन या पूंजी के आधार पर निगर्मन कहते हैं।

कमोडिटी फ्यूचर्स बाजार

भारत में शेयर बाजार की अवधारणा काफी पुरानी है, शेयरों की खरीद-फरोख्त के लिए भारत में दो प्रमुख शेयर बाजार 'बम्बई स्टॉक एक्सचेंज' तथा 'नेशनल स्टॉक एक्सचेंज' है, शेयर बाजारों की तरह ही गाँवों व कस्बों की मंडिया तथा हाट बाजार भी अब धीरे-धीरे हाईटेक हो रहे हैं तथा खाद्य तेलों एवं प्रमुख अनाजों का भाव ऑनलाइन कोट कर रहे हैं। इसे वायदा कारोबार या जिस बाजार के नाम से जाना जाता है। जिस बाजार में गेहूँ, चावल, दलहन, तिलहन, तेल इत्यादि का व्यापार होता है जिस तरह शेयरों के कारोबार के लिए स्टॉक एक्सचेंज हैं उसी तरह कमोडिटी बाजार में कारोबार के लिए कमोडिटी एक्सचेंज की स्थापना की गई है।

कमोडिटी एक्सचेंज

कमोडिटी एक्सचेंज में कमोडिटीज जैसे-कच्चे तेल, खाद्य पदार्थो तथा सोना-चाँदी जैसी वस्तुओं की कीमत का व्यापार होता है। किसी वस्तु की आगामी भविष्य की कीमतों का अनुमान लगाकर उसकी खरीद-फरोख्त करना ही 'कीमत का व्यापार' कहलाता है। मसलन आज से 6 महीने बाद गेहूँ, चावल, खाद्य तेल, तिलहन, दलहन एवं सोना चाँदी की कीमत क्या होगी? इसके लिए किसान, विक्रेता, गल्ले का व्यापारी और निवेशक सभी अपना भाव कोट करते रहते हैं और इसी आधार पर 6 महीने पहले उसके भाव का अनुमान लगातार खरीद फरोख्त की जाती है जिसे वायदा कारोबार भी कहते हैं।

भारत के प्रमुख कमोडिटी एक्सचेंज

भारत में कुल चार कमोडिटी एक्सचेंज हैं। भारत के दो प्रमुख एक्सचेंज 'मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज' तथा 'नेशनल कमोडिटी' एण्ड 'डेराइवेटिव्स एक्सचेंज मुंबई' में है जबकि तीसरा 'नेशनल मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज' अहमदाबाद में है 'इण्डिया बुल्स' व एम.एम. टी.सी. द्वारा प्रवर्तित 'इण्डिया कमोडिटी एक्सचेंज' भारत का चौथा कमोडिटी एक्सचेंज गुड़गाँव में है।

कमोडिटी एक्सचेंज से लाभ

कमोडिटी एक्सचेंज भविष्य के भाव निर्धारित कर किसानों को बिचौलियों की मनमानी से बचाता है तथा उन्हें फसल उगाने का निर्णय लेने में मदद करता है। अगर किसान को पता चल जाए कि 6 माह बाद गेहूँ की कीमत 1000 रू. प्रति क्विंटल होगी, तो वह उसी हिसाब से गेहूँ की फसल पर खर्च करेगा, व्यापारी या गोदाम मालिक भी भविष्य की कीमत की ऑनलाइन जानकारी हासिल कर साल की बुकिंग करवाते हैं।

यही नहीं हेजिंग और आरबिट्रेज के जरिए निवेशक लाभ भी कमा सकता है। मसलन किसी निवेशक ने कमोडिटी फ्यूचर मार्केट में आठ

Downloaded From www.sarkariexamofficial.com

हजार रूपये प्रति तोले के हिसाब से दस तोला सोना बुक करवाया। अगले सप्ताह सोने की कीमत में उछाल आया उसका भाव नौ हजार रूपये प्रति तोला हो गया। अगर निवेशक इस भाव पर सोने को बेचता है तो उसे दस हजार का लाभ होगा। गौरतलब है कि निवेशक ने सोना खरीदा नहीं था बल्कि केवल बुक करवाया था।

कमोडिटी एक्सचेंज में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार की काफी सम्भावनाएँ है। देश में जैसे-जैसे एक्सचेंज के जरिए वायदा कारोबार का विस्तार होगा, अलग-अलग क्षेत्रों में कम्प्यूटर आपरेटर, पेशेवर प्रबन्धकों, विश्लेषकों, बिजनेस डेवलपमेंट मैनेजर, लैब विशेषज्ञों इत्यादि की काफी आवश्यकता होगी। अभी फ्यूचर ट्रेडिंग में बैंकों, म्युचुअल फंडों तथा अन्य कई संस्थानों को सीधे हिस्सेदारी की अनुमति नहीं है। लेकिन सरकार अगर इनको कारोबार में हिस्सा लेने की अनुमति देगी तो अन्य कई प्रकार के रोजगारों का सृजन हो सकता है। जाहिर है कि वायदा कारोबार का भविष्य भारत में उज्जवल है मगर इससे जुड़ी कई सैद्धान्तिक व तकनीकी विसंगतियाँ भी हैं जिसके कारण यह घोटालेबाजों की पनाहगाह भी बन सकती है।

विदेशी मुद्रा का वायदा कारोबार (Future Trading of Foreign Currency)

देश में अब विदेशी मुद्रा का भी वायदा कारोबार शुरू हो गया। इसके लिए अभी तक चार वायदा बाजारों को स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है। यह कारोबार सर्वप्रथम राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में शुरू किया गया है। इसका शुभारम्भ तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम ने 29 अगस्त, 2008 को मुम्बई में किया। इसके बाद बम्बई स्टॉक एक्सचेंज के करेंसी डेरिवेटिव सेगमेंट में 1 अक्टूबर 2008 से तथा मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज के स्टॉक एक्सचेंज में 7 अक्टूबर, 2008 से विदेशी मुद्रा का फ्यूचर ट्रेडिंग प्रारम्भ हो गई है। चौथे नए वायदा बाजार Currency Future Exchange के लिए अनुमति सेबी ने फरवरी 2009 में प्रदान की है।

वायदा कारोबार के तहत् भावी तिथि के लिए विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय का सौदा तयशुदा मूल्य पर स्टॉक एक्सचेंज में किया जा सकता है। इससे आयातकों, निर्यातकों एवं विदेश यात्रा पर जाने के इच्छुक लोगों को विनिमय दर में होने वाले उतार चढ़ाव के जोखिम से सुरक्षा मिल सकेगी। यह लोग अब विदेशी मुद्रा का सौदा पहले से ही करके विनिमय दर में होने वाले उतार चढ़ाव के जोखिम से मुक्त रह सकेंगे। विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करने वाले बैंक एवं अन्य डीलर इस व्यवस्था का विशेष रूप से लाभ उठा सकेंगे।

रिजर्व बैंक ने डॉलर-रूपया के बीच वायदा कारोबार की ही अनुमति सर्वप्रथम प्रदान की थी तथा यह सौदे 1000-1000 डॉलर के लिए किए जा सकते हैं। डॉलर के बाद अब यूरो, पाउंड व येन में भी वायदा कारोबार की अनुमति सेबी ने जनवरी 2010 में प्रदान कर दी है। इन विदेशी मुद्राओं में वायदा कारोबार शुरू करने की तिथि अब सम्बन्धित स्टॉक एक्सचेंज को तय करनी है। वायदा कारोबार शुरू होने से इन मुद्राओं की विनिमय दर में होने वाले उतार चढ़ाव से अपने जोखिम कम करने में मदद आयातकों व निर्यातकों को मिलेगी।

ब्याज दरों का वायदा कारोबार

अगस्त 2008 में विदेशी मुद्रा का वायदा कारोबार शुरू करने के पश्चात् भारत में अब ब्याज दरों का वायदा कारोबार भी शुरू हो गया है। केन्द्रीय वित्त सचिव अशोक चावला ने इसका शुभारम्भ राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में 31 अगस्त, 2009 को किया। बैंक, प्राइमरी डीलर, म्यूचुअल फण्ड, बीमा कम्पनियाँ, कॉर्पोरेट हाउस, विदेशी संस्थागत निवेशक व अन्य वित्तीय संस्थान ब्याज दर का वायदा कारोबार कर सकेंगे। इससे ब्याज दरों में होने वाले उतार चढ़ाव से सुरक्षा इन्हें प्राप्त हो सकेगी। ब्याज दर के वायदा कारोबार के शुभारम्भ के अवसर पर सेबी के अध्यक्ष सी.बी. भावे ने कहा कि आने वाले समय में और भी ऐसे नए उत्पाद जारी किए जाते रहेंगे।

ज्ञातव्य है कि विश्व भर में ब्याज दर का वायदा कारोबार शेयर कारोबार का कई गुना है, किन्तु भारत में इसकी शुरूआत ही अब हुई है।

निक्षेप-निधि (डिपॉजिटरी) प्रणाली की अवधारणा (Concept of Dipository System)

निक्षेप-निधि प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत स्वामित्व सम्बन्धी परिवर्तन इलेक्ट्रानिक बही प्रविष्टि अन्तरण के द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली में प्रतिभूतियों का भौतिक आदान-प्रदान नहीं किया जाता है। निक्षेप-निधि के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

1. प्रतिभूतियों को सुरक्षित रूप से रखने के लिए उनके निक्षेप स्वीकार करना।
2. स्वामित्व के हस्तान्तरण के साक्ष्य के रूप में प्रतिभूतियों की कम्प्यूटराइज्ड बही प्रविष्टि करना।

3. बन्धक रखी गई प्रतिभूतियों के विवरण को कम्प्यूटर पर रखना। विश्व के अलग-अलग देशों में प्राय: निम्नलिखित दो प्रकार की निक्षेप निधियाँ पाई जाती है-

1. **प्रतिभूतियों के भौतिक आदान प्रदान विहीन निक्षेप निधि प्रणाली :-** इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिभूतियों के प्रमाण पत्र निक्षेप निधि में सुरक्षित रूप से जमा हो जाते हैं तथा इनका सम्पूर्ण विवरण कम्प्यूटर पर ले लिया जाता है। इसके बाद इन प्रमाण पत्रों का भौतिक चलन जाम कर दिया जाता है। इन प्रतिभूतियों के भावी क्रय-विक्रय से उत्पादन स्वामित्व सम्बन्धी परिवर्तन निक्षेप निधि के इलेक्ट्रानिक अभिलेखों में ही किए जाते हैं। कोई भी प्रमाण पत्र जब एक बार निक्षेप निधि में जमा कर दिया जाता है, तो उससे सम्बंधित समस्त कारोबार उस समय तक केवल इलेक्ट्रानिक लेखांकन प्रणाली के द्वारा ही किया जा सकता है जब तक कि वह प्रतिभूति उस निक्षेप निधि से वापस न निकाल दी जाए।

2. **प्रतिभूति प्रमाण पत्र विहीन निक्षेप-निधि प्रणाली :-** इस प्रणाली में प्रतिभूतियों के स्वामित्व के साक्ष्य के रूप में भौतिक रूप से कोई प्रमाण-पत्र आदि नहीं रखा जाता है। स्वामित्व सम्बन्धी अभिलेख केवल इलेक्ट्रानिक प्रविष्टियों के रूप में कम्प्यूटर पर रखे जाते हैं। इस प्रकार की प्रणाली उस समय परिपक्व मानी जाती है जब शेयर धारकों को शेयर-प्रमाण पत्र जारी किए जाने की आवश्यकता नहीं रहती। स्वामित्व में परिवर्तन सम्बन्धी प्रविष्टियाँ कम्प्यूटर द्वारा कर ली जाती हैं। इस प्रकार यह प्रणाली पूर्व प्रणाली की तुलना में काफी सस्ती हैं, किन्तु भारत में निवेशकों की मनोवृत्ति को देखते हुए इस प्रणाली को यकायक ही नहीं अपनाया जा सकता। इसके लिए पहले निवेशकों में विश्वास पैदा करना होगा।

सर्किट ब्रेकर (Circuit Breaker)

सेबी द्वारा आदेशित सर्किट ब्रेकर स्टाक एक्सचेंज की एक व्यवस्था है जो सेंसेक्स में होने वाले असामान्य उछाल या गिरावट तथा स्टाक को नियंत्रित करती है। यह तीन चरणों, 10 प्रतिशत, 15 प्रतिशत, तथा 20 प्रतिशत ऊपर या नीचे होने वाले उच्चावचनों पर लागू होती है अर्थात् यदि सेंसेक्स में उल्लिखित उच्चावचन हो तो ट्रेडिंग बन्द हो जाती है। सर्किट लिमिट का निर्धारण पिछली तिमाही के अन्त में सूचकांक के मूल्य के आधार पर किया जाता है। यदि किसी दिन के भीतर सेंसेक्स में 10 प्रतिशत का उच्चावचन हो तो ट्रेडिंग एक घंटे के लिए तथा यदि 15 प्रतिशत का उच्चावचन हो तो ट्रेडिंग दो घंटे के लिए बन्द हो जाती है। पर यदि यह उच्चावच 20 प्रतिशत की सीमा छुये तो बाकी दिन के लिए यह टेडिंग बन्द हो जाती है। उल्लेखनीय है कि 18 मई 2009 को सेनसेक्स तथा निफ्टी दोनों में स्टाक मार्केट खुलते ही 15 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी और ट्रेडिंग 11.55 बजे तक बन्द हो गयी और जब दुबारा खुली तो 20 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी, उच्चतम सर्किट ब्रेकर दो, बन प्राप्त हुई और पूरे दिन के लिए ट्रेडिंग बन्द कर दी गयी। 18.05.2009 को सेंसेक्स की सर्किट का निर्धारण मार्च 31, 2009 के सेंसेक्स के मूल्य के आधार पर हुआ जो सेंसेक्स के संबंध में 9708.5 था। उल्लेखनीय है कि 17 मई 2004 को आम चुनाव के बाद जब यू.पी.ए. सरकार शासन में आयी थी तो भी सर्किट ब्रेक हुआ था। पर उस समय बाजार ने निचलर और सर्किट ब्रेक की थी। 21 जनवरी 2008 को दो बार लोअर सर्किट ब्रेकर लागू, जो ऐतिहासिक घटना है।

इनसाइडर (Insider)

वे लोग जो किसी कम्पनी या संगठन के डाइरेक्टर हों, या उच्च रैंकिंग के आफीसर हों या ऐसे लोग जिनके पास कम्पनी के 10 प्रतिशत से अधिक शेयर हो उन्हें इनसाइडर कहते हैं।

इनसाइडर ट्रेडिंग (insider Trading)

इनसाइडर कम्पनी की गोपनीय स्थिति से परिचित, रहते हैं। उनके पास कम्पनी के संगठन की गोपनीय सूचनायें होती हैं, इसका लाभ उठाकर वे जो ट्रेडिंग करते हैं। उसे इनसाइडर ट्रेडिंग कहते हैं जो वैधानिक नहीं है। इसीलिए सेबी ने इसे हतोत्साहित करने के लिए यह व्यवस्था दी कि इनसाइडर को जो इस प्रकार लाभ प्राप्त होगा उसे कम्पनी को लौटाना होगा। इनसाइडर ट्रेडिंग की ही तरह इनसाइडर बैकिंग की भी धारणा है जो वैधानिक नही हैं।

Download From www.studymaterialofficial.com

Clause–49

सेबी द्वारा स्टॉक एक्सचेंज में कम्पनियों के सूचीबद्ध होने के अनुबंन्धों का एक बिन्दु है। सेबी की जे.जे. इरानी समिति की अनुशंसा के आधार पर किये गये संशोधन के अनुसार सेबी ने यह निश्चित किया है कि 1 जनवरी, 2006 से स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध कम्पनियों के लिए निम्न मानक लागू होंगे

जिन कम्पनियों में प्रशासनिक अध्यक्ष होंगे उन कम्पनियों के निदेशक मंडल में कम से कम 50 प्रतिशत स्वतंत्र निदेशक होंगे। जिन कम्पनियों में गैर प्रशासक अध्यक्ष होंगे उनके निदेशक मंडल में कम से कम एक तिहाई स्वतंत्र निदेशक होगे। किन्तु यह शर्त उन सूचीबद्ध कम्पनियों पर लागू नहीं होगी जिनकी चुकता पूँजी 3 करोड़ रूपये से कम हो अथवा जिनका बाजार पूँजीकरण 25 करोड़ रूपये से कम हो।

क्यू.आई.पी. (QIP)

सेबी द्वारा मई 2006 में शुरू की गयी कम्पनियों द्वारा घरेलू बाजार से संसाधन जुटाने की एक नयी स्कीम है। क्यू.आई.पी. घरेलू बाजार से संसाधनों के गतिशीलन का एक अस्त्र हैं। सेबी द्वारा चालू की गयी स्कीम को प्रमुख उद्देश्य विदेशों से ए.डी.आर., जी.डी. आर. या विदेशी परिवर्तनीय बांड के द्वारा संसाधन जुटाने के स्थान पर कम्पनियों को घरेलू बाजार से संसाधनों के जुटाने को प्रोत्साहित करना है।

एम.एस.सी.आई. (जिसकी चर्चा 2009–10 आर्थिक समीक्षा में मिलती है) 1500 विश्व स्टाक का एक विश्व स्टाक मार्केट सूचकांक है जो एम.एस.सी.आई. (जो पहले मार्ग स्टैनली कैपिटल इन्टरनेशनल थी) द्वारा तैयार किया जाता है इसे प्राय: ग्लोबल स्टाक फण्ड के संबंध में बेंच मार्क के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसमें 23 विकसित देशों की प्रतिभूतियां सम्मिलित है तथा उदीयमान अर्थव्यवस्थायें सम्मिलित नहीं है। इनके द्वारा तैयार किया गया ए.सी.डब्ल्यू.आई. दोनों ही देशों को सम्मिलित करता है।

क्लियरिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लि. (Clearing Corporation of India Ltd)

ऋण प्रपत्रों तथा विदेशी विनिमय व्यवहारों के समाशोधन तथा सेटिलमेंट के संबंध में वित्तीय अवस्थापन को विकसित तथा सम्पन्न करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक ने क्लियरिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया के स्थापना की पहल की। इसके समामेलन में शुरू में स्टेट बैंक LIC, IDBI, ICICI, HDFC बैंक आदि प्रमुख भागीदार थे।

CCIL का समामेलन 20 अप्रैल 2001 को हुआ तथा 15 फरवरी, 2002 से इसने कार्य करना शुरू कर दिया। CCIL सरकारी प्रतिभूतियों, रेपो, विदेशी विनिमय कोष तथा अन्य ऐसे प्रपत्रों के समाशोधन का प्रथम समाशोधन गृह हैं।

कोलम्बो प्लान (Colombo Plan)

कोलम्बो प्लान का उद्देश्य दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्व एशिया में पारस्परिक सहयोग तथा सहायता के माध्यम से आर्थिक विकास सुनिश्चित करना है। एक साथ मिलकर समृद्धि के लिए आयोजन जो कोलम्बो प्लान का मोटो है, यह स्थापित करता है कि सदस्य राष्ट्र पारस्परिक सहयोग तथा सहायता के द्वारा इस क्षेत्र के देशों के लोगों के जीवन निर्वाह को ऊपर उठाना है। इसकी मीटिंग 1953 में, हुई। 1972 में भारत में यह योजना शुरू हुई तथा इससे सम्बन्धित 42वी. कन्सलटेटिव कमेटी की मीटिंग 10 फरवरी 2010 को भारत में हुई।

भारत में स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchanges in India)

फेरवानी समिति की सिफारिश पर 1991 में राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना की गई। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक IDBI राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज का प्रमुख प्रवर्तक है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रवर्तक हैं-ICICI, IFCI, LIC, SBI, कैपिटल मार्केट, SHCI आदि।

DISCOVERY
Downloaded From www.studymasterofficial.com

राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज का मुख्यालय मुम्बई में वर्ली में है। राष्ट्रीय सूचकांक का आधार वर्ष 1983-84 है।

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE)

इस बाजार के शेयर मूल्य सूचकांक को सेंसेक्स (SENSEX) कहा जाता है। इस बाजार में 27 मई, 1994 को दो नये शेयर मूल्य सूचकांक चालू किये गये-

(क) BSE-200 (ख) Dollex

BSE-200 सूचकांक में 85 विशिष्ट A श्रेणी तथा 115 अविशिष्ट B श्रेणी के कुल 200 प्रमुख कम्पनियों के शेयरों को सम्मिलित किया गया है जिसमें 21 सार्वजनिक उपक्रमों के शेयर भी शामिल है। इस सूचकांकों का आधार वर्ष 1989-90 निर्धारित किया गया है। Sensex (अर्थात् मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज का संवेदी सूचकांक) का आधार वर्ष 1978-79 है। (जबकि राष्ट्रीय सूचकांक का आधार वर्ष 1983-84 है)। मुम्बई स्टाक एक्सचेंज (BSE) का राष्ट्रीय सूचकांक 100 शेयरों का होता है जबकि BSE का संवेदी सूचकांक (Share Sensex) 30 शेयरों का होता है।

स्टॉक मार्केट सूचकांक

टॉक एक्सचेंज का 30 अंशपत्रों पर आधारित BSE Sensitive Index, संक्षिप्त नाम SENSEX इतना प्रचलन में है कि लोग इसके इतने अभ्यस्त हैं कि सेनसेक्स ही 'स्टॉक मार्केट इण्डेक्स' का पर्याय बन गया है। सेनसेक्स 30 अंशों पर आधारित BSE SENSITIVE INDEX है। इसका प्रयोग अर्थव्यवस्था में अंशों के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों के सूचक के रूप में किया जाता है। यह बाजार के व्यवहार अर्थव्यवस्था में लोगों को विश्वास तथा अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ मूलाधार को व्यक्त करने वाला बैरोमीटर है। सेनसेक्स में अप्रत्याशित उछाल क्या प्रदर्शित करता है और कौन से कारक हैं जो इस प्रकार के उछाल लाते हैं?

सामान्यतया सेनसेक्स का उछाल प्रदर्शित करता है कि अर्थव्यवस्था की समष्टिभावी नींव जो अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन, रोजगार, मूल्यस्तर, निर्यात तथा भुगतान सन्तुलन, औद्योगिक क्लाइमेट आदि को प्रभावित करेगा, अत्यन्त ही सुदृढ़ है तथा आने वाली अवधि में अर्थव्यवस्था के विकास की प्रत्याशा अत्यन्त ही अच्छी है। स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था के मूलाधार सुदृढ़ है तथा इसी प्रकार का उछाल कायम रह सकेगा। सेनसेक्स का लगातार बढ़ना छोटे विनियोजकों में इक्विटी अंशों में विनियोग करने के प्रति विश्वास पैदा करता है।

सेनसेक्स में होने वाले उछाल को प्रायः निम्नांकित कारण प्रभावित करते हैं--

1. अर्थव्यवस्था के मूलाधार की सुदृढ़ता जो अर्थव्यवस्था के समष्टिभावी चरों-उत्पादन, आय, रोजगार, निर्यात, मूल्यस्तर आदि को प्रभावित करते हैं तथा यह संकेत देते हैं कि आने वाली अवधि में अर्थव्यवस्था सुचारूरूप से विकसित होगी।
2. पिछले 2,3 वर्षों में आर्थिक संवृद्धि दर तथा आने वाले वर्षों में बढ़ती संवृद्धि दर की सम्भावना।
3. औद्योगिक वातावरण की अनुकूलता तथा औद्योगिक संवृद्धि दर के बढ़ने की सम्भावना।
4. निर्यात की स्थिति, सम्भावना तथा आयात प्रोत्साहन नीति जो औद्योगिक आगत के रूप में औद्योगिक विकास को प्रभावित करें।
5. मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, वाणिज्य नीति, औद्योगिक नीति, कृषि नीति आदि में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके।
6. राजनीतिक स्थिरता, राजनीतिक वातावरण तथा सरकार चलाने वाली पार्टी का आर्थिक सुधारों, बाजार व्यवस्था, निजी क्षेत्र की भूमिका आदि के सम्बन्ध में दृष्टिकोण।
7. स्टॉक एक्सचेंज में स्टॉक की अत्यधिक मात्रा में खरीददारी तथा बिक्री चाहे यह व्यवहार सही हो या स्टॉक एक्सचेंज में शेयरों के मूल्य को प्रभावित करने के लिये किसी के द्वारा जानबूझकर किया गया हो।
8. स्टॉक मार्केट में बाजार व्यवहार के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक कारक।

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज की नई Z-श्रेणी

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE) ने हाल में सूचीबद्ध शेयरों की एक नई Z-श्रेणी (New Z-series) आरम्भ करने की घोषणा की है। निवेशकों

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

के हितों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से यह कदम 'मिशन-2000' योजना के अन्तर्गत उठाया गया है। इस नई श्रेणी में ऐसी कम्पनियों के शेयरों को सम्मिलित करने का प्रावधान है जो स्टॉक एक्सचेंज की शर्तों की पूरी तरह से पूरा नहीं कर पा रही हैं।

मिबोर तथा मिबिड (MiBok and MiBiD)

NSE ने 15 जून, 1998 से Call Money Market के ऋणों के लिए दो नई सन्दर्भ दरें आरम्भ की हैं-

MIBOR- Mumbai Inter Bank Offer Rate

MIBID- Mumbai Inter Bank Bid Rate

MIBOR बाजार में सक्रिय बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा उधारी की Landing Rate की सूचक है तथा MIBID इन बैंकों द्वारा ऋणों की प्राप्तियों के सन्दर्भ में सूचक है।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) (Securities and Exchange Board of India)

पूंजी बाजार में निवेश को संरक्षण प्रदान करने तथा निवेशकों में विश्वास की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से 12 अप्रैल, 1988 को भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) की स्थापना की गई तथा 30 जनवरी, 1992 को एक अध्यादेश जारी करके इस संस्था को वैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। इसका मुख्यालय मुम्बई में है तथा इसके क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता, दिल्ली तथा चेन्नई में हैं। स्थापना के समय SEBI की प्रारम्भिक पूंजी 7.5 करोड़ रुपये थी। इस पूंजी के प्रवर्तक थे- IDBI, ICICI, तथा IFCI।

सेबी (SEBI) के प्रमुख कार्य

(i) निवेशकों के हितों का संरक्षण करना। (ii) पूंजी बाजार को नियमित करना। (iii) पूंजी बाजार के ब्रोकर्स तथा बिचौलियों के एकाउण्ट एवं अन्य रिकोर्डों की तलाशी और जब्त करना। (iv) म्यूचुअल फण्ड की सामूहिक निवेश योजनाओं का पंजीकरण करना तथा उन्हें नियमित करना। (v) प्रतिभूति बाजार की अनियमितताओं एवं अनुचित व्यापार व्यवहारों को समाप्त करना। (vi) स्वयं नियमित संगठनों को प्रोत्साहित करना। (vii) पूंजी बाजार से जुड़े लोगों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना। (viii) प्रतिभूतियों के अन्तरंग व्यापार पर रोक लगाना। (ix) पूंजी बाजार में सुधार हेतु शोध करना। (x) हेराफेरी करने वाली कम्पनियों पर जुर्माना करना।

पूंजी बाजार के नियमन एवं स्वस्थ पूंजी बाजार की स्थापना हेतु विगत वर्षों में सेबी (SEBI) ने अनेक कदम उठाए हैं- (i) शेयरों के मूल्य एवं प्रीमियमों का निर्धारण किया है। (ii) व्यावसायिक बैंकों में **'स्टॉक इन्वेस्ट'** योजना लागू करवाई है। (iii) अण्डर राइटर्स नियमों को नियमित किया है तथा संबंधित व्यक्तियों/संस्थाओं को चेतावनी दी है कि निर्गम के गैर-अभिदत (Unsubscribed) भाग की खरीद में किसी प्रकार की अनियमितता किये जाने पर उनका पंजीकरण निरस्त कर दिया जाएगा। (iv) म्यूचुअल फण्डों का नियमन किया है। (v) विदेशी संस्थागत निवेशकों पर नियन्त्रण लगाया है।

सेबी द्वारा शेयरों पर मूल्य प्रतिबन्ध की समाप्ति

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने कम्पनियों द्वारा जारी किए जाने वाले शेयरों पर से मूल्य का प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया है। अब कम्पनियों को 10 रुपए से अथवा 100 रुपए मूल्य के शेयर जारी करने की कोई बाध्यता नहीं है। अब कम्पनियों द्वारा किसी भी मूल्य के शेयर जारी किए जा सकते हैं किन्तु यह एक रुपए से कम मूल्य के अथवा एक रुपए के किसी अंश के रूप में नहीं हो सकेंगे। मूल्य के अथवा एक रुपए के सिकी अंश के रूप में नहीं हो सकेंगे। सेबी का यह निर्णय केवल उन कम्पनियों के शेयरों पर लागू होगा जिनके शेयर 'डिमेटीरियलाइज्ड' हैं।

सेबी और उसकी दण्डात्मक शक्ति

इस प्रकार शेयर दलालों तथा शेयर बाजार के लोगों प्रत्येक गतिविधियों की सूक्ष्मतम निगरानी, शेयर बाजार के संचालन, प्रतिभूतियों का निर्गमन आदि सेबी द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण कार्य हैं। सेबी को दण्डात्मक कार्यवाही करने का भी अधिकार दिया गया है। भारतीय

प्रतिभूत्ति एवं विनिमय बोर्ड (संशोधित) अधिनियम 2002 के अनुसार इनसाइडर व्यापार के लिए सेबी 25 करोड़ रूपये तक का जुर्माना लगा सकती है। स्पाट डिलीवरी के आधार पर किये गये सौदों के विनियमन एवं नियंत्रण तथा किसी शेयर बाजार द्वारा किसी कंपनी के शेयरों को अधिसूचित न करने की शिकायतों के विरूद्ध भी सेबी सुनवाई करती है। इसके अतिरिक्त लघु निवेशकों के साथ धोखाधड़ी के मामले में एक लाख रूपये प्रतिदिन की दर पर एक कोड़ रूपये का जुर्माना आरोपित करने का अधिकार सेबी को दिया गया है।

शेयरों की पुनर्खरीद : नई व्यवस्था (Buy Back of Shares: New System)

कम्पनियों के शेयरों की पुनर्खरीद की नई व्यवस्था लागू की गई है। केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत अब कोई भी कम्पनी अपने कुल शेयरों के अधिकतम 10% भाग की वापसी खरीद (Buy Back) प्रबन्ध तंत्र के निर्णय के आधार पर ही करने के लिए अधिकृत है किन्तु 10% से अधिक भाग की वापसी खरीद के लिए शेयरधारकों द्वारा अनुमोदित प्रस्ताव प्राप्त करना आवश्यक होगा। एक वित्तीय वर्ष में शेयरों की पुनर्खरीद की अधिकतम सीमा पूर्ववत् 25% ही बनी रहेगी।

द नेशनल सिक्युरिटीज डिपाजिटरी लिमिटेड (NSDL)

देश की पहली डिपाजिटरी NSDL 8 नवम्बर, 1996 को मुम्बई में स्थापित की गई। भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेन्ज (NSE) द्वारा इस डिपॉजिटरी की स्थापना की गई है।

सेन्ट्रल डिपाजिटरी सर्विसेज (इण्डिया) लिमिटेड (CDSL)

देश की दूसरी डिपाजिटरी ब्बैस्, फरवरी, 1998 में मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रायोजित की गई जिसका सेबी में अगस्त, 1998 में पंजीकरण हुआ। मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज के अलावा बैंक ऑफ इण्डिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा HDFC बैंक ने इस डिपाजिटरी का प्रवर्तन किया है।

प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय में डिपाजिटरी की स्थापना से पेपरलेस ट्रेडिंग (Paperless Trading) आरम्भ हो गई है जिसमें कम्प्यूटर के माध्यम से प्रतिभूति धारक का नाम परिवर्तित हो जाता है।

Downloaded From www.studymaterialofficial.com DISCOVERY

5. लोक वित्त
Public Finance

लोक वित्त से संबंधित प्रमुख शब्दावली (Important Terms regarding Public Finance)

आयकर (Income Tax) :- एक वित्तीय वर्ष (1 अप्रैल से 31 मार्च तक) में किसी व्यक्ति की संपूर्ण आय या निवेश पर लगाया जाने वाला कर आयकर कहा जाता है।

निगम कर (Corporation Tax):- सभी व्यक्तियों एवं अनिगमित संगठनों के लाभांश वितरण से पूर्व ब्याज एवं अंतर्देशीय राजस्व एलाउंस को छोड़कर, जो लाभ बचता है, उस पर लगाए जाने वाले कर को निगम कर कहा जाता है।

पूँजी लाभ कर (Capital Gains Tax):- मूल्यों में वृद्धि के कारण सम्पत्ति कर के क्रय- विक्रय से जो लाभ प्राप्त होता है, उस लाभ पर जो कर लगाया जाता है, उसे पूँजी लाभ कर कहते हैं।

सम्पदा कर (Estate Duty):- संपदा-कर मृतक व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई कुल सम्पत्ति पर सबके उत्तराधिकार में बांटे से पूर्व लगाया जाता है।

सीमा शुल्क (Custom Duties):- सीमा शुल्क से अर्थ आयातों एवं निर्यातों पर लगाये जाने वाले शुल्कों से है।

केंद्रीय उत्पाद शुल्क (Union Excise Duty):- देश की सीमा के अंदर ही वस्तुओं के उत्पादन पर जो कर लगाया जाता है, उसे उत्पाद शुल्क कहते हैं।

वैट कर या मूल्य सम्मिलित कर (Value Added Tax) :- वैट या मूल्य सम्मिलित कर वह कर है जो कि व्यापारी या निर्माता द्वारा वस्तु के मूल्य में जो वृद्धि होती है, उस पर लगाया जाता है।

माडवैट (Modvat):- वैट का संशोधित रूप माडवैट कहलाता है। इसमें अंतिम उत्पाद या उत्पादन पर देय शुल्क को घटाया जाता है।

सेनवैट (Cenvat):- (ऐल्ट्रेलाइज्ड वैल्यु एडेड टैक्स) उत्पाद शुल्क के विकल्प के रूप में किया गया वैट प्रणाली का एक कर।

बाजार ऋण (Market Debt) :- *सरकार द्वारा जनता से बॉन्डों आदि के माध्यम से लिया गया ऋण बाजार ऋण कहा जाता है।*

सब्सिडी (Subsidies):- सरकार द्वारा किसी वस्तु को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिए उस पर आने वाली उत्पादन लागत का कुछ भाग स्वयं वहन कर लिया जाता है। जितना भाग सरकार वहन करती है, उसे सब्सिडी कहते है।

क्रास सब्सिडी (Cross Subsidies):- जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि को किसी अन्य वस्तु की कीमत, बढ़ाकर कम रखा जाता है, तो उसे क्रास सब्सिढी कहते है। जैसे रेल किराये को क्रास सब्सिडी के माध्यम से कम रख रेल भाड़े में वृद्धि की जाती रही है।

राजकोषीय नीति :- राजकोषीय नीति वह नीति है जिसमें सरकार अपने आय (आगम), व्यय और ऋण व्यवस्था आदि का उपयोग आर्थिक स्थिरता, आर्थिक विकास व पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए करती है।

बजट :- जब सरकार या संस्था एक वर्ष के लिए, अनुमानित आय-व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है, तब इसे लेखा-जोखा या बजट कहते हैं।

Download DISCOVERY
www.studymasterofficial.com

सन्तुलित बजट :- जब सरकार की आय एवं व्यय दोनों एक-दूसरे के बराबर हों तो उसे सन्तुलित बजट कहते है।

बजट घाट :- राजस्व खाता तथा पूँजी खाता में सामान्य प्राप्तियों व व्यय के अंतर को बजट घाट कहते हैं। कुछ प्रमुख सरकारी घाटों के आकलन का सूत्र निम्नलिखित है:

(a) **बजटीय घाटा** (Budgetary Deficit) :- कुल प्राप्तियां-कुल व्यय।

(b) **राजस्व घाटा** (Revenue Deficit) :- राजस्व प्राप्तियां- राजस्व व्यय

(c) **राजकोषीय घाटा** (Fiscal Deficit) :- बजटीय घाटा+ उधार और अन्य देयताएं।

(d) **प्राथमिक घाटा** (Primary Deficit) :- राजकोषीय घाटा - ब्याज की अदायगियां।

भारत का संविधान संघ तथा राज्यों को वित्त के स्त्रोतों के विकास की शक्ति प्रदान करता है। सामान्यत: संघ तथा राज्यों के वित्त के स्त्रोत पारस्परिक विशिष्टता वाले होते हैं। करों तथा शुल्कों में ही कुछ भिन्नता विद्यमान है। संविधान के प्रावधानों में निम्नांकित तथ्यों का समावेश है-

1. किसी भी कर का आरोपण अथवा संग्रहण किसी विधि के तहत ही किया जा सकता है।
2. संविधान के प्रावधानों के अनुरूप ही सार्वजनिक कोष से व्यय दिया जा सकता है।
3. संसदीय स्वीकृति अथवा राज्य विधानमंडल की स्वीकृति के आधार पर ही लोक अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक धन का उपयोग किया जा सकता है।

संघ-राज्य वित्तीय संबंध (Union-State Financial Relation)

अनुच्छेद 265 में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख है कि बिना किसी विधि के करों का आरोपण अथवा संग्रहण नहीं किया जा सकता है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि करों से संबंधित प्रयासों को अनुच्छेद 19(1) (f) अथवा (g) के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। संविधान की सातवीं अनुसूची में समाविष्ट तीनों सूचियों में कर तथा शुल्क का अन्तर भी स्पष्ट किया गया है। संघ तथा राज्य सूचियों में एक ओर जहां करों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख है वहीं उनमें शुल्क संबंधी प्रावधान भी किये गये हैं। उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 265 करों पर लागू है, शुल्कों पर नहीं। कर सामान्य भार का एक भाग है जबकि शुल्क किसी विशिष्ट सुविधा के बदले किया जाता है।

कर प्रणाली की विशेषताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि इसकी प्रकृति विधिक होती है जिसके कारण करदाताओं पर इसकी बाध्यता होती है। कर प्रणाली की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें कर दाताओं की सुविधा के स्थान पर सार्वजनिक हित पर बल दिया जाता है। करों के संग्रहण से प्राप्त राशि लोक वित्त का भाग बन जाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 264 से 293 में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के वित्तीय सम्बन्धों की स्पष्ट व्यवस्था की गई है। वे कर जिनका अन्त:राज्यीय आधार है, केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाते हैं, जबकि स्थानीय आधार वाले कर राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाते हैं। जो पूर्णतया केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं। अवशिष्ट अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त है।

केन्द्रीय राजस्व का वितरण (Distribution of Central Revenue)

संविधान की सातवीं अनुसूची में केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय स्रोतों का विभाजन किया गया है। सातवीं अनुसूची की प्रथम लिस्ट में उन करों का वर्णन है, इन्हें संघीय कर कहते हैं। दूसरी लिस्ट में उन करों का वर्णन है, जो पूर्णतया राज्यों के अधिकार में आते हैं, इन्हें राज्य के कर कहते हैं। राज्यों के राजस्व में योगदान हेतु राज्यों को ऐच्छिक वित्तीय सहायता भी हस्तांतरित करता हैं। उपर्युक्त दो सूचियों के अतिरिक्त संविधान में एक तीसरी समवर्ती सूची भी है। जिसमें वर्तमान में 52 विषय सम्मिलित हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा लगाए गए करों को चार भागों में विभाजित किया गया है-

Downloaded From www.studymaster.official.com

1. वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं तथा जिनसे प्राप्त आय पूर्णरूप से केन्द्र सरकार की ही होती है।
2. वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं तथा एकत्रित किए जाते हैं, किन्तु जिनसे प्राप्त आय का अंश राज्य सरकारों को बाँट दिया जाता है।
3. वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, किन्तु राज्य सरकारों द्वारा एकत्र एवं प्रयुक्त किए जाते हैं।
4. वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा एकत्र किए जाते हैं, किन्तु उनसे प्राप्त समस्त आय राज्य सरकारों के मध्य बाँट दी जाती है।

1. संघीय कर

संविधान की सप्तम अनुसूची की प्रथम सूची में उल्लेखित मद संख्या 82 से 92A तक के कर संघीय कर हैं। इस प्रथम सूची को संघीय सूची भी कहा जाता है। इसमें अग्रलिखित करों को सम्मिलित किया गया है-

1. आय कर (कृषि आय के अतिरिक्त) 2. निगम कर 3. सेवा कर 4. सीमा शुल्क अथवा आयात्-निर्यात शुल्क 5. अफीम व एल्कोहॅलिक पेय पदार्थों को छोड़कर शेष वस्तुओं के सम्बन्ध में उत्पादन शुल्क (औषधि एवं प्रसाधन उत्पादों सहित) 6. कृषि भूमि से भिन्न अन्य सम्पत्ति के संबंध में सम्पदा तथा उत्तराधिकार शुल्क 7. व्यक्तियों तथा कम्पनियों की सम्पत्तियों के पूँजी मूल्य पर कर (कृषि भूमि के अतिरिक्त) 8. प्रपत्रों पर स्टाम्प शुल्क, 9. शेयर बाजारों तथा सट्टे बाजार के व्यवहारों पर स्टाम्प शुल्क के अतिरिक्त अन्य कर, 10. समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर, 11. रेलयात्री किराये तथा माल भाड़े पर कर, 12. रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा ले जाए गए यात्रियों तथा माल पर कर, 13. अन्तर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य के दौरान माल के क्रय विक्रय पर कर (कुछ मदो को छोड़कर)।

उल्लेखनीय है कि संघीय सूची में सम्मिलित उपर्युक्त सभी करों से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण राजस्व की प्राप्ति केन्द्र को नहीं होती, केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय संतुलन स्थापित करने की दृष्टि से इनमें से कुछ करों से प्राप्त राजस्व का बँटवारा राज्यों के साथ किया जाता है। उदाहरणार्थ कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर, उत्पाद शुल्क इत्यादि, अन्तर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य पर कर यद्यपि संघीय सूची में शामिल है परन्तु इनकी वसूली तथा इनके राजस्व का उपयोग राज्यों द्वारा ही किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित करों के अतिरिक्त ऐसी मदें जो कि न तो संघीय सूची में सम्मिलित है और न ही राज्य सूची में, पर केन्द्रीय सरकार को ही करारोपण का अधिकार है, उदाहरणार्थ उपहार कर व व्यय कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दिया गया है, जो कि इन दोनों ही सूचियों में सम्मिलित नहीं है।

2. राज्य कर

ये कर राज्य सरकारों द्वारा ही आरोपित किए जाते हैं और उन्हीं के द्वारा संगृहीत किए जाते हैं। संविधान की अनुसूची सात की द्वितीय सूची की मद संख्या 45 से 63 में राज्य सरकारों के कर अधिकारों का विवरण है। यदि राज्य चाहे तो उनके द्वारा यह अधिकार केन्द्रीय सरकार को हस्तांतरित किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में केन्द्र द्वारा कर संग्रहित कर उस राज्य सरकार को कर राजस्व दे दिया जाता है। भारत में पं. बंगाल और जम्मू-कश्मीर के अलावा अन्य समस्त राज्य सरकारों ने कृषि भूमि पर सम्पदा शुल्क वसूल करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे रखा है। राज्य कर निम्नलिखित हैं-

1. लगान या भूमिकर, 2. माल के क्रय-विक्रय पर कर (समाचार पत्रों के अतिरिक्त), 3. कृषि आय पर कर, 4. भूमि तथा भवन पर कर, 5. कृषि भूमि पर सम्पदा शुल्क तथा उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क, 6. एल्कोहॅल, मदिरा, नारकोटिक्स आदि पर उत्पादन शुल्क, 7. स्थानीय क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले माल पर कर, 8. खनिज अधिकारों पर कर (संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं के अधीन), 9. विद्युत के उपयोग तथा विक्रय पर कर, 10. गाड़ियों, पशुओं तथा नावों पर कर, 11. सड़क तथा आंतरिक जलमार्गों द्वारा यात्रियों तथा माल के आवागमन पर कर, 12. विलासिताओं (मनोरंजन, जुआ आदि) पर कर 13. पथ कर, 14. पेशे,व्यापार, आजीविका तथा रोजगार पर कर, 15. विज्ञापनों पर कर (समाचार पत्रों , रेडियों व दूरदर्शन के विज्ञापनों के अतिरक्त)

3. वे कर, जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, किन्तु जिनकी वसूली तथा उपयोग राज्यों द्वारा किया जाता है-

भारतीय संविधान की धारा-268 मे उल्लेख है कि स्टाम्प शुल्क, औषधि तथा प्रसाधनों पर उत्पादन शुल्क यद्यपि संघीय सूची में सम्मिलित

DISCOVERY®
www.studymasterofficial.com

है तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा ही आरोपित किए जाते हैं, किन्तु इन्हें राज्यों को संग्रहीत करने व उपयोग करने हेतु अधिकार दिए गए है।

4. वे कर, जो केन्द्र द्वारा आरोपित किए जाते हैं एवं संग्रहित किए जाते हैं, किन्तु जिनकी पूरी राशि राज्यों को हस्तांतरित कर दी जाती है।

संविधान की धारा-269 में आरोपित करों यथा-1. कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के संबंध में सम्पदा शुल्क, 2. उत्तराकिार शुल्क, 3. रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा ले जाए जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमा पर कर, 4. रेल, किराए तथा माल भाड़े पर कर, 5. समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनके विज्ञापनों पर कर, 6. समाचार पत्रों से भिन्न माल के क्रय-विक्रय पर उस दशा में कर जिससे ऐसा क्रय या विक्रय अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है, आदि को केंद्रीय सरकार द्वारा आरोपित एवं संग्रहित किया जाता है, किन्तु इनका हस्तांतरण उन राज्यों को कर दिया जाता है, जहाँ से ये संग्रहीत किए जाते हैं।

5. वे कर, जो केन्द्र द्वारा आरोपित एवं संग्रहीत किए जाते हैं तथा जिनका केन्द्र तथा राज्यों के मध्य बँटवारा किया जाता है।

वित्तीय संसाधनों की समानता एवं न्याय के आधार पर विभाजन के लिए निम्न कर, यद्यपि संघीय सरकार द्वारा आरोपित व एकत्रित किए जाते हैं, किन्तु इनका वितरण दोनों के मध्य किया जाता है। इस प्रकार के कुछ कर निम्नलिखित हैं-

1. कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर आरोपित कर (धारा 270)
2. औषधि एवं प्रसाधन उत्पादों पर आरोपित उत्पाद शुल्क के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के सम्बंध में उत्पाद शुल्क इस प्रकार के राजस्व को संसद के विधि निर्माण के द्वारा, दोनों के मध्य विभाजित किया जा सकता है। (धारा 272)

राज्य सरकारों के कर स्रोत (Tax Sources of State Governments)

उपर्युक्त विवरण के अनुसार राज्य सरकारों के कर राजस्व के प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं-

1. राज्य सरकारों द्वारा आरोपित तथा संगृहित करों से आय।
2. केन्द्रीय सरकार द्वारा आरोपित तथा संगृहित कर, जिनमें राज्य की हिस्सेदारी अनिवार्यत: निश्चित है अर्थात् राज्य को कर राजस्व का कुछ भाग अनिवार्यत: दिया जाता है (अनुच्छेद 270 का प्रावधान)
3. केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संगृहित कर जिनका राज्य सरकारों में विभाजन करना केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है (अनुच्छेद 272 का प्रावधान)
4. केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत कर, जिनकी सम्पूर्ण आय राज्यों को सौंप दी जाती है (अनुच्छेद 269 का प्रावधान)
5. केन्द्र द्वारा आरोपित राज्य द्वारा संग्रहीत एवं उनके द्वारा ही उपयोग में लाई जाने वाली कर आय (अनुच्छेद 268 का प्रावधान)

उपर्युक्त के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 271 के अनुसार अनुच्छेद 270 में उल्लेखित कर (कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर) तथा अनुच्छेद 269 में उल्लेखित करों (जिनका आरोपण व संग्रहण केन्द्र द्वारा किया जाता है तथा जिनसे प्राप्त राजस्व राज्यों को ही सौंपा जाता है) पर केन्द्र द्वारा अधिशुल्क लगाया जा सकता है तथा इस प्रकार लगाए गए अधिशुल्क से सम्पूर्ण आगम भारत सरकार की संचित निधि का ही भाग होगा।

केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में गैर कर राजस्व का वितरण (Distribution of Non Tax Revenue between Centre and State Governments)

अ. केन्द्रीय सरकार के गैर कर राजस्व में निम्नलिखित क्षेत्रों से प्राप्त आय को सम्मिलित किया जाता है-

1. रेलवे, 2. पोस्ट तथा टेलीग्राफ, 3. प्रसारण, 4. अफीम, 5. चलन एवं टकसाल, 6. केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उपक्रम, जो कि केन्द्रीय सरकार के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं।

www.studymaterialofficial.com Downloaded From

ब. राज्य सरकारों के गैर-कर राजस्व में निम्नलिखित क्षेत्रों से प्राप्त आमद को सम्मिलित किया जाता है-

1. वन, 2.सिचाई, 3. वाणिज्यिक एवं औद्योगिक उपक्रम जो कि राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं, 4. गहरे समुद्री क्षेत्रों में मत्स्यपालन तथा सिल्क आदि।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों के ऋण प्राप्ति सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions Relating to Borrowings by Union & State Governments)

भारतीय संविधान में केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा अतिरिक्त रजस्व की प्राप्ति हेतु ऋण प्राप्ति के संबंध में भी स्पष्ट उल्लेख है। संविधान के अनुच्छेद-292 के अनुसार केन्द्रीय सरकार, भारत सरकार की संचित निधि की प्रतिभूति पर संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं की परिधि में ही ऋण ले सकती है तथा इन सीमाओं की परिधि के तहत ही किसी ऋण की जमानत, दे सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद-293 में राज्य सरकार द्वारा राज्य की समेकित निधि की गारंटी से राज्य विधान सभा द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत ही धन उधार लिए जाने की व्यवस्था निर्धारित की गई है। इन्हीं व्यवस्थाओं के अन्तर्गत ही वह किसी भी ऋण की प्रतिभूति दे सकती है। राज्य सरकारों द्वारा ऋण लिए जाने के संबंध में निम्नलिखित प्रतिबंध लगाए गए हैं-

1. राज्य सरकारों द्वारा विदेशी सरकारों से ऋण लेने के संबंध में पूर्ण निषेध है।
2. भारत सरकार द्वारा प्रदत्त अथवा गारंटीड किसी पूर्व ऋण की राज्य सरकारों द्वारा अदायगी न होने पर, केन्द्रीय सरकार राज्य के ऋण सम्बन्धी प्रार्थना पत्र पर प्रतिबंध लगा सकती है अर्थात ऋण मंजूरी करने से मना कर सकती है।
3. राज्य सरकारों द्वारा ऋण भुगतान न करने पर भी केन्द्रीय सरकार द्वारा आरोपित शर्तों को राज्य विशेष द्वारा मान लिए जाने पर केन्द्र द्वारा ऐसे राज्यों को ऋण स्वीकृति किया जा सकता है।

केन्द्रीय अनुदान - संविधान में केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता दिए जाने के भी प्रावधान हैं। ये अनुदान राज्यों की आय की कमी को दूर करने एवं वित्तीय व्यवस्था को संतुलित करने के लिए दिए जाते हैं। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि इससे राज्यों में विद्यमान आर्थिक व वित्तीय असमानताओं को दूर किया जा सकेगा, साथ ही इस प्रकार के अनुदानों से राज्य अपने दायित्वों के निर्वाहन एवं जन कल्याण के कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकेंगे।

वित्त आयोग (Finance Commission)

संविधान के **अनुच्छेद 280** के तहत राष्ट्रपति को एक पांच वर्षीय वित्त आयोग के गठन की शक्ति दी गई है। आयोग के एक अध्यक्ष तथा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त चार सदस्य होते हैं। सदस्यों की योग्यताओं के संबंध में संसद द्वारा विधियां निर्धारित की जाती है। आयोग निम्नांकित विषयों पर राष्ट्रपति को परामर्श देता है-

1. कर राजस्व का संघ एवं राज्यों के बीच वितरण।
2. भारत की संचित निधि से राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान।
3. राज्य की संचित निधि का विस्तार तथा नगरपालिकाओं एवं पंचायतों के लिए राज्य के वित्त आयोग की अनुशंसाएं।
4. राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित किसी अन्य विषय पर।

इन कार्यों के लिए वित्त आयोग संसदीय विधियों के तहत प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है।

13 वां वित्त आयोग (13th Finance Commission)

विजय केलकर की अध्यक्षता में गठित 13 वें वित्त आयोग के उद्देश्यों में निम्नांकित प्रमुख है:-

- संविधान के भाग 12 के अध्याय 1 के तहत किए गए प्रावधानों के अनुरूप केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व अंतरण।

Download from www.studymasterofficial.com

- 1 अप्रैल 2010 से पांच वर्षों के लिए केन्द्र सरकार के वित्तीय संसाधनों की समीक्षा। इसके लिए 2008-09 में कर तथा गैर-कर राजस्व प्राप्तियों को आधार बनाया जाएगा।
- 1 अप्रैल 2010 से पांच वर्षों के लिए राज्यों के वित्तीय संसाधनों की समीक्षा।
- केन्द्र तथा राज्यों के राजस्व खाते पर प्राप्तियों एवं व्यय का संतुलन तथा पूंजीगत निवेश के लिए अतिरेक प्राप्ति के प्रयास।
- 1 अप्रैल 2010 से लागू होने वाली उत्पाद एवं सेवा कर प्रणाली के प्रभावों का आंकलन।
- लोक व्यय की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए परामर्श।
- सतत विकास के लिए पारिस्थितिकी, पर्यावरण तथा जलवायु परिवर्तन जैसे विषयों का प्रबंधन
- विभाज्य केन्द्रीय करों की शुद्ध निवल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत हो।
- विभिन्न करों के साथ लगाए गए उपकरों तथा अधिभारों की समीक्षा की जाए
- केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों में राज्यों को दिया जाने वाला हिस्सा अधिकतम 39.5 प्रतिशत रखा जाए।
- राज्यों पर एफआरबीएम अधिनियमों का अनुपालन बाध्यकारी बनाया जाए।
- राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि में तथा आपदा राहत निधि को सम्बन्धित राज्यों की आपदा अनुक्रिया निधि में मिला दिया जाए।
- आठ कमजोर राज्यों के लिए सिफारिश अवधि (अप्रैल 2010 से मार्च 2015) के दौरान आयोजना भिन्न राजस्व अनुदान के तहत् 51,800 करोड़ रूपए आवंटित किए जाएं। आयोजन भिन्न राजस्व घाटे की स्थिति से उबर चुके तीन विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए 1500 करोड़ रूपए के निष्पादन अनुदान दिए जाएं।
- चार वर्षों (2011-12 से 2014-15) के लिए सड़कों और पुलों के लिए अनुदान के रूप में 19,930 करोड़ रूपए राशि की सिफारिश।
- प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अनुदान के रूपए में 24,068 करोड़ रूपए की राशि की सिफारिश।
- वन, अक्षय ऊर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्धन के लिए 5,000 करोड़ रूपए की राशि आवंटित की जाए।
- राज्यों को सहायतानुदान के रूप में सिफारिश अवधि (2010-15) के लिए 3,18581 करोड़ रूपए की कुल राशि की सिफारिश।
- वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के क्रियान्वयन के कारण राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की भरपाई के लिए 50,000 करोड़ रूपए का प्रावधान किए जाने की सिफारिश। अगर जीएसटी का क्रियान्वयन अप्रैल 2013 या उसके बाद होने पर यह राशि घटकर 40,000 करोड़ रूपए तथा अप्रैल 2014 या उसके बाद इसका क्रियान्वयन होने पर 30,000 करोड़ रूपए का प्रावधान।

बजट (Budget)

'बजट' शब्द का अर्थ एक ऐसे फोल्डर से है जिसमें अधिकारिक दस्तावेज रखे जाते हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से इसका तात्पर्य सरकारी आय-व्यय के विस्तृत विवरण से है। बजट के निर्माण का आधार वित्तीय वर्ष होता है। वित्त वर्ष के आरंभ की तिथि विभिन्न देशों में अलग-अलग होती है। भारत, इंग्लैंड तथा अधिकांश राष्ट्रमंडल देशों में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है दूसरी ओर, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इटली तथा स्वीडेन में 1 जुलाई से 30 जून तथा फ्रांस में 1 जनवरी से 31 दिसम्बर की अवधि वित्त वर्ष की अवधि है। सामान्यतः बजट का निर्धारण एक वर्ष के लिए किया जाता है। इसका कारण यह है कि इससे सरकार की वित्तीय गतिविधियों पर विधायी नियंत्रण स्थापित होता है। कई अवसरों पर एक से अधिक वर्ष के लिए भी बजट का निर्धारण किया जाता है। इसे दीर्घ कालिक बजट कहते हैं। सामान्यतः इसकी अवधि 3-10 वर्षों की होती है।

इसके अतिरिक्त कई अवसरों पर निष्पादन बजट (Performance Budget) का निर्धारण भी किया जाता है। इसमें विभिन्न कार्यों एवं उद्देश्यों का उल्लेख होता है जिनके लिए अनुदान की मांग की गई। साथ ही, उन कार्यक्रमों का भी विस्तृत उल्लेख होता है जिनकी सहायता से लक्ष्यों की प्राप्ति संभावित है। वस्तुतः इस प्रकार का बजट लागत अंकेक्षण तथा वैज्ञानिक प्रबंधक का परिचायक है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

इसके विपरीत, शून्याधार बजट (Zero-base Budget) में अनुदान की मांग के पूर्व प्रत्येक कार्यक्रम का गहन मूल्यांकन किया जाता है। निश्चित रूप से ऐसे बजट के लिए कई महत्वपूर्ण संकेतकों की आवश्यकता होती है जिनमें लक्ष्य, प्रभाव, उद्देश्य, निष्पादन का स्तर, तुलनात्मक अध्ययन एवं आकलन महत्वपूर्ण हैं।

1. पारम्परिक अथवा आम बजट

'पारम्परिक बजट' आज के आम बजट का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। इसमें किस क्षेत्र में कितना धन व्यय करना है उसी का उल्लेख होता था, किन्तु इस व्यय के खर्च से क्या क्या परिणाम प्राप्त करने हैं, उनका ब्यौरा नहीं दिया जाता था। इस प्रकार के बजट का मुख्य उद्देश्य सरकारी खर्चों पर नियंत्रण करना था न कि तीव्र गति से विकास तथा विकास कार्यों को अंजाम देना। इसलिए कलान्तर में पारंपरिक बजट पद्धति स्वतंत्र भारत की समस्याओं को सुलझाने तथा इसकी महत्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने में असमर्थ समझी गई। यही कारण है कि भारत में पिछले कुछ वर्षों से निष्पादन बजट की आवश्यकता तथा महत्ता को स्वीकार किया गया है तथा इसे परम्परागत बजट के पूरक के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

2. निष्पादन बजट

'निष्पादन बजट' को उपलब्धि बजट या कार्यपूर्ति बजट भी कहा जाता है। अत: कार्य के परिणामों या निष्पादन को आधार बनाकर निर्मित होने वाला बजट निष्पादन बजट कहलाता है। इसमें उपलब्धि के साधनों से बल हटाकर स्वयं उपलब्धियों पर बल दिया जाता है। इसका मुख्य केन्द्र बिन्दु वे उद्देश्य है जिनको सरकार पूरा करना चाहती है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित कार्यक्रमों की लागत को प्रत्येक कार्यक्रम के अधीन संख्यात्मक आँकड़ें जो कार्यक्रम कार्यान्वियन और उपलब्धियों को मापन करते है, निर्धारित किए जाते हैं।

निष्पादन बजट सरकारी प्रचलन के कार्यों, कार्यक्रमों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं को पेश करने की एक कार्यविधि है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि निष्पादन बजट मूलत: लक्ष्योन्मुखी तथा उद्देश्यपरक प्रणाली पर आधारित है, जिसमें केवल संगठनात्मक आय-व्यय का हिसाब ही नहीं, बल्कि प्राप्त हुए निष्कर्षों या कार्य निष्पादन को मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।

3. जीरोबेस बजट

जीरोबेस बजट के अपनाए जाने के दो कारण नजर आते हैं-

1. अनेक देशों के बजट में निरन्तर पाया जाने वाला घाटा।
2. निष्पादन बजट प्रणाली के क्रियान्वन का अनुभव।

इस स्थिति ने इस बात की आवश्यकता उत्पन्न की थी कि व्ययों पर कटौती करके घाटों पर अंकुश लगाना आवश्यक है। शून्य आधारित बजट प्रणाली व्यय पर अंकुश लगाने की एक तार्किक प्रणाली है। इस प्रणाली में विगत व्ययों को विचार का कोई आधार नहीं बनाया जाता है। विगत व्यय को भावी व्यय के लिए तर्क के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। प्रश्न यह नहीं होता कि व्यय में कितनी वृद्धि अथवा कितनी कमी की जाए। प्रश्न यह है कि खर्च किया जाए या नहीं। इस प्रणाली में प्रत्येक क्रियाकलाप का शून्य आधार से पुन: औचित्य निर्धारित करना पड़ता है, न कि पुराने व्ययों पर नए व्ययों का प्रावधान करके। इस प्रणाली में निम्नलिखित कदम उठाए जाते है:-

1. उद्देश्यों को चिन्हित करना एवं लक्षित करना।
2. उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों की प्राथमिकताएं सुनिश्चित करना।
3. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न वैकल्पिक मार्गों पर विचार करना।
4. उचित विश्लेषण के द्वारा सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाना।
5. उन कार्यक्रमों को पूरा किया जाना जो अपना उपयोगी जीवन काल पूरा कर चुके हों।

भारत में जीरोबेस बजटिंग की प्रक्रिया की शुरूआत सरकारी क्षेत्र के एक प्रमुख शोध संगठन **'काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड**

इण्डस्ट्रियल रिसर्च' (सी.एस.आई. आर.) द्वारा की गई। केन्द्र सरकार के सभी मन्त्रालयों तथा विभागों में लागू करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा इसे बजट वर्ष 1987-88 से लागू करने का निर्णय लिया गया। वर्ष 1987-88 का बजट बनाते समय केन्द्र सरकार के सभी विभागों द्वारा जीरोबेस पद्धति पर बजट बनाने का प्रयास किया गया। इस वर्ष जीरोबेस बजटिंग के आधार पर कुछ सुरक्षा संस्थानों, सरकारी प्रिन्टिंग प्रेस, कुछ ऑर्डिनेन्स कारखानों, खाद्य एवं रसद विभाग, दूरसंचार विभाग, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, के आकार और क्रियाओं में भारी कटौती करने का निर्णय लिया गया। इस प्रणाली की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसके बाद के वर्षों में भी इसको प्रयोग में लाने पर जोर दिया जाता रहा है।

4. आउटकम बजट

'आउटकम बजट' के अन्तर्गत एक वित्तीय वर्ष के लिए किसी मन्त्रालय अथवा विभाग को आवंटित किए जए बजट में अनुश्रवण तथा मूल्यांकन किए जा सकने वाले भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण इस उद्देश्य से किया जाता है ताकि बजट के क्रियान्वयन की गुणवत्ता को परखा जाना सम्भव हो सके। केन्द्र सरकार द्वारा बजट की इस नई पद्धति की शुरूआत की घोषणा वर्ष 2005-06 के बजट में की गई और देश के संसदीय इतिहास में पहली बार 25 अगस्त, 2005 को आउटकम बजट वित्त मंत्री द्वारा संसद में प्रस्तुत किया गया। इस आउटकम बजट में वित्त द्वारा 44 मन्त्रालयों तथा उनसे सम्बन्धित विभागों के लिए वित्तीय संसाधनों के आवंटन के साथ -साथ उन लक्ष्यों का निर्धारण भी किया गया जो इस वर्ष के बजट का उपयोग करने पर प्राप्त किया जाना आवश्यक समझा गया।

इस वर्ष के बजट में **'आउटकम बजट'** की शुरूआत से विकास के प्रमुख कार्यक्रमों में प्रगति की गति के बारे में ससमय समुचित जानकारी प्राप्त करने की सम्भावनाएं बढ़ी है। इसी कारण से आउटकम बजट को एक नई प्रविधि के रूप में सामान्य बजट की तरह से अधिक उपयोगी पाए जाने की सम्भावनाएं भी व्यक्त की गई हैं। आउटकम बजट सामान्य बजट की तुलना में एक कठिन प्रक्रिया है जिसमें वित्तीय प्रावधानों को परिणामों के संदर्भ में देखा जाना होता है।

योजनाओं के लटके रहने और लागत बढ़ते जाने से जो नुकसान होता है उसकी जिम्मेदारी तय करने के लिए कोई तन्त्र भी उपलब्ध नहीं है। इस तरह की कई कमियों को दूर करने की कोशिश **'आउटकम बजट'** में की जा सकती है।

5. जेण्डर बजटिंग

देश में महिला अधिकारिता और महिला सशक्तिकरण की दिशा में बजट के योगदान को स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा जेण्डर बजटिंग की शुरूआत भी की गई है। जेण्डर बजटिंग के माध्यम से सरकार द्वारा महिलाओं के विकास, कल्याण और सशक्तिकरण से सम्बन्धित योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए प्रतिवर्ष बजट में एक निर्धारित राशि की व्यवस्था को सुनिश्चित करने के प्रावधान किए जाते है। उल्लेखनीय है कि बजट के तमाम प्रावधान पुरूष और स्त्री को अलग-अलग तरीके से प्रभावित करते हैं। दोनों के उत्तरदायित्व, भागीदारी व क्षमताएं किसी भी समाज में अलग-अलग होती है। ऐसे गाँव में जहाँ पीने के पानी की समस्या को वहाँ कुआँ खुदवाने पर किया गया खर्च पुरूष से ज्यादा महिला को प्रभावित करता है, क्योंकि इसे महिलाओं के लिए घरेलू कामकाज हेतु दूर जाकर तालाब या नदी से पानी भरकर लाने में व्यय किए गए समय की बचत होगी। इसी तरह महिला एवं शिशु स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं पर किया गया खर्च सीधा-सीधा महिलाओं के जीवन को प्रभावित करता है।

भारत में बजट संबंधी संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision Regarding Budget in India)

संविधान के अनुच्छेद 112 में वार्षिक वित्तीय विवरण का उल्लेख है जिसे राष्ट्रपति के निर्देशानुसार प्रति वर्ष संसद में प्रस्तुत किया जाता है। इस विवरण में सरकारी आय-व्यय का विस्तृत उल्लेख होता है। तकनीकी रूप से इस विवरण में निम्नांकित तथ्यों का समावेश किया जाना अनिवार्य है-

1. भारत की संचित निधि पर भारित होने वाले व्यय के विभिन्न मद।
2. इनके अतिरिक्त अन्य व्यय जिनकी भारिता भारत की संचित निधि पर होगी।

विवरण में राजस्व खाते के व्यय तथा अन्य प्रकार के व्यय के मध्य अंतर भी किया जाता है।

अनुच्छेद 112 में उन मदों का भी उल्लेख किया गया है जिनकी व्ययभारिता भारत की संचित निधि पर होती है-

1. राष्ट्रपति के वेतन तथा भत्ते।
2. लोक सभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते।
3. भारत सरकार द्वारा लिए गए ऋणों, ब्याज तथा अन्य संबंधित भुगतान।
4. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
5. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पेंशन।
6. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परिक्षक का वेतन एवं भत्ते।
7. किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण तथा ऐसे किसी कार्य पर होने वाले व्यय।
8. संसद द्वारा स्वीकृत कोई अन्य व्यय।

अनुच्छेद 113 में अनुदान की मांगों को प्रस्तुत करनेवाली प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जिसमें यह समावेशित है कि राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना ऐसी मांगें संसद में प्रस्तुत नहीं की जा सकती। इसी प्रकार अनुच्छेद 114 में विनियोग विधेयक तथा अनुच्छेद 115 में पूरक अनुदान का उल्लेख है। इसी प्रकार, लेखानुदान, प्रत्यानुदान तथा अपवादानुदान के प्रावधान अनुच्छेद 116 में किये गये हैं। इन प्रक्रियाओं का मूल उद्देश्य सरकार के वित्तीय क्रियाकलापों पर संसद के माध्यम से जनता का नियंत्रण स्थापित है।

बजट के घटक (Components of Budget)

सभी सरकारी बजटों का स्वरूप लगभग एक समान होता है। इसमें केवल व्यय की मदों, उनके पारस्परिक महत्व और उनको पूरा करने के साधनों में अंतर आ सकता है। बजट के दो भाग होते है

(A) **प्राप्तियां** और (B) **व्यय।**

(A) प्राप्तियां

सरकारी प्राप्तियां दो प्रकार की होती हैं : **(क) राजस्व प्राप्तियां और (ख) पूंजीगत प्राप्तियां।** राजस्व प्राप्तियां सभी स्रोतों से प्राप्त चालू आय प्राप्तियां होती हैं। कर, सरकारी उद्यमों के लाभ, अनुदान आदि इसके मुख्य रूप हैं। पूंजीगत प्राप्तियों में मुख्यतः सरकार द्वारा लिए गए ऋण आते हैं। राजस्व और पूंजीगत प्राप्तियों में एक महत्वपूर्ण अंतर है। राजस्व प्राप्तियों में सरकार को इन्हें भविष्य में वापिस करने की कोई जिम्मेदारी नहीं होती। पूंजीगत प्राप्तियां एक ऋण है। सरकार को इन्हें ब्याज सहित वापिस करना पड़ता है। सभी पूंजीगत प्राप्तियां या तो देयताओं (liabilites) में वृद्धि लाती हैं या फिर परिसम्पत्तियों (assets) में कमी करती हैं।

केन्द्र सरकार प्रत्यक्ष कर :- 1. निगम कर : यह कम्पनियों के लाभ पर लगाया गया कर है। 2. आय कर : यह व्यक्तियों की आय पर लगाया गया कर है। 3. ब्याज कर : यह ब्याज आय पर लगाया जाता है। 4. व्यय कर : यह व्यय करने पर लगाया जाता है। 5. सम्पत्ति कर : यह व्यक्तिगत सम्पत्ति पर लगाया जाता है। 6. उपहार कर : यह किसी को उपहार देने पर लगाया जाता है।

राज्य सरकार

1. होटल प्राप्तियों पर कर।
2. भू-राजस्व
3. कृषि आय पर कर
4. व्यवसाय कर
5. गैर शहरी अचल सम्पत्तियों पर कर
6. रोजगारों पर कर

केन्द्र सरकार अप्रत्यक्ष कर :- 1. सीमा शुल्क : यह कर आयात और निर्यात पर लगाया जाता है। 2. संघ उत्पादन शुल्क : ये कर केन्द्र सरकार द्वारा वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाता है। 3. सेवा कर : यह सेवाओं के उत्पादन पर लगाया जाता है। 4. बिक्री कर : यह वस्तुओं की बिक्री पर लगाया जाता है।

राज्य सरकारें:-

1. बिक्री कर/ व्यापार कर
2. डीजल/ पेट्रोल पर बिक्री कर।
3. स्टाम्प एवं पंजीयन शुल्क
4. राज्य उत्पाद शुल्क
5. वाहनों पर कर
6. वस्तुओं एवं यात्रियों पर परिवहन कर
7. विद्युत पर कर एवं शुल्क
8. गन्ने की खरीद पर शुल्क तथा उपकार
9. प्रवेश कर
10. विज्ञापन कर
11. शिक्षा उपकार
12. कच्चे जूट पर कर
13. सट्टेबाजी पर कर

DISCOVERY
Download From www.studymasterofficial.com

(क) राजस्व प्राप्तियां

कर सरकार की आय का परम्परागत स्रोत रहा है। वर्तमान शताब्दी में सरकार की आय का एक और स्रोत उभरा है। सरकार ने उत्पादन प्रक्रिया में सीधा भाग लेना शुरू कर दिया है। भारतीय रेलवे, राष्ट्रीयकृत बैंक, राज्य व्यापार निगम, इंडियन एयरलाइंस आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। सरकार की राजस्व प्राप्तियों का एक और स्रोत है। सरकार को विदेशों से अनुदान भी मिल सकते हैं। इन सभी स्रोतों को राजस्व प्राप्तियां कहा जाता है। इन्हें दो वर्गों में बांटा जाता है :

(i) कर राजस्व (ii) करेतर राजस्व।

(i) कर राजस्व

यह सरकार द्वारा लोगों पर लगाया गया कानूनी तौर पर एक अनिवार्य भुगतान है। आय कर उन पर लगता है जो आय प्राप्त करते हैं। भारत में वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति जिसकी वार्षिक आय 1 लाख 80 हजार रुपए से अधिक है, उसे आय कर देना पड़ता है। जो समय-समय पर बदलती रहती है। बिक्री कर वस्तुओं की बिक्री पर लगाया जाता है। बहुत-सी वस्तुएं जो हम खरीदते हैं उत्पादन शुल्क कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन करने पर लगाया जाता है। कुछ अन्य प्रकार के कर भी हैं जैसे सम्पत्ति कर, उपहार कर, चुंगी, आयात शुल्क आदि।

(ii) करेत्तर राजस्व

कर को छोड़कर राजस्व के सभी अन्य स्रोत करेतर राजस्व कहलाते हैं। भारत में केंद्रीय सरकार के करेत्तर राजस्व के तीन स्रोत हैं :

i. **ब्याज प्राप्तियां** : केन्द्रीय सरकार अपने विभागों लोगों, उद्योगों और स्थानीय निकायों, आदि को ऋण देती है और बदले में ब्याज लेती हैं।

ii. **लाभांश व लाभ** : केन्द्रीय सरकार अपने उद्यम होते हैं। ये सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम कहलाते हैं और निजी उद्यमों की तरह ये वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करते हैं। केन्द्रीय सरकार या तो इनमें अंशधारी है या इनका पूर्ण रूप से स्वामी है। इसमें सरकार को लाभांश और लाभ मिलता है।

iii. **विदेशी अनुदान** : सरकारी विभागों को विदेशी सरकारों से दान, उपहार, आदि के रूप में अनुदान मिलता है।

(ख) पूंजीगत प्राप्तियां

इनके अंतर्गत आप के उन समस्त स्रोतों को रखा जाता है जिनका हमें बदले में भुगतान करना होता है। केन्द्रीय सरकार के पूंजीगत प्राप्तियों के तीन मुख्य स्रोत हैं : (i) ऋण, (ii) ऋणों की वसूली और (iii) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के शेयरों की पुन: बिक्री।

i. **ऋण** :- केन्द्रीय सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करने के दो साधन हैं :

प्रत्यक्ष कर बनाम अप्रत्यक्ष कर

आय कर में कर भुगतान की जिम्मेदारी और वास्तविक भार एक ही व्यक्ति पर पड़ता है। इस कर का भार दूसरे व्यक्ति पर नहीं डाला जा सकता। ऐसे कर को **प्रत्यक्ष कर** कहा जाता है। बिक्री कर में भुगतान की जिम्मेदारी तो विक्रेता पर होती है लेकिन इसका भार क्रेता पर पड़ता है। क्रेता यह कर विक्रेता को देता है और विक्रेता इसको सरकार के पास जमा करता है। ऐसे कर को **अप्रत्यक्ष कर** कहते हैं। ऐसे कर का भार दूसरे व्यक्ति पर डाल दिया जाता है। इस प्रकार उत्पादन पर लगे सभी कर अप्रत्यक्ष कर कहलाते हैं क्योंकि उत्पादक इन्हें क्रेताओं से वसूल करता है।

व्यक्तिगत आयकर:- केन्द्र सरकार द्वारा इस कर का आरोपण व्यक्तियों की आय पर किया जाता है। इस कर से प्राप्त राजस्व को केन्द्र और राज्य सरकारों में वितरित किया जाता है। भारत में व्यक्तिगत आय कर प्रगतिशील है। अर्थात, करदाताओं की क्षमता के अनुरूप कर का आरोपण किया जाता है।?

निगम कर:- इस कर का आरोपण कंपनियों द्वारा अर्जित किये गये मुनाफे पर होता है। 1990-91 के उपरांत से भारत में निगम कर की दर में कमी की गई है। उल्लेखनीय है कि इस संबंध में 1991 में ही चेलैया समिति ने सुझाव दिये थे। निगम कर में कमी होने से विदेशी निवेश को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

न्यूनतम वैकल्पिक कर:- 1996-97 से सरकार द्वारा कंपनियों पर न्यूनतम वैकल्पिक कर (Minimum Alternative Tax, MAT) आरोपित किया गया है जिसके तहत निवल निगम कर के लिये रियायतों, छूटों, लाभों तथा मूल्य ह्रास को शामिल किया गया है।

ब्याज कर:- वित्तीय संस्थानों जैसे बैंक, वित्तीय कंपनी, सार्वजनिक वित्तीय संस्थान आदि, पर यह कर आरोपित किया जाता है। ब्याज कर का आरंभ सर्वप्रथम 1974 में किया गया था लेकिन इस प्रणाली को 1985 में समाप्त कर दिया गया था। इसे पुन: स्फीतिकारी दशाओं पर नियंत्रण रखने के लिए आरोपित किया गया लेकिन अन्तत: वर्ष 2000-01 के बजट में इसे पुन: समाप्त कर दिया गया।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

क. घरेलू ऋण :- ये ऋण देश के अंदर से प्राप्त किए जाते हैं। सरकार, सरकारी प्रतिभूतियां और राजकोषीय हुंडियां जारी करके वित्तीय बाजार से ऋण लेती है। सरकार आम जनता से विभिन्न जमा योजनाओं के माध्यम से ऋण लेती है। लोक भविष्य निधि, लघु बचत योजनाएं, इन्दिरा विकास पत्र, किसान विकास पत्र, राष्ट्रीय बचत योजना, राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र, आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। इन योजनाओं में जमा कराया गया पैसा सरकार को ऋण के रूप में दिया जाता है।

ख. विदेशी सहायता :- इसमें विदेशों से लिए गए ऋण आते हैं।

ii. **ऋणों की वसूली** :- केन्द्रीय सरकार देश में राज्य व स्थानीय सरकारों को ऋण देती है। इन ऋणों की वापस वसूली केन्द्रीय सरकार की पूंजीगत प्राप्तियां मानी जाती है।

iii. **सार्वजनिक क्षेत्र में उद्यमों के शेयरों की पुनः बिक्री** :- यह पूंजीगत प्राप्तियों का एक नया स्रोत है। अब तक सार्वजनिक उद्यमों में केन्द्र सरकार की 100 प्रतिशत भागीदारी होती थी। यानि पूरा निवेश केन्द्रीय सरकार ही करती थी। वर्ष 1991 में केन्द्रीय सरकार ने निजीकरण की नीति अपनायी। इस नीति के अधीन सरकार ने इन उद्यमों के शेयरों को आम जनता और वित्तीय संस्थाओं को बेचना शुरू कर दिया। इसे 'शेयर अनिवेश' कहा जाता है।

व्यय कर:- इस कर का आरोपण सर्वप्रथम 1987 में उन होटलों पर किया गया था जिनमें प्रति व्यक्ति प्रति दिन कमरे की दर 400 रुपए या उससे अधिक थी।

सम्पदा शुल्क:- यह कर उन व्यक्तियों पर आरोपित किया जाता था जिन्होंने आनुवांशिक रूप से सम्पदा प्राप्त की है। लेकिन वर्ष 1985 से इसे समाप्त कर दिया गया है।

सम्पत्ति कर:- सम्पत्ति के संचय के आधार पर इस कर का आरोपण किया जाता है अप्रैल 1993 से चेलैया समिति की सिफारिशों के आधार 15 लाख से अधिक की सम्पत्ति पर 1 प्रतिशत की दर से इस कर का आरोपण किया जाता है।

उपहार कर:- इसके आरोपण का मूल उद्देश्य सम्पदा शुल्क, सम्पत्ति कर तथा व्यय कर की होने वाली चोरी अथवा वंचना को कम करना था। इसका आरोपण उपहार देने वाले व्यक्ति पर किया जाता था। वर्ष 1998-99 से इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क:- यह शुल्क देश में उत्पादित होने वाले उत्पादों पर आरोपित किया जाता है। वर्ष 2002 में कई उत्पादों पर लगने वाले शुल्क का समाप्त कर दिया गया है।

सीमा शुल्क:- सीमा पार व्यापार पर आरोपित किये जाने वाले शुल्क को सीमा शुल्क कहते हैं। इसके तहत आयात और निर्यात शुल्क शामिल किया जाता है।

(B) **व्यय**

सरकारी व्ययों को दो वर्गों में बांटा जाता है: (अ) पूंजीगत व्यय और राजस्व व्यय व (ब) योजना व्यय और गैर-योजना व्यय।

अं. पूंजीगत व्यय बनाम राजस्व व्यय:- परिसम्पत्तियों पर होने वाला व्यय पूंजीगत व्यय कहलाता है। यह व्यय भवन, सड़कें, पुल, नहरें आदि निर्माण कार्यों पर व पूंजीगत समान आदि पर होता है। परिसम्पत्तियों के अतिरिक्त अन्य मदों पर किया जाने वाला व्यय राजस्व व्यय कहलाता है। यह वेतन का भुगतान, सम्पत्ति की देखभाल, लोगों को निःशुल्क सेवाएं आदि देने पर किया गया व्यय है।

ब. योजना व्यय बनाम गैर-योजना व्यय:- भारत ने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का रास्ता अपनाया जाता है। इसमें पंचवर्षीय योजनाएं बनायी जाती हैं और लागू की जाती हैं इन योजनाओं में प्राथमिकताओं के आधार पर सरकारी बजट में प्रति वर्ष व्यय का प्रावधान किया जाता है। ऐसे प्रावधान को योजना व्यय कहते हैं। सरकारी विभागों, विधायिकाओं, जल-आपूर्ति, सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसी जन सेवाओं को प्रदान करने पर व्यय। ये सभी व्यय गैर-योजना व्यय कहलाते हैं।

केन्द्र तथा राज्य सरकार के खाते (Accounts of Centre and State Governments)

दोनों के खाते तीन भागों में विभाजित किए जाते हैं जो निम्नलिखित प्रकार के होते हैं-

1. संचित निधि

सरकार को प्राप्त सभी प्रकार की आय, यथा-कर आय, करेत्तर आय, ऋण प्राप्तियाँ आदि इसमें शामिल की जाती हैं। इसी प्रकार समस्त

व्यय भी इसं
निर्दिष्ट कुछ
अपवादस्वरू
लिए राज्य
2. अ
इस कोष से
लोक सभा/
है। इस कोष
3. लो
इस खा
और भविष्य
राज्य विधान
राजव
यह वि
अर्थव्यवस्था
आधारित है।
बजट
जब अनुमा
बात पर नि
राजस्व घा
घाटा है। व
नागरिक प्र
करों से कर
राजस्व प्रा
के लिए वि
बजट घाट
के लिए घ
पर आधारि
– कुल ब
मौद्रिकृत
होता है। इ
किया जात
राजकोषी
संतुलन क

www.studymasterofficial.com Downloaded from

व्यय भी इसी खाते से किए जाते हैं। इस कोष की कोई भी राशि संसद के अनुमोदन के बिना व्यय नहीं की जा सकती (संविधान में निर्दिष्ट कुछ व्ययों को छोड़कर जैसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक आदि के वेतन का भुगतान)। अपवादस्वरूप होने वाले इन व्ययों को बजट में शामिल किया जाता है, परन्तु उन पर मतदान नहीं होता। इसी प्रकार राज्य सरकारों के लिए राज्य संचित कोष होता हैं जिनके व्यय की अनुमति राज्य विधान सभा देती है।

2. आकस्मिकता निधि

इस कोष से सरकार के ऐसे व्ययों को पूरा किया जाता है जिनमें विलम्ब नहीं किया जा सकता है। इस कोष से व्यय करने के लिए लोक सभा/ राज्य विधान सभा की पूर्व अनुमति नहीं लेनी पड़ती है, परन्तु ऐसे प्रत्येक व्यय को बाद में सदन से स्वीकृत कराना होता है। इस कोष का कोई भी अंश व्यय हो जाने के बाद सदन की अनुमति से संचित निधि से उसकी भरपाई कर दी जाती है।

3. लोक खाता

इस खाते में एकत्रित धनराशि सरकार की नहीं होती। इस खाते में वे धनराशियाँ सम्मिलित की जाती हैं, जो लघु बचतों, जमाओं और भविष्य निधि के रूप में सरकार प्राप्त करती है। इस खाते में से किसी भी प्रकार का भुगतान करने के लिए सरकार को लोक सभा/ राज्य विधान सभा से अनुमति की आवश्यकता नहीं होती हैं।

राजकोषीय प्रबंधन (Fiscal Management)

यह विदित है कि केन्द्र सरकार के वित्त, जिनमें सार्वजनिक व्यय तथा आय सम्मिलित हैं, के साथ राजकोषीय प्रबंधन की नीति अर्थव्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। राजकोषीय प्रबंधन की संकल्पना राजस्व प्राप्तियों तथा राजस्व व्यय के समेकन पर आधारित है। वस्तुतः यह लोक वित्त का प्रबंधन है।

बजट में प्रयुक्त घाटों की अवधारणाएं

जब अनुमानित प्राप्तियां, अनुमानित व्यय से कम पड़ जाए तो इसे घाटे के स्थिति कहा जाता है। घाटे की कई अवधारणाएं हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यय और प्राप्तियां कौन-कौन सी हैं। ये हैं :-

राजस्व घाटा:- राजस्व आय से राजस्व व्यय का अधिक होना ही राजस्व घाटा है। व्यावहारिक रूप से यह देखा गया है कि राजस्व घाटा है। व्यावहारिक रूप से यह देखा गया है कि राजस्व खाते पर होने वाला व्यय परिसंपत्तियों का निर्माण नहीं करता। इस व्यय में नागरिक प्रशासन, कानून और व्यवस्था, न्याय, प्रतिरक्षा, ब्याज भुगतान तथा सहायिकी सम्मिलित होते हैं। इसके लिए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों से कर राजस्व तथा गैर-कर राजस्व के रूप में सार्वजनिक उपक्रमों से लाभांश प्राप्त किए जाते हैं। यह स्पष्ट है कि राजस्व व्यय, राजस्व प्राप्तियों से कम होना चाहिए जिससे चालू राजस्व का शेष अधिक हो। इस अतिरेक का उपयोग उत्पादन परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए किया जा सकता है।

बजट घाटा:-समस्त व्यय के समस्त प्राप्तियों से अधिक होने से उत्पन्न घाटे को बजट घाटा कहते हैं। इस प्रकार के घाटे को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था अथवा हीनार्थ प्रबंधन की प्रक्रिया प्रयोग में लाई जाती है। यह अवधारणा कुल प्राप्तियों और कुल व्यय पर आधारित है। कुल बजट व्यय की, कुल बजट प्राप्तियों पर अधिकता बजटीय घाटा कहलाती है। बजटीय घाटा = कुल बजट व्यय – कुल बजट प्राप्तियां

मौद्रिकृत घाटा:- रिजर्व बैंक के अनुसार, मौद्रिकृत घाटा सरकार को रिर्जव बैंक द्वारा दिये जाने वाले ऋण की मात्रा में हुई वृद्धि से होता है। इसमें बड़ी संख्या में राजकोषीय हुंडियां शामिल होती हैं। इसका महत्व यह है कि इससे सरकारी व्यय द्वारा मुद्रा प्रवाह का प्रसार किया जाता है। इससे बैंकों की साख प्रणाली का भी सुदृढ़ीकरण होता है। लेकिन इससे मुद्रा स्फीति में भी वृद्धि की आशंका होती है।

राजकोषीय घाटा:- बजटीय घाटे तथा देयताओं के समेकन से उत्पन्न घाटे को राजकोषीय घाटा कहते हैं। किसी देश के राजकोषीय संतुलन का अध्ययन करने वाले उपकरणों में इसका सर्वाधिक महत्त्व है। राजकोषीय घाटे में हीनार्थ प्रबंधन तथा ऋणों को भी सम्मिलित

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

किया जाता है।

प्राथमिक घाटा:- राजकोषीय घाटे में से ब्याज भुगतान को घटाने से प्राथमिक घाटा प्राप्त होता है। इस संकल्पना का आरंभ 1993-94 के बजट से किया गया था। यह सरकार की वास्तविक स्थिति का आकलन करने में सहायक है।

राजकोषीय घाटा = (कुल व्यय-कुल प्राप्तियां)+ देनदारियां

राजकोषीय घाटे के बढ़ने के कारण

बढ़ते राजकोषीय घाटे के कारणों को दो स्तरों पर देखा जा सकता है-प्रथम, सार्वजनिक आय में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है। द्वितीय सार्वजनिक व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही है जिसे पूरा करने के लिये निरन्तर सार्वजनिक ऋण का सहारा लेना पड़ रहा है। यद्यपि हाल के वर्षा में अनेक सार्वजनिक उद्यम लाभ कमाने लग गये हैं तथापि इनकी हानियाँ अभी भी उच्च स्तर पर है। धनिकों की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होने के कारण तथा व्यापक प्रयासों के बावजूद कर चोरी पर पूरी तरह से लगाम न कस पाने के कारण भी कर आय में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है। विकास हेतु नियोजन का मार्ग अपनाने तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण सार्वजनिक व्यय निरन्तर बढ़ता जा रहा है, रक्षा संबंधी आवश्यकताओं का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है।

राजकोषीय घाटे के प्रभाव

बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा सरकार की उधारी में वृद्धि प्रदर्शित करता है, बढ़ते हुए ऋण दायित्व के साथ ब्याज अदायगी में वृद्धि होगी। फलस्वरूप राजस्व घाटा बढ़ेगा जो राजकोषीय घाटे में और वृद्धि लायेगा, यह अर्थव्यवस्था में समग्र मांग में वृद्धि लाता है, फलस्वरूप मूल्य स्तर में वृद्धि लाता है। आन्तरिक मूल्य स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप एक ओर निर्यात हतोत्साहित होता है तो दूसरी ओर मौद्रिक आय में वृद्धि सार्वजनिक व्यय के परिणामस्वरूप आयात में वृद्धि लायेगी फलस्वरूप भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता बढ़ेगी। इस प्रकार राजकोषीय घाटा आन्तरिक और बाह्य स्थिरता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

वस्तुत: बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये शुभ संकेत नहीं है अत: प्रत्येक अर्थव्यवस्था में राजकोषीय अधिकारियों का मुख्य जोर राजकोषीय घाटे को कम करने पर ही होता है।

भारत में राजकोषीय सुधार (Fiscal Reforms in India)

भारतीय अर्थव्यवस्था में जो राजकोषीय सुधार किये गये उनमें से केन्द्र सरकार के राजकोषीय सुधार 1991-92 से प्रारम्भ हुए जबकि राज्य सरकारों ने 90 के दशक के अन्त में शुरू किया। इन सुधारों का अध्ययन निम्नांकित प्रकार से कर सकते हैं-

1. कर सुधार (Tax Reform)

कर सुधारों का उद्देश्य राजस्व में वृद्धि तथा कर ढांचे में व्याप्त व्याप्तियों आदि को दूर करना था। इससे कर आधार में फैलाव आया है, कर स्लैब में कमी आयी है तथा साथ ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों करों के सम्बन्ध में कर की उच्चतम दर में कमी आयी है। प्रमुख सुधार हैं-

विभिन्न करों जिनमें व्यक्तिगत आयकर, निगम कर तथा सीमा शुल्क विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि दरों में काफी कमी की गयी है। उल्लेखनीय है कि व्यक्तिगत आयकर की सीमांत दर वर्ष 1980-81 में 60% थी और वर्ष 1985 में 97.5% थी, निगम कर की उच्चतम दर वर्ष 1980-81 में 65-70% थी तो वहीं सीमा शुल्क की दर गैर कृषि वस्तुओं के सन्दर्भ में 300% थी।

- उपहार कर पर आयकर के संबंध में नया नियम 1 अक्टूबर 2009 से लागू किया गया। जिसके तहत 50 हजार रूप से अधिक मूल्य के उपहार लेने पर उपहार के मूल्य का 30% आयकर के रूप मे देय होगा।
- पूंजी लाभ कर तथा लाभांश कर का विवेकीकरण।
- व्यय पर नियन्त्रण के लिये व्यय कर की नयी उद्भावना।

Download from www.studymasterofficial.com

- 2000-01 बजट से CENVAT का लागू करना, जो निश्चित रूप से राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय वैट लागू करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। उल्लेखनीय है कि राज्य स्तर पर 1 अप्रैल 2005 से 'स्टेट वैट' लागू होने के बाद निश्चित रूप से 'राष्ट्रीय वैट' लागू करने की संकल्पना पूरी हो सकेगी।
- जी. एस. टी. की नवीन उद्भावना।

2. सार्वजनिक व्यय प्रबंध (Public Expenditure Management)

- अनुत्पादक राजस्व व्ययों में कमी लाने के उद्देश्य से VRS (Voluntary Retirement Scheme) लागू करना।
- सार्वजनिक क्षेत्रों को बाजार से अपने संसाधन जुटाने पर बल तथा उन्हें दी जाने वाली बजेटरी सहायता को समाप्त करना।
- व्यय सुधार आयोग की नियुक्ति।
- पैट्रोलियम क्षेत्र से प्रशासित मूल्य नीति की समाप्ति तथा अप्रैल 2002 से ऑयल मूल्य एकाउण्ट की समाप्ति।
- सब्सिडीज का लक्ष्यीकरण तथा उसमें कटौती।
- आउटकम व परफोरमेन्स बजट का प्रस्तुतीकरण।

3. सार्वजनिक क्षेत्र का पुनर्गठन

- विनिवेश आयोग की स्थापना।
- उत्पादन के क्षेत्र में राज्य की भूमिका सीमित करने पर बल।
- हानि पर काम करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के सम्बन्ध में बी. आई. एफ. आर. की शर्तों का लागू करना।
- सार्वजनिक उद्यमों की लिये बजेटरी सहायता की समाप्ति तथा पूंजी बाजार से संसाधनों की उगाही पर बल।

4. सार्वजनिक ऋण और राजकोषीय घाटा

- राजकोषीय उत्तरदायित्व बिल प्रबन्धन एक्ट, 2003 का क्रियान्वयन।
- घाटे के प्रत्यक्ष मौद्रीकरण को हतोत्साहन तथा अग्रिम ट्रेजरी बिल्स की समाप्ति व उसके स्थान पर अर्थोपाय अग्रिम की प्रणाली का प्रारम्भ।
- स्वैप क्रिया के द्वारा सार्वजनिक ऋणों के औसत ब्याज दर में कमी लाना जिससे कुल ब्याज दायित्व में कमी हो सके।
- सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज की दर को बाजार ब्याज दर से जोड़ना।
- एस. एल. आर. को 38.5% से घटाकर 25% पर लाना।

राजकोषीय घाटा एक बेहतर माप क्यों है? (Why Fiscal Deficit is a better Measurment?)

राजकोषीय घाटा, बजटीय घाटा की अपेक्षा एक व्यापक और बेहतर माप है। इसके दो कारण हैं: प्रथम, यह व्यय को पूरा करने के लिए धन जुटाने की समस्या का सही-सही माप है। यह वर्ष के दौरान देयताओं में वृद्धि का सही माप है। बजटीय घाटा केवल एक आंशिक माप है। दूसरा, राजकोषीय घाटा इस बात का भी संकेत देता है कि भविष्य में ब्याज के भुगतान और ऋणों की वापसी पर कितना और व्यय करना होगा। संभव है कि भविष्य में सरकार को इसके भुगतान के लिए और अधिक ऋण लेने पड़े या और अधिक कर लगाने पड़ें।

घाटा पूरा करने के वित्तीय स्रोत (Financial Sources to Cover up Deficit)

सरकार के सामने घाटा पूरा करने के तीन वित्तीय स्रोत होते हैं:

(क) जनता और विदेशी सरकारों से ऋण।

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

(ख) भारतीय रिजर्व बैंक में रखी हुई नकद शेष (Cash Balance) को निकालना।

(ग) भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण लेना।

व्ययों को पूरा करने के लिए सरकार जनता से ऋण लेना अधिक पसंद करती है क्योंकि अन्य स्रोतों से व्ययों को पूरा करने पर मुद्रा पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। जनता से ऋण लेने पर देश में कुल मुद्रा पूर्ति पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् इसका शून्य प्रभाव होता है। जनता के पास मुद्रा पूर्ति कम हो जाती है और सरकार के पास यह बढ़ जाती है।

दूसरी ओर, भारतीय रिजर्व बैंक में रखी 'नकद शेष' को निकालने या उससे ऋण लेने पर देश में मुद्रा पूर्ति बढ़ जाती है। भारतीय रिजर्व बैंक से बाहर आने वाली मुद्रा, मुद्रा-पूर्ति को बढ़ाती है। इससे देश में कीमतें बढ़ सकती हैं और अर्थव्यवस्था में कई अन्य समस्याएं जन्म ले सकती हैं। अतः कोई और विकल्प न होने पर ही सरकार ये स्रोत प्रयोग में लाती है।

हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing)

सरकारी बजटीय व्यवहार से उत्पन्न घाटे या नियोजित घाटे के वित्तीयन के ढंग को हीनार्थ प्रबन्धन कहते हैं। अतः हीनार्थ प्रबन्धन उस स्रोत पर प्रभाव डालता है जिनसे घाटे की पूर्ति होगी। सामान्यता केन्द्र सरकार अपने घाटे की आपूर्ति निम्नांकित स्रोतों से करती है-

1. एडहॉक ट्रेजरी बिल्स
2. रिजर्व बैंक से नकद शेषों की निकासी के द्वारा
3. सार्वजनिक ऋणों के लिये रिजर्व बैंक का निवल योगदान।

यदि बजटीय व्यवहार से उत्पन्न घाटे को बजटीय घाटा के रूप में परिभाषित किया जाये तो इस घाटे की पूर्ति रिजर्व बैंक से केवल एडहॉक ट्रेजरी बिल्स के निर्गमन या रिजर्व बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय के द्वारा होगी जिसे प्रत्यक्ष मौद्रीकरण कहा जाता है जिसके द्वारा मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होगी। चूंकि मुद्रा की पूर्ति में, मूल्य स्तर में वृद्धि लायेगी, इसलिये इस प्रकार के वित्तीयन को हम 'मुद्रा प्रसारीय वित्त व्यवस्था या स्फीतिक वित्तीय व्यवस्था' कहते हैं।

1985 में चक्रवर्ती कमेटी की रिपोर्ट के बाद, जैसा कि विकसित देशों में स्वीकार किया जाता है, बजट घाटे को बजटीय घाटे के रूप में न लेकर राजकोषीय घाटे के रूप में लिया गया अतः अब कोई आवश्यक नहीं है कि इसके कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो ही और ऐसी स्थिति में जबकि बजटीय घाटा शून्य हो, घाटे की वित्त व्यवस्था = सरकार की सम्पूर्ण देयता होगी।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 1997-98 में एडहॉक ट्रेजरी बिल्स के निर्गमन पर रोक तथा अर्थोपाय अग्रिम की व्यवस्था के प्रारम्भ होने से भारत में बजटीय घाटा शून्य हो गया है। इससे अब भारत में हीनार्थ प्रबन्धन अनिवार्यतः स्फीतिकारी नहीं रह गया है।

बजटीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Budgetary Policy)

बजटीय नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. **देश को प्रभावी प्रशासन देना** :- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार पुलिस, सेना, विधायिकाओं, न्यायालयों, सरकारी विभागों आदि पर व्यय करती है।
2. **मूलभूत सुविधाएं प्रदान करना** :- इसके लिए सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, जल व बिजली आपूर्ति, परिवहन, डाक व दूर संचार सेवाएं, सड़क, पुल, पार्क आदि पर व्यय करती है।
3. **रोजगार के अवसर प्रदान करना** :- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार कई कदम उठाती है। वह सार्वजनिक उद्योग खोलती है। उत्पादन और रोजगार को प्रोत्साहन देने के लिए निजी उद्योगों को अनुदान देती है। करों में छूट, अनुदान, ऋण आदि के द्वारा लघु, कुटीर व ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देती है। रोजगार के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से सार्वजनिक निर्माण कार्यों जैसे सड़क, पुल, सरकारी भवन आदि का निर्माण कार्य करती है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

4. **कीमतों में स्थिरता लाना** :- आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में स्थिरता बनाए रखना सरकार की जिम्मेदारी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार उचित दर की दुकानें खोलती है, अन्न का भण्डार रखती है, आदि। सरकार आवश्यक वस्तुएं जैसे रसोई गैस, बिजली, पैट्रोल आदि की अधिकतम कीमतें निश्चित करती है।
5. **आय की असमानताएं कम करना** :- सरकार अमीर वर्ग पर कर लगाकर और गरीब वर्ग पर व्यय आय की असमानताएं कम कर सकती है।
6. **आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देना** :- लोहा, रसायन, रासायनिक खाद, मशीन निर्माण जैसे आधारभूत उद्योग खोलकर सरकार आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा दे सकती है। प्राय: निजी उद्योग इन व्यवसायों को खोलने में आगे नहीं आते क्योंकि इनमें बहुत अधिक निवेश की आवश्यकता होती है। लेकिन देश में औद्योगिक वातावरण बनाने में इन उद्योगों की बहुत बड़ी भूमिका होती है।
7. **भुगतान संतुलन में घाटे को ठीक करना** :- देश के भुगतान संतुलन खाते में विदेशी प्राप्तियां और भुगतान आते हैं। जब विदेशों को किया गया भुगतान, विदेशों से प्राप्त किए गए भुगतानों की अपेक्षा अधिक होता है तो भुगतान संतुलन में घाटा आ जाता है। निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होने से ऐसा होता है। सरकार आयात पर भारी सीमा शुल्क लगाकर इन्हें कम करने की कोशिश करती है। सरकार अनुदान देकर निर्यातों को प्रोत्साहन भी देती है ताकि घाटा कम हो सके।

राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

किसी देश की राजकोषीय नीति आर्थिक विकास के लिए सरकार की रणनीति का परिचायक है। इसके माध्यम से सरकार मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण रखने, नियति को बढ़ावा देने आदि का कार्य करती है। राजकोषीय नीति को बजट नीति के परिप्रेक्ष्य में भी समझा जा सकता है। राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार यह सुनिश्चित करती है कि कर से कितना राजस्व प्राप्त किया जाना है तथा आर्थिक प्रक्रियाओं को समर्थन देने के लिए किस प्रकार के कार्य किए जाते हैं। मंदी के दौरान इस नीति की सहायता से अर्थव्यवस्था के विस्तार का कार्य किया जा सकता है। वस्तुत: अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखने में राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

किसी राष्ट्र का केन्द्रीय बैंक (भारत में रिजर्व बैंक) मुद्रा की मांग को अर्थव्यवस्था के साथ समायोजित करने का प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक मुद्रा प्रवाह का प्रसार तथा संकुचन करने के लिए ब्याज की दरों तथा अन्य उपकरणों के माध्यम से प्रयास करता है। अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण सरकार द्वारा किया जाता है जिसके लिए सरकारी व्यय तथा प्रशासन को अनुकूलित किया जाता है।

भारत में राजकोषीय प्रबंधन में 1991 में व्यापक परिवर्तन हुए थे। इसका मुख्य कारण आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया का आरंभ था। नई राजकोषीय नीति सतता के साथ राजकोषीय संतुलन स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसमें अर्थव्यवस्था के बाजारोन्मुखी विकास की भावना निहित है। पूंजीगत व्यय को पूरा करने के लिए राजस्व खाते पर अतिरेक प्राप्त करने के उद्देश्य से नीति में राजस्व प्राप्तियों एवं राजस्व व्यय में समंजस्य स्थापित करने पर बल दिया गया है। राजकोषीय नीति के प्रावधानों को तार्किक आधार प्रदान करने के लिए तीन मुख्य प्रयास किए गए हैं:

- प्रथम प्रयास व्यय से संबंधित है। व्यय में वृद्धि कम करना लक्षित है जिसमें गैर-योजनागत व्यय में कमी लाना भी सुनिश्चित किया जाएगा।
- द्वितीय प्रयास का संबंध कर राजस्व से है। कर राजस्व में वृद्धि के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास किये जायेंगे। **लैफर वक्र** की संकल्पना की समझ विकसित कर करारोपण की दर में कमी तथा कर के आधार का विस्तार करना सुनिश्चित है। लैफर वक्र के अनुसार, अनुकूलतम स्तर से कर की दर में कमी अथवा वृद्धि से कर राजस्व में कमी होती है।
- तीसरे प्रयास के रूप में सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ अर्जन में वृद्धि की जायेगी। घाटे में चलने वाले सार्वजनिक उपक्रम के पुनर्वास का प्रावधान है। अन्यथा उन्हें बंद किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कई इकाइयों में विनिवेश को भी प्रोत्साहित किया जायेगा।

घाटे को कम करने के उद्देश्य से सरकार ने एक वृहत नकद प्रबंधन प्रणाली का क्रियान्वयन राष्ट्रीय स्तर पर किया है। सभी मंत्रालयों

को व्यय कम करने के निर्देश भी दिये गये हैं। आंकड़ों के अनुसार, भारत पर वर्तमान में विश्व बैंक, जापान, इटली, बेल्जियम तथा ओपैक देशों के उच्च ब्याज दर वाले ऋण की भारिता है। राज्यों के ऋण के संबंध में उल्लेखनीय है कि केन्द्र ने ऐसे राज्यों की ऋणभारिता कम करने के लिए विशिष्ट रणनीति निर्धारित की है। इससे राज्यों द्वारा लगभग 81,000 करोड़ रुपए की बचत की जा सकेगी।

भारत में राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए निम्नांकित प्रयास किये जाते हैं -

1. वैश्विक स्तर पर भारत को प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए रोजगार सृजन तथा आधारभूत संरचनाओं के विकास पर बल दिया जाता है। इसके तहत परिवहन सेवाओं का विस्तार किया जा रहा है। वर्ष 2003 में 48 सड़क परियोजनाओं की मंजूरी दी गई थी। साथ ही, दो विमानपत्तनों तथा दो बंदरगाहों का भी निर्माण किया जाना था। यह आशा व्यक्त की गई है कि इन आधारभूत संरचनाओं से भारत के विनिर्माण निर्यात का संवर्द्धन किया जा सकेगा।
2. भारतीय कंपनियों द्वारा निवेश पर दिये जाने वाले लाभांश पर कर की छूट का प्रावधान था। घरेलू कंपनियों के लाभांश वितरण पर 12.5% के कर का प्रावधान किया गया जिसने लगभग 7% की कमी व्यक्तिगत पूंजी प्राप्तियों में की। सरकार द्वारा मार्च 2004 के पूर्व स्थापित कंपनियों जो अनुसंधान एवं विकास के क्षेत्र से संबद्ध हैं, को कर अवकाश देती है।
3. निवेश को बढ़ावा देने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहन। साथ ही अन्तर्राज्यीय बिक्री-कर सीमा में कमी।
4. आवास, शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में अतिरिक्त निवेश। इसका मूल उद्देश्य श्रम शक्ति की कार्यकुशलता में वृद्धि है।

राजकोषीय उत्तदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम 2003 (FRBM Act. 2003)

के अनुपालन हेतु रोड मैप तैयार करने के लिए वित्तमंत्री के तत्कालीन सलाहकार विजय केलकर की अध्यक्षता में गठित कार्यदल ने अपनी दूसरी रिपोर्ट तत्कालीन केन्द्रीय वित्तमंत्री पी. चितम्बरम को 23 जुलाई, 2004 को प्रस्तुत की। राजस्व घाटे के सन् 2008-09 तक शून्य करने, राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3 प्रतिशत तक सीमित करने तथा कर जी.डी.पी. अनुपात में वृद्धि के लिए इस रिपोर्ट में व्यय कम करने के स्थान पर राजस्व में वृद्धि पर बल दिया गया। राजस्व वृद्धि के लिए कार्यदल ने कर की दरें नीची रखने तथा कर स्लैब्स की संख्या कम रखने, कराधार में वृद्धि करने तथा करापात को उपभोग की ओर विवर्तित करने के पक्ष में सिफारिश की थी। इसी संदर्भ में आय कर के केवल तीन स्लैब्स निर्धारित करने को कार्यदल ने कहा था। एक लाख रूपये तक की वार्षिक आय पर कर की दर शून्य रखने, एक लाख रूपये से अधिक किन्तु 4 लाख रू. तक 20 प्रतिशत तथा 4 लाख रू. से अधिक की आय पर इसे 30 प्रतिशत रखने की संस्तुति रिपोर्ट में की गई। कार्यदल ने मानक कटौती सहित आयकर में छूटों के अधिकांश प्रावधानों को समाप्त करने को कहा। आवास ऋणों को विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए इन पर दी जा रही आयकर छूटें को भी जारी रखने को रिपोर्ट में कहा गया। वरिष्ठ नागरिकों व महिलाओं को दी जा रही छूट को भी जारी रखने को इसमें कहा गया।

कर छूट के लिए बचतों के संबंध में विवेकीकरण के लिए ईईटी (EET-Exempt, Exempt, taxable) प्रणाली लागू करने की संस्तुति कार्यदल ने की। इसके तहत बचत सम्बन्धी योगदान व उस पर ब्याज कर मुक्त रहे, जबकि निकासी को आय मानते हुए कर योग्य माना जाए। इससे आयकर अधिनियम की धारा 80 एल के तहत दी जाने वाली छूट अनावश्यक हो जाएगी।

निगम कर के मामले में दो पैकेज कार्यदल द्वारा सुझाए गए। पहले पैकेज के तहत् स्वदेशी कम्पनियों पर कर की दर को 35.875 प्रतिशत के मौजूदा स्तर से घटाकर 30 प्रतिशत करने की संस्तुति कार्यदल ने की। साथ ही मूल्य ह्रास दर को 25 प्रतिशत से घटाकर 15 प्रतिशत करने को इसने कहा। दूसरे पैकेज के तहत् वितरित किए जाने वाले लाभांश को कर मुक्त करने को रिपोर्ट में कहा गया।

सीमा कर के मामले में केवल तीन दरें रखने का सुझाव कार्यदल ने दिया आसियान राष्ट्रों की दरों के अनुरूप यह दरें क्रमशः 5,8,10 प्रतिशत रखने को रिपोर्ट में कहा गया।

भारत की राजकोषीय नीति के दोष (Shortcomings of Indian Fiscal Policy)

1. अव्यवस्थित कर प्रणाली
2. परोक्ष करों की अधिकता

Downloaded from www.studymasterofficial.com

3. राष्ट्रीय आय का कम भाग करों के रूप में लिया जाना।
4. केंद्र व राज्य सरकारों में समन्वय का अभाव
5. हीनार्थ प्रबंध
6. अकार्य कुशल कर प्रणाली
7. सार्वजनिक आय का अपव्यय
8. बढ़ता हुआ सार्वजनिक ऋण

भारतीय कर प्रणाली की विशेषताएं (Characteristics of Indian Tax System)

मुख्य रूप से भारतीय कर प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान है-

1. विस्तृत आधार तथा बहु कर व्यवस्था
2. प्रत्यक्ष करों तथा अप्रत्यक्ष करों दोनों में वृद्धि कर रूख।
3. केंद्र के कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों की प्रमुखता
4. लचीलापन और प्रफुल्लता
5. कर संरचना में संरचनात्मक परिवर्तन
6. सकल घरेलू उत्पाद में केंद्रीय कर राजस्व का बहुत नीचा प्रतिशत
7. समानता
8. कर चोरी पर नियंत्रण
9. अधिकतम सामाजिक लाभ

कर सुधार से सम्बंधित प्रमुख समितियाँ (Important Commetties Regarding Tax Reforms)

चेलैया समिति

इस समिति का गठन अगस्त 1991 में किया गया था जिसने अपनी अंतरिम रिपोर्ट फरवरी 1992 तथा अंतिम रिपोर्ट अगस्त 1992 तथा जनवरी 1993 में दी थी। समिति ने कर प्रणाली को राजस्व में वृद्धि के उद्देश्य से सुदृढ़ बनाने हेतु कई सुझाव दिया। इन सुझावों में निम्नांकित प्रमुख हैं :-

1. निर्यातकों के लिए पूर्व लाइसेंस प्रणाली को बनाये रखना।
2. आयात सूची में उल्लिखित नहीं होने वाले उत्पादों पर 5% के उत्पाद शुल्क का आरोपण।
3. आयात शुल्क के लिए शून्य-दर प्रणाली की समाप्ति।
4. ब्याज कर की समाप्ति।
5. करदाता पहचान प्रणाली का आरंभ।
6. गैर-कृषकों की 25,000 रुपए तथा उससे अधिक की कृषि आय पर कर आरोपण।
7. उपहार कर की सीमा को 25,000 रुपए से बढ़ाकर 30,000 रुपए करना।

चेलैया समिति की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने विद्यमान कर संरचना में व्यापक परिवर्तन किये हैं। इनमें कर के आधार के विस्तार

Downloaded From
DISCOVERY

पर सर्वाधिक बल दिया गया है। सरकार ने यह संभावना व्यक्त की है कि इस प्रकार के परिवर्तनों से कर राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में कर-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात बेहतर होने की प्रबल संभावना है।

केलकर समिति

भारत की कर संरचना में व्यापक सुधार करने के उद्देश्य से सितम्बर 2002 में भारत सरकार द्वारा विजय एल॰ केलकर की अध्यक्षता में दो कार्य बलों का गठन किया गया था। प्रत्यक्ष करों पर गठित कार्य बल ने अपनी रिपोर्ट 2 नवम्बर 2002 को तथा अप्रत्यक्ष करों पर गठित कार्य बल ने अपनी रिपोर्ट 25 नवम्बर 2002 को सौंपी थी। कार्य बल ने अपनी अंतिम रिपोर्ट दिसम्बर 2002 में दी थी–

प्रत्यक्ष करों से संबंधित सिफारिशें

1. करदाता सेवा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक विस्तार। ई-मेल तथा अन्य सुविधाओं तक करदाताओं की पहुँच बढ़ाने का प्रयास।
2. सभी नागरिकों एवं एजेंटों तक स्थाई लेखा संख्या (Permanent Account Number) का विस्तार।
3. चार माह में सभी आयकर रिटर्न का प्रसंस्करण।
4. एक कर सूचना नेटवर्क का निर्माण। कर की छूट की प्रणाली को तार्किक एवं सरलीकृत करने का प्रयास।
5. सामान्य श्रेणी के करदाताओं के लिए आयकर छूट सीमा 1 लाख रुपए तथा वरिष्ठ नागरिकों और विधवाओं के लिए 1.5 लाख रुपए तक की आयकर छूट।
6. व्यक्तिगत आयकर की द्विस्तरीय संरचना 4 लाख रुपए तक की आय पर 20 प्रतिशत तथा 4 लाख रुपए से अधिक की आय पर 30 प्रतिशत कर का आरोपण। व्यक्तिगत आयकर पर आरोपित होने वाले अधिभार कर समाप्ति।
7. मानक छूट की समाप्ति।
8. आयकर अधिनियम 1961 की धाराओं 88, 88 ई तथा 10 के तहत दी जाने वाली छूट की समाप्ति।
9. घरेलू कंपनियों के तहत निगम कर 30 प्रतिशत जबकि विदेशी कंपनियों के लिए 40 प्रतिशत निगम कर।
10. न्यूनतम वैकल्पिक कर की समाप्ति।
11. होटलों में व्यय कर तथा सेवा कर का एकीकरण।
12. संपदा शुल्क की समाप्ति।

अप्रत्यक्ष करों से संबंधित सिफारिशें

1. सभी आयातकरों एवं निर्यातकों के लिए सीमा क्लियरेंस का सार्वभौमिकीकरण।
2. उच्च स्तरीय मंत्रिमंडलीय समिति से अन्तर-एजेंसी मुद्दों को हल करने का प्रयास।
3. आयात-निर्यात आवेदन के प्रसंस्करण की अवधि का निर्धारण।
4. प्रसंस्करण के चरण तक मूल्य वर्द्धन पर प्रगतिशील केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का आरोपण।
5. पूंजीगत उत्पादों तथा आगमों के विभेद को समाप्त करने के लिए सेनवैट नियमों में संशोधन।
6. 2003-04 से कच्चे तेल पर 8 प्रतिशत तथा पेट्रोलियम उत्पादों पर 15 प्रतिशत शुल्क तथा 2004-05 से कच्चे तेल पर 5 प्रतिशत तथा पेट्रोलियम उत्पादों पर 10 प्रतिशत शुल्क का आरोपण।
7. विशिष्ट कृषि उत्पादों पर 150 प्रतिशत का उच्च शुल्क।
8. सेनवैट से अन्य सभी शुल्कों का प्रतिस्थापन।
9. सभी तंतुओं एवं रेशों पर सार्वभौमिक 16 प्रतिशत शुल्क का आरोपण। इसके लिए कपास रेशों पर आरोपित 8 प्रतिशत शुल्क को बढ़ाकर 14 प्रतिशत तथा पॉलिएस्टर धागों के शुल्क को चार किश्तों में घटाकर 14 प्रतिशत करना।

DISCOVERY
Download www.studymasterofficial.com

सेवा कर राजस्व

वर्ष	सेवाओं की संख्या	कर दर (1% में)	राजस्व (₹ करोड़ में)	गत वर्ष की तुलना में संवृद्धि (1% में)
2004-05	75	10	14200	80
2005-06	78	10	23055	62.4
2006-07	93	12	37598	63.1
2007-08	100	12	51301	36.4
2008-09	106	12	60941	18.8
2009-10 (अनुमान)	109	10	58454	-4.1
2010	117	10	44081	19.2

10. वैट (मूल्य वर्द्धित कर) का आरोपण।

मूल्य वर्द्धित कर (वैट) (Value Added Tax)

वैट एक बहुस्तरीय कर प्रणाली है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण के विभिन्न चरणों पर होने वाले मूल्य वर्द्धन पर इसका आरोपण किया जाता है। इस कारण इसे उत्पाद और सेवा कर भी कहते हैं। भारत में वैट की दोहरी प्रणाली लागू की गई है, पहली केन्द्र तथा दूसरी राज्य के स्तर पर। प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उत्पादों के अन्तराज्यीय विक्रय पर लगने वाले बिक्री कर को चरणबद्ध रूप से समाप्त कर दिया जायेगा। सरकार द्वारा जनवरी, 2005 में वैट पर श्वेत पत्र जारी किया गया था जिसके आधार पर इसे लागू किया गया है। इसके तहत 500 उत्पादों पर राज्य स्तरीय समरूप करारोपण का प्रावधान है। साथ ही, खाद्यान्नों को छोड़कर 46 उत्पादों पर एक वर्ष तक कर आरोपित नहीं करने की छूट राज्यों को दी गई है।

नई प्रणाली के तहत कुल 270 उत्पादों जिनमें दवाएं, कृषि, पूंजीगत तथा औद्योगिक उत्पाद सम्मिलित हैं, पर 4 प्रतिशत की दर से वैट आरोपित किया गया है। शेष उत्पादों पर 12.5 प्रतिशत वैट आरोपित होगा। मूल्यवान धातुओं जैसे सोना और चांदी पर 1 प्रतिशत की दर से वैट के आरोपण का प्रावधान है। जबकि पेट्रोल और डीजल को वैट के दायरे से बाहर रखा गया है।

यह भी प्रावधान है कि वैट आरोपित करने के बाद यदि किसी राज्य को राजस्व की हानि होती है तो उसे केन्द्र सरकार द्वारा मुआवजे के रूप में राशि उपलब्ध कराई जायेगी। पहले वर्ष यह मुआवजा 100 प्रतिशत, दूसरे वर्ष 75 प्रतिशत तथा तीसरे वर्ष 50 प्रतिशत तक मुआवजा दिया जायेगा।

उल्लेखनीय है कि इस प्रणाली में 4 प्रतिशत की दर से आरोपित होने वाले केन्द्रीय बिक्री कर को वर्ष 2006 से समाप्त करने का प्रावधान है। भविष्य में सरकार की योजना यह है कि उत्पाद शुल्क तथा सेवा कर प्रणालियों को समाप्त कर एक राष्ट्रीय वैट प्रणाली लागू की जाये।

वैट से लाभ

1. कीमत में कमी।
2. उत्पादन तथा उत्पादन के स्थान से संबंधित समस्याओं के निराकरण में सहायक।
3. उत्पादों के कर मुक्त प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए एक समरूप बाजार का सृजन।
4. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण।
5. समता के आधार पर कर आरोपण करने में सरकार को सहायता।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

मोडवैट (Modvat)

संशोधित मूल्य सम्मिलित कर (Modvat) योजना के अंतर्गत किसी निर्मित वस्तु पर उसकी प्रारंभिक अवस्था अर्थात् कच्चे माल से लेकर अंतिम अवस्था तक, जो उत्पाद शुल्क कई बार लगाये जाते थे, उन सबको समाप्त करके केवल अंतिम बिन्दु अर्थात् निर्मित वस्तुओं, पर ही उत्पाद शुल्क लगाया जाता है। उदाहरणार्थ, ट्रक के निर्माण में लोहे की खदान से निकालने, उसके हिस्से तथा पूर्जों के निर्माण तथा अंत में उन्हें जोड़कर ट्रक रूप में खड़ा करने तक के तीन चरणों में लगे उत्पाद शुल्कों का बोझ सहने न कर केवल अंतिम चरण में एक बार उत्पाद-शुल्क देना होगा।

सेंट्रल वैल्यू ऐडेड टैक्स (Central Value Added Tax Cenvat)

2000-01 के केंद्रीय बजट में वित्तमंत्री ने एकल दर के केंद्रीय मूल्यवर्द्धित कर (CentralValueaddedTax-Centvat) का प्रस्ताव किया। इससे संभी राज्यों को 1 अप्रैल, 2001 मे अपने बिक्री करों को परिवर्तित करने के सम्मत कार्यक्रमों में प्रोत्साहन मिलेगा। बुनियादी उत्पाद शुल्कों (Basic Excise Duties) की तीन मूल्यानुसार दरों अर्थात् 8 प्रतिशत, 16 प्रतिशत और 24 प्रतिशत की अपेक्षा 16 प्रतिशत सैनवैट की एक दर लगाने का प्रस्ताव किया किंतु अनिवार्यत: चिकित्सा देखरेख और आम आदमी के उपयोग की वस्तुओं को उत्पाद शुल्क से छूट की गयी है।

सेवा कर से राजस्व प्राप्ति

वर्ष 1994-95 में पहली बार सेवा कर आरोपण किया गया, जबकि सरकार को सेवा कर से 407 करोड़ रू. की प्राप्ति हुई। वित्तीय वर्ष 2007-08 के दौरान सेवा कर से प्राप्त राशि 51301 करोड़ रूपए हो गई। वर्ष 2008-09 में सेवा कर से 60,702 करोड़ रू. की राशि प्राप्त हुई। 2009-10 में सेवा कर से प्राप्त राशि का अनुमान 58,000 करोड़ रू. का है। वर्ष 2010-11 के बजट में सेवा कर से प्राप्त राशि का अनुमान 68000 करोड़ रू. का लगाया गया है। बजट 2010-11 में यूनीफाइड गुड्स एण्ड सर्विस टैक्स (GST) का लक्ष्य 1 अप्रैल, 2011 तक प्राप्त करने का रखा गया था परन्तु सहमति न बन पाने पर इसे 1 अप्रैल 2012 कर दिया गया था परन्तु अभी भी इस पर सहमति नहीं बन पाई है। इसके तहत् वस्तुओं व सेवाओं पर कर की दर समान की जाती है।

सेवा कर का आरोपण एवं संग्रहण वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जा रहा है, किन्तु भविष्य में राज्य सरकारें भी इस कर का आरोपण कर सकेंगी। इसके लिए 95वां संविधान संशोधन विधेयक-2003, मई 2003 में संसद ने पारित कर दिया था।

इस संशोधन विधेयक द्वारा सेवाकर को शामिल करने का प्रावधान किया गया है, जबकि इसके संग्रहण का अधिकार केन्द्र व राज्यों दोनों को प्रदान करने के लिए इसमें प्रावधान किया गया है। संग्रहण के तौर-तरीकों के निर्धारण के लिए एक नया विधेयक संसद में लाया जाएगा। प्रस्तावित विधेयक में ही यह निर्धारित किया जाएगा कि राजस्व बँटवारे के लिए केन्द्र व राज्यों के बीच सेवाओं का बँटवारा किया जाएगा या सेवा कर के कुल राजस्व में से हिस्सा राज्यों को दिया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि सेवा कर का कोई प्रावधान संविधान की 7वीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में अभी तक नहीं है। इसके बावजूद 1 जुलाई 1994 से केन्द्र सरकार द्वारा यह कर संविधान की संघ सूची में प्रदत्त उस विशेषाधिकार के तहत् लगाया जा रहा है जिसमें कहा गया है कि किसी भी सूची (संघ, राज्य अथवा समवर्ती) में न शामिल किसी कर को लगाने का अधिकार केन्द्र का होगा।

इन सेवाओं पर 12 प्रतिशत की दर से सेवा कर व कर राशि पर 3 प्रतिशत का शिक्षा उपकार 1 जून, 2007 से लगाया जा रहा था। 24 फरवरी, 2009 को सेवा कर की दर 12 प्रतिशत से घटकर 10 प्रतिशत की दी गई है तथा व्यक्तिगत करदाताओं के लिए 3 प्रतिशत का उपकार भी वर्ष 2009-10 के बजट में हटा दिया गया था। वर्ष 2009-10 के दौरान सेवा कर के दायरे में सेवाओं की कुल संख्या 114 हो गई है।

छोटे व्यापारियों को सेवा कर से राहत पहुँचाने के उद्देश्य से वर्ष 2008-09 से सेवा कर में छूट की सीमा 4 लाख रू. से बढ़ाकर 8 लाख रू. कर दी गई थी।

1994-95 में अपनी शुरूआत से ही सेवाकर प्रत्यक्ष करों का आधार बढ़ाने में सहायक रहा है। पिछले वर्षों में इसमें शामिल सेवाओं में

DISCOVERY
Download from www.studymasterofficial.com

वृद्धि होती रही है।

नया डायरेक्ट टैक्स कोड (New Direct Tax Code)

2009-10 की केन्द्रीय बजट में प्रत्यक्ष करों में ढाँचागत परिवर्तन की प्रक्रिया को जारी रखने के महत्त्व को रेखांकित किया गया तथा यह वादा किया गया था कि शीघ्र ही इसके सम्बन्ध में एक विस्तृत संहिता लायी जायेगी। उल्लेखनीय है कि 12 अगस्त 2009 को प्रत्यक्ष कर संहिता को एक प्रारूप चर्चा के लिए सार्वजनिक किया गया। इस कोड का प्रमुख उद्देश्य सभी प्रत्यक्षकरों-आयकर, लाभांश वितरण कर तथा सम्पत्ति कर-से सम्बन्धित कानूनों को समेकित करना तथा उनमें सुधार लाना है जिससे कि प्रभावी और साम्यापूर्ण (equitable) प्रत्यक्ष कर प्रणाली स्थापित हो सके जो स्वैच्छिक अनुपालन को सरल बनायेगी तथा कर-जी.डी.पी. अनुपात को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी। इसके अन्तर्गत सभी प्रत्यक्ष करों को एक ही संहिता के अधीन लाया गया है और अनुपालन-प्रक्रियाओं को एकीकृत किया गया है जो अन्ततोगत्वा एक ही एकीकृत करदाता रिपोटिंग प्रणाली के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। उल्लेखनीय है कि डाइरेक्ट कोड जो 1 अप्रैल 2010 से लागू होने वाला था, अब 1 अप्रैल 2011 से लागू होने की सम्भावना थी परन्तु यह नहीं लागू हो पाया। लागू होने पर यह बहुत समय से चले आ रहे आयकर अधिनियम 1961 को प्रतिस्थापित करेगा। संहिता की आवश्यकता आयकर अधिनियम की जटिल संरचना, तथा असंख्य संशोधनों, जिन्होंने इसे औसत कर दाताओं के लिए अबोधगम्य बना दिया, के कारण हुई।

वित्त मंत्री के अनुसार आधार को विस्तृत करने के लिए संहिता में एक तिहरी कार्यनीति अपनायी गयी है कार्यनीति का पहला तत्व उन छूटों को कम करना है जिसने कराधार के आधार को क्षरित किया है, इन छूटों को हटाने से कर-जी.डी.पी. अनुपात ऊपर उठेगा तथा साम्यता संवर्धित होगी, प्रशासनिक भार कम होंगे तथा भ्रष्टाचार हतोत्साहित होगा। कार्यनीति का दूसरा तत्त्व कानून में अस्पष्टता को समाप्त करना है जिससे कर अपवंचन कठिन होगा। कार्यनीति की तीसरा तत्व कर अपवंचन के द्वारा कराधान के आधार के क्षरण के नियंत्रण से सम्बन्धित है।

नए डायरेक्ट टैक्स कोड की आधारभूत विशेषतायें-

(i) चर्चापत्र में आय के 'निवास आधारित कराधान' तथा 'स्त्रोत आधारित कराधान' के सिद्धान्तों पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के सन्दर्भ में चर्चा के बाद यह निष्कर्ष आया है कि निवास आधारित कराधान देश के निवासियों के सम्बन्ध में लागू होगा जबकि 'स्त्रोत आधारित कराधान' गैर निवासियों के सम्बन्ध में लागू होगा। भारत का निवासी अपनी विश्वव्यापी आय के लिए भारत में कर के लिए उत्तरदायी होगा जबकि अनिवासी व्यक्ति भारत में, केवल भारत में उद्भूत राशियों एवं प्राप्तियों के लिए कर देने के लिए उत्तरदायी होगा।

(ii) 'गतवर्ष' तथा 'आकलन वर्ष' के स्थान पर केवल 'वित्तीय वर्ष' का प्रयोग।

(iii) कर प्रोत्साहनों के सम्बन्ध में यह तर्क दिया गया है कि वे सक्षम नहीं हैं, विकृतिपूर्ण हैं, असाम्यापूर्ण हैं, करदाताओं और प्रशासन पर अधिक अनुपालन भार अधिरोपित करते हैं। इनसे राजस्व हानि होती है और ये विशेष हित समूह का सृजन करते हैं। इनके कारण कर कानून जटिल होता है और कर वंचन तथा किराया प्राप्ति की प्रवृत्ति प्रोत्साहित होती है। समीक्षा के आधार पर संहिता में यह व्यवस्था है कि लाभ सम्बद्ध कटौतियों को सकारात्मक बाह्यताओं के क्षेत्र में निवेश संबद्ध कटोतियों से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

(iv) संहिता क्षेत्राधारित छूट की संकल्पना के विरूद्ध है।

(v) संहिता में बचतों के कराधान की छूट-छूट कराधन (EET) व्यवस्था लागू करके बचतों के लिए कर प्रोत्साहन को युक्तिपूर्ण बनाना है।

उल्लेखनीय है कि संहिता में विभिन्न प्रत्यक्षकरों की उनकी व्यवस्था के साथ पूरी चर्चा है। यह विभिन्न करो के सम्बन्ध में कर मुक्त सीमा तथा कर दरों के सम्बन्ध में एक कर योजना प्रस्तुत करता है जिससे टैक्स प्लानिंग सरल हो सके।

प्रत्यक्ष कर संहिता में प्रस्तावित आयकर की दरें

शेयर बाजार में निवेश करने वाले को भी नए टैक्स कानून में राहत देने का प्रस्ताव है। सिक्योरिटी ट्रांजेक्शन टैक्स (STT) को समाप्त करने का प्रस्ताव है। इसके अलावा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश पर मिलने वाला ब्याज कर मुक्त होगा, कर संहिता का मसौदा जारी

Downloaded From www.studyvasterofficial.com

करते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि नए टैक्स कानून को सरल बनाने का उद्देश्य कानूनी पेचीदगियों को दूर करना है। उन्होंने कहा कि सरकार यह मान रही है कि टैक्स कानून सरल होगा तो उसे अधिक राजस्व प्राप्त हो सकेगा। कर संहिता का मसौदा जारी करते समय पूर्व वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम भी उपस्थित थे, जिनके वित्त मंत्री के रूप में कार्यकाल में नया टैक्स कानून बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई थी। नए प्रस्तावित डायरेक्ट टैक्स कानून में अन्य प्रमुख राहतें निम्नलिखित हैं-

1. बचत पर कर छूट सीमा एक लाख रू. से बढ़ाकर 3 लाख रू. करना।
2. कर लगाने के उद्देश्य से आय में भत्तों को जोड़ना।
3. पी.पी.एफ.,ई.पी.एफ. और जी.पी.एफ. जैसी स्कीमों से निकाले गए धन पर कर लगाना।
4. रिटायरमेंट के फायदों को कर रियायत देना बशर्ते फायदों को रिटायरमेंट लाभ खाते में जमा कराया जाए।
5. कारपोरेट कर दर 30 की बजाय 25 प्रतिशत करना।
6. सम्पत्ति कर 50 करोड़ रू. से अधिक की सम्पत्ति पर।
7. एस.टी.टी. समाप्त कारना।
8. लांग टर्म कैपिटल गेन्स टैक्स को फिर शुरू करना।

गुड्स एवं सर्विसेज टैक्स (GST)

केन्द्रीय वित्त मंत्री 2006-07 के बजट में एक राष्ट्रीय वस्तु व सेवा कर (जीएसटी) को 1 अप्रैल, 2010 से लागू करने का प्रस्ताव रखा था। एफआरबीएम अधिनियम 2003 के क्रियान्वयन पर कार्य दल (टास्क फोर्स) की रिपोर्ट में (जुलाई 2004) जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया था। इसके अध्यक्ष डॉ. विजय केल्कर थे, जो वर्तमान में 13 वें वित्त आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए हैं। उपर्युक्त टास्ट फोर्स ने अपनी रिपोर्ट में एकल (सिंगल) राष्ट्रीय जीएसटी के स्थान पर दोहरे (ड्यूअल) जीएसटी- एक केन्द्रीय जीएसटी तथा दूसरा राज्य जीएसटी का समर्थन किया था। केन्द्रीय जीएसटी में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क व सेवा करों का समावेश किया जाएगा। और राज्य जीएसटी में वर्तमान में प्रचलित मूल्यवर्धित कर (वैट) तथा राज्यों के लिए आगे चल कर निर्धारित कुछ विशिष्ट सेवा कर शामिल किए जाएंगे। उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय स्तर पर सेवा-कर वर्तमान में कुल 114 सेवाओं पर लागू किया जा चुका है। यहां इस बात का भी संकेत देना उचित होगा कि हाल के वर्षों में सेवा-कर केन्द्र के लिए राजस्व-प्राप्ति की दृष्टि से एक तरह से कामधेनु बन गया है। भारत में परोक्ष करों की वर्तमान व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से दोहरे जीएसटी की तरफ बढ़ने की आवश्यकता काफी समय से महसूस की जाती रही है, ताकि यह अधिक कार्यकुशल व अधिक लाभकारी हो सकें। राज्यों के वित्त मंत्रियों की मूल्यवर्धित कर से संबंधित 'एम्पावर्ड कमेटी' द्वारा नियुक्त संयुक्त कार्यकारी दल ने 28 नवम्बर, 2007 को दोहरी जीएसटी प्रणाली का ही समर्थन किया। लेकिन कमेटी के अध्यक्ष असीम दास गुप्ता ने जीएसटी के लिए आवश्यक संविधान संशोधन में विलम्ब को देखते हुए इसकी नई तिथि 1 अप्रैल 2011 घोषित की है।

यहां यह जानना आवश्यक है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की वर्तमान प्रणाली में क्या कमियां हैं, और सेवा-करों का उसमें समावेश करने से क्या लाभ होगा? केल्कर कार्य-दल ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया है कि भारत में बेसिक उत्पाद शुल्क (अर्थात सेनवैट) 16 प्रतिशत की एक सी दरें लागू हैं, जो 85 उत्पादों के जरिए उत्पाद-शुल्क के राजस्व का 60 प्रतिशत अंश प्रदान करता है। लेकिन 34 उत्पादों पर रियायती 8% प्रशुल्क दर लागू है, जैसे खाद्य-उत्पाद, माचिस (यंत्रीकृत क्षेत्र), कॉटन यार्न, कम्प्यूटर आदि पर। कुछ वस्तुओं जैसे पौलीयेस्टर फिलामेंट यार्न, कारों, एयर कन्डीशनर्स, एरेटेड वाटर्स व टायर्स पर स्पेशल उत्पाद-शुल्क 8 प्रतिश की दर से लागू है। अतिरिक्त उत्पादन शुल्क चीनी, तम्बाकू, वस्त्रों अथवा सड़क-उपकर एकत्र करने के लिए लागू है।

एकल जीएसटी के बजाय दोहरी जीएसटी बेहतर क्यों?

जीएसटी के सम्बन्ध में कई प्रकार के सवाल उठाए जाते हैं, जैसे यह केवल केन्द्रीय स्तर पर हो या केवल राज्य स्तर पर ही हो, अथवा दोनों स्तरों पर हो, इसमें दरों के सम्बन्ध में क्या निर्णय लिया जाए, इसमें क्रियान्वयन के लिए संस्थागत आधार ढांचा किस प्रकार का

DISCOVERY®
...Discover your mettle
Download from www.studymasterofficial.com

हो और इसकी सम्पूर्ण डिजाइन कैसी हो, यदि जहां तक दोहरी जीएसटी प्रणाली का प्रश्न है, उसके पक्ष में निम्न तर्क दिए जाते हैं-

1. राज्य बिक्री दर (वर्तमान में वैट) लागू करके अपनी कर-शक्ति का उपयोग करते हैं। यदि यह शक्ति उनसे छीन ली जाएगी तो उनकी राजकोषीय स्वायत्तता (फिस्कल ऑटोनोमी) कम हो जाएगी, जो राजकोषीय व्यवहार के लिए जरूरी मानी जाती है। ऐसी स्थिति में उनकी केन्द्र पर निर्भरता बढ़ जाएगी और वे केवल व्यय करने वाली एजेन्सी बन कर रह जाएंगे, जो उचित नहीं होगा।
2. इसके अलावा भारत एक समरूप देश नहीं है, बल्कि इसमें राज्यों में काफी भिन्नता देखने को मिलती हैं। इसलिए इसके संघीय स्वरूप व ढांचे की रक्षा के लिए राज्यों की राजस्व जुटाने की शक्ति क्षीण नहीं की जानी चाहिए।
3. हाल में राज्यों में वैट की सफलता ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे राज्यीय स्तर पर जीएसटी का संचालन करने में कोई कसर नहीं रखेंगे, क्योंकि वर्तमान में राज्यों को वैट का अनुभव उनको राज्य जीएसटी की तरफ ले जाने में काफी मदद देगा, क्योंकि इसमें केवल कुछ विशिष्ट सेवाओं के करों को ही तो शामिल करना है। कनाडा में 1991 से संघीय स्तर पर जीएसटी है, लेकिन प्रान्तों में (एलबर्टा को छोड़कर) अपने बिक्री कर या वैट हैं। क्यूबेक का अपना वैट है जिसमें वस्तुएं व सेवाएं शामिल हैं, और उनका संघीय सीएसटी से भलीभंति समन्वय किया गया है।
4. एकल राष्ट्रीय जीएसटी के लगाए जाने पर राज्यों में वैट में लग अनेक कर्मचारी बेकार हो जाते है जिनको रोजगार देने की काफी जटिल समस्या उत्पन्न हो जाएगी।

जीएसटी की आवश्यकता क्यों?

यह जानना रूचिकर होगा कि जीएसटी प्रणाली को लागू करने से देश को क्या लाभ प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में निम्न अनुकूल प्रभावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए-

1. भारत में 2008-09 तक राजस्व घाटे को शून्य करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके लिए कर का सकल घरेलू उत्पाद से अनुपात बढ़ाने के लिए कर-प्रणाली को अधिक युक्तिसंगत व कार्यकुशल बनाना होगा ताकि कर-राजस्व बढ़ सके। दोहरा जीएसटी इस दिशा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है, क्योंकि इससे घरेलू व्यापार कर-प्रणाली में काफी सुधार हो पाएगा। इसमें केन्द्रीय जीएसटी की कड़ी व राज्य सीएसटी की कड़ी एक दूसरे से पूर्णतया पृथक हो जाएंगे, और केन्द्रीय जीएसटी के कड़ी में जो इन्पुट-कर वापसी होगी उसका उपयोग राज्य जीएसटी की कड़ी में नहीं हो पाएगा, और इसी प्रकार राज्य जीएसटी की कड़ी में जो इन्पुट-कर की वापसी होगी उसका उसका उपयोग केन्द्रीय जीएसटी की कड़ी में नहीं किया जा सकेगा। ऐसा होने से कर-राजस्व में वृद्धि की संभावना उत्पन्न होगी।
2. केन्द्रीय वित्त मंत्री के पूर्व सलाहकार डॉ. पार्थासारथी शोम का मत है कि वर्तमान में कर-प्रणाली में कर पर कर लागू होने, अर्थात केसकेडिंग (जलप्रपात की भांति) की संभावना रहती हैं, जैसे केन्द्र को विनिर्माण चरण में कर लगाने का अधिकार है। उसके बाद बिक्री के अन्तिम चरण तक राज्य वैट व अन्य स्थानीय स्तरों पर कर लगाते हैं। चूंकि राज्य स्तर पर वैट कीमत के आधार पर लगता है जिसमें केन्द्र का उत्पाद-शुल्क भी शामिल रहता है, इसलिए ऐसी स्थिति में 'कर पर कर' कुछ सीमा तक केसकेडिंग का होना स्वाभाविक है।
3. जीएसटी को अपनाने से परोक्ष करों (केन्द्रीय उत्पाद-शुल्कों व राज्य-बिक्री करों, आदि) में जो छूटें दी जाती हैं, एवं जो प्रेरणाएं व प्रोत्साहन दिये जाते हैं, उनको कम करना भी आसान हो जाता है। इससे कर-प्रणाली काफी सरल, व्यापक व प्रभावी हो जाती है। इसलिए परोक्ष कर प्रणाली में सुधारों की दृष्टि से केन्द्रीय स्तर पर जीएसटी के अलावा पृथक से राज्यीय स्तर पर भी जीएसटी को अपनाने से लाभ होता है। दोनों परस्पर स्वतन्त्र रूप से संचालित किए जाते हैं जिससे 'केसकेडिंग' कम होने से उपभोक्ता को लाभ प्राप्त होता है और कर छूटों व कर प्रेरणाओं के घटने सरकार के कर-राजस्व में भी वृद्धि होती है। अत: जीएसटी से सरकार, उत्पादक व उपभोक्ता सभी को काफी लाभ होती है। राज्यों में हाल के वर्षों में वैट लगने से उनके राजस्व में वृद्धि हुई है।
4. यद्यपि दोहरी वेट-प्रणाली (अर्थात दोहरी जीएसटी प्रणाली) कर-ढांचे व प्रशासन का पूर्णतया एकीकरण तो नहीं कर पाती है, फिर भी यह राज्यों की राजकोषीय स्वायत्तता को बनाए रखने तथा साथ में कर-प्रणाली में सामंजस्यता व समन्वयता की स्थिति (हारमोनाइजिंग) उत्पन्न करने की दृष्टि से एक सर्वश्रेष्ठ तथा व्यवहारिक हल मानी जा सकती है।

Downloaded From www.studymaster.official.com

5. दोहरे जीएसटी के परिणामस्वरूप समस्त भारत में वस्तुओं व सेवाओं के लिए एक कॉमन बाजार बन सकेगा। सभी राज्य गन्तव्य स्थान या उपभोग-बिन्दु पर कर लगाने के सिद्धान्त पर सहमत हो जाएंगे और एक न्यूनतम कर की दर को भी अपनाने लगेंगे जिससे नीचे कोई कभी राज्य अपनी दरें निर्धारित नहीं करेंगा।
6. जीएसटी के लगने से वास्तविक सम्पत्ति के क्षेत्र को इसमें शामिल कर लिया जाएगा जिससे काली मुद्रा की समस्या को हल करने में सहूलियत होगी।

केन्द्रीय जीएसटी की डिजाइन व कार्यविधि कैसी हो?

केलकर कार्य-दल ने अपनी जुलाई 2004 की रिपोर्ट में केन्द्रीय जीएसटी के निम्न लक्षणों पर बल दिया था। उनकी मुख्य बातें इस प्रकार है-

1. कर का आधार सभी वस्तुओं व सेवाओं को शामिल करने वाला होना चाहिए जो अन्तिम उपभोक्ता तक को कवर कर सके। केन्द्रीय जीएसटी का आकलन बीजक क्रेडिट-विधि पर आधारित होनी चाहिए अर्थात सभी मध्यवर्ती वस्तुओं या सेवाओं पर लगे कर की वापसी सप्लायर द्वारा दिए गए बीजक के आधार पर की जानी चाहिए। कर का आधार उत्पादन के बजाय उपभोग होने के कारण यह कर आयातों पर लगाया जाएगा और इस कर से निर्यात मुक्त रहेंगे।
2. निम्न किस्म की वस्तुओं व सेवाओं को केन्द्रीय जीएसटी के दायरे बाहर रखा जाना चाहिए। जिन वस्तुओं का उपभोग रोका जाना है, नागरिक प्रशासन, सुरक्षा व पुलिस सेवाएं व सरकारी विभाग (रेलवे, डाक-तार, सार्वजनिक उपक्रमों, बैंक व बीमा को छोड़कर), सभी मेडीकल सेवाएं, समस्त स्कूली व कॉलेज शिक्षा, जीवन रक्षक दवाएं व उपकरण आदि।
3. क्रूड पेट्रोल व उत्पादों, प्राकृतिक गैस व तम्बाकू पर ऊँची दर से जीएसटी लगाया जाना चाहिए। इन पर इन्पुट कर की वापसी नहीं होती, ये उत्पाद-शुल्क की भांति ही होते हैं।
4. छोटे डीलरों व सेवा देने वालों को जीएसटी से 25 लाख रुपए के वार्षिक टर्न ओवर (बिक्री) तक मुक्त रखा जाए। 40 लाख रुपए तक के वार्षिक टर्नओवर वाले छोटे डीलरों पर 2 प्रतिशत की समग्रीकृत लेवी लगाई जा सकती है। लेकिन ऐसे डीलरों को इन्पुट कर की रिबेट नहीं दी जाएगी। 40 लाख रुपए से अधिक वार्षिक टर्नओवर वाले डीलरों को अपना पंजीकरण कराना होगा। ऐसे डीलरों को पैन (स्थाई खाता संख्या) व टैन (अस्थाई खाता संख्या) नम्बर लेने होंगे। पंजीकृत करदाता को मासिक आधार पर अपना कर रिटर्न फाइल करना होगा और कर का भुगतान भी करना होगा।
5. इन्पुट कर की रिबेट के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की बेईमानी या राजस्व की क्षति को रोकने के लिए आवश्यक सूचना-प्रणाली विकसित करनी होगी जिसके द्वारा सौदों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी एकत्र की जा सके।

उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखकर भारतीय वस्तु व सेवा कर अधिनियम पारित किया जाना चाहिए ताकि उसे 1 अप्रैल, 2010 से लागू किया जा सके। यह पूर्व केन्द्रीय उत्पाद अधिनियम और 1994 से लागू वित्त अधिनियम के तहत क्रियान्वित किए जाने वाले सेवा कर के स्थान पर लागू किया जाएगा।

राज्य जीएसटी का स्वरूप कैसा हो?

जहां तक राज्य जीएसटी का प्रश्न है, यह वर्तमान में वैट रूप में केवल वस्तुओं पर ही लागू है। भविष्य में इसमें विशिष्ट सेवाओं के करो को शामिल किया जाएगा। जिनके बारे में फिलहाल निर्णय लिया जाना शेष है। अभी तक केन्द्र 101 सेवाओं पर एक कर एकत्र करता है और उसको विभिन्न राज्यों में एक सूत्र के आधार पर वितरित करता है। राज्यों को आवंटित की जाने वाली सेवाओं के लिए संविधान में संशोधन करना होगा। इसके अलावा राज्य जीएसटी लागू किए जाने पर अन्य स्थानीय वस्तु व सेवाकरों जैसे मनोरंजन कर, केन्द्रीय बिक्री कर, प्रवेश कर चुंगी कर, विद्युत-शुल्क, आदि को उसके अन्तर्गत लाना होगा ताकि राज्य का जीएसटी सरल बन सके। लेकिन हाल में राज्यों के वित्त मंत्रियो ने इसका विरोध किया है, क्योंकि ऐसा करने पर उनको कुल कर-राजस्व की हानि का अंदेशा है। अत: इस विषय में मतभेद पाया जाता है।

Downloaded From www.studymasteroficial.com

जीएसटी से संबंधित मुद्दे कठिनाइयां

जीएसटी का परोक्ष कर प्रणाली में सुधारों की दृष्टि से काफी महत्व है। लेकिन इस तक पहुंचने का मार्ग काफी जटिलताओं से भरा हुआ है। उदाहरण के लिए, इसके सम्बन्ध में में निम्न प्रमुख मुद्दे उठाए गए हैं-

1. **जीएसटी कर का आधार क्या हो-** डॉ. पारथासारथी शोम ने कहा है कि जीएसटी की दर को कम करने के लिए लिए इस कर का आधार (बेस) व्यापक बनाना आवश्यक है। वर्तमान में राज्य स्तर पर पंजीकृत व्यापारियों की संख्या लगभग 60 लाख है और केन्द्रीय स्तर पर पंजीकृत करदाताओं की संख्या 1 लाख है। इनकी संख्या में वृद्धि होने पर जीएसटी का आधार चौड़ा हो जाएगा, तब इस कर की दर को 20 प्रतिशत से घटा कर, 14 प्रतिशत, की तरफ लाना सुगम हो सकेगा। इसलिए जीएसटी के सम्बन्ध में पहला मुंद्दा तो इसके आधार को अधिक व्यापक व विस्तृत बनाने का है।
2. **कर की दरें कितनी रखी जाएं-** कर की दर को सदैव कम रखने का समर्थन किया गया है ताकि करदाता कर का अनुपालन कर सके तथा आसानी से कर दे सके और वह कर से बचने का प्रयास न करे। वर्तमान में सैनवैट (केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क के नए रूप) की दर 16 प्रतिशत और राज्य-वैट की दर सामान्यतया 12.5 प्रतिशत पाई जाती है। लेकिन इनका आधार सीमित या छोटा है और व्यवहार में कर की दरें भी कई पाई जाती है।
3. **कर का क्रियान्वयन कैसे किया जाए, इसकी प्रशासनिक मशीनरी कैसी हो-** यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि दोहरे जीएसटी का क्रियान्वयन कैसे किया जाना चाहिए। अभी तक इसके जो रूप देखने में आए हैं, पहला रूप, जिसमें संघीय सरकार कर एकत्र करती है, हालांकि संवैधानिक दृष्टि से दोनों सरकारें - केन्द्र व राज्य - कर एकत्र कर सकते हैं। दूसरी विधि में केन्द्र व राज्य अलग-अलग जीएसटी एकत्र करते हैं। तीसरी विधि में एक कॉमन आधार पर एक ही समग्रीकृत जीएसटी की दर को लागू करके राज्य कर एकत्र करते हैं। डॉ. महेश सी, पुरोहित का मत है कि प्रशासनिक सुविधा व लागत में किफायत की दृष्टि से समग्रीकृत दोहरा जीएसटी एक ही एजेन्सी-केन्द्र या राज्य द्वारा एकत्र किया जाना चाहिए। बाद में उनके द्वारा निर्धारित दरों के आधार पर कुल कर राजस्व में उनके अंशों का विभाजन किया जा सकता है। भारत में राज्यों के वित्त मंत्रियों की उच्च अधिकार प्राप्त समिति इस सम्बन्ध में अपना निर्णय देगी।
4. **राज्यों के परस्पर विवादों तथा केन्द्र व राज्यों के निपटारा विवादों का निपटारा कैसे किया जाए-** स्वाभाविक है कि दोहरे जीएसटी में राज्यों में परस्पर विवादउत्पन्न हो सकते हैं, जैसे राज्यों द्वारा लागू की जाने वाली करों की दरों के सम्बन्ध में परस्पर समन्वय स्थापित करने की प्रक्रिया में तथा केन्द्र व राज्यों के विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे विवादों का निपटारा करने के लिए एक स्थाई संस्था की स्थापना करनी होगी। राज्यों के वित्त मंत्रियों की उच्चाधिकार प्राप्त समिति इस सम्बन्ध में अपनी राय प्रस्तुत करेगी।

Downloaded From www.studyadda.official.com
DISCOVERY

6. गरीबी एवं बेरोजगारी
Poverty & Unemployment

गरीबी की परिभाषा (Definition of Poverty)

किसी भी अर्थव्यवस्था में गरीबी की पहचान तो अत्यन्त सरल है, परन्तु इसे परिभाषित करना उतना ही कठिन है। गरीबी का आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज के एक वर्ग के लोग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। गरीबी को कई दृष्टिकोणों से परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है। एक दृष्टिकोण में गरीबी को आधारिक सुविधाओं यथा भोजन, आवास, शिक्षा और चिकित्सा से संबद्ध कर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। आय स्तर पर विचार किये बिना यदि किसी परिवार में इस आधारिक सुविधाओं की कमी रहती है तो उसे गरीब माना जाता है। यह दृष्टिकोण इतना व्यापक है कि इसमें वे परिवार भी सम्मिलित हैं जिनकी आय अधिक है।

गरीबी की माप

सामान्यत: गरीबी की माप करने के लिए निम्नलिखित दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है : (1) सापेक्षिक प्रतिमान (2) निरपेक्ष प्रतिमान।

1. सापेक्षिक प्रतिमान (Relative Measure)

सापेक्षिक प्रतिमान के अंतर्गत देश की जनसंख्या को आय स्तर के आधार पर क्रमिक वर्गों में विभक्त किया जाता है। उच्चतम् आय वर्ग की तुलना निम्नतम आय वर्ग के साथ की जाती है और निर्धनता की कोटि में निम्न आय वर्ग को रखा जाता है। भारत और इसके समान अन्य विकासशील देशों में गरीबी को मापने के लिये इस प्रतिमान का प्रयोग नहीं किया जाता है।

लारेंज वक्र: लारेंज वक्र आय प्राप्तकर्ताओं के संचयी प्रतिशत के संदर्भ में कुल प्राप्त की गयी आय के संचयी प्रतिशत को ग्राफ पर प्रदर्शित करने से प्राप्त होती है। ग्राफ पर प्रदर्शित करते समय सबसे कम आय प्राप्तकर्ता से शुरू करते हैं। यदि सभी आय प्राप्तकर्ताओं का आय में हिस्सा बराबर रहे अर्थात् 30 प्रतिशत लोगों के पास 30 प्रतिशत आय का हिस्सा हो, 20 प्रतिशत लोगों के पास 20 प्रतिशत हिस्सा हो, तो हमें एक विशिष्ट प्रकार की लारेंज वक्र प्राप्त होगी, इसे हम निरपेक्ष समता रेखा (Equality Line) कह सकते हैं। यह एक मानक या काल्पनिक रेखा होगी। वास्तविक आंकड़ों पर आधारित लारेंज वक्र इस समता रेखा से जितनी ही दूर होगी विषमता उतनी ही अधिक होगी जैसा कि रेखाचित्र में प्रदर्शित है।

गिनी गुणांक: गिनी गुणांक वास्तविक लारेंज वक्र तथा निरपेक्ष समता रेखा के बीच का क्षेत्रफल तथा निरपेक्ष समता रेखा के नीचे संपूर्ण क्षेत्र के बीच का अनुपात प्रदर्शित करता है।

दिये गये चित्र में गिनी गुणांक छायांकित क्षेत्रफल (A)/समता रेखा के नीचे का संपूर्ण क्षेत्रफल (BCD)

गिनी गुणांक का अधिकतम मूल्य 1 के बराबर होगा (उस समय जबकि निरपेक्ष विषमता हो) और न्यूनतम मूल्य शून्य के बराबर होगा (जबकि निरपेक्ष समता हो)।

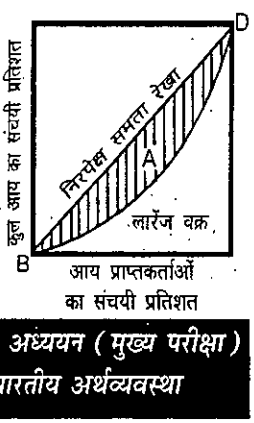

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

2. निरपेक्ष प्रतिमान (Absolute Measure)

गरीबी मापन का निरपेक्ष प्रतिमान एक न्यूनतम आय अथवा उपभोग स्तर पर आधारित है। इस प्रतिमान का निर्धारण करते समय मनुष्य की पोषक आवश्यकताओं (शहरों में 2100 कैलोरी तथा गाँवों में 2400 कैलोरी) तथा अनिवार्यताओं के आधार पर आय अथवा उपभोग व्यय के न्यूनतम स्तर को ज्ञात किया जाता है। इस न्यूनतम स्तर से कम आय प्राप्त करने वाली अथवा, निर्धारित न्यूनतम स्तर से कम उपभोग करने वालों को गरीब वर्ग में रखा जाता है। इस प्रतिमान का सर्वप्रथम प्रयोग खाद्य एवं कृषि संगठन (Food & Agriculture Organisation) के प्रथम महानिदेशक ब्याएड ऑर. ने 1945 में किया था और इसके आधार पर उन्होंने गरीबी की माप करने के लिए क्षुधारेखा (Starvation Line) की संकल्पना का प्रतिपादन किया था। यह संकल्पना विश्व के अधिकांश देशों में किसी न किसी रूप में आज भी निर्धनता की माप करने में प्रयुक्त हो रही है।

भारत में निर्धनता की माप करने के लिये निरपेक्ष प्रतिमान प्रयोग किया जाता है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किये गये न्यूनतम उपभोग व्यय को निर्धनता रेखा कहा जाता है। इस न्यूनतम निर्धारित स्तर से कम व्यय करने वाले व्यक्तियों को गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अथवा गरीब कहा जाता है। इस विधि द्वारा निर्धनता की माप करने की विधि को 'हैड-काउन्ट रेशियों' (Head Count Ratio) कहा जाता है। इस काउन्ट रेशियों (H) के स्थान पर अमर्त्यसेन ने निर्धनता सूचकांक (Poverty Index) की संकल्पना प्रस्तुत की है। केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय की घोषणानुसार गरीबी रेखा अब विभिन्न राज्यों में 13,900 रुपए से 16,990 रुपए वार्षिक तक होगी। पांच सदस्यों वाला परिवार यदि अपने संबंधित राज्य के लिए निर्धारित आलोच्य धनराशि से कम वार्षिक आय प्राप्त करता है तब वह गरीबी रेखा के नीचे माना जाएगा। NSSO द्वारा जुलाई, 1999 से जून 2000 के बीच किए गए सर्वेक्षण के आधार पर वर्ष 1999-2000 के लिए योजना आयोग द्वारा जारी नवीनतम आंकड़ों के अनुसार देश में निर्धनता प्रतिशत 26.1% आँकलित किया गया है जो 1993-94 में 36% था। इस प्रकार देश में निर्धनता अनुपात में विगत् 6 वर्षों में 10% बिन्दु की प्रभावपूर्ण कमी दर्ज की गई है।

निर्धनता रेखा (Poverty Line)

निर्धनता रेखा वितरण रेखा पर वह कटाव बिन्दु है जो जनसंख्या को निर्धनों तथा गैर-निर्धन में विभाजित करती है। इस रेखा के नीचे के लोगों को निर्धन माना जाता है और रेखा के ऊपर के लोगों को गैर-निर्धन (Non-poor) माना जाता है। मान लो, दस व्यक्ति हैं जिनकी वार्षिक आय 500, 1000, 2,000, 4,000, 5,000, 7,000, 8,000, 9,000, 10,000 तथा 12,000 रूपये है। मान लो, निर्धनता रेखा, 5,000 रूपये हैं। इससे स्पष्ट है कि 5 व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे हैं। दूसरे शब्दों में, 50 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा से नीचे हैं।

निर्धनता रेखा की माप (Measurement of Poverty Line)

निर्धनता रेखा सीमा का निर्धारण निम्नलिखित दो आधारों पर किया जाता है:

1. आय के आधार पर (On the Basis of Income)

आय को गरीबी का सबसे व्यापक मापक माना जाता है। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि आय संभावित उपभोग को दर्शाती है, आय का कुछ भाग बचत करके लोगों को भविष्य में चयन करने के लिए ज्यादा अवसर प्राप्त होते हैं। आय में उपभोग की तुलना में ज्यादा उतार-चढ़ाव पाये जाते हैं, लोग बचत को कम-ज्यादा करके उपभोग को स्थिर रखने का प्रयास करते हैं।

2. उपभोग के आधार पर (On the Basis of Consumption)

जिन देशों में आय के वितरण के आंकड़े उपलब्ध नहीं होते हैं, वहां गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए उपभोग-स्तर को लिया जाता है। गरीबी रेखा पर लोग, न तो बचतकर्ता न निर्बचतकर्ता, न ऋणदाता और न ही ऋणी माने जाते हैं।

उपर्युक्त दोनों मानदंडों में उपभोग एक अच्छा आधार है क्योंकि उपभोग किसी व्यक्ति द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं के वास्तविक प्रयोग को दिखलाता है जबकि आय केवल खरीदने की क्षमता व्यक्त करती है। यदि कभी आय को वास्तविक आय (स्थिर कीमतों पर आय) भी मान लिया, इसकी क्या गारण्टी है कि आय का सदुपयोग ही हो रहा है। इसके अतिरिक्त उपभोग के आधार पर वास्तविक स्तर का

पता चल जाता है क्योंकि कीमत परिवर्तन से आय की क्रय-शक्ति में उतार-चढ़ाव होता है। अत: हम कह सकते हैं कि उपभोग से गरीबी रेखा का निर्धारण आय से बेहतर है।

निर्धनता रेखा का निर्धारण (Determination of Poverty Line)

निर्धनता रेखा का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाता है। यह रेखा न तो बहुत ऊंची होनी चाहिए और न बहुत नीची। निर्धनता रेखा को उच्च स्तर पर निर्धारित करने का अर्थ है कि देश की अधिकांश जनसंख्या निर्धन है और निर्धनता को दूर करने के लिए निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम बनाए जाएंगे और नीति निर्माण करने वाले अपने को व्यस्त रखेंगे। मान लीजिए निर्धनता रेखा 100 रूपए पर है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति निर्धन होगा और प्रत्येक व्यक्ति सहायता के लिए पंक्ति में खड़ा होगा। अत: निर्धनता रेखा का निर्धारण बहुत सोच-समझ कर करना चाहिए।

भारत में निर्धनता रेखा निर्धारण की प्रक्रिया (Process of Determination of Poverty Line in India)

भारत में निर्धनता रेखा निश्चित करते समय जिस प्रक्रिया (Process) को अपनाया जाता है, उससे संबंधित प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:

1. उपभोग सीमा का अनुमान लगाते समय हम सार्वजनिक अथवा उपभोक्ता वस्तुओं पर सरकार द्वारा किए जाने वाले व्यय को शामिल नहीं करते। केवल निजी उपभोग व्यय को ही ध्यान में रखा जाता है जो खाद्य एवं अखाद्य सामग्रियों को खरीदने के लिए व्यय करते हैं।

2. प्रति व्यक्ति पारिवारिक उपभोग के अनुसार बांटे गये लोगों के प्रत्येक समूह के द्वारा उपभोग में लाई गई खाद्य एवं अखाद्य सामग्रियों की मात्राओं की सारणी बनाई जाती है।

3. प्रति इकाई खाद्य सामग्री से प्राप्त कैलोरी मात्रा के द्वारा प्रति व्यक्ति उपभोग की गई कैलोरी की गणना की जाती है।

4. निचले व्यय वर्ग से शुरू करके ऊपर की ओर चलते हैं तथा उस उपभोग व्यय वर्ग को प्राप्त करते हैं जिस वर्ग में कैलोरी की जरूरतें पूरी होती हैं। उपभोग वर्गों में औसत परिणाम होते हैं। अत: हम इन कैलेरियों को उन उपभोग वर्गों के मध्यमानों के साथ जोड़ सकते हैं।

कैलोरी का निर्धारण

भारत में आहार-विशेषज्ञों ने देश की जनसंख्या को आयु, लिंग और क्रियाकलापों के आधार पर बच्चे, व्यस्क, बूढ़े कठिन परिश्रम में कार्यरत व्यक्ति आदि को सोलह श्रेणियों में बांटा है। इन विभिन्न श्रेणी के लोगों के लिए कैलोरी की पृथक्-पृथक् न्यूनतम मात्रा को सुझाव दिया है। जनगणना रिपोर्ट में हमें कुल जनसंख्या में इन 16 श्रेणियों के लोगों के अनुपात का पता चल जाता है। एक विशेष श्रेणी की जनसंख्या की औसत कैलोरी आवश्यकता की गणना करने के लिए हम उस श्रेणी की न्यूनतम कैलोरी आवश्यकता को जनसंख्या में उसके अनुपात से गुणा कर देते हैं।

संक्षेप में, एक श्रेणी के लोगों की औसत कैलोरी आवश्यकता = उस श्रेणी की न्यूनतम कैलोरी आवश्यकता × जनसंख्या में उन श्रेणी की संख्या का अनुपात। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि 1 वर्ष से कम आयु के बच्चे की न्यूनतम कैलोरी आवश्यकता 300 है और कुल जनसंख्या में इस श्रेणी के बच्चों का अनुपात 8 प्रतिशत है। तब बच्चों की औसत कैलोरी आवश्यकता [300×8/100]=24 कैलोरीज की होगी। इस तरह से हम ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र के लिए अलग-अलग सभी सोलह श्रेणी की औसत कैलोरी आवश्यकता की गणना कर लेते हैं और सभी सोलह श्रेणियों की औसत कैलोरी आवश्यकता को जोड़कर ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र के लिए औसत कैलोरी आवश्यकता की गणना कर लेते हैं। इस प्रकार की गणना के आधार पर यह पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रति व्यक्ति प्रतिदिन, 2,400 कैलोरीज और शहरी क्षेत्र के लिए 2,100 कैलोरीज की आवश्यकता है और जिन्हें यह प्राप्त नहीं हो पाता, उन्हें निर्धनता रेखा से नीचे माना गया है।

Downloaded From www.studymasteroffical.com

गरीबी निर्धारण से संबंधित समितियाँ (Committiees Regarding Poverty Determination)

(i) गरीबी रेखा के संबंध में योजना आयोग के विशेषज्ञ समूह (तेंदुलकर समिति) की महत्वपूर्ण सिफारिशें तथा अनुमान

- निर्धनता के अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा संग्रहीत भारतीय परिवारों के निजी पारिवारिक उपभोक्ता व्यय संबंधी आंकड़ों पर ही आधारित होंगे।

- कैलोरी की खपत को गरीबी की रेखा का मानदंड बनाने से बचना होगा।

- चूंकि समरण आधार पर पारिवारिक व्यय का हिसाब लगाने के लिए एन एस एस ओ ने भविष्य में अपने खपत संबंधी सर्वेक्षणों में एम आर पी के आधार पर अनुमान लगाने पर विचार किया है इसलिए भविष्य में गरीबी रेखा के आधार के रूप में यू आर पी अनुमानों का प्रयोग करने वाली पिछली पद्धति के बजाए खपत व्यय के एम आर पी आधारित अनुमानो को अपनाना होगा। इस परिवर्तन से निर्धन परिवारों की कम खरीद वाली मदों के संबध में पारिवारिक खपत व्यय के आंकड़ें को अनुमान अधिक संतोषजनक ढंग से लगाया जा सकेगा।

- 25.7 प्रतिशत शहरी हैडकांउट अनुपात के तदनुरूप शहरी गरीबी रेखा बास्केट (पीएलबी) के समतुल्य एम आर पी को उसमें उपयुक्त समायोजन करके सभी राज्यों के ग्रमीण तथा शहरी जनसमुदाय के लिए एक नए संदर्भ पी एल बी के तौर पर मुहैया कराया जाएगा।

- प्रस्तावित संदर्भ पी एल बी में मूल्य सूचकांक तैयार करने के प्रयोजन से उपभोग की सभी मदो (ढुलाई और वाहन को छोड़कर) को ध्यान में रखा जाता है। सिफारिश की गई गरीबी रेखा में ढुलाई और वाहन पर निजी व्यय के लिए अलग से भत्ते का प्रावधान है।

- प्रस्तावित मूल्य सूचकांक एन एस एस के 61 वें दौर (जुलाई 2004 से जून 2005 तक) में उपलब्ध खाद्य ईंधन और प्रकाश, परिधान एवं जूतों के संबंध में पारिवारिक उपभोग के पृथक-पृथक ब्यौरे वार व्यय के पारिवारिक स्तर के यूनिट मूल्यों (मूल्यों के अनुमानित आंकड़ों) पर आधारित है और इसलिए ग्रामीण और शहरी इलाकों में उपभोक्ताओं द्वारा अदा की गई वास्तविक कीमतों के काफी निकट है। स्वास्थ्य और शिक्षा के मूल्य सूचकांक भी संबधित राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के यूनिट स्तर के आंकड़ों से प्राप्त किए गए थे प्रस्तावित मूल्य संचकांक (तकनीकी रूप में फिशर आदर्श सूचकांक) में मूल्य सूचकांक की भारित सरचना में अपनायी गई अखिल भारतीय एवं राज्य स्तरीय दोनों उपभोग पद्धतियों को शामिल किया गया है। भाड़े और वाहन के लिए इन मदों पर व्यय की हिस्सेदारी को प्रत्येक राज्य के संबंध में गरीबी की रेखा के संमायोजन के लिए प्रयोग में लाया गया।

- नई गरीबी रेखा में यह प्रयास किया गया है कि राज्यों की ग्रामीण तथा शहरी आबादी राज्य के अन्तर्गत ग्रामीण और शहरी तथा अन्तर राज्यीय विभेदों (ग्रामीण और शहरी) जिनमें अखिल भारतीय और राज्य स्तर दोनों स्तरों पर देखी गई उपभोक्ता प्रवृत्ति को शामिल किया गया है को उचित रूप से ध्यान में रखते हुए सिफारिश की गई अखिल भारतीय शहरी पीबीएल से सहमत हो।

- सिफारिश की गई प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए अखिल भारतीय ग्रामीण हेडकाउण्ट अनुपात और अखिल भारतीय संयुक्त हेडकाण्ट अनुपात 28.3 प्रतिशत और 27.5 प्रतिशत के सरकारी अनुमानों की तुलना में क्रमश: 41.8 प्रतिशत और 37.2 प्रतिशत है। वर्ष 1993-94 में अखिल भारतीय स्तर पर निर्धनता ग्रामीण इलाकों में 50.1 प्रतिशत शहरी इलाकों में 31.8 प्रतिशत और पूरे देश में 45.3 प्रतिशत है। जबकि 1993-94 के सरकारी अनुमानों के अनुसार 37.2 प्रतिशत ग्रामीण 32.6 प्रतिशत शहरी और 36.0 प्रतिशत संयुक्त है। इस प्रकार यद्यपि सुझाई गई नई प्रणाली में वर्ष 2004-05 के अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण और ग्रामीण शहरी संयुक्त हैडकाउण्ट अनुपात के अपेक्षाकृत ऊंचे अनुमान प्रस्तुत किए गए हैं लेकिन तुलनीय प्रतिशतांक के रूप में निर्धनता में कमी की मात्रा मे 1993-94 और 2004-05 के बीच हुई गिरावट के आंकड़े पुरानी प्रणाली का प्रयोग कर आकलित आंकड़ों से ज्यादा भिन्न नहीं है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

(ii) ग्रामीण इलाकों में बी.पी.एल. जनगणना कराने के लिए पद्धति की समीक्षा करने के लिए सक्सैना समिति की सिफारिशें

ग्रामीण इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान के लिए किसी उपयुक्त पद्धति की सिफारिश करने हेतु ग्रामीण मंत्रालय ने डॉ. एन. सी. सक्सैना की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया था। इस विशेषज्ञ समूह ने अगस्त 2009 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा बी.पी.एल. जनगणना 2002 में आने वाले ग्रामीण परिवारों की स्कोर आधारित रैंकिंग को समाप्त करने की सिफारिश की। समिति ने कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के अपने आप से बहिष्करण तथा सोसाइटी के कतिपय वंचित और अत्यंत कमजोर वर्गों के स्वमेन समावेशन तथा 10 के पैमाने पर उनको रैंक देने के लिए शेष आबादी का सर्वेक्षण कराने की सिफारिश की है।

स्वमेव बहिष्करण (Automatic Exclusion)

वे परिवार जो निम्नलिखित शर्तों में से किसी शर्त को पूरा करेंगे उनका बी.पी.एल. जनगणना के लिए सर्वेक्षण नहीं किया जाएगा:

- जिन परिवारों के पास प्रति खेतिहर परिवार आंशिक तौर पर अथवा पूर्णत: सिंचित कृषिगत भूमि जिला औसत भूमि से दुगुनी हो तीन गुना यदि पूर्णत: असिंचित है।
- जिन परिवारो के पास जीप और उस.यू.वी. जैसे तीन अथवा चार पहिए वाले मोटरयुक्त वाहन हों।
- जिन परिवारों के पास ट्रैक्टर, पावर टिलर, थ्रैशर और हार्वेस्टर जैसा कम से कम कोई एक यंत्रचालित फार्म उपकरण हो।
- जिन परिवारों का कोई एक व्यक्ति किसी गैर-सरकारी/निजी संगठन में 10,000 रू. प्रति माह से अधिक वेतन आहरित कर रहा हो अथवा पेंशन अथवा सामान लाभों के साथ नियमित आधार पर सरकार में नियोजित हो।
- आयकर दाता हों।

स्वमेव समावेशन (Automatic Inclusion)

- निम्नलिखित को अनिवार्यत: बी.पी.एल. सूची में शामिल किया जाएगा:
- आदिकालीन जनजाति वर्ग के रूप में नामोद्दिष्ट
- अनुसूचित जाति के वर्गों में सर्वाधिक भेदभाव-ग्रस्त वर्ग अर्थात महादलित वर्ग में रूप में नामित
- एकल महिला-शीर्षवाला परिवार
- जीविका अर्जक के रूप में अशक्त व्यक्ति वाला परिवार
- अवयस्क-शीर्ष वाला परिवार
- वे असहाय परिवार जो उत्तर जीविता हेतु मुख्यत: भिक्षा पर आश्रित हैं।
- बेघर परिवार
- वे परिवार जिनमें सदस्य के रूप में कोई बंधुआ मजदूर हो।

शेष ग्रामीण परिवारों का सर्वेक्षण किया जाएगा तथा अंक समिति द्वारा संस्तुत विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्राचलों के आधार पर दिए जाएंगे। ग्रामीण विकास मंत्रालय प्रायोगिक अध्ययन तथा सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन (पी.आर.ए.) कराने की प्रक्रिया में है ताकि कार्य-प्रणाली के साथ तालमेल अच्छा हो सके।

III. शहरी इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान हेतु कार्य-प्रणाली संबंधी विशेषज्ञ समूह (एस.आर. हाशिम समिति) की सिफारिशें

आवास एवं शहरी गरीबी उमशनम मंत्रालय (एच.यू.पी.ए) शहरी इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों को अभिज्ञात करने के लिए दिशा-निर्देश जारी करने हेतु नोडल मंत्रालय है। अब तक, शहरी गरीबों का पता लगाने के लिए राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा कोई एक समान

DISCOVERY
www.studymasteroffical.com

कार्य-प्रणाली नहीं अपनाई जा रही है। योजना आयोग द्वारा प्रो॰ एस. आर. हाशिम की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया है ताकि शहरी इलाकों में बी.पी.एल. परिवारों की पहचान हेतु किसी कार्य-प्रणाली की सिफारिश की जा सके। आशा है कि यह विशेषज्ञ समूह अपनी रिपोर्ट शीर्घ प्रस्तुत कर देगा।

एस.एस.ओ. द्वारा वर्ष 2004-05 के लिए किए 61 वें दौर के, सबसे अद्यतन अनुमान आंकड़ें प्रकट करते हैं कि यदि यूनीफार्म रिकाल पीरियड (यू. आर.पी. जिसमें 30 दिन की रिकाल अवधि में सभी उपभोग मदों के लिए उपभोक्ता व्यय-सम्बन्धी आंकड़ें एकत्रित किए जाते हैं) प्रयोग किया जाय तो राष्ट्रीय स्तर पर निर्धनता का अनुपात 27.5%) था (ग्रामीण क्षेत्र के लिए 28.3% तथा शहरी क्षेत्र के लिए 27.3%) और यदि मिक्सड रिकाल पीरियड (एम.आर.पी. के अन्तर्गत 5 गैर खाद्य मदों जैसे-वस्त्र, टिकाऊ वस्तुयें, शिक्षा तथा संस्थागत मेडिकल व्यय 365 दिन की रिकाल अवधि के लिए तथा शेष मदों के लिए उपभोग व्यय 30 दिवसीय रिकाल अवधि से एकत्रित किए जाते हैं) का प्रयोग किया जाय तो यह लगभग 21.8% (ग्रामीण क्षेत्र के लिये 21.8% तथा शहरी-क्षेत्र के लिए 21.7%) आता है। MRP 2004-05 के लिए गरीबी का अनुमान 22% रहा जबकि 1999-2000 के लिए यू.आर.पी. पर आधारित अनुमान 26.1% रहा। स्पष्ट है ये दोनों तुलनीय नहीं है। यू.आर.पी. पर आधारित 1993-94 के लिए अनुमान 36% रहा जबकि 2004-05 के लिए यू.आर.पी. अनुमान 27.8% रहा, ये दोनों तुलनीय हो सकते हैं तथा हम कह सकते हैं कि 1993-94 में जो गरीबी-36% थी घटकर 2004-05 में 27.8% हो गयी।

यू.आर.पी. आंकड़ों के अनुसार निर्धनों की संख्या उत्तर प्रदेश में (5.90 करोड़) सर्वाधिक है। कुल जनसंख्या में गरीबों के प्रतिशत की दृष्टि से उड़ीसा का स्थान सबसे ऊपर है। (46.4% लोग गरीबी रेखा से नीचे)। बिहार में इसका प्रतिशत 41.41, छत्तीसगढ़ में 40.9, झारखण्ड में 40.3 तथा उत्तर प्रदेश में 32.8 है।

NSSO यह मानता है कि URP उपभोग आधारित गरीबी 1993-94 के आंकड़ों के साथ तुलनीय है। इन आंकड़ों के अनुसार 1993-94 में देश में गरीबों की संख्या 32.03 करोड़ थी जो 2004-05 में घटकर 30.17 करोड़ रही, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों की संख्या 22.09 करोड़ (1993-94 में 24.40 करोड़) तथा 8.08 करोड़ (1993-94 में 7.63 करोड़) शहरी क्षेत्र में रही।

भारत में निर्धनता या गरीबी के कारण (Causes of Poverty in India)

भारत में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण ही यहां के लोग निर्धन हैं। अत: जो कारण भारत में राष्ट्रीय आय कम होने के लिए उत्तरदायी हैं, वही कारण भारत में निर्धनता या गरीबी के लिए भी उत्तरदायी हैं। इन कारणों का मोटे तौर पर हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं:

1. आर्थिक कारण (Economic Causes)
2. राजनीतिक एवं प्रशासकीय कारण (Political and Administrative Causes)

A. आर्थिक कारण (Economic Causes)

ऐसे कारणों में निम्नलिखित प्रमुख हैं:

1. **कृषि पर अत्यधिक निर्भरता** (Excessive Dependence on Agriculture):– भारत की राष्ट्रीय आय कम होने का एक प्रमुख कारण कृषि पर अत्यधिक निर्भरता है। चूंकि कृषि पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर रहती है और दुर्भाग्यवश आदि मानसून असफल हो जाता है तो भारतीय कृषि भी विफल हो जाती है, फलत: राष्ट्रीय आय में भारी कमी हो जाती है। यही नहीं, भारत में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है। प्रत्येक 10 में से 7 व्यक्ति केवल कृषि कार्य करते हैं। इससे देश में कृषि पर अधिक भार है जिसके फलस्वरूप देश में पट्टे, उपविभाग, अपखण्डन, अनार्थिक जोत और भूमिहीन ग्रामीणों आदि की समस्याएं खड़ी हो जाती हैं जिनका प्रभाव कृषि उत्पादन पर विपरीत पड़ता है और राष्ट्रीय आय कम रहती है। फलत: लोग निर्धन हैं।
2. **औद्योगीकरण का अभाव** (Lack of Industrialisation):– भारत की निर्धनता का एक प्रमुख कारण औद्योगीकरण का अभाव है और यहां आधुनिक ढंग के आधारभूत बड़े उद्योगों का अभाव हैं यही नहीं, उपभोक्ता उद्योगों का भी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है इसी कारण भारत की राष्ट्रीय आय कम है एवं प्रति व्यक्ति आय कम है और लोग निर्धन हैं।

Download From www.studymasterofficial.com

3. **पूंजी निर्माण की कमी** (Lack of Capital Formation):- भारत की औसत आय विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। अतः बचत नहीं हो पाती। बचत न होने के कारण विनियोग के लिए पर्याप्त पूंजी नहीं मिल पाती। इसलिए भारत को (Capital-poor Economy) कहते हैं। यहां अप्रचलित विधियां एवं उपकरण प्रयुक्त होते हैं। लोग पैतृक काम-धन्धों में ही लगे रह जाते हैं। जो उद्योग विद्यमान भी रहते हैं, उनमें भी उप्तादन इकाइयां छोटी रहती हैं और उनमें कम मशीनों तथा बिजली प्रयुक्त की जाती है। वास्तव में, पूंजी निर्माण की दृष्टि से भारत में तीन प्रकार की कमी पायी जाती है: (i) यहां राष्ट्रीय आय कम है। (ii) बचत कम है। (iii) जनसंख्या तुलनात्मक रूप से अधिक है। इन तीनों बातों का संयुक्त परिणाम यह है कि यहां पूंजी निर्माण की दर कम है। पूंजी निर्माण की दर कम होने के कारण भारत के आर्थिक विकास की दर कम है, फलतः राष्ट्रीय आय कम है और लोग निर्धन हैं।

4. **आर्थिक निर्माण संरचना का अभाव** (Lack of Economic enterpreneur):- भारत में आर्थिक विकास के लिए आवश्यक आर्थिक संरचना अर्थात् रेलवे, सड़क, बिजली, पुल आदि का अभाव है। इनके अभाव में देश का आर्थिक विकास सुचारू रूप से नहीं हो पाता। इसलिए राष्ट्रीय आय कम और देश निर्धन हैं।

5. **राष्ट्रीय आय का असमान वितरण** (Unequal Distribution of National Income):- देश में राष्ट्रीय आय का वितरण बहुत ही असमान है। भारत सरकार की कर नीति देश में धन के इस असमान वितरण को और अधिक प्रोत्साहन कर रही है। आयोजन काल के दौरान कुछ औद्योगिक घरानों के हाथ में आर्थिक शक्तियों का केन्द्रीकरण देखने को मिला। छोटे और मध्यम दर्जे के साहसकर्मियों की उपेक्षा की गयी। क्षेत्रीय असमानताएं तथा बेरोजगारी बढ़ी। इन सब कारणों से आय के वितरण में असमानताएं रहीं। सामान्य परिणाम लोगों की निर्धनता के रूप में देखने को मिला।

6. **स्फीतिकारी दबाव** (Inflatoinary Pressures):- भारत में विशेषकर आम जरूरत की वस्तुओं की लगातार बढ़ती हुई कीमतों के कारण गरीब एवं मध्यम वर्ग पर दबाव बढ़ता जाता है। इन बढ़ती हुई कीमतों ने लोगों को गरीबी की रेखा के नीचे खड़ा कर दिया है।

B. राजनीतिक एवं प्रशासनिक कारण (Political and Asdministrative Causes)

भारत दीर्घकाल तक विदेशी शासकों के हाथों में रहा है जिसके कारण भी हमारे देश का आर्थिक विकास नहीं हो सका और प्रति व्यक्ति आय कम रही है, जेसे-ब्रिटिश शासकों की नीति स्वार्थपूर्ण थी। भारत से कच्चा माल खरीदना और ब्रिटेन के निर्मित माल को भारत में बेचना जिससे भारत में उद्योगों का विकास नहीं हो पाया है। आर्थिक विकास में राजनीतिक स्थिरता का भी बहुत महत्व है, क्योंकि शासन सत्ता में स्थिरता रहने से विकास के लम्बे अर्से में चलने वाली योजनाएं कार्यान्वित की जा सकती हैं परन्तु भारत में गरीबी व अशिक्षा के कारण लोग राजनीतिक अधिकारों के बारे में अधिक सजग नहीं रहे और जनता का विभिन्न राजनीतिक दलों में दीर्घकालीन विश्वास नहीं है। इसलिए शासन सत्ता में परिवर्तन की सम्भावनाएं बनी रहती हैं जो कि आर्थिक विकास में बाधक है और निम्न राष्ट्रीय आय के लिए उत्तरदायी हैं।

गरीबी निवारण के विशिष्ट कार्यक्रम (Spacial Programmes of Poverty alleviation)

भारत में गरीबी उन्मूलन के कई विशिष्ट कार्यक्रम एवं योजनाएं प्रांरभ की गई हैं, उनमें निम्नांकित उल्लेखनीय हैं:

1. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (Swarna Jayanti Gram Swarojgar Yojana, SJGSY)

गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार सृजन की पूर्व में चल रही योजनाओं को 31 मार्च, 1999 को समाप्त घोषित करके अप्रैल, 1999 से स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना लागू की गयी है और पूर्व की सभी योजनाओं को इस योजना में विलय कर दिया गया है।

2. मजदूरी रोजगार कार्यक्रम (Wage Employment Programme)

मजदूरी रोजगार कार्यक्रम निर्धनता उन्मूलन रणनीति के महत्वपूर्ण घटक हैं जो न केवल कृषि कार्य में कमी के मौसम के दौरान बल्कि बाढ़, सूखा और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय भी रोजगार प्रदान करते हैं। इनमें ग्रामीण अवसंरचना का सृजन किया जाता है जो आर्थिक गतिविधियों को संबल प्रदान करती हैं। 1970 में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के बाद ही इन मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता था। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NERP) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (RLEGP) का अप्रैल,

Downloaded from www.studymasterofficial.com

1989 में जवाहर रोजगार योजना में विलय कर दिया गया था। अप्रैल, 1999 से जवाहर रोजगार योजना का नवीकरण करके उसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना बना दिया गया था। 2 अक्टूबर, 1993 को रोजगार आश्वासन योजना भी शुरू की गयी थी, जिसका विलय भी संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में कर दिया गया है।

3. संपूर्ण ग्रामीण रोजागर योजना (Sampoorna Grameen Rozgar Yojana, SGRY)

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JRY) और रोजगार आश्वासन योजना (EAS) को एकीकृत करके सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY) सितम्बर, 2001 में शुरू की गई थी। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा, स्थायी सामुदायिक, सामाजिक और आर्थिक आधारभूत ढांचे का विकास करने के साथ-साथ अतिरिक्त मजदूरी मुहैया कराना हैं। SGRY (एस.जी.आर.वाई) उन सभी ग्रामीण निध नों के लिए खुली है जिन्हें मजदूरी की जरूरत है और जो गांव /बस्ती में और उसके आसपास शारीरिक और अकुशल श्रम कार्य करने के इच्छुक हों। यह योजना पंचायती राज संस्थानों के जरिए कार्यान्वित की जा रही है।

इस योजना में एक वर्ष में रोजगार के 100 करोड़ मानव दिवसों का सृजन करने की परिकल्पना की गई है। इस कार्यक्रम का खर्च केन्द्र और राजयों में 75:25 अनुपातमें लागत बंटवारे के आधार पर बांटा जाता है।

4. प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY)

ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने के समग्र उद्देश्य सहित स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास, ग्रामीण सड़कों जैसे पांच महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ग्रामीण स्तर पर विकास करने पर ध्यान देने के उद्देश्य से यह योजना वर्ष 2000-01 में शुरू की गई।

5. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)

इस योजना की अग्रलिखित विशेषताएं हैं:

अ. यह योजना 1 दिसम्बर, 1997 से लागू की गयी, जिसमें पूर्व में चल रही तीन योजनाओं को सम्मिलित किया गया है। ये योजनाएं हैं:

(i) नेहरू रोजगार योजना,

(ii) गरीबों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएं

(iii) प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन योजना।

ब. इस योजना के अन्तर्गत कुल व्यय का 75 प्रतिशत केन्द्र द्वारा और 25 प्रतिशत सम्बन्धित राज्यों द्वारा वहन किया जाएगा।

इस योजना के अन्तर्गत दो विशेष स्कीमें हैं:

क. लघु उद्यम और कौशल विकास के द्वारा स्वरोजगार,

ख. शहरी क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास।

(ii) शहरी मजदूर रोजगार कार्यक्रम (Urban Wage employment Programme, UWEP): इस कार्यक्रम का उद्देश्य शहरी स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाभार्थियों को उनके श्रम का सामाजिक और आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक संपत्ति के निर्माण में उपयोग करके मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना है।

6. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (National Social Assistance Programme, NSAP)

चालू राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम अपने इन तीन घटकों अर्थात् (i) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन स्कमी, (ii) राष्ट्रीय परिवार लाभ स्कमी और (iii) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ स्कीम के अन्तर्गत लाभ प्रदान करता है।

(i) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (National Old Age Pension Scheme)

इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे वर्ग के 65 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु वाले आवेदक (महिला अथवा पुरूष); को 75 रूपये प्रतिमाह की राष्ट्रीय वृद्धापेंशन दिये जाने का प्रावधान है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

(ii) **राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना** (National Family Benefit Scheme)

इस योजना के अन्तर्गत परिवार के मुख्य आय अर्जक (पुरूष अथवा महिला) की सामान्य मृत्यु होने पर (जबकि वह 18 वर्ष से अधिक तथा 65 वर्ष से कम आयु का है।) निर्धनता परिवार को 5,000 रूपये की एकमुश्त राशि उत्तरजीवी लाभ (Survivor Benefit) के रूप में दी जाती है। दुर्घटना से मृत्यु की स्थिति में यह सहायता 10,000 रूपये की होती है।

(iii) **राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना** (National Maternity Benefit Scheme)

इस योजना के अन्तर्गत गरीब महिलाओं को प्रथम दो प्रसवों में 300 रूपये प्रति प्रसव के हिसाब से मातृत्व लाभ देने का प्रावधान है। इस योजना के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने के लिए लाभार्थी की आयु 19 वर्ष या इसे अधिक होनी चाहिए।

7. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना-2005 (National rural Employment Guarantee Act 2005)

केंद्र सरकार की महत्वाकांक्षी 'राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना' का शुभारम्भ प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी, 2006 को आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले से किया। इस योजना की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) **पात्रता:** ग्रामीण क्षेत्रों के परिवार के वयस्क व्यक्तियो को एक वित्तीय वर्ष में एक परिवार को कम से कम 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध करा आजीविका उनकी सुनिश्चित करना एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी परि संपत्तियों का सृजन करना।

(ii) **ग्रामीण परिवारों का पंजीकरण:** काम के इच्छुक परिवार ग्राम पंचायत में अपने वयस्क सदस्यों के नाम, उम्र, लिंग एवं पता देकर पंजीकरण करवा सकते हैं।

(iii) **काम के लिए आवेदन व बेरोजगार भत्ता:** रोजगार पाने के लिए पंजीकृत परिवार के प्रत्येक वयस्क सदस्य को काम के लिए लिखित आवेदन देना होगा। यदि पात्र आवेदक को कार्य की मांग के 15 दिनों के भीतर अथवा उसके द्वारा काम की निर्दिष्ट तिथि के भीतर रोजगार उपलब्ध नहीं कराया जाता तो उसे रोजगार भत्ता दिया जाएगा।

(iv) **न्यूनतम मजदूरी:** राज्यों में कृषि श्रमिकों के लिए लागू वैधानिक न्यूनतम मजदूरी का भुगतान इसके लिए किया जाएगा। योजना के तहत 33 प्रतिशत लाभ भोगी महिलाएं होंगी। रोजगार के इच्छुक एवं पात्र व्यक्तियों द्वारा पंजीकरण कराने के 15 दिन के भीतर रोजगार न दिए जाने पर निर्धारित दर से बेरोजगारी भत्ता सरकार द्वारा प्रदान किया जाएगा।

यह उल्लेखनीय है कि 'काम के बदले अनाज' योजना व "संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना" का विलय अब इस नई योजना में कर दिया गया है। अगले पांच वर्षों में पूरे देश में इस योजना को लागू करने की सरकार की योजना है। इसे ही अब 'मनरेगा' के नाम से जाना जाता है।

8. पुनर्गठित बीस सूत्रीय कार्यक्रम (TTP)

देश में निर्धनता निवारण हेतु 20 सूत्रीय कार्यक्रम (Twenty Point Programme-TTP) को नया रूप दिया गया। नए रूप में इस कार्यक्रम (TPP-2006) को 1 अप्रैल, 2007 से लागू की गई। इस कार्यक्रम के 20 सूत्र निम्नलिखित हैं:

1. ग्रामीण निर्धनता पर हमला 2. वर्षा पर निर्भर कृषि की व्यूह-रचना, 3. सिंचाई के पानी का अच्छा उपयोग 4.अच्छी फसलें (Bigger Harvests), 5. भूमि सुधारों की प्रभावशीलता, 6. ग्रामीण श्रम के लिए विशिष्ट कार्यक्रम, 7 पीने का साफ पानी, 8 सबके लिए स्वास्थ्य, 9. दो-बच्चों की मानक (Two-Child Norm) 10. शिक्षा का विस्तार, 11. अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लिए न्याय, 12 महिलाओं के लिए समानता, 13 युवकों के लिए नए अवसर, 14 व्यक्तियों के लिए आवास, 15. शहरी मलिन बस्तियों का सुधार, 16. वानिकी की नई व्यूह रचना, 17. पर्यावरण का संरक्षण, 18. उपभोक्ता का समुत्थान 19 गांवों के लिए ऊर्जा, 20. एक उत्तरदायी प्रशासन।

9. अन्य योजनाएं (Other Plans)

(i) **नयी जननी सुरक्षा योजना:** निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों की महिलाओं के लिए 1 अप्रैल, 2005 से प्रारंभ की गई नयी जननी सुरक्षा योजना (2005) का मुख्य उद्देश्य मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर पर अंकुश लगाकर गर्भवती

Downloaded From www.studymasterofficial.com

महिलाओं की आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना है।

(ii) **छोटे कृषकों हेतु नि:शुल्क दुर्घटना योजना:** केंद्र सरकार द्वारा चाय, कॉफी, तंबाकू, उगाने वाले सहित समस्त लघु कृषकों को दुर्घटना से होने वाली क्षति की भरपाई हेतु जनवरी, 2005 से नि:शुल्क दुर्घटना बीमा योजना शुरू करने की घोषणा की गयी। इस योजना के अंतर्गत छोटे किसानों को बिना किसी प्रीमियम के भुगतान किए गए 25,000 रू. का बीमा कवच प्राप्त होगा।

(iii) **राजीव गांधी नि:शुल्क** विद्युत कनेक्शन योजना: देशभर में एक लाख गांवों के 1 करोड़ घटों में त्वरित रूप से बिजली उपलबध कराए जाने के उद्देश्य से इस योजना को अप्रैल, 2005 से लागू करने का निर्णय लिया गया है। इन महत्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे परिवारों के घरों में बिजी का कनेक्शन मुफ्फ देने का प्रावधान रखा गया है।

(iv) **राष्ट्रीय विधिक साक्षरता मिशन कार्यक्रम:** न्याय की पहुंच सभी लोगों विशेषकर दुर्बल एवं तिरस्कृत वर्गो तक संभव बनाने के उद्देश्य से एक पांच वर्षीय राष्ट्रीय विधिक साक्षरता मिशन कार्यक्रम 2005 का शुभारंभ प्रधानमंत्री द्वारा 6 मई 2005 को किया गया।

(v) **वर्षा बीमा योजना:** खरीफ के मौसम में वर्षा की विषम परिस्थितियों में किसानों को उनकी फसल के विरूद्ध सुरक्षा कवच प्रदान करने में उद्देश्य से इस योजना को जुलाई, 2004 में घोषित किया गया। 2 जून, 2006 को इस योजना का शुभारंभ किया गया। इस योजना को चरणबद्ध तरीके से पूरे देश में लागू किया जाना है।

सरकार द्वारा संचालित रोजगारवर्द्धक व बेरोजगारी निवारक कार्यक्रमों की विशेषताएं हैं:

1. ये स्कीमें क्षेत्र या वर्ग-विशेष से जुड़ी हैं और उसी के अनुसार इनमें रोजगार अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।
2. अधिकांश स्कीमें ग्रामीण इलाकों के अति निर्धन लोगों के लिए हैं, जैसे कि भूमिहीन खेतिहर मजदूर, छोटे व सीमान्त किसान, सूखा-प्रवृत्त क्षेत्रों के लोग आदि।
3. ये स्कीमें श्रम-प्रधान शीघ्र फलदायक एवं जरूरतमन्दों को प्रत्यक्ष रोजगार दिलाने वाली हैं।
4. इसके अन्तर्गत दो तरह की सहायता की व्यवस्था है वित्तीय और गैर-वित्तीय सहायता से स्वनियोजितों को समताशील बनाने एवं मजदूरों को प्रत्यक्ष रोजगार दिलाने के लिए दी जाती है।
5. मजदूरी-रोजगार के सम्बन्ध में भुगतान अंतश: नगदी और अंशत: वस्तु रूप में किया जाता है, ताकि वास्तविक मजदूरी का एक न्यूनतम स्तर सुनिश्चित हो सके।

समावेशी विकास; गरीबी दूर करने के संदर्भ में

समावेशी विकास गरीबी दूर करने के लिए जरूरी शर्तों में से एक है। हमारी योजनाओं में इस की जरूरत को महसूस किया गया है। इस समय हमारा देश न सिर्फ अतीत की तुलना में बल्कि अन्य देशों के मुकाबले भी तेजी से तरक्की कर रहा है अत: यह देश में विकास के लिए आवश्यक है इसका फायदा देश के सभी वर्गों को मिले क्योंकि विकास अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है सभी को उस विकास के माध्यम से समृद्ध करना। क्योंकि गरीबी समाप्त करने के लिए विकास जरूरी है पर यह एकमात्र पर्याप्त शर्त नहीं है, इसके लिए। स्पष्ट रूप से विकास को बढ़ावा देने वाली कुछ ऐसी भी नीतियां होनी चाहिए जो यह सुनिश्चित करें कि अधिक से अधिक लोग विकास की प्रक्रिया में हिस्सा लें। और साथ ही ऐसे तंत्र का विकास हो जिससे ये पुन: उन लोगों में वितरित किए जा सकें जिन्होंने इस प्रक्रिया में हिस्सा नहीं लिया और इस तरह से पिछड़ गए।

गरीबी; नई चुनौतियां और उपाय (Poverty– New Chalanges and Measures)

योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के अनुसार भारत की कुल गरीबी 37.2% है। तेजी से विकसित हो रहे देश के लिए यह दर बहुत अधिक है और इसका मुकाबला किए जाने के लिए नए उपायों की जरूरत है। पिछले 5 वर्षों में सरकार ने गरीबी शोधी कार्यक्रमों के लिए बजटीय आवंटनों में भारी बढ़ोतरी की है। आयोजन और आयोजता भिन्न कुल व्यय में ग्रामीण विकास सहित सामाजिक सेवाओं पर केन्द्र सरकार का व्यय का हिस्सा 10.46% (2004) से बढ़कर 19.46% (2009-10) हो गया है। बाद में गरीबों

Downloaded From www.discoveryofficial.com

द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुओं विशेषकर खाद्य पदार्थों की कीमतों में बढ़ोतरी इस बात का प्रमाण है कि सामाजिक और कल्याण सम्बन्धी व्यय का दुगना किए जाने के फलस्वरूप निश्चित रूप से इसका कुछ हिस्सा गरीबों तक पहुंचा है जिससे उनके आय में बढ़ोत्तरी हुई है। इसके साथ ही सरकार उत्पाद आधारित सब्सिडियाँ भी देती है जैसे उर्वरक उत्पादन तथा प्रयोग बुनियादी खाद्यान्न, डीजल, केरोसीन आदि के लिए इन सब का प्रायोजन जनसंख्या के कमजोर वर्गो की मदद करना है। इनमें पिछड़े वर्षो में लगातार बढ़ोत्तरी की गई है। चूँकि ये सबिसडियां अब बड़ा राजकोषीय बोझ बन गई है और साथ ही ये उन क्रियाकलापों को सीमित करती है जिससे उत्पादकता बढ़ाकर गरीबी मिटाई जा सकती है। साथ ही गरीबी को कम करने में इन सब्सिडियों के प्रभाव पर भी संदेह व्याप्त है।

मुख्य चुनौती धन राशि का आवंटन नहीं बल्कि आवंटित धनराशि को सही दिशा देना है। और सौभाग्य से इस दिशा में परिवर्तन किए जा सकते हैं। गरीबों को सब्सिडी देने के लिए ऐसे तरीके भी हैं जिनसे प्रचुर बचत भी हो सकती है और इस पर कोई अन्य अतिरिक्त सांगवनिक लागत भी नहीं आएगी। पर इसके लिए प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। यह सही है कि गरीबों की सुरक्षा के लिए सरकार हस्तक्षेप करे पर उन वस्तुओं के लिए जो गरीबों के लिए महत्वपूर्ण हों, पर मूल्य नियंत्रण इसका निदान नहीं होगा। क्योंकि एक विशाल और जटिल अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु का मूल्य मापना आसान नहीं होगा और निश्चित रूप से यह सरकार की दिक्कतों को बढ़ाएगा ही, और ऐसा होने पर यह राजनीति और लाबिंग का मामला बना जाएगा। कुल मिलाकर विकृति पैदा होगी। अतः बेहतर है कि बाजार पर ये चीजें छोड़ दी जाए। और बाजार में हस्तक्षेप और मूल्य नियंत्रण की बजाय सबसे कारगर तरीका सीधे ही गरीबों की मदद करना होगा। अगर दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो मूल्य नियंत्रण की नीति से भला करने की बजाय ज्यादा नुकसान ही होता है। अतः कृषि क्षेत्र के प्रति नीति और मूल्य नियंत्रण में वहीं उपाय अपनाने की आवश्यकता है जो 1991 में उद्योगों के सम्बन्ध में अपनाए गए थे। इन सब को ध्यान में रखते हुए गरीबों के लिए ऐसी प्रणालियों का खाका तैयार करना संभव है जो अधिक सक्षम हो और वर्तमान प्रणालियों के मुकाबले ज्यादा कारगर हों। इस संदर्भ में हम वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भी चर्चा कर सकते हैं इस प्रणाली के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे और ऊपर के परिवारों को भारी सब्सिडीयुक्त अनाज की आपूर्ति का प्रयास किया जाता है पर इन अनाजों का पहले खुले बाजार में विक्रय बाद में मिलावट और उसके बाद लक्षित परिवारों हेतु बिक्री से बचा नहीं जा सका है बल्कि इस प्रकार के क्रियाकलाप लगभग आम हो गए हैं। इसमें सुधार हेतु सुझाए गए कार्यो मे अधिक कारगर सिद्ध होने की संभावनाए है और ये एक बार लागू होने के बाद क्रम खर्चीली भी सिद्ध होगी। सुझाई गई योजना कोई नई नहीं है और अकसर ही इसे भारतीय योजनाकारों द्वारा और बजट दस्तावेजो में सुझाया गया है।

इस प्रणाली की विस्तृत विवेचना करने से इसके दो आधार प्राप्त होते है

1. सब्सिडी सीधे गरीब परिवारों को दी जाए न कि पी डी एस स्टोर कीपरों को।
2. लक्षित परिवारों को किसी भी स्टोर से अनाज खरीदने की छूट हो।

कूपन प्रणाली

इस प्रणाली के अंतर्गत जरूरत मंद परिवारों की जरूरत का अनुमान लगा कर उन्हें उनकी जरूरत के अनुसार कूपन आंवटित किए जाए जो किसी भी दुकान (न कि सिर्फ पी डी एस स्टोर पर) पर प्रयोग किया जा सके का आंवटन होगा। यें दूकाने अनाज बाजार कीमतों पर बेचेगी और कूपन के बदले स्थानीय बैंकों से धनराशियाँ लेगी। और जरूरत मंद परिवारों को किसी भी दुकान में जाने की छूट होनी चाहिए।

इस प्रणाली का फायदा यह है कि ये भ्रष्टाचार से अधिक अप्रभावित रहेगी, चूंकि मूल्य बाजार के प्रचलन का रहेगा अतः जरूरत मंद परिवारों के बदले अन्य को सामान बेचने के लिए वे प्रलोभित नहीं रहेंगे। और यदि यह महसूस होता है कि कूपन के बदले धनराशि लेने में परेशानी है तो उन्हें 2% अतिरिक्त भुगतान का प्रावधान किया जाएगा दूसरे जब बी पी एल खरीदार अपने कूपन को किसी भी स्टोर पर ले जा सकते हैं तो वे उन भंडारों का बहिष्कार कर सकेगे जो उन्हें घटिया किस्म के अनाज या मिलावटी अनाज बेचते हैं। रही बात कूपन प्रणाली की पूर्व सफलता तो इसके लिए जरूरी है कि गरीबों की पहचान का कोई प्रभावशाली तरीका हो अतः इसके लिए कोई अलग खर्च नहीं आएगा क्योंकि UID के माध्यम से इसकी पहल मौजूदा सरकार द्वारा पहले से ही की जा चुकी है। इस नई कूपन प्रणाली में कुछ जोखिम भी होगें जिसके लिए प्रत्येक को तैयार रहने की आवश्यकता है ऐसा देश मे खाद्यान्न की कमी को लेकर

Downloaded from www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

होगा क्योंकि BPL परिवार तो कूपन के माध्यम से सुरक्षित रहेगे पर BPL इतर परिवारों के लिए स्थिति भयानक हो जाएगी ऐसी स्थिति में सरकार को उपलब्ध साधनों ओर खाद्यान के आयात का विकल्प अपनाना पड़ सकता है पर यह समस्या कूपन प्रणाली की नहीं बल्कि एक स्तर पर मौजूदा प्रणाली भी इससे जूझ रही है। इसके लिए जरूरी है कि आवश्यक खाद्यान्न के सुरक्षित भंडारों रखने की कार्य योजना जारी रखी जाए और कमी के वक्त उसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जाए

बेरोजगारी (Unemployment)

जब समाज में प्रचलित पारिश्रमिक पर भी काम करने के इच्छुक एवं सक्षम व्यक्तियों को कोई कार्य नहीं मिलता तब ऐसे व्यक्तियों को बेरोजगार तथा ऐसी समस्या को बेरोजगारी की समस्या कहा जाता है। इस प्रकार बेरोजगारी की दशा में देश में श्रम की पूर्ति व श्रम की मांग में उचित समायोजन नहीं हो पाता और देश में श्रम का एक भाग अपने जीवन-निर्वाह के लिये किसी भी प्रकार के कार्य अवसर से वंचित रह जाता है।

बेरोजगारी के स्वरूप

1. **संरचनात्मक बेरोजगारी**- दीर्घकालीन प्रवृत्ति की यह बेरोजगारी अर्थव्यवस्था के ढांचे के पिछड़ेपन, सीमित पूंजी एवं श्रम के बाहुल्य के कारण उत्पन्न होती है।

2. **घर्षणात्मक बेरोजगारी**- ऐसा व्यक्ति जो एक रोजगार को छोड़कर दूसरे रोजगार में जाता है तो दोनों रोजगारों के बीच की अवधि में वह बेरोजगार हो सकता है या ऐसा हो कि नयी तकनीक के प्रयोग के कारण एक व्यक्ति एक रोजगार से निकलकर या निकाल दिये जाने के बाद रोजगार की तलाश कर रहा है, तलाश की इस अवधि में वह अस्थायी बेरोजगार हो सकता है। ऐसी अस्थायी स्वभाव की बेरोजगारी घर्षणात्मक बेरोजगारी कहलाती है।

3. **मौसमी बेरोजगारी**- सम्पूर्ण वर्ष के विशेष मौसमों में जब श्रमिकों को कार्य नहीं मिलता तो उसे मौसमी बेरोजगारी कहा जाता है। भारत के कृषि क्षेत्र में इस प्रकार की बेरोजगारी का साम्राज्य है।

4. **अल्प रोजगार**- जब व्यक्ति अपनी कार्य क्षमता के अनुसार कार्य न पाकर अपनी योग्यता एवं क्षमता से कम स्तर वाला कार्य करता है तब यह अल्परोजगार का उदाहरण है।

5. **प्रच्छन्न बेरोजगारी**- विशेषकर कृषि क्षेत्र में पायी जाने वाली यह बेरोजगारी उस स्थिति की सूचक है जब श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है अर्थात् इन व्यक्तियों को कृषि क्षेत्र से हटाकर अन्यत्र भेजे जाने पर कृषि क्षेत्र की उत्पादकता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। रेगनर नर्क्स ने इसे 'अदृश्य बचत सम्भावना' तथा 'पूंजी निर्माण के स्रोत' के रूप में देखा। क्योंकि यदि ऐसे श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से निकालकर सड़क, पुल या ऐसे ही निर्माण कार्यो पर लगाया जाये तो बिना कुल उत्पादन में किसी कमी के पूंजी स्टॉक में वृद्धि लायी जा सकेगी। इससे न केवल राष्ट्रीय उत्पादन और पूंजी निर्माण बढ़ेगा अपितु आर्थिक विकास पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। नर्क्स के इस कार्यक्रम को भारत में लागू करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाईयाँ इस प्रकार है।

1. प्राय: यह सम्भावना रहती है कि यदि कृषि क्षेत्र के प्रच्छन्न रूप से बेरोजगार व्यक्तियों को दूसरी जगहों पर स्थानांतरित कर दिया जाता है तो बचे हुए लोग अपने उपभोग का स्तर ऊंचा कर लेते हैं जिससे सम्भाव्य बचत में कमी हो जाती है।

2. गैरकृषि क्षेत्र को स्थानान्तरित व्यक्ति जब स्वतन्त्र रूप से अर्जित करने लगते हैं तो उनका भी उपभोग बढ़ जाता है। अत: सम्भाव्य बचत की उपलब्धि संदेहजनक ही है।

3. खाद्य पदार्थो और प्रछन्न बेरोजगार व्यक्तियों के स्थानान्तरण पर भी व्यय करना होगा जो सम्भाव्य बचत की राशि को कम कर देगा।

तथापि यह एक अच्छा विचार है जिसमें अल्पविकसित व विकासशील देशों की तमाम समस्याओं का हल छिपा हुआ है।

भारत में गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार कार्यक्रम: (Poverty Eradication and Employment Programmes in India)

ग्रामीण जनसंख्या के उत्थान और देश में बढ़ रही आय की असमानताओं को कम करने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक विकास एवं रोजगारपरक कार्यक्रम आरम्भ किये गये। इन कार्यक्रमों का मौलिक उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए सरकार ने अनेक परियोजनाओं का शुभारम्भ किया। स्वतंत्रता के बाद नियोजन काल में निम्नांकित प्रमुख विकास एवं रोजगारपरक कार्यक्रम लागू किये गये-

- अधिक उपज देने वाली किस्मों का कार्यक्रम (HYVP 1965)
- प्रधानमंत्री की रोजगार योजना (PMRY 1993)
- महिला समृद्धि योजना (1993)
- राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना (NSP 1995)
- इन्दिरा महिला योजना (IMY 1995)
- प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन योजना (1995)
- गंगा कल्याण योजना (1997)
- स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY) 1997
- स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण स्वरोजगार योजना (1999)
- जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (1999)
- अन्नपूर्णा (2000)
- अन्त्योदय अन्न योजना (2001)
- सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001)
- प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY) 2000-01- (i) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, (ii) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास), (iii) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण पेयजल परियोजना)
- कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना (2001)
- काम के बदले अनाज कार्यक्रम (2001)
- जय प्रकाश नारायण रोजगार गारण्टी योजना (2002)
- राष्ट्रीय जननी सुरक्षा योजना (2003)

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना-

पूर्व में चल रही छः योजनाओं: 1. एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (IRDP), 2. ट्राइसेम, 3. ग्रामीण महिला एवं बालोत्थान योजना (डवाकरा), 4. दस लाख कूप योजना (MWS), 5. उन्नत टूल किट योजना (SITRA), 6. गंगा कल्याण योजना का विलय करके 1 अप्रैल, 1999 से यह योजना आरम्भ की गई। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना है। इस योजना का उद्देश्य यह है कि इस योजना में जिस ग्रामीण गरीब को सहायता दी जा रही है वह तीन वर्षों में गरीबी रेखा के ऊपर हो जाए। इस कार्यक्रम में ग्रामीण निर्धनों के लिए पर्याप्त अतिरिक्त आमदनी जुटाने का लक्ष्य भी रखा गया है। यह योजना जिला ग्राम्य विकास अभिकरण (DRDA) के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही है।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)- शहरी क्षेत्रों में गरीबी निवारण के लिए 1 दिसम्बर, 1997 से लागू यह योजना पूर्व में चल रही तीन योजनाओं को सम्मिलित करके बनाई गयी- (i) नेहरू रोजगार योजना (NRY), (ii) गरीबों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएं (UPSP), (iii) प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन योजना (PMIUPEP)। इस नई योजना का उद्देश्य शहरी निर्धनों को स्वरोजगार

DISCOVERY
www.studymasteroffical.com

उपक्रम स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता देना है तथा साथ ही सवेतन रोजगार सृजन करने के लिए उत्पादक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना है। इस योजना की दो विशेष स्कीमें हैं-

i. शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम- इस स्कीम के दो घटक हैं:

क. लघु उद्यम और कौशल विकास द्वारा स्वरोजगार।

ख. शहरी क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास।

ii. **शहरी मजदूरी रोजगार कार्यक्रम** (UWEP) - इसका उद्देश्य शहरी स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाभार्थियों को उनके श्रम का सामाजिक और आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक सम्पत्ति के निर्माण में उपयोग करके मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना है।

प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY)

2 अक्टूबर, 1993 से आरंभ इस योजना का उद्देश्य 18 से 35 आयु वर्ग के शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार सहायता प्रदान करना है इसमें अनुसूचित जाति/जनजाति, भूतपूर्व सैनिक, विकलांग तथा महिलाओं के लिए आयु सीमा में 10 वर्ष की छूट देय है। इस योजना के अन्तर्गत उद्योग एवं सेवा क्षेत्र हेतु ऋण सीमा 2 लाख रुपये तक तथा व्यवसाय के लिए ऋण सीमा 1 लाख रुपये तक निर्धारित है। इसमें 15% अधिकतम 7,500 रुपए प्रति उद्यमी की दर से अनुदान देय है। इस योजना को 1 अप्रैल, 1994 से इसे ग्रामीण क्षेत्रों के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों में भी लागू कर दिया गया तथा साथ ही इसमें SEEUY योजना का विलय कर दिया गया। 24 दिसम्बर, 1998 को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा पारित संशोधन के अनुसार इस योजना में अब औद्योगिक एवं सीमित व्यापारिक गतिविधियों के अतिरिक्त बागवानी, मछली पालन व पोल्ट्री व्यवसाय सहित कृषि एवं सभी आर्थिक व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना-

15 अगस्त, 1995 से लागू। इस योजना में दो घटक सम्मिलित हैं- प्रथम, राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना- गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले 65 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों को 75 रुपये प्रति माह के रूप में राष्ट्रीय न्यूनतम वृद्धावस्था पेंशन देने का प्रावधान है; दूसरे, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार के मुख्य आय अर्जक की आकस्मिक मृत्यु होने पर परिवार को 5,000 रुपये की एक मुश्त राशि उत्तरजीवी लाभ के रूप में देने का प्रावधान है।

रोजगार सृजन एवं गरीबी उन्मूलन की नवीन योजनाएं-

सर्वप्रथम हमे यह जान लेना चाहिए कि निर्धनता की रेखा से नीचे (बीपीएल) रहने वाले परिवारों की गिनती केवल कैलारी आधारित नॉर्म पर करने की बजाय इसमें परिवारों की लेनदारी व देनदारी की समस्त राशियों तथा परिवार में सदस्यों की संख्या (विशेषतया लड़कियों की) को शामिल करके करनी होगी। इस नई परिभाषा को स्वीकार करने तथा इस पर विशेष बल देने से निर्धनता की अवधारणा में एक परिवार की पिछले कई वर्षों की वित्तीय व माली हालत व पारिवारिक जरूरतों (विशेषतया सामाजिक प्रकृति की) का समावेश होने से निर्धनता का सम्बन्ध समय के एक बिन्दु तक सीमित न रह कर एक समयावधि से हो जाएगा, जिससे निर्धन परिवारों की संख्या में काफी वृद्धि की सम्भावना हो जाती है। ऐसी स्थिति में हम केवल एनएसएस के उपभोग-व्यय, अर्थात आमदनी आधारित निर्धनता की अवधारणा पर निर्भर नहीं रह सकते।

राजस्थान में 1997 के बीपीएल ग्रामीण सर्वे के अनुसार 20.97 लाख परिवार निर्धन माने गए थे, लेकिन बाद में भारत सरकार ने इसे घटा कर 17.36 लाख परिवार कर दिया था। राज्य सरकार ने इसे नहीं माना, और अपनी तरफ से सभी बीपीएल परिवारों को गेहूं मेडीकेयर कार्ड व मुख्यमंत्री की जीवन-रक्षा-योजना से मदद जारी रखने के लिए बजट में 24 करोड़ रुपए का प्रावधान किया।

भावी रणनीति का स्वरूप

1. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, 2007-2012 में तीव्र विकास व समावेशी विकास (इन्क्लूजिव ग्रोथ) को अपनाने पर जोर दिया गया है ताकि विकास की गति तेज हो सके और इसका लाभ सभी को मिल सके। भारत अब 9-10 प्रतिशत विकास की दर के संकल्प को दोहराने

www.Downloadexam.com / studyiq...official.com

लग गया है, क्योंकि तीव्र विकास निर्धनता उन्मूलन की एक आवश्यक शर्त है, हालांकि इस पर्याप्त शर्त को बनाने के लिए इसे सर्व-समावेशी व समग्रीकृत विकास की स्थिति में बदलना भी अत्यावश्यक हैं इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में भारत-निर्माण, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम, सर्वशिक्षा अभियान, मिड डे मिल्स स्कीम, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, आदि पर व्यय की राशियां उत्तरोत्तर बढ़ाई जा रही हैं ताकि निर्धन वर्ग अधिक लाभान्वित हो सके। सरकार रोजगार गहन आर्थिक विकास पर जोर दे रही है।

2. भारत के जनगणना विभाग के एक नए अध्ययन से पता चला है कि 2004-05 से 2016-17 तक के 12 वर्षों में भारत के 5 पिछड़े राज्यों (यूपी, बिहार, एमपी, उड़ीसा व राजस्थान) में जनसंख्या में 10.4 करोड़ की वृद्धि होगी, जबकि शेष 10 बेहतर श्रेणी के राज्यों में यह लगभग 7.1 करोड़ की ही होगी। अतः पिछड़े राज्यों में निर्धनता पर प्रहार करने के लिए जनसंख्या नियंत्रण परमावश्यक हैं जनसंख्या की विस्फोट विकास के लाभों को पूर्णतया निरस्त कर देता है।
3. कुछ विद्वानों का मत है कि देश में खाद्यान्नों की वसूली, उर्वरकों, सिंचाई, बिजली, आदि पर जो सब्सिडी दी जाती है, वह लाभ बड़े कृषकों को नहीं मिलना चाहिए। इसकी जगह निर्धनों को सीधी नकद राशि देकर, उन्हें स्वास्थ्य बीमा व शिक्षा वाउचरों के रूप में (विशेषतया निर्धनतम 30 प्रतिशत परिवारों को) लाभ पहुंचा कर दिया जाना देश हित में होगा। इस प्रकार के व्यय में परिवर्तन वितरणात्मक व्यवस्था को अधिक कार्यकुशल बना सकेगा।
4. विकास-कार्यक्रमों (कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, आदि क्षेत्रों से सम्बद्ध) तथा निर्धनता उन्मूलन व रोजगार-सृजन के विशेष कार्यक्रमों में गहरा ताल-मेल बैठाना चाहिए। विशेष कार्यक्रमों की संख्या कम रख कर उनकी कार्यकुशलता व परिणामों को बढ़ाना चाहिए, ताकि आगे चल कर केवल विकास कार्यक्रमों का ट्रिकल-प्रभाव भी बढ़ सके और विशेष किस्म के कार्यक्रमों की जरूरत ही न रहे। लेकिन इसके लिए भारी राजनीतिक इच्छाशक्ति व प्रबल प्रशासनिक क्षमता की आवश्यकता होगी।
5. राजनीतिक दलों, एनजीओ व सामाजिक कार्यकर्ताओं को निर्धन-वर्ग में नव चेतना जगानी चाहिए क्योंकि निर्धनों में प्रायः कई प्रकार की कुरीतियां (शराब खोरी, जुआ, महिलाओं से मार-पीट, काम से जी चुराना आदि) पाई जाती है। उनमें मानसिक क्रान्ति होने से ही सामाजिक व आर्थिक क्रान्ति सम्भव हो सकती है।
6. कहने का तात्पर्य यह है कि निर्धनता एक गम्भीर अभिशाप है। यह एक बहुआयामी विषय है। सच पूछा जाए तो निर्धन ही अपनी निर्धनता दूर करने में आगे आएं तो ही सफलता की गारंटी मिल सकती है। सरकार तो इसमें वित्तीय सहयोग ही देसकती है। निर्धनता को इतिहास के पन्नों में धकेलना निर्धनों के ही हाथ में हो सकता है। अनुसूचित जाति (एस.सी.), अनुसूचित जनजाति (एस.टी) व अन्य पिछड़ी जाति (ओ.बी.सी.) के लोगों में निर्धनता के अनुपात ऊंचे पाए जाते हैं। अतः इस समस्या पर विशेष ध्यान देना होगा।

अन्नपूर्णा योजना

1 अप्रैल, 2000 से प्रभावी इस योजना का उद्देश्य 65 वर्ष या उससे ऊपर के उन लोगों को जो राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन स्कीम के तहत पेंशन प्राप्त करने के पात्र हैं, लेकिन जिन्हें पेंशन मिल नहीं रही है, की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्य सुरक्षा प्रदान करना है। इस योजना के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति 10 किग्रा खाद्यान्न प्रतिमाह मुफ्त दिया जाता है।

जनश्री बीमा योजना

समाज के गरीब वर्ग को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए 10 अगस्त, 2000 को यह योजना आरम्भ की गई। शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के 18 से 60 आयु वर्ग के लाभार्थियों को 200 रुपये वार्षिक प्रीमियम का भुगतान करना होता है। लाभार्थी को स्वाभाविक मृत्यु की दशा में 20,000 दुर्घटनावश मृत्यु/स्थायी विकलांगता के लिए 50,000 तथा आंशिक विकलांगता के लिए 25,000 रुपए का बीमा कवच देने का प्रावधान है। गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाभार्थी प्रीमियम की केवल आधी राशि का भुगतान करेंगे।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)

25 सितम्बर, 2001 को शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिर सामुदायिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिसम्पत्तियों के सृजन सहित ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार तथा खाद्य सुरक्षा देना है। ग्रामीण विकास मन्त्रालय द्वारा चलाई जाने वाली तथा पंचायती संस्थाओं के माध्यम से लागू की जाने वाली इस योजना में प्रतिवर्ष 100 करोड़ मानव दिवस रोजगार सृजित करने का प्रावधान है। दो चरणों वाली इस योजना के पहले चरण में जिला एवं ब्लाक पंचायतों को सम्मिलित किया जाएगा जिस पर आबंटित धनराशि का 50%

Download from www.studymasterofficial.com

व्यय होगा। योजना के दूसरे चरण में ग्राम पंचायतें शामिल की जाएंगी। इस योजना में कार्य करने वाले बेरोजगारों को प्रतिदिन 5 किग्रा खाद्यान्न दिया जाएगा, शेष भुगतान मुद्रा में किया जाएगा। योजना के अन्तर्गत किए गए कार्य श्रम आधारित होंगे और स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों के सृजन में सहायक होंगे। पूर्व से चल रही रोजगार आश्वासन योजना तथा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को 1 अप्रैल, 2002 से सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में समेकित किया गया है।

जय प्रकाश नारायण रोजगार गारण्टी योजना

केन्द्र सरकार ने श्री जयप्रकाश नारायण के जन्म शताब्दी वर्ष में देश के सर्वाधिक निर्धनता वाले जिलों के बेरोजगारों को रोजगार की गारण्टी देने के लिए ''जय प्रकाश नारायण रोजगार गारण्टी योजना'' आरम्भ की है। योजना के पहले चरण में देश के 130 सर्वाधिक पिछड़े जिलों की पहचान करने और योजना की रूपरेखा बनाने के लिए ग्रामीण विकास मन्त्रालय द्वारा एक कार्यबल गठित किया गया है।

राष्ट्रीय विकलांगता कोष योजना

केन्द्र सरकार द्वारा फरवरी 2003 को उप-प्रधानमंत्री द्वारा घोषित इस योजना का उद्देश्य अत्यधिक गरीबी में जीव व्यतीत कर रहे विकलांगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना है।

वरिष्ठ नागरिक बचत योजना

वरिष्ठ नागरिकों की ब्याज आय को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से अगस्त, 2004 में शुरू की गई इस योजना के अन्तर्गत 60 वर्ष की आयु का कोई भी व्यक्ति अकेला या पत्नी के साथ संयुक्त खाता खोल सकता है। योजना के अन्तर्गत जमा राशि पर 9 प्रतिशत की ब्याज दर लागू होगी और 1,000 रुपए के गुणांक में 15 लाख रुपए की अधिकतम सीमा तक राशि जमा की जा सकती है। योजना के अन्तर्गत होने वाली आय पर कर लगेगा।

ग्रामीण विकास से संबंधित नवीन योजनाएं (New Schemes regarding Rural Development)

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY)

ग्रामीणों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम चलाने के उद्देश्य से वर्ष 2000-01 में प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना घोषित की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने के समग्र उद्देश्य सहित प्राथमिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास, ग्रामीण, पोषाहार तथा ग्रामीण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ग्रामीण स्तर पर विकास करने पर ध्यान देना इसका उद्देश्य है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)

दिसम्बर, 2000 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य दसवीं योजना के अन्त (वर्ष 2007) तक ग्रामीण क्षेत्रों में 500 या अधिक व्यक्तियों (पहाड़ी, मरुस्थलीय और जनजातीय क्षेत्रों के मामले में 250) की जनसंख्या वाली 1.6 लाख सड़कों से न जुड़ी हुई बस्तियों को सड़क सम्पर्क उपलब्ध कराना है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (पेयजल आपूर्ति परियोजना)

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल आबंटन का कम-से-कम 25% भाग संबंधित राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा मरु विकास कार्यक्रम/सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों के संबंध में जल संरक्षण, जल प्रबन्धन, जल भराई तथा पेयजल संसाधनों को कायम रखने के लिए परियोजनाओं/योजनाओं के संबंध में उपयोग में लाया जाना है।

प्रधानमंत्री ग्रामीण जल संवर्द्धन योजना

15 अगस्त, 2002 से आरम्भ इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना है। इस योजना में पहले कार्यक्रम के अन्तर्गत अभावग्रस्त ग्रामीण क्षेत्रों में एक लाख हैण्डपम्प स्थापित किए जाएंगे, दूसरे कार्यक्रम में एक लाख ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में पेयजल की व्यवस्था की जाएगी और तीसरे कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पारम्परिक पेयजल स्रोतों का जीर्णोद्धार

Downloaded From www.studyquestofficial.com

किया जाएगा।

खेतिहर मजदूर बीमा योजना

1 जुलाई, 2001 से लागू इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले खेतिहार मजदूरों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने के साथ 100 रुपए प्रतिमाह पेन्शन प्रदान करना है।

हाल मे किए गए सामाजिक सुरक्षा उपाय: (Recent Social Security Measures)

कौशल विकास : 11 वीं योजना में अधिक से अधिक लोगों को शामिल करते हुए पूरे देश मे एक व्यापक कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किया गया है। इसका लक्ष्य 2022 तक 500 मिलियन कुशल कार्मिक जनसंख्या बनाना है।

कौशल विकास मिशन को आगे बढ़ाने के लिए एक तीन स्तरीय संस्थागत की स्थापना की गई है:

1. प्रधानमंत्री राष्ट्रीय कौशल विकास परिषद्
2. राष्ट्रीय कौशल विकास समन्वय बोर्ड
3. राष्ट्रीय कौशल विकास निगम राष्ट्रीय कौशल विकास समन्वय बोर्ड कौशल विकास के पांच मुख्य विषयों के सम्बन्ध में कार्य करता है।
   - i. पाठ्यक्रम में सतत् आधार पर संशोधन
   - ii. व्यवसायिक शिक्षा
   - iii. प्रशिक्षुता प्रशिक्षण
   - iv. प्रत्यक्ष और प्रमाणन प्रणाली
   - v. कौशल विकास के अभाव की स्थिति का निर्धारण

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम की स्थापना प्राइवेट प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए की गई है। यह एक गैर लाभकारी निगम होगा। यह कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन पंजीकृत किया गया है। इसके अलावा श्रदण 2009 में राष्ट्रीय कौशल विकास निधि को राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के लिए निधियों को प्राप्त करने वाले न्याय के रूप में निगमित किया गया।

कार्यान्वयन में कुशलता लाना है। एक बार लागू हो जाने के बाद योजना वित्तीय समावेशन बेहतर गवर्नेस और उन्नत सेवासुपुर्दगी को सुनिश्चित करेगी ताकि लक्षित कार्यान्वित की गई योजनओं के संदर्भ मे यह सभी प्रक्रियाओं के बीच समन्वय सुनिश्चित करेगी जिससे कारगर तरीके से इसका संचालन किया जा सके।

यू.आई.डी प्रणाली (UID System)

यू.आई.डी. प्रणाली की परिकल्पना निवासी नागरिकों को देश में कहीं भी आसानी से अपनी पहचान स्थापित करने के साधन के रूप में की गई है। यह सुनिश्चित करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है कि भारत में निवासी नागरिक उन संसाधनों और लाभों को प्राप्त कर सके जिनके वे हकदार हैं। निवासी नागरिक नामांकन एजेंसी को मूल व्यक्तिगत सूचना के साथ बायोमीट्रिक ब्यौरा जिसमें फोटोग्राफ, अंगुलियों के निशान और आयरिस स्कैन शामिल हो सकते हैं उपलब्ध कराकर यूआईडी संख्या के लिए नाम लिखाने में समर्थ होगा। यह नामांकन एजेंसी इस ब्यौरे को केन्द्रीय यूआईडी सर्वर को भेजेगी। इसके बाद सर्वर फिर डाटाबेस में मौजूद यूआईडी रिकार्डो के प्रति निवासी नागरिक की महत्वपूर्ण व्यक्तिगत सूचना और बायोमीट्रिक फील्ड का प्रयोग करते हुए द्वैधाता को रोकने की जांच करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उसकी पहले यूआईडी संख्या नहीं है। एक बार यह जांच पुष्टि कर देने पर कि कोई दोहरे रिकार्ड नहीं है, तब केन्द्रीय प्रणाली उस निवासी नागरिक को एक यूआईडी संख्या जारी कर देगी। निवासी नागरिक इस संख्या का प्रयोग विभिन्न सेवा प्रदाताओं के साथ कर सकता है जो उसकी पहचान की ऑन लाइन पुष्टि कर सकते हैं। एजेंसी को निवासी नागरिक द्वारा उपलब्ध करायी गई यूआईडी संख्या और सूचना यूआईडी को प्रेषित करनी है और सर्वर तत्काल हां या नहीं में उत्तर देगा।

DISCOVERY
Downloaded From www.studymasterofficial.com

7. कृषि
Agriculture

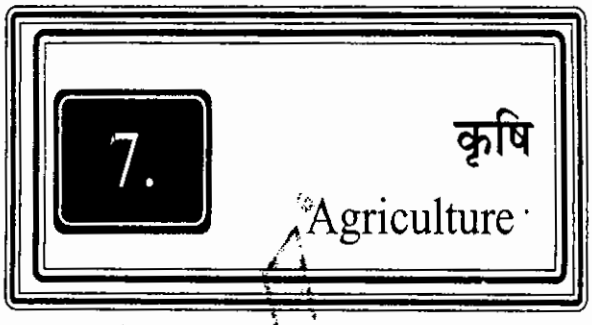

भूमिका (Introduction)

जीवन के लिए जल की भांति भूमि का भी महत्व अति विशिष्ट है। यह सभी प्रकार के उत्पादनों, विशेषकर कृषि संबंधी गतिविधियों के लिए आधार प्रदान करती है। वस्तुत: भूमि तंतुओं के उत्पादन तथा मानव के लिए आवासीय सुविधाएं उपलब्ध कराने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। अर्थव्यवस्था में भूमि की संकल्पना अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सभी प्राकृतिक संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित है। भूमि पशुओं के लिए चारागाह का भी कार्य करती है। जैसा कि हम जानते हैं, कृषि कार्यों तथा किसी क्षेत्र के विकास में वन संपदा का भी विशेष महत्व है। वनों से जलावन की लकड़ियां, औषधीय पौधे तथा चारकोल आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं। कई लघु उद्योगों की स्थापना के लिए अनिवार्य कच्चे माल की आपूर्ति में भी वनों का विशिष्ट योगदान है।

जहां तक भूमि के गैर-कृषि कार्यों का प्रश्न है, यह उल्लेख समीचीन होगा कि भूमि नगरीकरण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है। इसके फलस्वरूप, इसकी कीमत में निरंतर वृद्धि देखी गई है। भूमि की आवश्यकता परिवहनीय संसाधनों के विकास के लिए भी है। सारांशत: उत्पादन के एक साधन के रूप में भूमि की विशेषताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. **असमान आवर्तन के नियम से प्रभावित:-** असमान आवर्तन का नियम (Law of Diminishing Return) यह उल्लेख करता है कि अन्य आयामों के स्थिर रहने की स्थिति में श्रम तथा पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां आगम की प्रत्येक इकाई के लिए सकारात्मक लेकिन असमान आवर्तन के प्रतिफल देती हैं। श्रम तथा पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां कुछ समय तक उच्च प्रतिफल दे सकती हैं लेकिन कालांतर में प्रति अतिरिक्त इकाई प्रतिफल में कमी होती जाती है। अन्तत: अतिरिक्त इकाई से कोई अतिरिक्त प्रतिफल प्राप्त नहीं होता। इस स्थिति में यह उचित नहीं होता है कि अधिक व्यय किया जाये।
2. **सीमित आपूर्ति:-** प्राकृतिक रूप से ही भूमि की आपूर्ति सीमित है। इसका विस्तार उत्पादन के अन्य साधनों की भांति नहीं किया जा सकता।
3. **गुणात्मक विषमता:-** उत्पादन के एक साधन के रूप में भूमि की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके गुणों में विषमता पाई जाती है। असमान नियम की अप्रभावी बनाने के उद्देश्य से मानव ने अधिक से अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने का प्रयास किया है।

कृषि में पूंजी की भूमिका (Role of Capital in Agriculture)

कृषि में पूंजी एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से उत्पादन प्रक्रियाओं को प्रभावकारी बनाया जा सकता है तथा अर्थव्यवस्था की संवृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है। चालू उत्पादक प्रक्रियाओं को कार्यक्षेम बनाने के लिए संचित निर्गम को ही पूंजी कहते हैं। पूंजी की संकल्पना में स्थिर परिसंपत्तियां, जैसे भवन, मशीन, पुल तथा सड़कें भी सम्मिलित होती हैं। कृषि के क्षेत्र में पूंजी का तात्पर्य आधारिक आगमों, जैसे बीज तथा उर्वरक से है। कृषि उत्पादन को बेहतर बनाने लिए जलापूर्ति सुनिश्चित करने के साथ-साथ अन्य आगमों को प्रभावशाली बनाना आवश्यक है। इसके लिए पूंजी का कार्यक्षेम होना अनिवार्य है। विभिन्न कृषि कार्य के लिए कृषकों को आवश्यक युक्तियों की प्राप्ति में भी पूंजी का व्यापक योगदान है। वस्तुत: नई तकनीकों ने कृषि कार्यों को बेहतर बनाने में योगदान दिया है जिसका

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

प्रभाव बिना पूंजी के नहीं हो सकता। नई कृषि प्रौद्योगिकी पूंजी-आधारित हो गई है क्योंकि प्रति भू-खंड पूंजी की आवश्यकता बढ़ गई है। इसका मूल कारण यह है कि गैर-कृषि क्षेत्र में आगमों पर निर्भरता कृषि क्षेत्र के आगमों पर निर्भरता से अपेक्षाकृत अधिक हो गई है। कृषि में पूंजी का संचय कृषि कार्य से संबद्ध व्यक्ति की बचत आदतों पर निर्भर करती है। इस प्रकार के संचय के बाद ही नई तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकी के प्रवेश के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्ण रूप से गत्यात्मक हो गया है। यह सर्वविदित है कि पूंजी निर्माण की दर जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक होनी चाहिए। इससे अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर अधिक होने की संभावना होती है जो पुन: पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि में सहायक है। कृषि में पूंजी का प्रवाह कई स्रोतों से होता है जिनमें जमींदार, कृषि कार्यों से होने वाली बचत, तथा सामाजिक संपर्क उल्लेखनीय हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व (Significance of Agriculture in India Economy)

कृषि अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र है। यह अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों को व्यापक सहयोग प्रदान करता है। इस कारण भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व अति विशिष्ट है। इसके कारणों में निम्नांकित का उल्लेख समीचीन है :

1. भोजन और चारा का स्रोत

रोटी, कपड़ा और मकान मानव की तीन मौलिक आवश्यकताएं हैं। इनमें से भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अर्थव्यवस्था में कृषि मानव तथा पशुओं के लिए भोजन प्रदान कराने वाला प्रमुख स्रोत है।

2. कच्चे माल का स्रोत

विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल का एक महत्वपूर्ण स्रोत कृषि है। उदाहरण के लिए, कपास के धागों के लिए कच्चे कपास की उपलब्धता कृषि से ही की जा सकती है। जैसे-जैसे उद्योगों का विकास होता है, कच्चे माल की मांग में भी उसी के अनुरूप वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप, कृषि विकास पर बल दिया जाना अनिवार्य है ताकि उद्योगों का विकास सुनिश्चित किया जा सके।

3. जीविकोपार्जन का प्रमुख स्रोत

भारत में जीविकोपार्जन के एक मुख्य स्रोत कृषि रहा है। वर्तमान में भी कुल जनसंख्या का लगभग 2/3 भाग कृषि तथा संबद्ध क्षेत्र से ही रोजगार प्राप्त करते हैं।

4. विदेशी व्यापार में सहायक

भारत के विदेशी व्यापार में भी कृषि का योगदान अत्यन्त विशिष्ट है। परंपरागत रूप से भारत कृषि उत्पाद जैसे चाय, कॉफी, चीनी आदि का निर्यात करता रहा है। इस कारण, भारत के लिए विदेशी मुद्रा अर्जन में भी कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. समाजवादी समाज की स्थापना में सहायक

भारत के संविधान के अनुसार, भारत में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्राम-नगर विषमता कम हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति में कृषि विकास का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारतीय कृषि की विशेषताएं (Features of Indian Agriculture)

जैसा कि हम जानते हैं, कृषि अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र है। इसकी विशेषताओं में निम्नांकित उल्लेखनीय हैं :

1. जलवायु पर निर्भरता

भारतीय कृषि व्यापक रूप से जलवायवीय दशाओं तथा मानसून की प्रवृत्तियों पर निर्भर है। लगभग 60 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि वर्षा-पोषित है। कई क्षेत्रों में बाढ़ तथा अकाल जैसी समस्याएं भी विद्यमान हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

2. फसलों की बहुलता

जलवायु तथा मृदा के गुणों में व्याप्त भिन्नता के कारण भारत में विभिन्न प्रकार की फसलों की कृषि की जाती है। इस कारण भारतीय कृषि अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ कही जा सकती है।

3. अर्द्ध-व्यावसायिक कृषि

पूर्व में भारतीय कृषि निर्वाह कृषि रही थी। लेकिन विगत वर्षों में इस क्षेत्र के व्यावसायीकरण पर विशिष्ट बल दिया गया है। वर्तमान में भारत में कृषि को अर्द्ध-व्यावसायिक कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, निर्वाह कृषि की संकल्पना कमजोर हुई है जो निश्चित रूप से कृषि विकास में सहायक है।

4. लघु कृषकों का प्रभुत्व

भारत में बड़ी संख्या में लघु एवं सीमान्त किसान हैं जिसका मूल कारण कृषि क्षेत्र का पिछड़ापन है। साथ ही, जनसंख्या वृद्धि भी इस समस्या के प्रमुख कारणों में से एक है। भूस्वामित्व का विस्तार भी कम होने के कारण लघु कृषकों के प्रभुत्व की समस्या विद्यमान है।

5. घाटे की कृषि

भारतीय कृषि शिक्षित लोगों को आकर्षित करने में सक्षम नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त कम है। इस न्यून आय के कारण बचत कम होती है जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में पूंजी निर्माण भी कम होता है।

कृषि के पिछड़ेपन के कारण (Causes of Agricultureal Backwordness)

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि विकास अनिवार्य है। वास्तव में, इस क्षेत्र की क्षमता सर्वांगीण विकास में अत्यधिक है। इसके बावजूद भारत में कृषि विकास पर्याप्त नहीं हो पाया है तथा इस क्षेत्र में व्यापक स्तर पर पिछड़ापन विद्यमान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत कई वर्षों तक कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में धीमी गति से वृद्धि होती रही है जिसकी दर औसतन 2.7 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। दूसरी ओर, भूस्वामित्व, उत्पादन एवं उत्पादकता के दृष्टिकोण से भारत में क्षेत्रीय असंतुलन भी विद्यमान रहा है। कई क्षेत्र ऐसे हैं जहां सिंचाई सुविधाओं की अपर्याप्तता है। इसके अतिरिक्त, स्थिर पूंजी का आकार भी पर्याप्त नहीं रहा है। फलत: कृषि की आन्तरिक क्षमता जिसके माध्यम से वह जलवायवीय अनिश्चितताओं का सामना कर सके, भी पर्याप्त नहीं है।

कृषि क्षेत्र में सामाजिक पर्यावरण भी संतोषजनक नहीं है। देश के अधिकांश भागों में कृषि पर आधारित संबंधों की प्रकृति अभी भी सामन्तवादी है। साथ ही, कृषि में मानव संसाधन विकास भी अपर्याप्त है। हांलाकि, हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन किये गये हैं लेकिन अभी भी इस दिशा में प्रयास करने बाकी हैं। यह विदित है कि कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों से उत्पादन तथा उत्पादकता दोनों ही दृष्टिकोणों से विकास सुनिश्चित होता है। जहां तक विपणन का प्रश्न है, अधिकांश गांवों में कृषि उत्पादों के व्यापार तथा कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उपभोग की वस्तुओं की उपलब्धता नगरीय क्षेत्रों की तुलना में सुदृढ़ नहीं है। इनके अतिरिक्त, कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले उपकरण भी अध्णिकांश क्षेत्रों में आधुनिक नहीं हैं। इस कारण वैज्ञानिक कृषि विकास भी अब तक पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है।

इस पृष्ठभूमि में, अर्थव्यवस्था के इस प्राथमिक क्षेत्र में सुधार के लिए व्यापक प्रयास अपेक्षित हैं। ऐसे कतिपय कारकों का उल्लेख नीचे किया गया है :

1. साख की व्यवस्था

कृषि क्षेत्र में साख की सुदृढ़ व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है। भारतीय रिजर्व बैंक तथा नाबार्ड की सहायता से सरकार ने इस दिशा में कई ठोस प्रयास किये हैं। विशेष रूप से रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी साख व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। हाल ही में, जारी मौद्रिक एवं साख नीति (रिजर्व बैंक ने इस नीति का नाम परिवर्तित कर इसे वार्षिक नीति वक्तव्य की संज्ञा दी है) में रिजर्व बैंक ने कमजोर सहकारी बैंकों की पुनर्संरचना पर बल दिया है। सहकारी साख कार्ड योजना को पुनर्जीवित करने के लिए

www.Downloaded From www.studymaterofficial.com

15,000 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। इस राशि को केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा प्रदान किया जायेगा जिसके अनुपात की घोषणा रिजर्व बैंक द्वारा कालांतर में की जायेगी।

2. उद्योगों का विकास

कृषि को सहायता पहुंचाने में उद्योगों का विशेष योगदान होता है। प्रत्यक्ष रूप से उद्योग कृषि क्षेत्र को उर्वरकों, उपकरणों तथा कीटनाशकों की आपूर्ति करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से बाहर आये श्रमिकों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में उद्योगों का योगदान है। इससे कृषि पर जनसंख्या दबाव को भी कम किया जा सकता है।

3. बाजारों का विकास

कृषि बाजार अनिवार्य रूप से भूखंडों के समीप होने चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि कृषकों को अपने उत्पादों के विक्रय तथा समुचित राशि प्राप्त करने में सरलता होती है। साथ ही, बाजारों में व्याप्त समस्याएं भी दूर की जानी चाहिए। कृषकों को संग्रहण की सुविधाएं उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। बाजारों में साख की व्यवस्था बाजारों को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है, जिसके लिए विशिष्ट प्रावधान किये जाने चाहिए। इन प्रयासों से कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता, दोनों में ही वृद्धि की संभावनाएं प्रबल होती हैं।

4. स्वामित्व का समेकन

चकबन्दी के माध्यम से छोटे-छोटे भूखंडों का समेकन किया जा सकता है क्योंकि छोटे-छोटे भूखंडों के कारण उत्पादकता तथा उत्पादन, दोनों ही प्रभावित होते हैं। चकबन्दी कर सघन कृषि को प्रोत्साहित किया जा सकता है। भारत में यह कार्य लगभग पूरा किया जा रहा है।

कृषि तथा उद्योग में अन्तर्सम्बन्ध (Inter relation between Agriculture and Industry)

किसी भी अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग में परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। कृषि औद्योगिक विकास में निम्न प्रकार सहयोग करती है–

1. कृषि क्षेत्र विभिन्न उद्योगों के लिये कच्चे माल की आपूर्ति करता है। यदि कृषि क्षेत्र पिछड़ा हुआ है तो औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त आपूर्ति नहीं हो सकेगी जिससे उद्योगों का विकास मंद होगा और आर्थिक विकास की दर नीची बनी रहेगी।
2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की आय बढ़ जाने से बचत करने की क्षमता का विस्तार होता है। फलतः पूंजी निर्माण में वृद्धि होती है।
3. कृषि का विकास व विस्तार होने से देश की निर्यात क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है जिसके परिणामस्वरूप अधिक मात्रा में विदेशी विनिमय का अर्जन होता है। प्राप्त विदेशी विनिमय द्वारा आवश्यक यन्त्र एवं उपकरण प्राविधिक ज्ञान एवं आवश्यक वस्तुओं का आयात कर औद्योगिक विकास किया जा सकता है।
4. कृषि औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिये बाजार प्रदान करती है। जब कृषि का विकास होता है तब कृषकों की आय बढ़ती है जिससे औद्योगिक वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिसके फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार होता है।
5. कृषि क्षेत्र, पूंजी प्रधान उद्योगों को श्रम शक्ति उपलब्ध कराता है। कृषि के विकास से वर्तमान जनसंख्या को खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने के लिये कृषि क्षेत्र में पहले की अपेक्षा कम श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में संलग्न श्रम शक्ति का एक बड़ा भाग अन्य व्यवसायों के लए मुक्त हो जा ता हैं

कृषि विकास में औद्योगिक विकास की भूमिका (Role of Industrial Development in Agricultural Development)

1. औद्योगिक विकास से समुन्नत एवं सुधरी हुई निविष्टियों (आगतों) यथा कृषि यन्त्रों एवं उपकरणों रासायनिक उर्वरकों, कृमिनाशकों तथा अन्य उत्पादक वस्तुओं का निर्माण होता है जो कृषि उत्पादकता में प्रत्यक्ष वृद्धि करती हैं।

www.Downloaded From.studymasterofficial.com DISCOVERY

2. औद्योगीकरण से कृषि उत्पादों के बाजार का विस्तार होता है जिसके फलस्वरूप कृषि निर्वाहमात्र क्षेत्रक नहीं रह जाता, नकदी फसलों के अधिक विशिष्ट तथा दल उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है, कृषि परिष्करण उद्योगों का विकास होता है तथा ग्रामीण एवं नगरीय अर्थव्यवस्था का समन्वय होता है।
3. औद्योगीकरण से कृषकों एवं कृषि श्रमिकों को अनेक प्रकार की उपभोग वस्तुयें सुलभ होती है। जिससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। फलत: कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है।
4. औद्योगीकरण से मजदूरी वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है जिनमें अनाज मुख्य वस्तु है।
5. औद्योगीकरण से नवीन कौशल, पूंजी निर्माण तथा तकनीकी नवक्रियाओं का प्रसार होता है तथा देश में कृषि विकास के साथ-साथ आर्थिक विकास को गति प्राप्त होती है।

कृषि यन्त्रीकरण

कृषि यंत्रीकरण का तात्पर्य परम्परागत तकनीकों एवं उपकरणों से खेती के स्थान पर यांत्रिक शक्ति का प्रयोग करना। जब कृषि के कार्यों में पशु शक्ति या मानव शक्ति के स्थान पर बिजली, डीजल, एवं पेट्रोल से चलने वाली यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है तब यह प्रक्रिया कृषियन्त्रीकरण या कृषि में तकनीकी प्रगति कहलाती है। कृषि के यन्त्रीकरण में खेत में हल चलाने से लेकर फसल की बिक्री तक के सभी कार्य विभिन्न प्रकार के यन्त्रों, उपकरणों एवं मशीनों की सहायता से संचालित होते हैं। उदाहरण के लिए जुताई एवं बुवाई में ट्रेक्टर, फसल काटने एवंनिकालने के कार्य में हार्वेस्टर एवं थ्रेसर, सिंचाई के लिए पम्पसेट, यातायात में ट्रेक्टर एवं ट्राली आदि सभी कार्य यन्त्रों एवंउपकरणों से किये जाते हें।

यन्त्रीकरण के प्रकार (Types of Mechanisation)

यन्त्रीकरण को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है:

क. **पूर्ण यन्त्रीकरण** (Complete Mechanisation)— जब कृषि से सम्बन्धित सभी कार्यो में मशीनों एवं यन्त्रों का प्रयोग होने लगता है और पशुधन एवं मानवीय श्रम पूर्णत: प्रतिस्थापित हो जाता है तब इसे पूर्ण यन्त्रीकरण कहा जाता है। इस प्रकार का यन्त्रीकरण अमेरिका में अपनाया जा चुका है।

ख. **आंशिक यन्त्रीकरण अथवा चयनात्मक यन्त्रीकरण** (Partial Mechanisation or Selective Mechnisation)— जब कृषि के कुछ सीमित कार्यों में यन्त्रों एवं मशीनों का प्रयोग होता है तथा शेष कार्य मानवीय श्रम पर आधारित रहते हें तब इसे आंशिक अथवा चयनात्मक यन्त्रीकरण कहा जाता है। भारत की पांचवीं पंचवर्षीय योजना से चयनात्मक यन्त्रीकरण अपनाया जा रहा है।

कृषि यन्त्रीकरण के लाभ

1. **कृषि क्षेत्र का विस्तार** (Extension of Agricultural Area)— यन्त्रीकरण की सहायता से बन्जर, पथरीले, ऊंचे-नीचे, टीलों वाले भू-खण्डों को कृषि योग्य बनाना सम्भव हो पाया है।
2. **उत्पादकता में वृद्धि** (Increased Production)— कृषि यन्त्रीकरण से कृषि क्षेत्र में गहन खेती सम्भव हो पाती है जिससे प्रति हेक्टेअर उत्पादन में वृद्धि होती है। यन्त्रीकरण के अन्तर्गत वैज्ञानिक यन्त्रों एवं उपकरणों का प्रयोग होने से भूमि की उत्पादनशीलता बढ़ जाती है।
3. **उत्पादन लागत में कमी** (Reduction in Production Cost)— कृषि यन्त्रीकरण की सहायता से उत्पादन की औसत लागत को घटाना सम्भव हो पाया है। आधुनिक यन्त्रों एवं उपकरणों की सहायता से कृषि कार्य अधिक कुशलता के साथ किये जा सकते हैं जिससे उत्पादन बढ़ता है तथा उत्पादन की औसत लागत कम हो जाती हैं। उत्पादन लागत की कमी किसानों के लाभ को अधिक करती है।
4. **श्रम एवं पशुधन की बचत** (Saving of Labour and Animal Resources)— यन्त्रीकरण ने कृषि कार्यो को मितव्ययी बना दिया है। श्रम एवं पशुधन की सहायता से कृषि कार्य करना न केवल अधिक खर्चीला है बल्कि समय का भी अपव्यय होता है। इसके

www.DownloadExamPDF.com / www.studyasterofficial.com / DISCOVERY

अतिरिक्त श्रम तथा पशुधन कृषि यन्त्रों एवं उपकरणों की तुलना में कम कुशल होते हैं। यन्त्रीकरण की सहायता से श्रम एवं पशुधन की बचत करके कृषि कार्यों को अधिक कुशलता से किया जा सकता है।

5. **व्यापारिक खेती का विस्तार** (Extension of Commercial Crops)— कृषि का यन्त्रीकरण करके व्यापारिक फसलों के उत्पादन में भी वृद्धि सम्भव हो पाती है जिससे अनेक सहायता उद्योगों का संचालन होता है। इस प्रकार यन्त्रीकरण की सहायता से कृषि उत्पादकता में वृद्धि करके अनेक सहायक उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति की जा सकती है।
6. **पशु पालन व्यय में कमी** (Reduction in Cattle Expenses)— कृषि यन्त्रीकरण करके पशु पालन के अनावश्यक व्यय को समाप्त किया जा सकता है। पशु को पूरे वर्ष खिलाने के लिए कृषि योग्य भूमि पर उनके चारे की खेती करनी पड़ती है जिससे कृषि फसलों के लिए भूमि आकार अनावश्यक रूप से घट जाता है। यन्त्रीकरण करके कृषि भूमि के इस अपव्यय को समाप्त किया जा सकता है।
7. **अन्य कृषि आदानों का समुचित प्रयोग सम्भव:**- कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के लिए अनेक नये-नये कृषि आदनों जैसे उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक खादें एवं उर्वरक, आदि का पूर्ण लाभ कृषि यन्त्रीकरण करके ही प्राप्त किया जा सकता है। परम्परागत उपकरणों से खेती करके इन नवीन कृषि आदानों का प्रयोग करते हुए भी उत्पादकता में वांछित वृद्धि नहीं की जा सकती।
8. **रोजगार अवसरों का विस्तार** (Extension of Employment opportunities)— कृषि यन्त्रीकरण अपनाये जाने से कृषि उपकरणों के निर्माण एवं मरम्मत से सम्बन्धित उद्योगों में रोजगार अवसरों का पर्याप्त विस्तार होता है। साथ ही साथ व्यापारिक कृषि में विस्तार होने से अनेक सहायक उद्योगों में भी अतिरिक्त रोजगार अवसर उत्पन्न होते हैं।

कृषि यन्त्रीकरण के दोष

यद्यपि यन्त्रीकरण करके कृषि क्षेत्र में अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं किन्तु भारत जैसे देश में जहां जनाधिक्य है तथा कृषि क्षेत्र अनेक आर्थिक एवं सामाजिक दोषों से पीड़ित है, कृषि यन्त्रीकरण की नीति लाभप्रद न होकर हानिकारक बन जाती है। भारतीय परिस्थितियों में यन्त्रीकरण करने में अनेक दोष एवं समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जिनका विवरण निम्नवत् है–

- कृषि जोतों के छोटे आकार के कारण अमितव्ययी।
- कृषकों की निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता में वृद्धि।
- कृषकों की अशिक्षा एवं परम्परावादी दृष्टिकोण।
- यन्त्रीकरण पूंजीगहन होने के कारण बेरोजगारी में वृद्धि।
- पर्याप्त शक्ति साधनों (जैसे डीजल, विद्युत, पेट्रोल, आदि) का अभाव।
- पशु शक्ति का आधिक्य एवं यन्त्रीकरण में पशु शक्ति मानव पर बोझ।
- यन्त्रों की मरम्मत में कठिनाई।

भारत में कृषि यन्त्रीकरण की प्रगति के लिए सुझाव

भारतीय कृषि की आर्थिक एवं सामाजिक बाधाओं को ध्यान में रखकर यदि भारत में कृषि यन्त्रीकरण का मूल्यांकन किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि विकसित देशों की तरह भारत में सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र का यन्त्रीकरण न तो सम्भव ही है और न ही वांछनीय किन्तु यन्त्रीकरण के लाभों को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष भी निकालना अनुचित होगा कि भारतीय कृषि में कृषि यन्त्रीकरण पूर्णतया असम्भव हैं भारत में यन्त्रीकरण का नियोजित रूप में विस्तार किया जाना चाहिए। यन्त्रीकरण के नियोजन में भारत की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। भारत में यन्त्रीकरण तभी सम्भव हो पायेगा जब यह भारत की परिस्थितियों के साथ उचित तालमेल रख सके और उत्पादन एवं रोजगार दोनों की वृद्धि में सहायक हो। भारत में कृषि यन्त्रीकरण की सफलता के लिए निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

- यन्त्रीकरण से प्रतिस्थापित श्रम के लिए अतिरिक्त रोजगार अवसर सृजित किये जाने चाहिये।
- यन्त्रीकरण सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र में एक साथ न अपनाकर धीरे-धीरे अपनाया जाना चाहिए।
- कृषि यन्त्रों को खरीदने के लिए किसानों को (विशेषकर छोटे किसानों को) वित्तीय सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

Downloaded from www.studymasteroffical.com

- सहकारी कृषि में यन्त्रीकरण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण अंचलों में सरकारी यन्त्र सेवा केन्द्र खोले जाने चाहिए ताकि किसान इन यन्त्रों की समय से एवं कम लागत पर मरम्मत आदि करवा सके।
- भारतीय दशाओं के अनुकूल हल्के एवं छोटे यन्त्रों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- यन्त्रीकरण में यन्त्रों के सही प्रयोग के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण एवं अन्य शक्ति स्त्रोंतों की उपलब्धता का विस्तार किया जाना चाहिए।

11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के दौरान कृषि क्षेत्र का निष्पादन (Performance of Agriculture During 11 th Plan)

मौजूदा पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान, कृषि क्षेत्र (सम्बद्ध गतिविधियों सहित) ने प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत के योजना लक्ष्य की तुलना में 2.03 प्रतिशत की औसत विकास दर दर्ज की। मौजूदा योजना के 2007-08 के पहले वर्ष में कृषि क्षेत्र ने 5.8 प्रतिशत की शानदार विकास दर प्राप्त की, तथापि, अगले दो वर्षों में इस उच्च वृद्धि दर को बनाए नहीं रखा जा सका तथा कृषि क्षेत्र का बिकास घटकर 2008-09 में -0.1 प्रतिशत के नकारात्मक जोन में जा पहुचा, यद्यपि यह वर्ष 234.47 मिलियन टन खाद्य उत्पादन का रिकार्ड वर्ष था। कृषि सघउ के विकास में गिरावट मुख्यत: कृषि फसलों जैसे तिलहन, कपास, जूट तथा मेस्ता और गन्ने के उत्पादन में कमी के कारण हुई। 2009-10 में 1972 में सर्वाधिक खराब दक्षिण-पश्चिम मानसून से और उसके बाद खरीफ खाद्यान्न उत्पादन में भारी गिरावट से अच्छी रबी फसल के कारण इसमें 0.4 प्रतिशत तक मामूली सुधार हुआ। रबी फसल को बचाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न उपायों से रबी फसल पर सूखे की स्थिति के प्रभाव को रोकने हेतु अपेक्षित परिणाम निकले। सापेक्षतया अच्छे मानसून की वजह से मौजूदा वर्ष में स्थिति में सुधार हुआ और कृषि क्षेत्र में 2010-11 के अग्रिम अनुमानों के अनुसार 5.4 प्रतिशत विकास की आशा है। योजना के पहले चार वर्षों में कृषि क्षेत्र का विकास 2.87 प्रतिशत होना अनुमानित है। प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत के औसत आयोजना लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कृषि क्षेत्र द्वारा 2011-12 के दौरान 8.5 प्रतिशत की दर पर विकास करने की आवश्यकता है।

निर्यात तथा आयात

घरेलू उपलब्धता पर निर्भर रहते हुए, सरकार विशेष रूप से गेहूं, चावल तथा दालों के खाद्य मदों के निर्यात तथा आयात की अनुमति देती है। सरकार गेहूं पर आयात शुल्क को 9 सितम्बर, 2006 से घटाकर शून्य पर ले आयी है ताकि इसकी आपूर्ति बढ़ायी जा सके। गेहूं पर निर्यात को 8 अक्तूबर, 2007 से प्रतिबंधित कर दिया है। आधा मशीन कूटे अथवा पूर्णत: मशीन कूटे चावल पर आयात शुल्क को घटाकर 20 मार्च, 2008 से शून्य कर दिया गया है ताकि इसकी आपूर्ति बढ़ायी जा सके। गैर-बासमती चावल के निर्यात को 15 अक्तूबर 2007 से प्रतिबंधित कर दिया है, केवल 7 दिसम्बर, 2009 से जैविक गैर-बासमती चावल के प्रतिवर्ष 10,000 टन के निर्यात की अनुमति दी गयी हैं इसके अलावा, गैर-बासमती चावल के निर्यात की अनुमति राजनयिक/मानवीय आधार पर दी गयी है। बासमती चावल के निर्यात की अनुमति प्रति टन 900 अमरीकी डॉलर अथवा 41,400 प्रति टन के न्यूनतम निर्यात मूल्य (एमईपी) के साथ दी गयी है। सरकार ने दालों पर आयात शुल्क को घटाकर 8 जून, 2006 से शून्य कर दिया है ताकि उनकी आपूर्ति को बढ़ाया जा सके। काबुली चना को छोड़कर दालों के निर्यात की अनुमति को 1 अप्रैल, 2008 से प्रतिबंधित कर दिया है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम (Special Programmes for Pramoting Agricultural Production)

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा (एनएफएसएम) मिशन

इसे देश के 17 राज्यों के 312 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है। एनएफएसएम-चावल 14 राज्यों के 136 जिलो मे कार्यान्वित किया जा रहा है। अर्थात आन्ध्रप्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महराष्ट्र, उड़ीसा, तामिलनाडु,

उत्तरप्रदेश और पं. बंगाल। एनएफएसएम- चावल के अंतर्गत शामिल किए गए उपायों में उन्नत पद्धतियों संबंधी प्रदर्शन, चावल की खेती के सघनीकरण की प्रणाली एचवाईवी बीजो का वितरण बीज मिनिकिट सूक्ष्म पोषक तत्व लाइमिंग कोनोवीडर्स जीरों टिल सीड ड्रिल बहु-फसल प्लान्टर्स सीड ड्रिल रोटेवेटर, डीजल पम्प सेट, पावर वीडर्स, नेप सैक स्प्रेयर्स पौध संरक्षण रसायन और जैव-कीटनाशक फार्मस फील्ड स्कूल स्थानीय पहलें सर्वोत्तम निष्पादनकर्ता जिलों के लिए पुरस्कार जल संचार अभियान तकनीकी ज्ञान वृद्धि के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अभिमुखीकरण और परियोजना प्रबंधन दल शामिल हैं। एनएफएसएम-गेहूं 9 राज्यों अर्थात बिहार गुजरात हरियाणा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और पं. बंगाल के 141 जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है। एनएफएसएम-दलहन उपायों में ब्रीडर बीजों और फाउंडेशन तथा प्रमाणित बीजों के उत्पादन और खरीद के रूप में सहायता बीज प्रमाणन एजेन्सियों का सुदृढ़ीकरण स्प्रिंकलर सैट, जीरों टिल सीड ट्रिल आईआईपीआर, कानपुर का आधारभूत ढांचा मजबूत करना ब्लू संबंधी प्रायोगिक परियोजना; आईसीआरआईएसएटी प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन और परियोजन प्रबंधन दल तथा एनएफएसएम-चावल और एनएफएसएम-गेहूं के अधीन प्रदत्त अन्य सुविधाएँ शामिल हैं। 2008-09 के दौरान इस कार्यक्रम के अंतर्गत 883.26 करोड़ रूपए की राशि जारी की।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना

इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित सूचक व्यापक गतिविधियां ध्यान केन्द्रित करने हेतु चिन्हित की गई हैं- मोटे अनाजों, रागी और दालों सहित खाद्य फसलों का समेकित विकास कृषि प्रणालियों का विकास समेकित कीटनाशक प्रबन्धन बाजार आधारभूत ढांचा बागवानी पशुपालन, दुग्ध उद्योग और मत्स्य पालन निश्चित समय सीमा वाली परियोजनाओं को पूर्ण करने की अवधारणा ढांचा बागवानी पशुपालन, दुग्ध उद्योग और मत्सय पालन निश्चित समय सीमा वाली परियोजनाओं को पूर्ण करने वाली अवधारणा कृषि और बागवानी आदि को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं को सहायता कार्बनिक और जैव-उर्वरक और नवोन्मेषी योजनाएं। वर्ष 2007-08 के दौरान 1500 करोड़ रुपए के परिव्यय की स्वीकृति दी गई थी जिसमें से जिला कृषि योजना (डीएपी) की तैयारी के लिए 10 लाख रुपए प्रति जिले के हिसाब से 48 करोड़ रुपए सहित 1246.89 करोड़ रुपए की राशि राज्यों को जारी की गई वर्ष 2008-09 के लिए, संशोधित अनुमान स्तर पर 2891.70 करोड़ रुपए के परिव्यय किया गया।

सूचना उपलब्धता

कृषि उत्पादन पर विश्वस्त सूचना की समय पर उपलब्धता योजना और नीति निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। कृषि सांख्यिकी की विद्यमान प्रणाली में स्थापित प्रक्रियाओं और व्यापक कवरेज के बावजूद, वांछित स्थानिक ब्योरों सहित फसल कटाई से पूर्व की अवस्थाओं में फसलों का वस्तुनिष्ठ आँकलन उपलब्ध कराने के मामले में अन्तर्निहित सीमाएं हैं। ये आँकलन समस्या वाले क्षेत्रों और स्थानिक, सामाजिक और गुणवत्ता संबंधी निष्कर्षों के संदर्भ में वांछित उपायों की पहचान के लिए अनिवार्य हैं। फसल पूर्वानुमानों और फसल अनुमान की विद्यमान प्रणाली की क्षमताओं को प्रौद्योगिकीय उन्नति और उभरती हुई पद्धतियों को अपनाने से बढ़ाया सकता है। इसके बदले, एक सूक्ष्म और ठोस सूचना व्यवस्था खाद्यसुरक्षा, मूल्य स्थिरता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि जैसे क्षेत्रों के विषयों के प्रबन्धन में बहुत अधिक सहायता कर सकती है। रिमोट सेंसिंग, सूचना ओर संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) और भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) का इस प्रयोजन हेतु प्रयोग किया जा सकता है। अन्तरिक्ष, कृषि-मौसम विज्ञान और भूमि-आधारित पर्यवेक्षण का प्रयोग करके कृषि उत्पादन का पुर्वानुमान (एफएएसएएल) तथा विस्तारित रेंज पूर्वानुमान प्रणाली के लिए एक अधिक वैज्ञानिक और विश्वस्त आधार की स्थापना के लिए एक नई योजना शुरु की गई है।

फसल पूर्वानुमान और फसल अनुमान की विद्यमान प्रणाली की क्षमताओं को बढ़ाने के उद्देश्य से, मंत्रालय में प्रौद्योगिकीय उन्नयन को लागू करने और रिमोट सेंसिंग, भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) अपनाने पर विचार किया। तदनुसार, वर्ष 1987 में, कृषि और सहकारिता विभाग ने फसल क्षेत्र और उत्पादन पूर्वानुमान के लिए रिमोट सेंसिंग तकनीकों का प्रयोग करते हुए प्रौद्योगिकियों का विकास करने के उद्देश्य से "फसल क्षेत्रफल और उत्पादन अनुमान" नामक एक परियोजन प्रायोजित की। परियोजना अन्तरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र, अहमदाबाद के माध्यम से कार्यान्वित की गई और इसमें रिमोट सेंसिंग और मौसम संबंधी आंकड़ों का प्रयोग करके प्रक्रियाओं के विकास और मानकीकरण फसल क्षेत्र और उत्पादन पूर्वानुमान के लिए मॉडल और साफ्टवेयर पैकेजों के लिए एक मंच प्रदान किया।

विस्तार सुधार

कृषि तथा सहकारिता विभाग निम्नलिखित प्रयासों के जरिए कृषि प्रौद्योगिकियों और सूचना के हस्तान्तरण में सहायता प्रदान करता है।

- "विस्तार सुधार सम्बन्धी राज्य विस्तार कार्यक्रमों को सहायता" नामक केन्द्रीय प्रायोजित योजना मई, 2005 में (10 वीं योजना) राज्य सरकारों को उनके विस्तार प्रणाली में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से लागू की गयी थी। यह योजना जिला स्तर पर कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एजेंसी (आत्मा, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत सोसाइटी) के रूप में प्रौद्योगिकी प्रसार के एक नए सांस्थानिक प्रबन्धन के जरिए विकेन्द्रीकृत कृषक संचालित तथा कृषक जवाबदेह विस्तार प्रणाली को प्रोत्साहन देती है। यह योजना 29 राज्यों तथा 2 संघ राज्य क्षेत्रों के 583 जिलों में संचालित है। यह योजना राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संरचनाओं के उन्नयन, मानव संसाधन विकास की विस्तार कार्यप्रणालियों, पुरस्कार और प्रोत्साहन, तथा स्कीम की मॉनीटरिंग और मूल्यांकन जैसे राज्य स्तर पर किसानोन्मुख गतिविधियों में कृषि सूचना प्रसारण गतिविधियों और अनुसंधान विस्तार कृषक गतिविधियों को सहायता प्रदान की जाती है।
- अप्रैल, 2002 में कृषि क्लीनिक तथा कृषि व्यवसाय केन्द्र (एसीएबीसी) योजना प्रारम्भ की गयी थी। यह योजना कृषि क्लीनिक तथा कृषि व्यवसाय केन्द्रों की स्थापना के लिए बेरोजगार कृषि स्नातकों को प्रोत्साहन देती है जिसके द्वारा सार्वजनिक विस्तार प्रणाली के प्रयासों को दूर किया जा सके और जरूरतमंद किसानों को निर्दिष्ट आपूर्ति तथा सेवाओं के पूरक स्रोतों के रूप में भी सहायता प्रदान की जा सके। इस प्रक्रिया में यह योजना कृषि क्षेत्र में उभरते क्षेत्रों में कृषि स्नातकों को लाभकारी रोजगार प्रदान करती है।
- कृषि विस्तार योजना को प्रदान किए जा रहे सहायता का उद्देश्य दूरदर्शन तथा आकाशवाणी को मौजूदा आधारभूत संरचना का उपभोग करना हैं ताकि कृषिक समुदाय को अद्यतन सूचना तथा ज्ञान के प्रसार हेतु कृषि तथ सम्बद्ध गतिविधियों में व्यापक विषयों को शामिल कर उसके अनुसार कार्यक्रमों को तैयार और प्रस्तुत किया जा सके। डीडीसी के विचाराधीन 24 घंटे का एक समर्पित चैनल प्रारम्भ करने की बात है।

किसान कॉल सेंटर योजना

यह योजना कृषक समुदायों को टॉलफ्री कन्ट्री-वाइड कॉमन नम्बर के जरिए कृषि विषय सूचना उपलब्ध कराने हेतु 21 जनवरी, 2004 को प्रारम्भ की गयी थी। इसमे कॉल के उत्तर दिए जाते है तथा उत्तर 21 स्थानीय भाषाओं में दिया जाता हैं। सम्पूर्ण देश में स्थित 25 केसीसी द्वारा मार्च, 2009तक 32.70 लाख कॉल प्राप्त किए गए थे। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भारतीय दूरसंचार परामर्शदाता लि. इस योजना को निजी सेवा संभरक के माध्यम से कार्यान्वित कर रहा है। किसान ज्ञान प्रबन्ध प्रणाली (केकेएमएस) को विकसित किया जा रहा है ताकि कॉल सेंटर के एजेंटों को किसानों द्वारा पूछे गए सवालों के जवाब देने में सक्षम बनाने हेतु तुरंत सहायता उपलब्ध करायी जा सके। केकेएमएस को नियमित अन्तराल में अद्यतन तथा वैध बनाने का दायित्व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों पर होगा। इंडिया ट्रेड प्रमोशन ऑर्गनाइजेशन द्वारा वार्षिक रूप में आयोजित किए जाने वाले भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेले और प्रतिवर्ष पांच क्षेत्रीय मेलों, वर्ष में प्रत्येक क्षेत्र में एक मेले के आयोजन से सूचना प्रसारण सम्भव होता है।

केन्द्रीय संस्थानों को सहायता

इस योजना के तहत, राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबन्ध संस्थान, विस्तार शिक्षा संस्थान और मॉडल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को सहायता प्रदान की जाती है। क्षेत्रीय स्तर प्रचार विस्तार शिक्षा संस्थान विस्तार प्रणाली पहलुओं पर राज्य विभाग कर्मचारियों को एचआरडी सहायता प्रदान करते हैं। मॉडल प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का उद्देश्य व्यावसायिक क्षमता में सुधार करना और विषय विशेषज्ञों और सम्बद्ध विषय क्षेत्रों में राज्य विभागों के विस्तार कामागारों के ज्ञान तथा दक्षता का उन्नयन करना है। विविध परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन प्रबन्धन, सूक्ष्म खेती, संरक्षित कृषि, ऑर्गेनिक फार्मिंग आदि सहित संशोधित उत्पादन प्रौद्योगिकी जैसे ज्वलंत विषयों पर पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

भारत में हरित क्रान्ति (Green Revolution in India)

60 के दशक में भारत में कृषि क्षेत्र में हरित क्रान्ति अपनायी गयी। हरित क्रान्ति का संबंध कृषि क्षेत्र में उत्पादन तकनीक के सुधार एवं कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने से है। नॉरमन ई. बोरलॉग को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता हैं इसमें जहाँ एक ओर कृषि

Downloaded From www.studymasterofficial.com

उत्पादकता वृद्धि को लक्ष्य बनाया गया, वहीं कृषि क्षेत्र की परम्परागत उत्पादन तकनीक में संरचनात्मक परिवर्तन करने के प्रयास भी सम्मिलित किये गये। उत्पादन तकनीक के इन संरचनात्मक परिवर्तनों में नवीन कृषि उपकरणों (जैसे ट्रैक्टर, थ्रेसर, कम्बाइन आदि) सिंचाई सुविधाओं (जैसे ट्यूबवैल, नहर परियोजनायें आदि) रासायनिक खादों, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग सम्मिलित किया गया। पौध संरक्षण, उन्नत बीज (एच.वाई.वी) आदि के प्रयोग पर भी इस कार्यक्रम में विशेष ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त उत्पादकता में वृद्धि करने के लिये बहुफसली कार्यक्रम अपनाकर एक वर्ष में कई फसलें उगाने का प्रयास इस हरित क्रान्ति में किया गया। इस प्रकार कृषि क्षेत्र में आमूल परिवर्तन लाकर कृषि उत्पादकता में वृद्धि को हरित क्रान्ति कहा गया।

DISCOVERY ®
Downloaded From www.studymasterofficial.com

हरित क्रान्ति के मुख्य घटक

- अधिक उपज देने वाली फसलों का प्रयोग।
- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग।
- बहुफसलीय कार्यक्रम।
- सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम।
- आधुनिक कृषि उपकरणों का प्रयोग।
- लघु सिंचाई योजनाएं।
- पौध संरक्षण।
- कृषि साख की उपलब्धता।
- भण्डारण एवं विपणन।
- परिवहन सुविधाएं एवं ग्रामीण विद्युतीकरण।
- भू-संरक्षण कार्यक्रम।
- कृषकों को न्यूनतम मूल्य की गारण्टी।
- कृषि अनुसन्धान एवं शिक्षा विस्तार।

हरित क्रान्ति के लाभ

हरित क्रान्ति का भारतीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है इस कथन का मूल्यांकन विभिन्न फसलों के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से किया जा सकता है। सबसे अधिक वृद्धि गेहूं के उत्पादन में हुई है। 1960-61 में गेहू का उत्पादन 11.0 मिलियन टन था जो 1999-2000 के दौरान 76.4 मिलियन टन के रिकार्ड स्तर पर पहुंच गया किन्तु वर्ष 2002-03 में यह 68.9 मिलियन टन हुआ। हरित क्रान्ति से गेहू के अतिरिक्त अन्य फसलों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। यद्यपि अन्य फसलों के उत्पादन की यह वृद्धि गेहूं वृद्धि की तुलना में कम है।

हरित क्रान्ति के कारण होने वाली उत्पादन वृद्धि के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अनेक फसलों के उत्पादन में जो आरम्भिक वृद्धि हुई थी वह निरन्तर स्थायी नहीं रह सकी। इस वृद्धि दर में उतार-चढ़ाव आते रहे और गेहूं का उत्पादन भी इससे प्रभावित हुआ किन्तु हरित क्रान्ति से देश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई हैं। उत्पादन में वृद्धि हुई है, भारत खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर हुआ है। वर्ष 2001-02 के दौरान खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़कर 212 मिलियन टन के रिकार्ड स्तर पर पहुंच गया, किन्तु वर्ष 2002-03 में यह घटकर केवल 183.2 मिलियन टन रह गया। हरित क्रान्ति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित लाभ परिलक्षित होते हैं–

- अधिक उत्पादन और खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता की ओर।
- कृषि का व्यवसायीकरण।

- कृषि क्षेत्र के अतिरेक में वृद्धि।
- भारतीय कृषक के आत्मविश्वास में वृद्धि।
- खाद्यान्नों का घटता आयात व्यय भार।
- अतिरिक्त रोजगार अवसरों में वृद्धि।

हरित क्रान्ति की असफलताएं/हरित क्रान्ति से उत्पन्न विषमताएं एवं समस्याएं

हरित क्रान्ति के अन्तर्गत अपनाये गये तकनीक सुधारों एवं उत्पादन विधियों के परिवर्तन से यद्यपि कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि हुई है, फिर भी इस सुधार कार्यक्रम से अनेक विषमताएं एवं समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। हरित क्रांति की असफलताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है–

- गेहू की फसल तक ही सीमित।
- असन्तुलित कृषि विकास।
- सिंचित भूमि तक ही केंन्द्रित।
- बड़े किसानों को लाभ।
- कृषि मजदूरों की बेरोजगारी में वृद्धि।
- जोतों का निरन्तर उपविभाजन एवं अपखण्डन के कारण भारतीय सन्दर्भ में अव्यावहारिक।
- आय की असमानताओं में वृद्धि।

हरित क्रान्ति की सफलता के लिए सुझाव

हरित क्रान्ति की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

- हरित क्रान्ति का सन्तुलित क्षेत्रीय विस्तार।
- सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास।
- छोटे किसानों तक हरित क्रान्ति का विस्तार।
- सभी फसलों को हरित क्रान्ति के अन्तर्गत सम्मिलित करना।
- भूमि सुधार कार्यक्रमों को कड़ाई से लागू किया जाना।
- पर्याप्त मात्रा में साख सुविधाओं की उपलब्धता।
- सहकारी कृषि को प्रोत्साहित करना।
- कृषि उपज के विपणन की उचित व्यवस्था।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार अवसरों का सृजन।
- उर्वरक, खाद एवं कीटनाशक दवाओं के वितरण की उचित व्यवस्था।
- कृषकों को उचित प्रशिक्षण एवं निर्देशन।
- प्रशासनिक, व्यवस्था में सुधार।

द्वितीय हरित क्रान्ति (Second Green Revolution)

वर्तमान में समग्र अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर जहाँ 8-9% के लगभग है तो वहीं कृषि विकास दर 2% से भी कम है। कृषि विकास के बिना समग्र विकास मृगतृष्णा बनकर रह गया है। ऐसे में हरित क्रान्ति की याद ताजा हो जाती है जिसने 60 को दशक में कृषि विकास

DISCOVERY www.Downloadmasterofficial.com

के माध्यम से समग्र विकास को बढ़ावा दिया था। द्वितीय हरित क्रान्ति समय की मांग हैं। प्रथम हरित क्रान्ति जहाँ कृषि उत्पादकता में वृद्धि पर आधारित थी वहीं द्वितीय हरित क्रान्ति को उत्पादकता वृद्धि के साथ कृषिगत आयवृद्धि पर आधारित होना होगा। इसके लिये बहुमुखी रणनीति की आवश्यकता हैं। वर्तमान में प्राथमिक क्षेत्र में अनेक नीली, हरी, पीली, गुलाबी, श्वेत, भूरी क्रान्तियाँ प्रचलन में हैं, इन सबको समेकित करते हुए 'इन्द्रधनुषी क्रान्ति', ही नवीन हरित क्रान्ति का स्वरूप होगा।

संस्थागत सुधार द्वितीय हरित क्रान्ति की नींव है ताकि कृषकों द्वारा आत्महत्या पर लगाम कसी जा सके। खेती को लाभदायक बनाने के लिये उन्नत बीजों का प्रयोग करना क्रान्ति का प्रमुख कार्यक्रम हैं 'लैब टू लैण्ड प्रोजैक्ट' को अमलीजामा पहनाया जाना अति आवश्यक है ताकि वैज्ञानिक खोजों का समुचित लाभ पाया जा सके। प्रथम हरित क्रान्ति कुछ प्रमुख फसलों यथा गेहूं एवं चावल के उत्पादन तक ही सीमित रही थी। इस दौरान मोटे अनाजों के उत्पादन पर ध्यान नहीं दिया गया था। इन फसलों पर द्वितीय क्रान्ति में ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

बायोटेक आशाओं का स्रोत है। जैव प्रोद्योगिकी तथा आनुवंशिक इंजीनियरिंग के हालिया अनुसंधानों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि इससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं अतः इस संबंध में कृषकों को प्रशिक्षित एवं जागरूक बनाया जाना चाहिये। भविष्य में देश के कृषि विकास में इसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है।

जल एक महत्वपूर्ण संसाधन है तथा कृषि के लिये भी एक महत्वपूर्ण आगत है। इस बाबत उन्नत सिंचाई व्यवस्था की जानी चाहिये। इस बाबत द्वितीय हरित क्रान्ति के तहत कृषकों को विशेष तौर पर प्रशिक्षित किया जायेगा। ड्रिप सिंचाई द्वारा कतार वाली फसलों की सिंचाई करने से 50-70% तक पानी की बचत की जा सकती है। साथ ही फसलों की उत्पादकता में भी वृद्धि की जा सकती है। स्प्रिंकल सिंचाई द्वारा जल प्रयोग में 20-30% तक बचत की जा सकती हैं इस विधि का प्रयोग सभी सघन फसलों अर्थात् गेहूं, मूंगफली, दालों आदि की सिंचाई के लिये किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त वाटर-शेड मैनेजमेंट के द्वारा बंजर भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित किया जाना चाहिये ताकि देश की बढ़ती आबादी के लिये कृषि उपज को बढ़ाया जा सके। कृषि विकास के लिये समेकित क्रान्ति का होना अति आवश्यक हैं। तभी 11वीं पंचवर्षीय योजना के 4% कृषि वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा और समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

कांट्रैक्ट फार्मिंग (Contract Farming)

अनुबन्धित कृषि उत्पादकों एवं ग्राहकों के बीच अग्रिम अनुबंध के तहत कृषि/ बागवानी उपजों के उत्पादन तथा आपूर्ति की एक व्यवस्था हैं। अनुबंध के अनुसार किसान को फर्म द्वारा बतायी गयी फसल बोकर अपनी उपज उस अनुबन्धित फर्म को ही बेचनी होती है तथा फर्म के लिये भी यह बाध्यता होती है कि वह किसान से अनुबन्धित मूल्य पर पैदा की गयी फसल को खरीदे और किसान को खाद, बीज, कीटनाशक दवाईयाँ तथा खेती करने का वैज्ञानिक तरीका भी सुझाये। अनुबंधित खेती के अन्तर्गत छोटे-छोटे किसानों का भी ध्यान रखा जाना चाहिये क्योंकि उनके पास व्यक्तिगतरूप से साधनों का अभाव रहता है, अतः अनुबंधित खेती के अन्तर्गत जो भी समझौते किये जाये, वे व्यावसायिकता एवं लाभप्रदता को ध्यान में रखकर किये जायें। इससे उत्पादन करने के जोखिम का उत्तरदायित्व किसान और फर्म के बीच बट जाता है।

अनुबन्धित खेती के लाभ (Merits of Contract Farming)

अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत विभिन्न प्रदेशों में फर्मो एवं किसानों का आकर्षण निरन्तर बढ़ रहा है बहुत सी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ (Multi-National Companies MNCS) अनुबन्धित खेती से जुड़ रही हैं कृषि उत्पादों में आलू, फल, मसाले, गेहूँ, सब्जियाँ आदि फर्मो द्वारा पैदा कराया जा रहा हैं जिससे किसान एवं फर्म दोनों को ही लाभ मिल रहे हैं जिनमें प्रमुख लाभ निम्न लिखित हैं–

- किसानों द्वारा अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत फर्मों से फसल मूल्य शुरूआत में ही तय कर लिया जाता है अतः मूल्य सम्बन्धी जोखिमों से मुक्ति मिल जाती है, जबकि वर्तमान में सरकार द्वारा 'न्यूनतम सर्मथन मूल्य' कुछ ही फसलों को निर्धारित किया जाता है, जो आज की कमी है

- परम्परागत कृषि (Traditional Agriculture) के अन्तर्गत अदृश्य बेरोजगारी छिपी रहती है अर्थात कुछ समय काम मिलता है, कुछ समय खाली बिताना पड़ता है जबकि अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत व्यावसायिक फसलों की उपज की जाती है जिसमें किसान के पूरे परिवार को अपनी थोड़ी जमीन पर भी ऊँची दर पर पूरे समय काम करने का मौका मिलता है और व्यावसायिक फर्मो के सम्पर्क में आकर अधिक से अधिक लाभ की सम्भावनाएँ तलाशते रहते हैं
- ऐसी खेती के अन्तर्गत छोटे-छोटे किसान जिनको उपज बेचने की समस्या आड़े आती है उन्हें फर्मो के माध्यम से एक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की प्राप्ति होजाती हे, क्योंकि यदि वे अपनी उपज स्थानीय बाजार में बेचते हैं तो उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।
- इस खेती के अन्तर्गत किसान को **'विश्व व्यापार संगठन'** (WTO) एवं अन्य वैश्विक फर्मों के निर्देशानुसार अपनी खेती का व्यवस्थित रिकॉर्ड रखना पड़ता है जिसमें खाद, बीज, प्रविधि आदिका रिकॉर्ड होता है अत यदि फिर भी उसे पूर्ण सफलता न मिली होतो उसका विश्लेषण फर्म अथवा स्वयं कर अपनी कार्यक्षमता बढ़ा सकता है।
- छोटे-छोटे किसानों को फसल चक्र (Croprotation) के अनुसार समय-समय पर ऋण एवं अग्रिमों की आवश्यकता होती रहती है अत: इस समस्या को किसान आए दिन झेलता रहता है, लेकिन अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत फर्म किसानों को या तो सीधे तौर पर ऋण उपलब्ध करा देती है अथवा ऋण प्रदान करने वाली एजेन्सी से ऋण दिलवाने में प्रत्यक्ष सहायता करती है।
- अनुबन्धित खेती में लगी फर्मों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा झेलनी पड़ती है अत: उत्पाद की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए फर्म, किसानों को नई तकनीक को अपनाने के लिए प्रशिक्षण आदि भी प्रदान करती है, साथ ही उत्तम किस्म केबीज, उर्वरक, कीट नाशक दवाइयाँ एवं उपकरण भी उपलब्ध कराती हैं अत: छोटी पूँजी धारक किसानों को तो विशेष लाभ पहुँचता ही है जबकि इसका फायदा सभी किसानों को मिलता है।
- इस खेती में किसानों के साथ फर्मे भी अपनी कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित कर अपनी जोखिमों को घटा सकती है साथ ही उच्च गुणवत्ता के उत्पाद भी निर्धारित कीमत पर प्राप्त हो जाते है
- किसान एवं कृषि से जुड़ी व्यावसायिक गतिविधियों, जैसे-डेयरी, मुर्गीपालन, सुअरपालन, मछलीपालन आदि को भी बढ़ावा देकर इनका लाभ उठा सकती है।

अनुबन्धित खेती की कमजोरियाँ (Demerits of Contract Farming)

अनुबन्धित खेती वैसे तो दिनों-दिन प्रगति की ओर अग्रसर है और उससे किसानों एवं फर्मो, दोनों को ही लाभ हो रहा है किन्तु अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत अनुबन्ध के निर्धारण और क्रियान्वयन में कुछ समस्याएँ देखने को मिली हैं अत: अनुबन्धित खेती को दोनों ही पक्षों द्वारा सोच समझकर लागू करना होगा यद्यपि अनुबन्धित खेती की प्रमुख कमजोरियाँ निम्नलिखित हो सकती हैं:

- अनुबन्धित खेती के लिए अभी तक किसी प्रकार का कानूनी ढाँचा स्थापित नहीं किया गया है
- इसके अन्तर्गत किसानों एवं फर्मो दोनों ही के कर्तव्य एवं दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाया है
- ऐसी खेती के अनुबन्ध में पेचीदगियों, विसंगतियाँ अथवा भ्रान्तियाँ उत्पन्न होने पर उनका निपटारा कहाँ होगा, यह भी पूर्णत: स्पष्ट नहीं है और मध्यस्थता हेतु सुलभ व्यवस्था भी नहीं है
- ऐसी खेती में फर्म के प्रबन्धकों द्वारा व्यक्तिगत लाभ के लिए अनुबन्धों में कमी छोड़कर किसानों को अनावश्यक लाभ पहुँचाया जाता है।
- ऐसी खेती के अन्तर्गत अनुबन्ध करने में काफी लागतें आती हैं जो अनावश्यक रूप से लाभ में कमी करती है साथ ही अत्यधिक वर्षा सूखा अथवा कीटों के प्रभाव से भी यदि फसल प्रभावित होती है,तो इसका प्रभाव भी लागतों के रूपमें बढ़कर फर्म अथवा किसानों पर ही पड़ता है अत: इसमें अनिश्चितता बनी रहती है।
- हमारे देश में आज भी अधिकांश किसान रूढ़िवादी सोच में जी रहे हैं अत: उनके सामने जहाँ भी अनुबन्धित खेती का प्रस्ताव आता है उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है और वे उसके लिए तैयार नहीं होते।

Downloaded From www.dishaMaster.official.com DISCOVERY

- यदि कोई किसान अपनी भूमि का स्वामित्व स्थानान्तरित कर देता है तो अनुबन्धित खेती के अनुबन्ध को लागू कराने में फर्म को अनेक दिक्कतें झेलनी पड़ती हैं।
- हमारे देश में अधिकांश किसानों के पास जमीनों के छोटे-छोटे टुकड़े उपलब्ध हैं जिसमें फर्मों को अनुबन्ध करने में अनेक समस्याएँ आती हैं तथा किसानों के पास आधारभूत सुविधाऐं जैसे- ट्रैक्टर, सिंचाई की सुविधा अन्य कृषि यन्त्र तथा श्रमिकों का अभाव हैं अतः फर्म अनुबन्धित खेती के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाती है
- ऐसी खेती के अन्तर्गत यदि फसल का बाजार मूल्य अनुबन्ध से नीचा हो तो किसानों द्वारा बाजार से घटिया उत्पाद खरीदकर भी फर्म को आपूर्ति कर दी जाती है इसके विपरीत फर्म भी अनुबन्धित मूल्य पर उपज को लेने में आना-कानी करती है यदि बाजार मूल्य अनुबन्धित मूल्य से अधिक होजाए, तो किसान चोरी-छिपे अपनी उपज को बाजार में बेचने की कोशिश करते हैं अतः अनुबन्ध को पूरा करने में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं
- फसल की कीमत फसल के उगाने से पूर्व ही तय कर दी जाती है अतः इसमें जोखिम सम्भावना अधिक हो जाती है कार्यवाही के गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता की समस्या (Problem of Rural or Farmer indebterdness)

ग्रामीण ऋणग्रस्तता से अर्थ ग्रामीण जनता के ऋण-भार से है। इसका आशय यह है कि ग्रामीण जनता पर किसान धन अन्य लोगों का उधार हैं यह धन दोनों रूपों (नकदी व वस्तुएं) में हो सकता है। ग्रामीण जनता का इस प्रकार उधार से दबा रहना ही ग्रामीण ऋणग्रस्तता कहलाता है।

समय-समय पर अनेक विद्वानों व समितियों ने भारतीय ऋणग्रस्तता का अनुमान लगाया है जिससे पता चलता है कि इनकी मात्रा में सदैव ही वृद्धि होती रही है। **एडवर्ड मैक्लागन** ने 1911 में ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अनुमान 300 करोड़ रूपये लगाया था, जबकि प्रान्तीय बैंकिंग जाँच समिति ने 1929 में इसकी मात्रा 900 करोड़ रूपये बतायी थी। भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने 1951-52 में ऋणगस्तता काअनुमान 750 करोड़ रूपये लगाया था, जबकि अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण एवं विनियोग सर्वेक्षण, 1961-62 में कुल ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अनुमान 1,034 करोड़ रूपये बताया था। रिजर्व बैंक के आर्थिक विभाग द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार, "वर्तमान ऋणग्रस्तता 3,848 करोड़ रूपये है जिसमें से 96 करोड़ वस्तुओं में व शेष नकदी में है। इस ऋण का 88 प्रतिशत तो कृषकों द्वारा लिया गया है शेष 12 प्रतिशत कृषि श्रमिकों, कारीगरों व अन्य दस्तकारों द्वारा लिया गया है।

ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता के कारण

ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता के निम्न कारण हैं:

1. कम आय व निर्धनता

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आय का कम होना एवं उनके पास आपत्तिकाल के लिए कोई कोष न होना है।

2. पैतृक ऋण

यह ऋण ग्रामीणों को विरासत में मिलते हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हैं। ऐसा होने से वे ऋणों को लेना बुरी बात नहीं मानते हैं। और उनकी यह मनोवृत्ति ऋण लेने के लिए प्रेरित करती है।

3. प्राकृतिक संकट

भारतीय कृषि आज भी प्रकृति पर निर्भर हैं। जब कभी प्राकृतिक संकट जैसे बाढ़, फसलों में रोग,टिड्डी दल का आक्रमण, वर्षा का कम होना, आदि आ जाते हैं तो उत्पादन कम हो जाता है और इस प्रकार कृषक को अपने परिवार का पेट भरने के लिए ऋण लेने को बाध्य होना पड़ता है।

DISCOVERY www.studymasterofficial.com Download From

4. सामाजिक व्यय

भारतीय कृषक की जन्म, मृत्यु, शादी विवाह, आदि पर अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार व्यय करना ही पड़ता है जिसको पूरा करने के लिए ऋण का सहारा लेना पड़ता है।

5. पशुओं की मृत्यु

भारतीय कृषि में पशुओं का उपयोग पर्याप्त रूप में किया जाता है, लेकिन जब कभी भी पशु की मृत्यु अचानक हो जाती है तो वह बिना पशु के नहीं रह पाता है और उसे तुरन्त ही ऋण लेकर पशु की कमी को पूरा करना पड़ता है और इस प्रकार वह ऋणी हो जाता है।

6. मुकदमेबाजी की प्रवृत्ति

ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि सम्बन्धी मामलों को लेकर या अन्य व्यक्तिगत कारणों से मुकदमेबाजी करने की प्रवृत्ति पायी जाती है और उन्हें आय कम होने के कारण इस प्रकार के व्ययों के लिए ऋण लेने को बाध्य होना पड़ता है।

7. साहूकारों की कुरीतियाँ

साहूकारों व महाजनों द्वारा ग्रामीणों को आसानी से ऋण दे दिया जाता है। इस कारण भी ग्रामीण ऋणग्रस्तता में वृद्धि होती है।

8. मूल्य-स्तर में वृद्धि

पिछले कुछ वर्षों में सामान्य मूल्य-स्तरों में कई गुनी वृद्धि हुई है, लेकिन गैर-कृषि श्रमिकों की मजदूरी उस अनुपात में नहीं बढ़ी है जिस अनुपात में मूल्य-स्तरों में वृद्धि हुई हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनको व्ययों की पूर्ति हेतु ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

9. भूमि पर जनसंख्या के भारत में वृद्धि

भूमि पर जनसंख्या के भार में वृद्धि होने से खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाता है जिससे पूरे परिवार के पेट भरने तक के लिए भी खाद्यान्नों का उत्पादन नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि ऋण लेकर ही काम चलाया जाता है।

10. पूरक आय साधनों का अभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणग्रस्तता की वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण पूरक आय साधनों का अभाव हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्य करने के लिए अवसर हों तो इससे आय में वृद्धि होगी और ग्रामीण ऋण लेने के लिए बाध्य नहीं होगा।

11. अन्य कारण

ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणग्रस्तता के अन्य कारण भी है, जैसे (i) भूमि का मूल्य बढ़ने से कृषक की ऋण प्राप्त करने की क्षमता में वृद्धि; (ii) गाँवों में व्यवस्थित बाजार का अभाव जहाँ कृषक उचित मूल्य पर अपनी उपज बेच सके; (iii) भूमि के छोटे टुकड़ों पर कृषि का अनार्थिक होना; व (iv) ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मुद्रा को उचित स्थान मिलना; आदि।

ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता का प्रभाव

ऋण अपने आप में बुरे नहीं होते हैं। उनका उपयोग ही उनको बुरा या अच्छा बना देता है। यदि ऋण उत्पादक कार्यों के काम में लाये जाते हैं तो वे अच्छे हैं। इससे उत्पादन बढ़ता है, रोजगार में वृद्धि होती है, आय में वृद्धि होती हैं। इसके विपरीत जब ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए किया जाता है तो वे बुरे माने जाते हैं और उनका प्रभाव बुरा होता है। अधिकांश ग्रामीण ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए लेते हैं। इससे निम्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है :

1. **आय में कमी:**-ऋणग्रस्तता एक व्यक्ति की आय में कमी करती है, क्योंकि उसको अपनी आय में से ब्याज व मूलधन का भुगतान करना पड़ता है। इससे उसका रहन-सहन का स्तर गिरता है।

DISCOVERY
www.Downloaded From dreamsteerofficial.com

2. **कम मूल्य पर उपज बेचने की मजबूरी:-** फसल के आने पर ही उसे ब्याज व मूलधन के चुकाने हेतु तुरन्त ही बेच देना पड़ता है जिससे मूल्य कम मिलता है। कभी-कभी कृषक द्वारा ऋण लेते समय फसल बेचने का वायदा करने के कारण भी पहले से निर्धारित कम मूल्य पर ही साहूकारों को फसल बेचनी होती है। इस प्रकार दोनों ही परिस्थियितों में उसे कम मूल्य लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

3. भूमि पर सुधार करने में असमर्थ होता है। फलत: उसकी भूमि अनार्थिक होती जाती है। इससे उत्पादन में गिरावट आती है।

4. आर्थिक विषमताओं में वृद्धि-ऋणग्रस्तता ऋणी को दिन-प्रतिदिन निर्धन व साहुकार को धनी बनाती है। इससे आर्थिक विषमताओं में वृद्धि होती है जो किसी भी देश के लिए हितकारी नहीं है।

5. भूमिहीन कृषकों की संख्या में वृद्धि-जब कृषक अपने को ऋण का भुगतान करने में असमर्थ पाता है तो साहूकार द्वारा उसकी भूमि को कानूनी रूप से अपने अधिकार में ले लिया जाता है। इससे कृषकों की भूमि अकृषकों के पास पहुंच जाती है और भूमिहीनों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

6. कृषकों की कार्यकुशलता का ह्रास- कृषक ऋण के भार से दबा होने के कारण सदा चिन्तित रहता है जिससे उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है जो उसकी कार्यकुशलता में कमी कर देता है।

7. निम्न सामाजिक स्तर- ऋणी का समाज में स्तर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसका नैतिक पतन हो जाता है और आत्मबल गिर जाता है।

8. साहूकारों द्वारा बेगार-साहूकारों द्वारा ऋणी से ऋणगस्त होने के कारण बेगार ली जाती है। उसे कार्य के बदले पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है।

कृषि ऋणग्रस्तता (Agricultural Indebtedness)

किसानों को ऋणग्रस्तता से मुक्त कराने के लिए समय समय पर अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों की घोषणा केन्द्र सरकार द्वारा की जाती रही है। इनके बावजूद कृषक परिवारों पर ऋणग्रस्तता का दबाव बना हुआ है। ताजा उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार देश में आज भी औसतन 48.6 प्रतिशत किसान परिवार ऋण बोझ से दबे हैं, आन्ध्र-प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र में ऋणग्रस्त परिवारों का औसत राष्ट्रीय स्तर 48.6 प्रतिशत से काफी ऊँचा है। यह जानकारी देते हुए कृषि राज्यमंत्री ने 31 अगस्त, 2007 को राज्य सभा में बताया कि आन्ध्र प्रदेश में 82 प्रतिशत, तमिलनाडु में 75.5 प्रतिशत, केरल में 64.4 प्रतिशत, कर्नाटक में 61.6 प्रतिशत और महाराष्ट्र में 54.8 प्रतिशत किसान परिवारों पर कर्ज का बोझ है।

घरेलू ऋणग्रस्तता पर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) की एक रिपोर्ट संसद में 18 दिसम्बर, 2009 को प्रस्तुत की गई। इसके अनुसार उदारीकरण के पहले दशक में देश में घरेलू ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई है। रिपोर्ट में बताया गया है कि 1991 में घरेलू क्षेत्र पर बकाया ऋण की कुल राशि 37,443 करोड़ रूपये थी, जो बढ़कर 2002 में 1.76 लाख करोड़ रूपए हो गई थी। सन्दर्भित अवधि में शहरी क्षेत्रों में कुल परिवारों में ऋणग्रस्त परिवारों का अनुपात जहाँ घटा है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में इस अनुपात में वृद्धि हुई है।

एन.एस.एस.ओ. की इस रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति परिवार औसत ऋण राशि 1991 में 1906 रूपये थी, जो बढ़कर 2002 में 7,359 रूपये हो गई थी। भूमिहीन मजदूरों की तुलना में भूमिधारक किसानों पर औसत ऋण अधिक था। 2002 में कृषकों पर औसत ऋण जहाँ 9261 रूपए पाया गया, वहीं गैर कृषकों पर यह 4991रूपए था। 2002 में शहरी क्षेत्रों में प्रति परिवार औसत ऋण स्वरोजगार वालों पर अधिक पाया गया है। शहरी क्षेत्रों में प्रति परिवार औसतन ऋण जहाँ 11771 रूपये पाया गया, वहीं स्वरोजगार वाले परिवारों पर यह औसतन 12134 रूपये दर्ज किया गया। यह आँकड़े इस बात का सूचक हैं कि ग्रामीण व शहरी दोनों ही क्षे.त्रों में व्यवसाय के लिए ऋण की बड़ी भूमिका हैं।

ग्रामीण या कृषक ऋणग्रस्तता को दूर करने के उपाय

ग्रामीण ऋणग्रस्तता को दूर करने के लिए (1) ऋण देने वाली संस्थाओं का विस्तार- ग्रामीण आँचल में सस्ती ब्याज दर पर ऋण

DISCOVERY
Downloaded From www.studymasterofficial.com

देने वाली संस्थाओं का विस्तार होना चाहिए। (2) साहूकारों पर उचित नियन्त्रण-साहूकारों की क्रियाओं पर उचित कानूनी नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए जिससे कि वे कोई अवैधानिक व अनियमित कार्य न कर सके। (3) वर्तमान ऋणों से छुटकारा-कृषक को वर्तमान ऋणों से छुटकारा दिलाया जाना चाहिए। (4) ग्रामीण उद्योग- ग्रामीण की आय में वृद्धि करने के लिए गाँवों में ग्रामीण उद्योग-धन्धे स्थापित किये जाने चाहिए जिससे कि उनकी आय में वृद्धि हो सके और वे ऋण के लिए तत्पर न हों। इस ओर सरकार काफी सजग है और वह बराबर ध्यान दे रही है। (5) सामाजिक वातावरण- सामाजिक वातावरण बनाने की आवश्यकता है कि शादी विवाह, जन्म व मृत्यु, आदि पर व्यय करना उचित नहीं है।

सरकार ने इस सम्बन्ध में निम्न उपाय किये हैं:

किसानों के लिए ऋण माफी योजना (Loan Waiver Scheme for Farmers)

ऋण माफी योजना के मुख्य बिन्दु अग्रलिखित हैं-

1. 31 मार्च, 1997 से 31 मार्च 2007 के बीच वितरित, दिसम्बर 2007 तक बकाया और 29 फरवरी, 2008 तक भुगतान नहीं हुए प्रत्यक्ष कृषि ऋण योजना के दायरे में रखे गए हैं।
2. सीमांत और छोटे किसानों के इस अवधि के कृषि ऋण पूरी तरह माफ, अन्य किसानों को एकमुश्त अथवा तीन किश्तों में भुगतान पर 25 प्रतिशत रियायत दी गई हैं।
3. एक हेक्टेयर अर्थात् ढ़ाई एकड़ तक भूमि पर खेती करने वाला किसान सीमांत किसान, एक हेक्टेयर से अधिक और दो हेक्टेयर तक अर्थात् ढ़ाई से पाँच एकड़ भूमि पर खेती करने वाला किसान छोटा किसान माना गया है, जबकि इससे अधिक भूमि पर खेती करने वाला भू-स्वामी, काश्तकार या फिर बँटाईदार अन्य किसान की श्रेणी में रखा गया है।
4. योजना के तहत् अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, सहकारी ऋण संस्थानों और स्थानीय क्षेत्र बैंकों से लिए गए ऋण माफ किए गए हैं या फिर उन पर राहत दी गई है।
5. प्रत्यक्ष कृषि ऋण से तात्पर्य कृषिगत उद्देश्यों के लिए किसानों को प्रत्यक्ष रूप से दिए गए अल्पावधि उत्पादन ऋण और निवेश ऋण। इसमें किसानों के समूह को दिए गए ऋण भी शामिल किए गए हैं, बशर्ते कि बैंक उस समूह के प्रत्येक किसान को दिए गए ऋण के आँकड़े में रखे गए हों।
6. अल्पावधि उत्पादन ऋण में फसल उगाहने के लिए दिया गया ऋण, जिसका अधिकतम 18 महीने के भीतर वापस भुगतान किया जाता है। इसमें परम्परा से हटकर बागानी और बागवानी के लिए अधिकतम एक लाख रूपये तक के कार्यशील पूँजी ऋण भी शामिल किए गए हैं।

इस योजना के तहत कुल 4.29 करोड़ किसानों के लगभग 71680 करोड़ रूपए के ऋण माफ करने का लक्ष्य केन्द्र सरकार का था। योजना के कार्यान्वयन के जिन बैंकों के आँकड़े जुलाई 2008 में जारी किए गए, उनके अनुसार 2.98 करोड़ सीमांत एवं छोटे किसानों के 50,254 करोड़ रूपये के ऋण माफ किए गए, जबकि 65.82 लाख अन्य किसानों को 16,223 करोड़ रूपए की राहत ऋण अदायगी में प्राप्त हुई। इस प्रकार कुल मिलाकर 3.64 करोड़ किसानों को 66,477 करोड़ रूपए की ऋण राहत इससे प्राप्त हुई। (यह आँकड़े अभी अनंतिम हैं) योजना के तहत अधिकतम लगभग 25 लाख किसानों के 7000 करोड़ रूपए के ऋण अकेले स्टेट बैंक ने माफ किए हैं। अत: ऋण माफी में एस.बी.आई. का अग्रणी स्थान रहा है। वर्ष 2010-11 के बजट में ऋण माफी व ऋण राहत योजना के तहत किसानों के ऋण वापसी की समय सीमा में 6 माह की पुन: वृद्धि करके इसे 30 जून, 2010 तक बढ़ा दिया गया है। भारत के किसान अपनी उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार के स्रोतों से ऋण प्राप्त करता है: 1. गैर संस्थानात्मक स्रोत तथा 2. संस्थानात्मक स्रोत। गैर संस्थानात्मक स्रोतों में साहूकार, व्यापारी, सम्बंधी एवं भू स्वामी आदि को सम्मिलित किया जाता है। संस्थानात्मक स्रोतों में सरकार, सहकारी समितियों तथा वाणिज्यिक बैकों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

वर्तमान में लगभग 65 प्रतिशत ऋण संस्थानात्मक स्रोतों द्वारा उपलब्ध कराए जाते है। वर्ष 2008-09 के दौरान 2,87,000 करोड़ रूपए के ऋण उपलब्ध कराए गए थे, जबकि वर्ष 2009-10 के लिए कृषि साख का लक्ष्य 3,25,000 करोड़ रूपए का रखा गया था, किन्तु

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

वर्ष 2010-11 के लिए यह राशि बढ़ाकर 37,5000 करोड़ रू. निर्धारित की गई है। 2008-09 के दौरान कृषि को दिए गए कुल संस्थात्मक ऋण में साख सहकारी बैंकों का अंश 21 प्रतिशत पाणिज्यिक बैंकों का 69 प्रतिशत तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का अंश 10 प्रतिशत अनुमानित किया गया था। कृषि के कुल संस्थात्मक ऋण में अल्पकालिक ऋण का अंश 2006-07 में 64 प्रतिशत अनुमानित किया गया है। जबकि मध्यम तथा दीर्घकालिक ऋण का अंश 36 प्रतिशत अनुमानित किया गया है। कृषि संस्थागत ऋण प्रवाह में सहकारी बैंकों की हिस्सेदारी 1999-2000 में 40 प्रतिशत के स्तर पर थी, जो उत्तरोत्तर घटते हुए 2008-09 में 21 प्रतिशत दर्ज की गई है अर्थात पिछले वर्षो के दौरान संस्थागत क्रेडिट के प्रवाह में सहकारी बैंकों के हिस्से में गिरावट की प्रवृत्ति रही है जो इन बैंकों की पुनर्सरचना और सुधार की आवश्यकता को इंगित करती है।

केन्द्र सरकार द्वारा तय की गई नीति के तहत् निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों के बैंकों को अपने कुल ऋणों का 40 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र को उपलब्ध कराना होता है। कुल ऋण राशि का 18 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्रों को उपलब्ध कराने का भी प्रावधान ऋण नीति में शामिल है, किन्तु मीडिया में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार 2005-06 के दौरान भारतीय स्टेट बैंक ने अपने कुल ऋणों का 14.30 प्रतिशत ही कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराया था जबकि निजी क्षेत्र के के आई.सी.आई.सी.आई. बैंक द्वारा कृषि के लिए प्रदत्त ऋण उसके कुल ऋणों का 16.80 प्रतिशत था। सार्वजनिक क्षेत्र के ही बैंक ऑफ इंडिया ने 18 प्रतिशत के लक्ष्य को पार करते हुए अपनी कुल ऋण राशि को पार करते हुए अपनी कुल ऋण राशि का 19.36 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराया था।

- साहूकारों पर नियन्त्रण-विभिन्न राज्यों में साहूकारों व महाजनों पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं जिनकी शुरूआत 1930 के बाद हुई है।
- सहकारी संस्थाओं का विस्तार-भारत में इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही सरकार का यह प्रयत्न रहा है कि सहकारी साख संस्थाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार किया जाय।
- व्यावसायिक बैंकों का विस्तार- पिछले कुछ वर्षों में सरकार की यह नीति रही है कि बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी अधिक शाखाएँ खोलें। इसी का परिणाम है कि अब 51 प्रतिशत शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में है।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना- 26 सितम्बर, 1975 को एक अध्यायदेश जारी कर 50 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी, लेकिन 30 जून, 2002 तक 196 क्षेत्रीय बैंक स्थापित की जा चुकी हैं। यह बैंक छोटे कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों, दस्तकारों आदि के लिए खोली गयी है।

क्रॉप एग्रीकल्चर प्रोड्यूज लोन स्कीम

किसानों को अपनी उपज का बेहतर मूल्य प्राप्त होने तक उपज को रोकने में सक्षम बनाने के लिए कॉर्पोरेशन बैंक द्वारा एक नई कृषि योजना 1 अप्रैल, 2005 से प्रारम्भ की गई है। क्रॉप कोमोडिटी एक्सचेंज आफ इंडिया नाम की यह ऋण योजना मल्टी कोमोडिटी एक्सचेंज ऑफ इंडिया के सहयोग से प्रारम्भ की गई है। इस ऋण योजना के चलते किसान अपनी उपज का सेंट्रल वेयर हाउसिंग कॉर्पोरेशन अथवा स्टेट वेयर हाउसिंग कार्पोरेशन के किसी गोदाम में अथवा एमसीएक्स द्वारा मान्यता प्राप्त किसी गोदाम में भंडारण करके उसकी रसीद के आधार पर कोर्पोरेशन बैंक से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। 2 लाख रूपये तक के ऋण के लिए ब्याज 9 प्रतिशत व उससे अधिक राशि के ऋण के मामले में यह 9.5 प्रतिशत ब्याज देना पड़ता है। फसल का उचित मूल्य प्राप्त होने पर गोदाम से उपज को निकाल कर बेचा जा सकता है। इस बीच उनकी वित्तीय जरूरतों की पूर्ति बैंक के इस ऋण से हो सकती है। इस योजना के तहत लिए गए ऋण को माल की गोदाम की निकासी की तिथि तक (अथवा अधिकतम एक वर्ष के भीतर) चुकाना पड़ता है।

वर्षा बीमा योजना

भारतीय कृषि बीमा कम्पनी लि. ने दक्षिण पश्चिमी मानसून अवधि 2004 के दौरान वर्षा 'बीमा नामक' वर्षा बीमा योजना शुरू की। वर्षा बीमा में कृषक समुदाय की भिन्न-भिन्न जरूरतों के अनुरूप पाँच अलग-अलग विकल्पों की व्यवस्था की गई। ये हैं-

(1) जून से सितम्बर तक कुल वर्षा के आधार पर मौसमी वर्षा बीमा (2) 15 जून और 15 अगस्त के बीच की अवधि में हुई वर्षा के आधार पर बुआई विफलता बीमा, (3) जून और सितम्बर के बीच वर्षा की मात्रा के अनुसार वर्षा वितरण बीमा, (4) फसलों के

DISCOVERY
Download From www.studymasterofficial.com

लिए जल की आवश्यकता के आधार पर तैयार किए गए कृषि सम्बन्धी सूचकांक के आधार पर, (5) एक आपात विकल्प, जिसमें 50 प्रतिशत तथा बेहद प्रतिकूल विसामान्यता और मौसम के दौरान अधिक वर्षा, आन्ध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के 20 वर्षा मापी क्षेत्रों में वर्ष 2004-05 में वर्षा बीमा प्रायोगिक योजना के रूप में शुरू की गई थी। खरीफ 2006 के दौरान सम्पूर्ण देश के 16 राज्यों को शामिल करते हुए लगभग 150 जिलों/ वर्षमापी केन्द्र क्षेत्रों में यह योजना वर्षा बीमा 2006 के रूप में कार्यान्वित की जा रही है।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना

किसान क्रेडिट कार्ड योजना अगस्त 1998 में वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों से प्राप्त ऋण को सुसाध्य बनाने के लिए प्रारम्भ की गई थी इस योजना की मुख्य विशेषताएं नीचे दी गई हैं-

1. 5000 रू. अथवा अधिक के उत्पादन ऋण के लिए पात्र किसान, किसान क्रेडिट कार्ड प्राप्त करने के हकदार हैं यह कार्ड किसानों को उनकी भूमि के आधार पर जारी किए जाते है।
2. पात्र किसानों को किसान कार्ड और पास बुक अथवा कार्ड सह पास बुक उपलब्ध कराई जाती हैं।
3. इनका उपयोग किसान खेती के लिए बीज, उर्वरक और कीटनाशक आदि जरूरतों की वस्तुओं को खरीदने के लिए करते हैं।
4. प्रचालनात्मक जोत, फसल पैटर्न और वित्त श्रेणी के आधार पर सीमा निर्धारित की जाती है।
5. बैंकों के विवेक पर उप सीमाएं निर्धारित की जाती हैं।
6. वार्षिक समीक्षा की शर्त पर कार्ड 3 वर्ष के लिए बैध होता है।
7. प्रत्येक आहरण का भुगतान 12 महीने में करना होता।
8. प्राकृतिक आपदाओं के कारण खराब हुई फसलों के मामले में ऋण को बदलना/पुनर्निधारण की भी अनुमति है।
9. लागत वृद्धि तथा फसल पैटर्न आदि में परिवर्तन होने पर ऋण की सीमा को बढ़ाया जा सकता है।
10. भारतीय रिजर्व बैंक के मानदंडों के अनुसार ब्याज की दर आदि में परिवर्तन किया जा सकता है।
11. जारी करने वाली शाखाओं अथवा बैंक के विवेक पर उसकी अन्य नामित शाखाओं के माध्यम से प्रचालन किया जाता है।
12. कार्ड और पास बुक साथ होने पर स्लिप/चेक के माध्यम से आहरण किया जाता है।

इस योजना का कार्यान्वयन वाणिज्यिक बैंकों, केन्द्रीय सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से किया जा रहा है। वर्ष 1998 से लेकर नवम्बर 2009 तक 878.30 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके थे। इनमें 48.21 प्रतिशत सहकारी बैंकों द्वारा, 13.16 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों द्वारा तथा 38.63 प्रतिशत वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जारी किए गए।

राष्ट्रीय कृषि नीति, 2000 (National Agriculture Policy 2000)

राष्ट्रीय कृषि नीति की घोषणा 28 जुलाई, 2000 को की गई थी जिसका मूल उद्देश्य इस क्षेत्र में 4 प्रतिशत की औसत वार्षिक संवृद्धि सुनिश्चित करना था। साथ ही, प्राकृति संसाधनों पर पड़ने वाले जैविक तथा अजैविक तनावों को कम करना भी नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। नीति के तथ्यों में निम्नांकित उल्लेखनीय हैं:

1. कृषि तथा उद्यान कृषि से संबंधित फसलों के लिए क्षेत्र-विशिष्ट तथा आर्थिक रूप से व्यवहार्य प्रजातियों के विकास को प्राथमिकता।
2. कृषि विकास को बढ़ाने तथा इस क्षेत्र में निजीकरण को प्रश्रय देने के उद्देश्य से पश्च मात्रात्मक प्रतिबंध काल में संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी का अंनुकूलतम अनुप्रयोग।
3. कृषकों को मूल्य सुरक्षा प्रदान करने पर विशिष्ट बल।
4. विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते के प्रावधानों के अनुरूप उत्पाद-विशिष्ट रणनीति का निर्धारण तथा इन्हीं प्रावधनों के अनुसार,

Downloaded From www.studymasterofficial.com

कृषकों को मूल्य सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान।

5. जल संसाधनों का तार्किक अनुप्रयोग तथा संरक्षण।
6. कृषक समुदाय को पर्यावरणीय विषयों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए ठोस प्रयास।
7. पारिस्थितिकी संतुलन के रख-रखाव तथा कृषि एवं सामाजिक वानिकी के माध्यम से जैव परिमाण में वृद्धि।
8. देश के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि उत्पादों के आवागमन पर आरोपित प्रतिबंधों की चरणबद्ध रूप से समाप्ति।
9. सतत समुद्री तथा अन्त:स्थलीय मत्स्यन के विकास के लिए समेकित रणनीति एवं उपगमन।
10. दूध तथा दूध उत्पादों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय पशुधन प्रजनन रणनीति (National Livestock Breeding Strategy) का निर्धारण।
11. खाद्यान्नों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रयास।
12. ग्रामीण विद्युतीकरण को उच्च प्राथमिकता।
13. सिंचाई तथा कृषि-संबद्ध कार्यों के लिए ऊर्जा के नवीकरणीय तथा नये स्रोतों के विकास पर बल।
14. विशिष्ट विधायी प्रावधानों के माध्यम से पौध-प्रजातियों का संरक्षण।
15. रासायनिक कीटनाशकों के हानिकारक प्रभावों से रक्षा करने के उद्देश्य से समेकित कीट प्रबंधन तथा जैव एजेंटों का उपयोग।
16. ग्रामीण तथा कृषि साख का संस्थाकरण तथा कृषकों तक पर्याप्त मात्रा में साख की उपलब्धता।

राष्ट्रीय कृषि नीति में कृषकों को समर्थन प्रदान करने तथा जोखिम कम करने के लिए राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना को क्रियान्वित करने का प्रावधान किया गया है। इस योजना में सभी फसलों को शामिल किया गया है। इस योजना से कृषकों को प्राकृतिक आपदा से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकेगा। इस प्रकार की योजना के क्रियान्वयन का उद्देश्य सम्पूर्ण क्षेत्र को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाना है। नीति में कृषकों को बाढ़ तथा सूखे से राहत पहुंचाने के प्रावधान भी किये गये हैं।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा से कृषि उत्पादों की कीमतों का स्थिरीकरण संभव है। इस संबंध में कृषि मूल्य तथा कीमत आयोग (Commission on Agricultural Costs and Prices, CACP) द्वारा समय-समय पर इस रणनीति का पुनरीक्षण किया जायेगा। कृषि मंत्रालय के अनुसार, राष्ट्रीय नीति भारत में कृषि की क्षमताओं को बेहतर बनाने के लिए कटिबद्ध है।

दो दशकों की निश्चित अवधि वाली इस नीति के क्रियान्वयन से भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति की संभावनाएं अत्यन्त प्रबल हो गई हैं। नीति में संवृद्धि सुनिश्चित करने वाले चार महत्वपूर्ण कारकों की पहचान की गई है। ये हैं : **कार्यक्षमता, समता, बाजारोन्मुख** एवं **सतत**। इस रणनीति से अर्थव्यवस्था में व्याप्त कई समस्याओं को दूर किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय कृषि नीति निश्चित रूप से एक सुधारवादी नीति है। इसका उद्देश्य विभिन्न प्रतिबंधों की समाप्ति, नियंत्रण वाली प्रक्रियाओं का सरलीकरण तथा कृषि उत्पादों के आवागमन को मुक्त अवस्था में लाना है। नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें निजी क्षेत्र की भूमिका में विस्तार का प्रावधान किया गया है। स्पष्टत: इस प्रावधान से कृषि क्षेत्र में कृषकों द्वारा किये जाने वाले निवेश के अतिरिक्त पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाया जा सकेगा। साथ ही, इस प्रक्रिया द्वारा कृषि उत्पादों के निर्यात को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। पूंजी निर्माण में हुई वृद्धि से तकनीक हस्तांतरण को बढ़ावा मिलेगा।

अन्त में नीति में भूमि सुधार को बल दिया जाना कृषकों के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए विशेष प्रयास करने पर बल दिया गया है। इन सुधारों में मुख्य रूप से भूस्वामित्व में वृद्धि तथा कृषि जोतों के आकार में वृद्धि उल्लेखनीय है।

राष्ट्रीय बीज नीति, 2002 (National Seed Policy, 2002)

हाल के वर्षों में कृषि उत्पादन में हुए परिवर्तनों के संदर्भ में यह आवश्यक हो गया है कि विभिन्न फसलों के लिए बीजों के

DISCOVERY www.studymasterofficial.com

प्रतिस्थापन की दर में अतिशीघ्र वृद्धि की जाये जिससे खाद्यान्नों के उत्पादन लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के विकास में निजी क्षेत्र की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साथ ही, उत्पादन लागत को कम करने तथा अन्य आर्थिक कार्यों के निष्पादन के लिए निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बीज संगठनों को केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। नई सहस्त्राब्दि में कृषि विकास की रणनीति के तहत स्थानीय तथा संवृद्धि के उद्देश्य वाली बीज विकास प्रक्रिया तथा महत्वपूर्ण जर्मप्लाज़्म के आयातों को प्राथमिकता दी गई है। आगामी दशकों में कृषि विकास के लिए जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका का विस्तार होने की प्रबल संभावना है। जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से कृषि विकास को प्रोत्साहित करने के लिए हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले एक **कृषि-जैव प्रौद्योगिकी कार्य बल** (Agrobiotechnology Task Force) के गठन की घोषणा की है। जैविक तथा अजैविक तनावों को कम करने के लिए जीन अभियांत्रिकी तथा अन्य संबद्ध तकनीकों के माध्यम से प्रयास किये जायेंगे।

भूमंडलीकरण तथा आर्थिक उदारीकरण ने विश्व स्तर पर नये अवसरों का सृजन तो किया ही है, साथ ही, कई नई चुनौतियां भी उत्पन्न कर दी हैं। इस पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय बीज नीति का उद्देश्य कृषकों को सुरक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त उपलब्ध नये अवसरों को लाभ लेकर कृषि-जैव विविधता को संरक्षण प्रदान करना है। एक ओर जहां अनावश्यक आरोपित प्रतिबंधों की समाप्ति अनिवार्य है, वहीं दूसरी ओर, कृषकों के शोषण को भी समाप्त करना आवश्यक है। स्पष्टत: एक नई विनियमकारी रणनीति के निर्धारण की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है जो सम्पूर्ण बीज उद्योग को नये प्रभावकारी वातावरण में सुदृढ़ आधार प्रदान कर सके।

मुख्य तथ्य :

1. सतत कृषि उत्पादन के लिए फसलों की नई एवं समृद्ध प्रजातियों का विकास तथा ऐसी प्रजातियों की किसानों तक पर्याप्त उपलब्धता।
2. बाजारी प्रक्रियाओं तथा नई तकनीकों के अनुरूप उपयुक्त नीतियों तथा कार्यक्रमों का निर्धारण। इससे जैविक तथा अजैविक तनावों को कम कर किसानों की स्थानीय समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।
3. बौद्धिक संपदा की सुरक्षा के लिए एक प्रभावकारी प्रणाली का क्रियान्वयन। इससे नई प्रजातियों के विकास के साथ-साथ निवेश को भी प्रोत्साहन मिलेगा।
4. पौध प्रजाति तथा कृषक अधिकार सुरक्षा प्राधिकरण (Plant Varieties and Farmers' Rights Protection Authority) के गठन का प्रस्ताव। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रजातियों के गुणों के आधार पर एक रजिस्ट्री की व्यवस्था करना है।
5. प्राधिकरण द्वारा किसी प्रजाति के पंजीकरण के लिए उसकी विशिष्टता, समरूपता तथा स्थायित्व जैसे गुण आवश्यक हैं।
6. इस संबंध में निर्णय लेने के लिए समय की निर्धारण करने का अधिकार प्राधिकरण का होगा।
7. सभी प्रजातियों का पंजीकरण प्राधिकरण द्वारा चरणबद्ध रूप से किया जायेगा।
8. प्राधिकरण द्वारा **पौध प्रजाति तथा कृषक अधिकार सुरक्षा प्राधिकरण कानून** के तहत पंजीकृत प्रजातियों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने का प्रावधान।
9. सभी प्रजातियों तथा कृषि-उत्पादों से संबंधित किसानों के अधिकारों का संरक्षण।
10. अनुसंधान तथा नई प्रजातियों के विकास के लिए प्रजनन संबंधी कार्यों का निष्पादन करने वाले वैज्ञानिकों तथा किसानों के अधिकारों का संरक्षण।
11. किसी पौध प्रजाति के विकास के लिए कृषक समूहों अथवा ग्रामीण समुदायों को उचित पुरस्कार एवं सम्मान।
12. पौधों के आनुवांशिक संरक्षण करने वाले ग्रामीण समुदायों को पुरस्कृत करने के लिए तथा आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण के उद्देश्य से एक **राष्ट्रीय जीन कोष** (National Gene Fund) का गठन।
13. जैव विविधता अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप पौधों के आनुवांशिक संसाधनों का संरक्षण।
14. निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत अनुसंधान संगठनों के मध्य समन्वय।
15. पौध प्रजातियों के विकास संबंधित वैश्विक घटनाक्रमों की अद्यतन जानकारी का सुनिश्चितीकरण।

www.studymasterofficial.com Download From

राष्ट्रीय कृषक नीति, 2007 (National Policy on Farmers)

भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषक आयोग की सिफारिशों को मानते हुए और राज्य सरकारों से परामर्श करने के बाद राष्ट्रीय कृषक नीति को मंजूरी दे दी है। राष्ट्रीय कृषक नीति में अन्य बातों के साथ-साथ फार्म क्षेत्र के विकास के लिए सम्पूर्ण पहुंच प्रदान कर दी है। इसकी कवरेज में व्यापक क्षेत्र शामिल हैं:

1. उत्पादन और उत्पादकता पर ही किसानों के आर्थिक स्थिति में सुधार करने पर ध्यान केन्द्रित रहेगा।
2. **परिसम्पत्ति में सुधार :** यह सुनिश्चित करना है कि गांवों में कृषक परिवार के पास उत्पादक परिसम्पत्ति अथवा विपणन योग्य कौशल धारक है अथवा प्राप्त करना है।
3. **कुशलतापूर्वक जल का उपयोग:** जल की प्रति यूनिट से अधिकतम पैदावार और आय की अवधारणा को फसल उत्पादक कार्यक्रमों में अपनाया जायेगा, और जल के उपयोग से संबधित जागरूकता और कार्यकुशलता पर बल दिया जायेगा।
4. **नयी प्रौद्योगिकियां :** जैव प्रौद्योगिकी सहित आसूचना और संचार प्रौद्योगिकी, नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष अनुप्रयोग और नैनो-प्रौद्योगिकी इत्यादि भूमि और जल की प्रति यूनिट उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हो सकती है।
5. **राष्ट्रीय कृषि जैव**-सुरक्षा प्रणाली को समन्वित कृषि जैव-सुरक्षा कार्यक्रम को आयोजित करने के लिए स्थापित किया जायेगा।
6. **बीज और मुद्रा स्थिति :** लघु कृषि उत्पादन को बढ़ाने में अच्छी गुणवत्ता के बीज, बीमारी मुक्त रोपण सामग्री व मृदा किस्म में सुधार की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक किसान को मृदा स्थिति पास बुक जारी की जानी है जिसमें फार्म की मिट्टी की समेकित जानकारी और अनुवर्ती परामर्श दिए होने चाहिए।
7. **महिलाओं के लिए सहायता सेवाएं:** जब महिलाएं पूरे दिन खेतों और जंगलों में काम करती हैं तो उन्हें उचित सहायता सेवाएं जेसे शिशुसदन बाल सेवा केन्द्र तथा पर्याप्त पोषण की आवश्यकता होती है।
8. **ऋण व बीमा:** किसानों को उचित ब्याज दरों पर वित्तीय सेवाएं समय पर, पर्याप्त मात्रा में और आसानी से मुहैया करायी जायेंगी।
9. **विस्तार सेवाओं :** को सुदृढ़ करने के लिए राज्य सरकारों के माध्यम से आईसीटी की सहायता के साथ ग्राम स्तर पर ज्ञान चौपाल और उत्कृष्ट कृषकों के क्षेत्र में कृषक ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए फार्म स्कूल स्थापित किए जायेंगे।
10. कृषकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना को समुचित महत्व प्रदान करने हेतु आवश्यक उपाय किए जाएंगे।
11. पूरे देश में न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्य प्रणाली प्रभावी रूप से क्रियान्वित होगी ताकि कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्य प्रदान किए जा सकें।
12. शुष्क भूमि कृषि क्षेत्र में मुख्यतः उगने वाले बाजरा, ज्वार, रागी, मिलेट जैसी पौषक फसलों को शामिल कर भोजन सुरक्षा का विस्तार किया जाएगा।

राष्ट्रीय कृषक आयोग (National Commission for Farmers)

भारत सरकार द्वारा देश के प्रथम राष्ट्रीय कृषक आयोग का गठन 10 फरवरी, 2004 को किया गया है जिसका मूल उद्देश्य कृषि प्रस्थिति का मूल्यांकन तथा विभिन्न क्षेत्रों में किसानों की स्थिति का आकलन है। दो वर्षीय इस आयोग के अध्यक्ष के रूप में योजना आयोग के सदस्य **सोम पाल** को नियुक्त किया गया था लेकिन **29 मई, 2004** को सरकार ने **एम.एस. स्वामीनाथन** को आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया । आयोग के अध्यक्ष को कैबिनेट स्तर के मंत्री का दर्जा प्रदान किया गया है।

आयोग कृषि विकास में आने वाली समस्याओं के निराकरण तथा क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने वाले कारकों की पहचान करेगा। इस आधार पर सुझाव देकर आयोग द्वारा गरीबी उपशमन तथा समतामूलक कृषि विकास की नीतियों के निर्धारण में सरकार को सहयोग प्रदान किया जायेगा।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

कृषि तकनीकों, आगम प्रक्रियाओं तथा कृषक-मित्र तकनीकों के विकास के लिए आयोग द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव दिये जायेंगे। इन तकनीकों में, कृषि-जैव प्रौद्योगिकी तथा जलवायवीय तकनीकों का विशेष महत्व है। साथ ही, आयोग द्वारा कृषि के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार को बेहतर बनाने के लिए भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये जायेंगे।

कृषकों के कल्याण तथा उनकी आय में वृद्धि के लिए विद्यमान कीमतों तथा बाजारी नीतियों के मूल्यांकन की व्यवस्था हेतु आयोग द्वारा नए विधानों के निर्धारण में भी सरकार को सहयोग प्रदान किया जायेगा। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर कृषि विकास के लिए किये जा रहे कार्यों की सूचना की उपलब्धता भी आयोग के मुख्य कार्यों में से एक है।

काश्तकारी प्रणाली एवं भूमि सुधार (Tenancy System & Land Reforms)

भू-काश्तकारी का तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसमें किसानों द्वारा किसी विशेष भूखंड पर कृषि कार्य किया जाता है। वस्तुत: यह किसानों के भूमि उपयोग अधिकारों से संबंधित है। जैसा कि हम जानते हैं, राज्य की आय में भू-राजस्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारत जैसे कृषि-आधारित देश में आदर्श भू-काश्तकारी प्रणाली की नितांत आवश्यकता है। ऐसी प्रणाली में निम्नांकित गुणों का समावेश किया जाता है:

1. **काश्तकारों की सुरक्षा :-** यदि काश्तकारों को भूखंड पर कृषि कार्य करने के लिए पट्टे का प्रावधान है तो पटे की अवधि निश्चित की जानी चाहिए।
2. **भू-सुधार के लिए मुआवजा :-** यदि काश्तकार द्वारा भूखंड के विकास के लिए कोई विशिष्ट कार्य किया गया है तो उसके बदले उसे मुआवजा दिया जाना चाहिए। इससे काश्तकारों में आत्मविश्वास का संचार किया जा सकेगा तथा भूमि उपयोग को भी बेहतर बनाया जा सकेगा।
3. **अधिक उत्पादन के लिए पुरस्कार :-** किसी भूखंड के किराये अथवा राजस्व की मात्रा का निर्धारण इस आधार पर किया जाना आवश्यक है जो किसानों अथवा काश्तकारों को प्रेरित करता रहे। इससे काश्तकारों को उनके द्वारा किये गये उत्पादन के लिए उन्हें पुरस्कृत किया जा सकेगा।
4. **मध्यस्थ प्रणाली की समाप्ति :-** सरकार तथा काश्तकारों अथवा किसानों के मध्य कोई मध्यस्थता करने वाली प्रणाली विद्यमान नहीं होनी चाहिए। सरकार द्वारा किसानों तक सुविधाएं उपलब्ध कराने तथा उनसे राजस्व वसूली का कार्य प्रत्यक्ष रूप से ही किया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार की प्रणाली के विकास से उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। सारांशत: यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त गुणों वाली नई काश्तकारी प्रणाली से उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है तथा सामाजिक-आर्थिक विकास को भी सुदृढ़ आधार प्रदान किया जा सकता है। चूंकि किसी देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियां ऐसी प्रणाली के निर्धारण में प्रत्यक्ष योगदान देती है, इस कारण भारत में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पूर्व निम्नांकित पद्धतियां विद्यमान रही थीं :

रैयतवारी प्रथा

इस प्रथा को सर्वप्रथम 1792 में मद्रास राज्य में **बारा महल** जिले में कैप्टन रीड तथा थॉमस मुनरो द्वारा अधिगृहीत की गई थी। बाद में इसे बॉम्बे, मध्य प्रदेश तथा असम में भी लागू किया गया था। इसे कृषक स्वामित्व (Peasant Proprietorship) अथवा स्वामित्व काश्तकारी (Occupancy Tenure) भी कहते हैं। इस प्रथा में किसान का प्रत्यक्ष संबंध सरकार से होता है तथा किसी प्रकार की मध्यस्थ प्रणाली का अभाव होता है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, 1947-48 में लगभग 38 प्रतिशत भूखंड इस प्रथा के अन्तर्गत थे।

चूंकि कृषकों को भूखंड पर से हटाये जाने का खतरा विद्यमान नहीं था, इस कारण उनके द्वारा भूमि उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता था। साथ ही, इस प्रथा में उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती थी। सरकार तथा किसानों के मध्य प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण दोनों के मध्य पर्याप्त समन्वय भी स्थापित था जिसके फलस्वरूप राजस्व वसूली सरल थी। सहकारी कृषि के दृष्टिकोण से इस प्रथा को सर्वथा उपयुक्त कहा गया है। बड़ी संख्या में सहकारिता की भावना के साथ किसानों को सहकारी कृषि के लाभ प्राप्त होते थे।

Downloaded From www.studydiscoveryofficial.com

दूसरी ओर, रैयतवारी प्रथा में कई खामियां भी विद्यमान थीं। चूंकि कई किसानों को स्वामित्व अधिकार प्रदान किये गये थे, अत: जोतों का आकार अत्यन्त छोटा था। इस कारण उत्पादकता में वृद्धि की सततता बनाये रखना दुष्कर था। सरकार तथा किसानों के मध्य प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण राजस्व वसूली की प्रक्रिया के क्रियान्वयन में कई प्रकार की कठिनाइयां विद्यमान थीं। बढ़ते हुए राजस्व दर ने किसानों की आय में कमी करने में विशेष योगदान दिया।

महलवारी प्रथा

इस प्रथा को सामान्यत: संयुक्त ग्रामीण प्रथा भी कहा जाता था। इस प्रथा में भूखंडों पर सम्पूर्ण गांव का स्वामित्व था। 'महल' शब्द का प्रयोग गांव के लिए किया गया है। वैयक्तिक स्तर पर किसानों द्वारा दिये गये राजस्व का भुगतान सामूहिक रूप से किया जाना अनिवार्य था। गांव के प्रमुख द्वारा राजस्व का संकलन किया जाता था जिसके लिए उसे प्राप्त राजस्व का कुछ अंश प्रदान किया जाता था।

इस प्रथा को सर्वप्रथम **आगरा** तथा **अवध** में लागू किया गया था। लगभग 38 प्रतिशत भूखंड पर यह प्रथा लागू थी। रैयतवारी प्रथा के अन्य गुण भी इस प्रथा में विद्यमान थे।

जमींदारी प्रथा

1793 में ब्रिटिश सरकार द्वारा इस प्रथा का प्रारंभ किया गया था जिसे सर्वप्रथम लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल में लागू किया। बाद में इसका विस्तार बिहार तथा उड़ीसा में भी हो गया था। लगभग 24 प्रतिशत भूखंड पर यह प्रथा लागू थी। सामान्यत: किसानों द्वारा भूखंड पर कृषि कार्य किया जाता था तथा जमींदारों द्वारा उनसे किराये की वसूली की जाती थी। लेकिन किसान जमींदारों के प्रसादपर्यन्त ही कृषि कार्य कर सकते थे। दो प्रकार की जमींदारियां प्रचलित थीं जिन्हें स्थाई बंदोबस्त तथा अस्थायी बंदोबस्त कहते थे। स्थाई बंदोबस्त में राजस्व स्थाई रूप से निर्धारित था जबकि अस्थाई बंदोबस्त में राजस्व 20 से 40 वर्षों तक के लिए निर्धारित होता था।

भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का मूल उद्देश्य भूमि तथा संबद्ध संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग तथा बेरोजगारी एवं प्रच्छन्न बेरोजगारी को दूर करना था। इस दिशा में पहला प्रयास वर्ष 1954 में किया गया था जब जमींदारी प्रथा की समाप्ति की गई थी। इसके अतिरिक्त, कई राज्यों में 1950 तथा 1960 के दशकों में चकबंदी कानून क्रियान्वित किये गये थे। नई आवश्यकताओं के अनुरूप 1972 में इन कानूनों में संशोधन किये गये। इन कानूनों के तहत वर्ष 2001 तक कुल 73.66 मिलियन हेक्टेयर भूखंड को अतिरिक्त भूखंड के रूप में वर्गीकृत किया गया था जिसमें से 64.95 मिलियन हेक्टेयर भूखंड अधिगृहीत किये गये थे। वर्ष 1988-89 में भूमि संबंधी दस्तावेजों के कंप्यूटरीकरण के लिए एक केन्द्र-प्रयोजित योजना क्रियान्वित की गई है। वर्तमान में यह योजना कुल 582 जिलों में क्रियान्वित की जा रही है।

कीमत प्रबंधन (Price Management)

कई कृषि उत्पाद, विशेषकर खाद्यान्न जीवन की अनिवार्यता हैं। यद्यपि कृषि उत्पादों की कीमतें मांग एवं पूर्ति के आधार पर निर्धारित की जाती है। लेकिन यह आशा की जाती है कि उनकी कीमतें तार्किक रहे। अनुकूलतम स्तर ही अर्थवयवस्था के लिए अनिवार्य है। मांग के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि वस्तुओं की मांग दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कृषि आधारित उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में भी की जाती है। इस मांग में विदेशों से की जाने वाली मांग भी शामिल है। कृषि उत्पादों की मांग के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इनकी कीमतों में वृद्धि या कमी से इनकी मांग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी प्रकार कृषि उत्पादों की पूर्ति उनके उत्पादन पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त आयातित उत्पादों से भी इनकी पूर्ति प्रभावित होती है। मौसमी परिवर्तन तथा उत्पादन की मात्रा पूर्ति को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। पूर्ति में संग्रहित उत्पादों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। कीमत में वृद्धि मांग को प्रभावित करती है। कीमत में होने वाली कमी या वृद्धि की मांग में कमी या वृद्धि होती है। इसी प्रकार कीमत में हुई वृद्धि से पूर्ति में भी वृद्धि होती है।

सरकारी नीति

वर्ष 1965 में कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की स्थापना के साथ ही भारत सरकार द्वारा एक विस्तृत मूल्य नीति का निर्धारण किया गया था। नीति के मूल तत्वों में निम्नांकित प्रमुख हैं :-

Downloaded from www.studymasterofficial.com

1. उत्पादकों को यह विश्वास दिलाना कि कीमतें एक निश्चित स्तर से कम नहीं होंगी ताकि उत्पादन का उच्च स्तर सुनिश्चित किया जा सके।
2. कृषक समुदाय की प्रासंगिक आय के स्तर का निर्धारण।
3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा। इसका उद्देश्य कीमतों की अप्रत्याशित वृद्धि को रोकना है।
4. कीमतों का स्थिरीकरण।

खाद्यान्नों का अधिग्रहण

मूल्य समर्थन योजना के तहत खाद्यान्नों का अधिग्रहण दो उद्देश्यों की प्रप्ति के लिए किया जाता है। प्रथम, किसानों को उपयुक्त कीमत प्रदान करना तथा द्वितीय खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराना। खाद्यान्नों का अधिग्रहण भारतीय खाद्य निगम द्वारा किया जाता है। इस कार्य में राज्य स्तरीय अधिग्रहण एजेंसियाँ भी सहयोग प्रदान करती हैं।

न्यूनतम समर्थन मूल्य

सरकार की मूल्य समर्थन नीति कृषि उत्पादकों को सुरक्षा प्रदान करती है। यह न्यूनतम मूल्य कीमतों के अधिकतम उतार के आलोक में निर्धारित किया जाता है। 1970 के दशक तक सरकार दो प्रकार के मूल्यों का निर्धारण करती थी-

1. न्यूनतम समर्थन मूल्य
2. अधिग्रहण मूल्य

न्यूनतम समर्थन मूल्य वस्तुतः आधार कीमतों के रूप में निर्धारित होते थे, जिनका मूल उद्देश्य उत्पादकों द्वारा किये गये निवेश को दीर्घकालिक समर्थन तथा कीमत स्थिरीकरण के रूप में सुरक्षा प्रदान करना था। दूसरी ओर अधिग्रहण मूल्य का निर्धारण भारतीय खाद्य निगम तथा अन्य एजेंसियों द्वारा खरीफ एवं रबी फसलों के अधिग्रहण के लिए किया जाता था ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली सुदृढ़ बनाई जा सके।

कृषि लागत तथा मूल्य आयोग ने 24 महत्वपूर्ण फसलों के सम्बन्ध में न्यूनतम समर्थन मूल्य की सिफारिश की है। आयोग ने अन्य कारकों के साथ-साथ न्यूनतम समर्थन मूल्य की सिफारिश करते समय उत्पादन की लागत पर विचार किया जिसमें भुगतान की गयी निविष्टियों की लागत, परिवार के श्रम और अपनी भूमि का आरोपित मूल्य शामिल है। न्यूनतम समर्थन मूल्य सामान्यतः किसी विशेष फसल बुआई कार्यकलापों की घोषणा से पहले घोषित किया जाता है और यह सामान्यतः लाभदायी रहा है तथा लागत की अपेक्षा काफी अधिक रहा है। परिभाषा के अनुसार न्यूनतम समर्थन मूल्य आधार मूल्य होता है और किसान उस मूल्य को प्राप्त करने के प्रति आश्वस्त रहते हैं। अधिकांश फसलों में बोनस सहित न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन की लागत से अधिक होता है। न्यूनतम समर्थन मूल्य में 2007-08 में पर्याप्त संशोधन किया गया। धान (सामान्य), गेहूं, मूंग, उड़द, अरहर, जूट के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 2007-08 में बढ़ोतरी वर्ष 2004-05 के न्यूनतम समर्थन मूल्य की तुलना में क्रमशः 33 प्रतिशत, 56.3 प्रतिशत, 23.4 प्रतिशत, 23.4 प्रतिशत, 14.4 प्रतिशत और 18.5 प्रतिशत थी। किसानों को प्रस्तावित खरीद मूल्य विशेषतः कार्य सक्षम उत्पादक राज्यों में उत्पादन लागत की तुलना में काफी अधिक था। सरकार एक मुक्त अधिग्रहण नीति का पालन करती है। दूसरे शब्दों में किसी भी प्रकार का अधिग्रहण लक्ष्य निर्धारित नहीं है। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग मूल्य निर्धारण के लिए उत्पादन लागत, निवेश की कीमत, आगम-निर्गम समता, बाजारी प्रवृत्तियां तथा मांग एवं पूर्ति जैसे कारकों को आधार बनाता है।

दीर्घकालिक खाद्यान्न नीति

खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग के अधीन 16 नवम्बर, 2000 को एक उच्च स्तरीय समिति गठित की गई थी जिसे एक राष्ट्रीय स्तर की दीर्घकालीक खाद्यान्न नीति का निर्धारण करने का दायित्व सौंपा गया था। समिति ने 31 जुलाई, 2002 को सौंपी गई अपनी रिपोर्ट में निम्नांकित महत्वपूर्ण अनुशंसाएं की-

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए अधिग्रहण किये जाने वाले खाद्यान्नों की गुणवत्ता पर बल।

2. भारतीय खाद्य निगम द्वारा राज्य सकरारों को विधिक शुल्कों के रूप में किया गया भुगतान वस्तुतः केन्द्र से राज्य को वित्त का हस्तान्तरण ही है। यह कार्य बिना निगम के प्रत्यक्षतः केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य होने की तार्किकता पर बल।
3. चावल के लिए केवल एक प्रकार (श्रेणी) के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण।
4. फेयर प्राइस शॉप के माध्यम से वितरण प्रणाली का सुदृढ़ीकरण।
5. कार्यरत अन्तयोदय अन्न योजना का विस्तार ताकि उसे खाद्य सुरक्षा प्रणाली के रूप में विकसित किया जा सके।
6. कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की सिफारिशों पर सरकार द्वारा कृषि मौसम के आरंभ के पूर्व न्यूनतम समर्थन मूल्यों की घोषणा।
7. कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को विधायी दर्जा दिये जाने की आवश्यकता।
8. निजी एवं विधिक व्यापार में आने वाले अवरोधों को दूर करने का प्रयास।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS)

पूर्व में जब इसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली कहा जाता था तब इसकी आलोचना इस आधार पर की जाती थी कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या तक इसकी पहुंच नहीं है। तथा इसका झुकाव नगरीय क्षेत्रों की ओर अधिक है। वर्ष 1977 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू की गई थी। इसमें कम कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की द्वि-स्तरीय संरचना बनाई गई है। इसके माध्यम से बी.पी.एल. तथा ए.पी.एल. परिवारों को अनाज उपलब्ध कराने का प्रावधान है। 1 अप्रैल, 2002 से प्रति माह 35 किलो अनाज मुहैया कराना तय किया गया है। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए दिसम्बर 2000 में अन्त्योदय अन्न योजना आरंभ की गई थी। इस योजना में गेहूँ का मूल्य 2 रुपया किलो निर्धारित है।

कृषि वित्त (Agricultural Finance)

यह विदित है कि उत्पादन प्रक्रियाओं के लिए वित्त अनिवार्य है। व्यवहारिक रूप से कृषि क्षेत्र में तीन प्रकार के वित्त उपलब्ध है जिन्हें अल्प, मध्य एवं दीर्घकालिक साख कहा जाता है।

अल्पकालिक साख की अवधि 15 माह तक की होती है। जिसका भुगतान कृषकों द्वारा अपनी चालू आय से ही सामान्यतः किया जाता है। **मध्यकालिक** साख 15 माह से 5 वर्षों की अवधि तक के लिए उपलब्ध होता है। जिसे मवेशी खरीद, भूमि विकास आदि कार्यों में उपयोग में लाया जाता है।

पांच से 20 वर्षों की अवधि तक वाले साख को **दीर्घकालिक** साख कहते हैं। इसे साख का सामान्यतः कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस साख का उपयोग मशीनों अथवा अतिरिक्त भूमि खरीद के लिए होता है। औद्योगिक वित्त के विपरीत कृषि वित्त की मात्रा सरलतापूर्वक निर्धारित नहीं की जा सकती।

कृषि में उत्पादकता वृद्धि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों दोनों से, विशेषतः पूंजी निर्माण पर ही निर्भर है। कुल पूंजी निर्माण में कृषि क्षेत्र के सकल पूंजी निर्माण के अनुपात के रूप में सतत् गिरावट देखी गई है। तथापि, इस क्षेत्र में सघउ के सापेक्ष कृषि क्षेत्र में सकल पूंजी निर्माण में वर्ष 2000-01 के 9.6 प्रतिशत से सुधार हुआ और यह वर्ष 2006-07 में बढ़कर 12.5 प्रतिशत हो गया। तथापि, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस क्षेत्र में 4 प्रतिशत की लक्ष्य वृद्धि के साथ इसे बढ़ाकर 16 प्रतिशत किया जाना है।

कृषि वित्त के स्रोत

मुख्य रूप से धन स्रोतों को गैर-संस्थागत एवं संस्थागत स्रोतों में बांटा जा सकता है। संस्थागत स्रोतों में सहाकरी समितियाँ, वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा नाबार्ड जबकि गैर-संस्थागत स्रोतों में साहूकार एवं महाजन प्रमुख हैं:-

1. **सहकारी साख**- इस प्रकार का साख प्राथमिक कृषि साख समितियों तथा भूमि विकास बैंकों द्वारा मुख्यतः अल्पकालिक, मध्यकालिक तथा दीर्घकालिक रूप में उपलब्ध कराया जाता है। रिवर्ज बैंक ने 1937 में ही सहकारी साख को स्वीकृति प्रदान कर

DISCOVERY
Download from www.studymasterofficial.com

दी थी। लेकिन नाबार्ड के 1982 में अस्तित्व में आने के बाद इस प्रक्रिया का सुदृढ़ीकरण हुआ है।

2. **वाणिज्यिक बैंक साख-** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा स्वत: तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को प्रायोजित कर साख उपलब्ध कराई जाती है। जिसने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। वस्तुत: कुल संस्थागत कृषि साख का 58 प्रतिशत (50 प्रतिशत वाणिज्यिक बैंक तथा 8 प्रतिशत ग्रामीण बैंक) इनका अंश है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा 2001-02 में 31,964 करोड़ रुपए साख के रूप में दिये गये थे। ग्रामीण बैंकों के माध्यम से 4,956 करोड रुपए कृषि साख के रूप में प्रदान किये गये थे। हाल ही में रिजर्व बैंक द्वारा किये गये प्रयासों से ऐसी साख में वृद्धि की संभावना है।

3. **भारतीय रिजर्व बैंक-** वर्ष 1954 में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की अनुशंसाओं के आधार पर रिजर्व बैंक ने कृषि क्षेत्र में अपनी भूमिका का विस्तार किया है। आरंभिक चरणों के रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय कृषि साख कोष तथा राष्ट्रीय कृषि साख स्थायित्व कोष की स्थापना कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास किया था। वर्ष 1982 में इन दोनों ही कोषों का विलय कर दिया गया जिससे राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त कई अन्य तरलता सुविधाएं भी रिजर्व बैंक द्वारा प्रदान की गई। इनमें वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों को दी जाने वाली राशियाँ हैं।

4. **नाबार्ड-** इसकी स्थापना 1982 में की गई थी। यह भारत में पुनर्वित्त की शीर्षस्थ संस्था हैं नाबार्ड ने प्राप्त साख का सही उपयोग करने के लिए विकास स्वैच्छिक वाहिनी की स्थापना की है। वाहिनी में सफल कृषकों, वैज्ञानिकों, तकनीशियनों तथा अन्य विशेषज्ञों को सम्मिलित किया गया है। नाबार्ड ने 1991-92 में औपचारिक एवं अनौपचारिक संस्थानों के माध्यम से ग्रामीण गरीबों को वित्तीय सहायता देने के लिए स्व-सहायता समूहों की एक संकल्पना विकसित की जिसने अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की है। वर्ष 2008 तक नाबार्ड ने 8 लाख ऐसे समूहों की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया है।

ग्रामीण बुनियादी सुविधा विकास निधि (RIDF)

1 अप्रैल, 1995 से नाबार्ड में RIDF (ग्रामीण बुनियादी सुविधा विकास निधि/Rural Infrastructure Development Fund) स्थापित किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य सरकारों को सिंचाई, बाढ़ से बचाव, ग्रामीण सड़कों और पुलों से संबंधित मूलभूत सुविधा परियोजनाओं को पूरा करने में सक्षम बनाने के लिए निधियां उपलब्ध कराना था। ग्रामीण बुनियादी सुविधा विकास निधि की कुल राशि में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के लक्ष्य के अधीन उनके कृषि को उधार में होने वाली कमी की मात्रा तक निवल बैंक ऋण के अधिकतम 1.5 प्रतिशत की शर्त पर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अंशदान किया जाता है।

कृषि वस्तुओं में मूल्य स्थिरीकरण

मूल्य स्थिरीकरण से अभिप्राय मूल्यों में होने वाले उच्चावचनों को एक सीमा में रखने से है ताकि मूल्यों में उतार-चढ़ाव नियंत्रित रहे। अशोक मेहता की अध्यक्षता में गठित खाद्यान्न जांच समिति के अनुसार, ''एक विकासशील अर्थव्यवस्था की कठिनाइयां विभिन्न प्रकार की मूल्य असमानताओं में प्रतिबिम्बित होती है।''

कृषि मूल्यों में उच्चावचन के कारण एक कृषि प्रधान देश में कृषि पदार्थो के मूल्यों में स्थापित की आवश्यकता होती है। किन्तु इन देशों में अनेक कारणों से कृषि मूल्यों में स्थायित्व नहीं हो पाता। संक्षेप में इन कारणों को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है-

- कृषि उत्पादन के मानसून पर निर्भर रहने के कारण उत्पादन का आकार घटता बढ़ता रहता है जिससे उपज के मूल्य परिवर्तित होते हैं।
- सरकार की साख नीति और घाटे की वित्त व्यवस्था की नीति भी कृषि पदार्थो के मूल्यों में उच्चावचन उत्पन्न करती है।
- देश की आयात-निर्यात नीति भी कृषि पदार्थो के मूल्यों में उच्चावचन लाती है। जिस कृषि पदार्थ का निर्यात अधिक होता है उसकी कीमतें घरेलू बाजार में बढ़ जाती हैं।
- देश के सामान्य मूल्य स्तर का परिवर्तन भी कृषि मूल्यों में उच्चावचन उत्पन्न करता है।

कृषि मूल्य के स्थिरीकरण के उद्देश्य-

- कृषिकों के हितों की सुरक्षा

Downloaded From www.studymaterial.com

- उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा
- औद्योगिक पदार्थों के मूल्यों में स्थिरता लाना

भारत की कृषि मूल्य नीति

भारत सरकार की कृषि मूल्य नीति के तीन उद्देश्य हैं-

- किसानों को उपज बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा उनकी उपज का न्यूनतम मूल्य घोषित करना।
- उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर कृषि पदार्थों की पूर्ति करके और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करके उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना।
- कृषि पदार्थों में मूल्य स्थिरीकरण लाना।

भारत सरकार ने उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नांकित प्रयास किये हैं-

- कृषि उपज का समर्थन मूल्य घोषित करना अर्थात् किसानों को उनकी उपज के न्यूनतम मूल्य की गारण्टी देना।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उचित मूल्य वाली राशनिंग की दुकानों पर बिकने वाले खाद्य-पदार्थों का विक्रय मूल्य निर्धारित करना ताकि सीमित आय वाले उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके।
- कृषि पदार्थों के मूल्यों को एक सीमा में बनाये रखने के लिए बफर स्टॉक नीति अपनाना।

कृषि आय बीमा योजना:- (फसल बीमा योजना के स्थान पर दिसम्बर 2003 से प्रारंभ)

केन्द्र सरकार ने कृषि आय बीमा योजना दिसम्बर, 2003 से रबी की फसलों के अन्तर्गत लागू की है। शुरू में इस योजना को गेहूं और चावल की फसलों के लिए लागू किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत एक फसल के लिए किसानों की आय का बीमा करवाया जाएगा। उनकी आय का अनुमान भी लगाया जाएगा। यदि उनको फसल की कीमत अनुमानित आय से कम मिलती है तो उस राशि की भरपाई बीमा कम्पनी करेगी। प्रारम्भ में यह योजना प्रत्येक राज्य के एक जिले में लागू की जाएगी। योजना के सफल होने पर इसे पूरे देश में लागू किया जाएगा। इस योजन को लागू करके केन्द्र सरकार धीरे-धीरे खाद्यान्नों की सरकारी खरीद से पीछा छुड़ाना चाहती है। केन्द्र सरकार प्रति वर्ष प्रमुख खाद्यान्नों का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। यदि किसान को वह मूल्य बाजार से नहीं मिलता तो केन्द्र सरकार की एजेन्सियों को सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। यदि किसान को वह मूल्य बाजार से नहीं मिलता तो केन्द्र सरकार की एजेन्सियों को सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदनी पड़ती है। इस पर सरकार प्रति वर्ष अरबों रुपए खर्च करती है। कृषि आय बीमा योजना लागू होने से किसानों को अपनी फसल का उचित मूल्य मिलेगा। इस योजना के अन्तर्गत किसान की एक एकड़ फसल की सात वर्ष की आय के औसत को आधार मानकर उतनी कीमत का बीमा करवाया जाएगा।

भारत में कृषि विपणन (Agri-Marketing in India)

कृषि विपणन का अभिप्राय कृषि उपज को किसानों से अन्तिम उपभोक्ताओं तक पहुंचाने की क्रिया से है।

कृषि विपणन का महत्व:- एक अर्थव्यवस्था में सुव्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था का होना निम्नांकित लाभों को सुनिश्चित करता है-

- एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था में अनके उद्योगों को उनके कच्चे माल की पूर्ति कृषि क्षेत्र से नियमित रूप से प्राप्त होती है जिससे देश में औद्योगिक विकास की गति में वृद्धि होती है।
- गैर-कृषि जनसंख्या के लिए खाद्यान्न पूर्ति देश की कृषि विपणन व्यवस्था पर ही निर्भर करती है।
- कृषि विपणन प्रणाली किसानों को उनके श्रम का उचित प्रतिफल दिलाकर उनके रहन-सहन के सतर में सुधार करती है।
- एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन प्रणाली से देश में निर्यात के लिए कृषि पदार्थों का आधिक्य प्राप्त होता है। अर्द्ध विकसित देशों में यह तथ्य और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इन देशों के निर्यातों में कृषि पदार्थों का बाहुल्य होता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

- एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन से आन्तरिक बाजार का विस्तार होता है साथ ही कृषकों की आय बढ़ने से गैर कृषि वस्तुओं की मांग में भी वृद्धि होती है जिससे गैर-कृषि क्षेत्र का भी विस्तार होता है।
- सुव्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था से कृषि वस्तुओं के मूल्यों में स्थिरता लाना सम्भव हो पाता है।

भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था के दोष

(1) किसानों में संगठन का अभाव। (2) मध्यस्थों का बाहुल्य। (3) भण्डार सुविधाओं का अभाव। (4) यातायात सुविधाओं की अपर्याप्तता। (5) किसानों की निर्धनता एवं वित्तीय सुविधाओं का अभाव। (6) निम्न कोटि की कृषि उपज। (7) श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण का अभाव। (8) कृषि उपज का सीमित आकार। (9) बाजार की सूचनाओं का अपूर्ण ज्ञान। (10) मण्डियों का कपटपूर्ण व्यवहार।

भारत में कृषि विपणन सुधार के लिए किये गये प्रयास

1. नियमित एवं संगठित मण्डियों की स्थापना।
2. सहकारी विपणन समितियों की स्थापना।
3. कृषि उपज अधिनियम का अनुपालन।
4. मैट्रिक प्रणाली (1956) का अनुपालन।
5. राष्ट्रीय सहाकारी विकास एवं भण्डार परिषद (NAFED) की स्थापना।
6. किसानों के बीच विपणन सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसारण।
7. यातायात की सुविधाओं का विकास।
8. विपणन एवं जांच निदेशालय का गठन।
9. न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा।
10. भण्डारणों का विस्तार।
11. कृषि वस्तुओं के मानकीकरण के लिए 'AGMARK' का प्रयोग।

राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान

इस संस्थान की स्थापना जयपुर में सन् 1988 में की गई। पूर्व में इसका नाम कृषि विपणन केन्द्र था। इस संस्थान की स्थापना के मुख्य उद्देश्य हैं-

(i) शिक्षण, अनुसन्धान एवं परामर्श देकर देश के कृषि विपणन ढांचे को मजबूत बनाना।

(ii) कृषि विपणन क्षेत्र में बेहतर प्रबन्ध तकनीक के प्रदर्शन एवं उनके प्रयोग हेतु अनुसन्धान कार्य करना।

(iii) निवेश परियोजनाएं तैयार करना।

(iv) समस्या समाधान संबंधी परामर्श देना।

(v) कृषि विपणन में मौजूदा सुविधाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

भारत में सहकारी विपणन

क. ग्राम स्तर पर- प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां (Primary Co-operative Marketing Societies)- इस प्रकार की समितियां अपने सदस्यों के लाभ के लिए कार्य करती हैं। उपज का क्रय-विक्रय, एकत्रीकरण, श्रेणीकरण, करने के साथ-साथ इन समितियों द्वारा आदानों जैसे, बीज, खाद आदि खरीदने के लिए वित्तीय सुविधाएं भी दी जाती हैं। इस समय देश में प्राथमिक सहकारी समितियों की संख्या 9,000 है।

DISCOVERY
www.Downloadsmasterofficial.com

ख. जिला स्तर पर- केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियां (Central Co-operative Marketing Societies)- इस प्रकार की समितियों का गठन प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों को सहायकता प्रदान करने के लिए किया जाता है। ये समितियां कृषि उपज का क्रय विक्रय करने, प्राथमिक समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने तथा अन्य सहकारी विपणन संस्थाओं के बीच समन्वय बनाये रखने का कार्य करती हैं। इस समय ऐसी समितियों की संख्या 157 है।

ग. राज्य स्तर पर- प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियां (State Co-operative Marketing Societies)- इन समितियों का कार्य प्राथमिक समितियों एवं जिला स्तर की केन्द्रीय समितियों को वित्तीय साधन उपलब्ध करना है। इस समय देश में 22 प्रान्तीय समितियां कार्य कर रही हैं।

घ. राष्ट्रीय स्तर पर- राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन संगठन (National Agricultural Co-operative Marketing Federation)- सहकारी विपणन के क्षेत्र में ये देश की सर्वोच्च संस्था है जिनकी 1958 में स्थापना की गई थी। इस संगठन का उद्देश्य विभिन्न सहकारी विपणन संस्थाओं के मध्य समन्वय स्थापित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय कृषि व्यापार को प्रोत्साहित करना है।

गेहूं-चावल का वायदा व्यापार (Future Trading of Wheat and Rice)

15 अगस्त, 2002 को प्रधानमंत्री द्वारा की गई घोषणा के फलस्वरूप देश में नेशनल मल्टी कमोडिटीज एक्सचेन्ज (एन.एम.सी.ई.) के तत्वावधान में हो रहे 50 जिन्सों (जिसमें काली मिर्च, रबड़, चना, ज्वार, अरण्डी, गोला, कपास, सोयाबीन, मुंगफली आदि जिंस शामिल हैं।) के वायदा कारोबार में 13 दिसम्बर, 2003 से गेहूं और चावल को भी सम्मिलित कर लिया गया। अब नेशनल मल्टी कामोडिटीज एक्सचेन्ज का मुख्यालय अहमदाबाद देश में गेहूं और चावल का वायदा करोबार करने वाला पहला ऑनलाइन मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज बन गया है।

लाभ

इस व्यापार में जिन्स को स्टॉक करने की आवश्यकता नहीं होती। अनुमान के आधार पर जिन्सों का खरीद-फरोख्त किया जाता है। इसमें कन्सलटेन्सी ऐन्सी को 0.05 प्रतिशत कमीशन देना पड़ता है।

इस वायदा कारोबार से भारतीय कृषि जगत को परेशान करने वाले अस्थिर बाजार भाव से छुटकारा प्राप्त होने में मदद मिलेगी। देश के किसानों को फसल के मौसम में अपने उत्पाद की उचित कीमतें प्राप्त होगी तथा निर्यातकों को सही समय पर निर्यात के लिए जिन्सों को क्रय करने का अवसर प्राप्त होगा। इस प्रकार विभिन्न जिन्सों में वायदा कारोबार की शुरूआत मुक्त बाजार व्यवस्था को अनिश्चितताओं से निपटने तथा जोखिम को घटाने में कारगर सिद्ध होगी।

भारतीय कृषि के दरवाजे विश्व बाजार के लिए खोल दिए जाने के फलस्वरूप गेहूं और चावल का वयादा व्यापार आवश्यक हो गया था।

कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना, 2001

श्रम मन्त्रालय ने भारतीय जीवन बीमा निगम के सहयोग से कृषि श्रमिक को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करने के उद्देश्य से 'कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना (KSSSY-2001)' नाम की नई योजना 1 जुलाई, 2001 से लागू की गई है। प्रथम चरण में यह योजना देश के केवल 50 जिला में लागू की गई है। इस योजना में 3 रुपए प्रतिदिन का प्रीमियम है जिसमें से 1 रुपए प्रतिदिन (अर्थात् 365 रुपए वार्षिक) श्रमिक द्वारा भुगतान किए जाना है तथा शेष 2 रुपए प्रतिदिन (अर्थात् 730 रुपए वार्षिक) केन्द्र सरकार द्वारा दिए जाने का प्रावधान है।

ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास कोष

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय ने 5500 करोड़ रुपए आधारभूत संरचना विकास कोष (Rural Infrastructure Development Fund RIDF-IX) की स्थापना की है। यह प्रावधान किया गया है कि इस कोष से उन परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देती है जो कृषकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी हो। साथ ही, नाबार्ड को यह निर्देश दिया गया है कि कार्यरत परियोजनाओं का मूल्यांकन कर नई परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान करने के लिए सुझाव दें।

कोष की प्राथमिकताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं :-

1. सिंचाई परियोजनाएँ
2. सामाजिक क्षेत्र की परियोजनाएँ
3. ग्रामीण संपर्क परियोजनाएँ

1. योजना आयोग ने सिंचाई क्षमता 139.89 मिलियन हेक्टेयर पर आंकी है। इसमें 58.46 मिलियन हेक्टेयर पर वृहत एवं मध्यम तथा 81.43 मिलियन हेक्टेयर पर लघु सिंचाई परियोजनाएं कार्यरत है।
2. योजना आयोग के एक कार्य समूह ने इस लघु, मध्यम और वृहत परियोजनाओं के लिए 1,09,025 करोड़ रुपए का प्रस्ताव किया है जो दसवीं योजना में व्यय किये जायेंगे। योजना आयोग ने 35,050 करोड़ रुपए के निवेश की भी अनुशंसा की है जिससे दसवीं योजना में लघु सिंचाई वाली 8 मिलियन हेक्टेयर पर कार्यरत परियोजना पूरी की जायेगी।
3. योजना आयोग की अनुशंसाओं आदि प्राथमिकताओं के आधार पर आर.आई.डी.एफ. में सिंचाई क्षेत्र पर सर्वाधिक बल दिया गया है। अधूरी योजनाओं को पूरा करने के कार्य को प्राथमिकता देने का निर्णय किया गया है साथ ही नहरों के आधुनिकीकरण पर भी बल दिया जायेगा।
4. लघु सिंचाई परियोजनाओं के क्रियान्वयन पर बल दिया गया है। इस क्रम में छोटे बाँधों के निर्माण तथा पुराने संग्राहकों के आधुनिकीकरण को प्राथमिकता दी जायेगी।
5. वर्तमान में क्रियान्वित की जा रही मध्यम तथा वृहत सिंचाई परियोजनाओं का चयन का उन्हें वित्तीय सहायता दिये जायेंगे जिसके लिए जल संसाधन मंत्रालय का सहयोग भी प्राप्त किया जायेगा।
6. वर्षा जल के संभरण तथा भूमिगत जल के संरक्षण के लिए चलाई जाने वाली परियोजनाओं को प्रोत्साहन।

विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि (WTO and Indian Agriculture)

नई आर्थिक नीति में अपनाये हुए सुधारवादी उपायों की परिणति आज उदारीकरण एवं निजीकरण की सीमा से निकलकर अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण (Globalisation of Economy) के रूप में परिलक्षित हो रही है।

वैश्वीकरण (Globalisation) वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है तथा व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबंधित रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं का विदोहन करने की दिशा में अग्रसर होना है।

लगभग 40 वर्ष तक कृषि गैट के मुख्य नियमों से अलग रहा है। किंतु उरूग्वे दौर ने कृषि क्षेत्र को WTO की सीमा में लाकर इस घेरे को तोड़ा है। कृषि को गैट की आठवें दौर (अर्थात् उरूग्वे दौर) की वार्ता में प्रथम बार सम्मिलित किया गया।

कृषि को विश्व व्यापार से संबद्ध करने के महत्व को WTO की मंत्रिस्तरीय इस घोषणा से समझा जा सकता है, "इस बात की प्रबल आवश्यकता थी कि विश्व कृषि व्यापार में अधिक अनुशासन और निश्चितता लाई जाये और संरचनात्मक अधिशेष सहित इस क्षेत्र के प्रतिबंधों एवं विकृतियों को सुधारने एवं रोकने के प्रयास किए जाये ताकि विश्व कृषि बाजार असन्तुलन, अस्थिरता और अनिश्चतता के माहौल से उबर सके।"

'उरूग्वे चक्र' समझौते के एक भाग के रूप में 'कृषि पर समझौता' पर मोरक्को के मर्राकाश शहर में अप्रैल, 1994 में हस्ताक्षर किये गये तथा यह समझौता 1 जनवरी, 1995 से लागू हो गया।

'कृषि पर समझौता' के प्रावधान (Agreement on Agriculture)

कृषि पर समझौता के प्रावधान व्यापार एवं कृषि नीतियों के तीन बड़े क्षेत्रों से संबंधित हैं:

Downloaded From www.studentcareofficial.com
DISCOVERY

1. बाजार पहुंच (Market Access)

(i) कृषि व्यापार पर प्रशुल्क के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। (ii) कृषि जिंसो के आयातों पर से सभी प्रकार के मात्रात्मक प्रतिबन्ध (Quantitative Restrictions) समाप्त किये जायें, (iii) विकसित देशों के मामले में समझौता लागू होने (1 जनवरी, 1995) के 6 वर्ष के भीतर (31 दिसम्बर, 2000) कृषि जिंसों पर प्रशुल्क की दरों को 36 प्रतिशत के औसत पर लाना। (iv) विकासशील देशों के मामले में समझौता लागू होने के 10 वर्षों के भीतर कृषि जिंसों पर प्रशुल्क की दरों को 24 प्रतिशत के स्तर पर लाना।

2. घरेलू समर्थन में कमी (Reduction in Domestic Support)

जहां तक घरेलू समर्थन में कमी का संबंध है, कृषि पर समझौते में घरेलू समर्थन को दो भागों में बांटा गया है: (i) व्यापार को विकसित करने वाला (Trade Distorting) समर्थन, और (ii) व्यापार को विकसित न करने वाला या न्यूनतम विकसित करने वाला (Non-trade Distorting or minimal Trade Distorting) समर्थन। व्यापार को विरूपित करने वाले घरेलू समर्थन को 'अम्बर बाक्स' (Amber Box) में रखा गया। जहां तक व्यापार को निरूपित न करने वाले घरेलू समर्थन का संबंध है उसे तीन भागों में विभाजित किया गया- (i) "ग्रीन बाक्स" साहा..... (Green Box Subsidies), (ii) "ब्लू बाक्स" साहाय्यों (Blue Box Subsidies), (iii) "स्पेशल एण्ड डिफ्रैन्शल बॉक्स" साहाय्यों (Special and Differential Box Subsidies)

(i) "ग्रीन बाक्स" सहायिकी (Green Box Subsidies)

इसमें सरकारी सेवाओं पर व्यय की गयी वे राशियां शामिल की गयीं जो अनुसंधान, रोग-नियंत्रण, आधार संरचना तथा खाद्य सुरक्षा पर खर्च की गयीं। इनमें वे भुगतान भी शामिल हैं जो किसानों को प्रत्यक्ष रूप में किये गये ताकि वे उत्पादन को प्रोत्साहित कर सकें। "ग्रीन बाक्स" में शामिल गतिविधियों पर दी जाने वाली सहायता को कम करने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) "ब्लू बाक्स" सहायिकी (Blue Box Subsidies)

इसमें किसानों को दिये गये कुछ ऐसे भुगतान हो सकते हैं जो या तो किसानों को उत्पादन सीमित करने के लिए दिए जायें, या सरकार द्वारा विकासशील देशों में कृषि तथा ग्राम विकास को प्रोत्साहित करने के लिए दिये जायें और कुछ अन्य सहायता के रूप में दिये जायें। ब्लू बॉक्स के अधीन दी जाने वाली सहायता में कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है।

(iii) "स्पेशल एंड डिफ्रैन्शल बाक्स" सहायिकी (Special and Differential Box Subsidies)

इसमें विकासशील देशों के गरीब व कम आय वाले उत्पादकों को दी जाने वाली निवेश सहायता एवं कृषि आगतों पर सहायता शामिल की गयी है।

व्यापार को विकसित (Disterting) करने वाले सभी घरेलू समर्थन को "अम्बर बाक्स" (Amber Box) में रखा गया है। इसका आंकलन समर्थन के समग्र भाव (Aggregate Measure of Support) द्वारा करना है तथा फिर उसे समाप्त करना है। इस श्रेणी में ऐसी किसी भी सहायिकी को रखा गया है जिसे उत्पादकों तथा निर्यातकों पर कुप्रभाव पड़ने की आशंका है। समर्थन के समग्र माप के दो हिस्से हैं- (i) उत्पाद-विशिष्ट समर्थन (Product Specific Support) और (ii) गैर-उत्पाद विशिष्ट समर्थन (Non-Product Specific Support)

घरेलू समर्थन कीमतों (जैसे भारत में वसूली कीमतों) के बाह्य संकेतक कीमतों (external reference prices) से अंतर को समर्थन प्राप्त उत्पादन से गुणा करके उत्पाद-विशिष्ट समर्थन प्राप्त किया जाता है। गैर-उत्पाद विशिष्ट समर्थन के अधीन विभिन्न कृषि आगतों (जैसे उर्वरकों, बिजली, सिंचाई, साख इत्यादि) पर दी जाने वाली सहायता को शामिल किया गया है। कृषि पर समझौते में यह व्यवस्था की गयी है कि विकसित देश 6 वर्ष की अवधि में समर्थन के समग्र माप को 20 प्रतिशत तथा विकासशील देश 10 वर्ष की अवधि में 13 प्रतिशत कम करेंगे। 'कम करने की वचबद्धता' संपूर्ण घरेलू-समर्थन के परिप्रेक्ष्य में ज्ञात करनी है न कि व्यक्तिगत वस्तुओं के संदर्भ में।

3. निर्यात सहायता कम करना (Reduction in Export Subsidies)

विकसित देशों के लिए यह प्रावधान किया गया है कि वे सहायता प्रदत्त निर्यातों (Subsidised Exports) की मात्रा को 6 वर्ष की अवधि

Downloaded from www.studymasteroffical.com

में 21 प्रतिशत तथा निर्यात सहायता के लिए बजट में (आधार 1986-90 के सापेक्ष) 36 प्रतिशत कटौती करेंगे। विकासशील देशों में सहायता निर्यातों की मात्रा को 10 वर्ष की अवधि में 10 प्रतिशत तथा निर्यात सहायता के लिए बजट में 24 प्रतिशत कटौती की व्यवस्था की गयी हैं।

कृषि पर समझौते में अतिरिक्त विश्व व्यापार संगठन के तत्वाधान में लागू किए जाने वाले कुछ अन्य समझौतों का भी कृषि पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ेगा। इनमें सबसे प्रमुख है व्यापार संबद्ध बौद्धिक संपदा अधिकार (Trade Related Intellectual Property rights)। इनके अधीन पेटेंट व कॉपीराइट संरक्षण (Patents and Copyrights Protection) की व्यवस्था है।

कृषि पर समझौते का विकासशील देशों पर प्रभाव (Effects of Agreement on Agriculture on Developing Countries)

कृषि पर समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद, भारत जैसे विकासशील देशों में बहुत उत्साह था कि इससे विकसित देशों के बाजार खुलेंगे और उनकी कृषि वस्तुओं का निर्यात बढ़ेगा। ङ के कार्यकाल के लगभग 10 वर्ष पूरे हो रहे हैं और अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि सभी समझौते विकसित देशों के पक्ष में रहे हैं। जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा:

1. जैसा कि हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं, ग्रीन बॉक्स के अधीन दी गयी सहायता को व्यापार विकसित न करने वाली माना गया है तथा इसे कम करने की जरूरत नहीं है। विकसित देशों ने इस व्यवस्था का पूर्ण लाभ उठाया है। न केवल ग्रीन बॉक्स के अधीन विकसित देश कृषि को घरेलू समर्थन प्रदान करने में सफल रहे हैं अपितु इस समर्थन की स्पष्ट परिभाषा व वर्गीकरण न होने के कारण वे कई प्रकार की सहायता को ग्रीन बॉक्स सहायता के तहत शामिल करने में भी सफल हुए हैं।
2. कृषि समझौते में यह भी वचनबद्धता दी गयी थी कि कृषि सहायता में तेजी से कमी की जायेगी। परंतु विकसित देशों ने इस संबंध में कोई प्रयास नहीं किया।
3. इसी प्रकार निर्यात सहायता भी यूरोप के देशों में तथा अमेरिका में व्यापक पैमाने पर प्रदान की जाती है क्योंकि इन देशों में घरेलू कीमतों अंतर्राष्ट्रीय कीमतों से काफी ज्यादा हैं। अपने उच्च घरेलू कीमत स्तर को बनाये रखने के लिए और विश्व के अन्य देशों में अपने कृषि वस्तु भंडारों को बेचने के लिए ये देश अत्यधिक निर्यात सहायता प्रदान करते हैं। अत: यह उम्मीद भी खतम हो गयी है कि कृषि पर समझौते में कार्यान्वयन से विकसित देशों के कृषि को घरेलू समर्थन में काफी गिरावट आयेगी जिससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ेगी। इससे भारत (व अन्य विकासशील देशों) को कृषि वस्तुओं के निर्यात से काफी आय प्राप्त होगी। किंतु वास्तव में इसका उलटा हुआ है। WTO की स्थापना की बाद के वर्षों में कृषि वस्तुओं की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में तेज गिरावट आयी है जिससे भारत (व अन्य विकासशील देशों) की कृषि वस्तुओं से निर्यात आय कम हुई है।
4. WTO द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश को वस्तुओं के आयात पर प्रत्येक प्रकार के मात्रक प्रतिबंधों (Quantitative Restrictions) को समाप्त कर देना था। इस कारण प्रत्येक वह कृषि उत्पाद जिसका मूल्य अंतर्राष्ट्रीय बाजार में, भारत के राष्ट्रीय बाजार की तुलना में कम है, भारत में आयात द्वारा बेचा जा सकता है। इनमें गेहूं, खाद्य तेल तथा रबड़ आदि शामिल हैं। परंतु भारत देशी व्यापार के विगत कुछ वर्षों के आंकड़ों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि केवल खाद्य तेलों के आयात में ही मुख्य वृद्धि हुई है। एक दो वर्षों में, इनके आयात में कमी भी आयी थी। इस कारण अर्थशास्त्रियों का विचार है कि जहां तक कृषि उत्पादों के आयात का संबंध है, मात्रक प्रतिबंधों के हटाये जाने के पश्चात् भी, इनके आयात के बहुत अधिक न बढ़ने की संभावना नहीं है।
5. घरेलू आवश्यकता न हो पर खाद्यान्नों के न्यूनतम आयात की विवशता की पूर्ति गैट समझौते का एक महत्वपूर्ण अंग है, इस समझौते के लागू होने के प्रथम वर्ष में एक देश के खाद्यान्नों के घरेलू उपभोग का न्यूनतम 2 प्रतिशत आयात की विवशता होगी जो दस वर्ष के अंत तक 3.33 प्रतिशत तक पहुंचाना होगा।

गैट समझौते की इस पूर्ति से घरेलू बाजार में प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न होगी तथा खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य में बाधा उत्पन्न होगी तथा दुर्लभ विदेशी मुद्रा खाद्यान्नों के आयात पर खर्च करने की बाध्यता होगी।

भारत फिलहाल खाद्यान्नों के न्यूनतम आपात की पूर्ति से मुक्त रहेगा, क्योंकि भुगतान संतुलन की कठिनाइयों के कारण उस पर यह शर्त थोपी नहीं जायेगी। अतः भारतीय कृषि पर फिलहाल कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है।

6. **बौद्धिक संपदा अधिकार सुरक्षा** (Aspects of Intellectual Property Rights):– पौधों एवं पशुओं पर बौद्धिक संपदा अधिकार के संबंध में सदस्य देशों को दो विकल्प दिये गये हैं:

(i) सदस्य राष्ट्र पौधों की किस्मों का संरक्षण पेटेंट्स के माध्यम से कर सकते हैं, अथवा

(ii) "सूई जेनेरिस" (Sui-Generis) के माध्यम से या दोनों सम्मिश्रण से कर सकते हैं।

यद्यपि पेटेंट् का प्रथम विकल्प अपनाने पर सदस्य राष्ट्रों के किसान अपनी फसल के एक भाग को अगली फसल के लिए बीज के रूप में प्रयोग नहीं कर सकते, परंतु दूसरे विकल्प "सूई जेनेरिस" के अंतर्गत मौजूदा व्यवस्था के तहत् किसान अपनी उपज के एक भाग को अगली फसल के लिए बीज के रूप में प्रयोग कर सकते हैं और अपने साथी किसानों को उपयोग के लिए वस्तु विनिमय के आधार पर दे सकते हैं, किंतु किसानों पर उनका व्यापारिक लेन-देन अथवा खुले बाजार में खरीद-बिक्री पर प्रतिबंध है।

बौद्धिक संपदा अधिकार संबंधी समझौते की शर्तों को पूरा करने के लिए भारतीय संसद ने अगस्त, 2001 में पौधों की किस्मों के संरक्षण तथा किसानों के अधिकार सुरक्षा के लिए कानून पारित किया।

इसे (Protection of Plant Varieties and Farmer's Rights Legislation) का नाम दिया गया है।

7. **अन्य प्रभावः**

(i) पर्यावरण संरक्षण की आड़ में भारत में निर्मित अनेक कृषि पदार्थों का विकसित देशों द्वारा किया जाने वाला आयात कम होगा।

(ii) यदि पर्यावरण संबंधी विनियमों (Environmental Regulations) को गेट में शामिल कर लिया जाता है तो इससे भारत के खाद्य विधायन (Food processing) तथा बागवानी (Horticulture) जैसे निर्यात-प्रधान क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। भारतीय खाद्य पदार्थों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आसानी से स्वीकार नहीं किया जायेगा। उदाहरणार्थ, अमेरिकी स्वास्थ्य नियमों के अनुसार खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों के अवशेष का स्तर शून्य होना आवश्यक है लेकिन भारतीय उत्पाद इस शर्त को पूरा नहीं करते।

(iii) पौधों की किस्म की संरक्षण 'स्वे-जेनेरिस' को कानून द्वारा निर्धारित किया गया है। भारत के किसानों को नये तथा उत्तम किस्म के पौधे को प्राप्त करने के लिए काफी धन खर्च करना पड़ेगा तथा उनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता बढ़ जायेगी।

वैश्वीकरण और भारतीय कृषि की प्राथमिकताएं (Globalisation and Priorities of India Agriculture)

भारतीय कृषि को घरेलू तथा वैश्विक बाजार के उदारीकरण से अवसर तथा चुनौतियां दोनों मिल रही हैं। कृषि क्षेत्र के लिए एक नयी कार्य योजना को विकसित करने की आवश्यकता है। उपयुक्त उपायों से सब्सिडी आधारित व्यवस्था से पृथक होने तथा एक उत्पादक तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी कृषि संरचना को तैयार करने की आवश्यकता है। अपेक्षाकृत तीव्र कृषि विकास को प्रोत्साहन प्रदान करना न केवल उच्च आर्थिक विकास प्राप्त करने हेतु महत्वपूर्ण है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों की बड़ी संख्या को गरीबी तथा बेरोजगारी के चक्र से भी मुक्ति दिलाने हेतु आवश्यक है। विश्वव्यापीकरण के संदर्भ में भारत की कृषि के संबंध में निम्नलिखित रणनीति होनी चाहिए:

1. **फूड सिक्योरिटी तथा डेवलपमेंट बाक्सः**

भारत में अभी कृषि को घरेलू समर्थन कृषि उत्पाद के मूल्य के 10 प्रतिशत से काफी कम है। इसलिए अभी इसमें कमी करने की आवश्यकता नहीं है। परंतु जब एक बार विकासशील देशों को प्राप्त रियायतें समाप्त कर दी जायेंगी तब आर्थिक सहायता कम करने के लिए दबाव बढ़ सकता है। (खासतौर पर खाद्यान्नों की वसूली तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा उनके वितरण पर दी जाने वाली आर्थिक सहायता को कम करने के लिए)। इसलिए भारत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दबाव बनाना चाहिए ताकि ग्रीन बाक्स की तरह ही

फूड सिक्यूरिटी बाक्स (Food Security Box) तथा 'डेवलपमेंट बाक्स' (Development Box) बनाया जाये।

2. खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को प्रोत्साहन

यदि कृषि उत्पाद मौलिक रूप की बजाय संसाधित या प्रसंस्करित रूप (Processed Form) में निर्यात किये जायें तो इनसे और भी अधिक आय प्राप्त हो सकती है। इन वस्तुओं के निर्यात के बारे में भी यही कहा गया है कि केवल वही वस्तुएं निर्यात की जायें जिनमें घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के पश्चात् एक शुद्ध अधिशेष बचा रहता है।

3. कृषि में वास्तविक अधिशेष

कृषि वस्तुओं को निर्यात करने से पहले सरकार को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इन वस्तुओं के निर्यात के लिए देश में एक वास्तविक अधिशेष (Surplus) है। अन्यथा ऐसे अधिशेष को अस्तित्व में लाने के लिए विशेष उपाय करने पड़ेंगे। इन उपायों में से एक उपाय आधारित संरचना (Infrastructure) का निर्माण विशेषतया सिंचाई तथा बिजली की व्यवस्था, परिवहन की सुविधाओं में सुधार तथा अनुसंधान के प्रोत्साहन से संबंधित है।

4. गुणवत्ता में सुधार

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा के बढ़ने की संभावना को देखते हुए न केवल भारतीय किसानों को नयी टैक्नोलॉजी अपनाकर कृषि उत्पादों की लागत को ही कम करना होगा, अपितु निर्यात किये जाने वाले उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार लाना होगा।

5. अधिक जागरूकता

विकसित देशों द्वारा पर्यावरण एवं सामाजिक मुद्दों को आगे लाकर गैर-प्रशुल्कीय बाधाएं खड़ी करके भारत जैसे विकासशील देशों के आयातों को रोकने जैसे षड्यंत्र के प्रति भारत के नीतिकारों को अधिक जागरूक रहने की आवश्यकता है क्योंकि विकसित देश फसलों की सुरक्षा के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले कीटनाशकों एवं उपज बढ़ाने के लिए प्रयुक्त रासायनिक उर्वरकों, अपशिष्ट रसायनों की खाद्य पदार्थों में मौजूदगी उत्पाद गुणवत्ता, सेनेटरी तथा फायटो सेनेटरी उपायों के आधार पर विकासशील देशों से होने वाले आयातों को प्रतिबंधित करने का कुचक्र रचते रहते हैं।

6. संस्थागत साख में वृद्धि

कृषि क्षेत्र के संस्थागत साख प्रवाह को तत्काल बढ़ाया जाये। दुर्भाग्यवश नब्बे के दशक (आर्थिक सुधारों का काल) में कृषि एवं संबद्ध क्रियाओं में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रदत्त साख के परिणाम में अस्सी के दशक में प्रदत्त साख की तुलना में काफी कमी आयी है।

7. एंटी डंम्पिग करोपण

यद्यपि आयात होने वाली वस्तुओं की मात्रा तथा इनका कुल मूल्य, भारत से निर्यात किये जाने वाली कृषि उत्पादों की मात्रा तथा इनके कुल मूल्य से सम्भवत: कम ही रहेगे। फिर भी इन वस्तुओं के भारतीय उत्पादकों के हितों की रक्षा करना आवश्यक हैं इसलिए सरकार को सोच-समझकर इन पर W.T.O. के नियमों द्वारा नियत अधिकतम सीमा के अंतर्गत आयात शुल्क लगाने चाहिए। इसके साथ ही इन पर यदि आवश्यकता हो तो antidumping duties भी लगानी चाहिए।

8. कृषि में विनियोग

'भारतीय कृषि में पूंजी निर्माण' में कहा गया है, पिछले कई वर्षों से भारतीय कृषि में सार्वजनिक निवेश में गिरावट हो रही है। सार्वभौमिकरण और विश्व व्यापार के उदारीकरण के लिए उभरते माहौल में इस प्रवृत्ति को रोकना आवश्यक है।

9. कृषि विपणन में सुधार

कृषि विपणन में सुधारों को आगे बढ़ाना होगा। इसके लिए कृषि उत्पाद विपणन विनियम अधिनियम को संशोधित करके उत्पादों के स्वतंत्र आवागमन को सुगम बनाया जाये। साथ ही निजी एवं सहकारी क्षेत्रों को आधुनिक सुविधाओं से युक्त बाजारों की स्थापना किये जाने को बढ़ावा दिया जाये।

10. कृषि वस्तुओं का पेटेंट

बौद्धिक संपदा का अधिकार संबंधी समझौते की शर्तों को पूरा करने के लिए भारतीय संसद ने अगस्त, 2001 में पौधों की किस्मों के संरक्षण तथा किसानों के अधिकार सुरक्षा के लिए कानून पारित किया। इसे Protection of Plant varieties and farmer's Rights Legislation का नाम दिया गया। परंतु केवल स्वामित्व अधिकारों संबंधी कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, कृषि संसाधनों के संरक्षण के लिए भी कानून आवश्यक है। भारत में काफी बड़ी मात्रा में आनुवंशिक (Genetic) संसाधन हैं और यदि ये मुफ्त में उपलब्ध होंगे तो विकसित देशों के निगम इन पर कब्जा करके पेटेंट उत्पाद बनाने का प्रयास करेंगे।

11. अन्य सुझाव:

(i) जिस प्रकार से विकसित देशों-अमेरिका, कनाडा, इग्लैंण्ड एवं दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में आर्गेनिक सब्जियों तथा फलों (Organic Vegetables and fruits) के उत्पाद की मांग 50-75 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। अतः भारत में यदि निष्ठा से कार्बनिक खेती (Organic Farming) करके उत्पाद पैदा किए जाये तो निर्यात के अवसर काफी बढ़ सकते हैं।

(ii) भारत सरकार को अपने कृषि उत्पादों पर राज्य सहायता राशि बढ़ाने पर विचार करना चाहिए। जो वर्तमान सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product [GDP]) का मात्र 2.33 प्रतिशत है। समझौते के अनुसार इसे 10 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

(iii) आयात होने वाले कृषि उत्पादों पर प्रोटैक्टिव तटीय शुल्क लगाने होंगे। 1 अप्रैल, 2001 से जिन 1429 उत्पादों से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाया गया है उनमें से 863 उत्पादों पर भारत जितना चाहे उतना तटीय शुल्क (Coastal Tax) लगा सकता है। इन उत्पादों में से 200 से अधिक उत्पाद कृषि से संबंधित हैं।

हॉगकांग सम्मेलन में कृषि संबंधी प्रावधान (Provisions regarding agriculture in Hongkong Conference)

वस्तुतः कृषि उत्पादों पर निर्यात सहायकी को समाप्त करने के संबंध में दोहा घोषणा पत्र में ही उल्लेख किया गया था, इसी आधार पर हांगकांग सम्मेलन में यूरोपीय संघ पर निर्यात सहायकी को कम करने के लिए दबाव दिए गए थे, जिसके लिए वर्ष 2013 तक की अवधि निर्धारित की गई है। उल्लेखनीय है, कि इसे प्रभावी बनाने के लिए 2006 के उपरान्त होने वाली वार्ताओं को आधार बनाया गया है। जहां तक कृषि प्रशुल्कों का प्रश्न है, 4 बैण्ड वाली एक प्रणाली का प्रावधान है। जिस पर अधिकतम प्रशुल्क आरोपित करने वाले दशों को अधिकतम दर से कमी करने का निर्देश दिया गया है।

भारत द्वारा वर्ष 2001 से कृषि उत्पादों पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध समाप्त कर व्यापार को नियमित करने वाली प्रशुल्क प्रणाली अपनाई गई है। इस कारण अन्य विकासशील राष्ट्रों की तुलना में भारत में प्रशुल्क दरें अपेक्षाकृत अधिक हैं। इस आधार पर नई बैण्ड प्रणाली के तहत भारत के लिए भी लगभग 35% की दर से प्रशुल्क में कमी करना अनिवार्य हो गया है।

WTO के मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों में कृषि से संबंधित विषयों पर भारत के विचारों को निम्नांकित रूप में अभिव्यक्ति किया जा सकता है-

1. कृषि व्यापार को कुप्रभावित करने वाली सहायकी को कम करने का समर्थन तथा विकसित राष्ट्रों की संरक्षणवादी नीति का विरोध।
2. निम्न आय, संसाधन की अपर्याप्तता तथा निर्वाह कृषि करने वाले समुदाय की रक्षा के लिए विकासशील राष्ट्रों द्वारा उपयुक्त प्रशुल्क संरचना के निर्धारण का समर्थन ताकि कृषि समझौते के अनुरूप बाजार तक उनकी पंहुच बढ़ाई जा सके।
3. कृषि उत्पादों के मूल्य में होने वाले उतार चढ़ाव से विकासशील राष्ट्रों की रक्षा के लिए एक Special safeguard mechanism (SSM) का प्रावधान जिसके तहत अधिग्रहण मूल्यों तथा घरेलू समर्थन के अन्य प्रावधानों को प्राथमिकता देकर उत्पादों के मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

Download from www.studymasteroffical.com

कृषि क्षेत्र में चुनौतियां और संभावनाएं (Challenges and Prospects in Agro Sector)

कृषि क्षेत्र कई मंचों पर चुनौतियों का समाना कर रहा है। आर्पूति के सन्दर्भ में, अधिकांश फसलो की उपज में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं दिखाई दिया और कुछ मामलों में उपज घटी है। निवल बुनाई क्षेत्र में वृद्धि की गुंजाइश सीमित है और खेतों का आकार सिकुड़ता जा रहा है। गन्ने जैसी कतिपय फसलों के मामले में, पिछले वर्षों में प्रति एकड़ और उत्पादन में भारी मात्रा में घट-बढ़ चिन्ता का विषय है। दूसरी ओर, दालो के के मामले में, उत्पादन आवश्यकता के अनुरूप नहीं हुआ जिसके फलस्वरूप मूल्यों में बढ़ोतरी हुई। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी उपलब्धता सीमित है।

इसलिए उत्पादकता में सुधार करने के लिए स्पष्ट तौर पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है, इसके साथ ही सम्बद्ध गतिविधियों और गैर-कृषि गतिविधियों को बढ़ाने की आवश्यकता है जो मूल्य वर्धन में सुधार करने में सहायक हो सकती हैं। ग्रामीण आधारभूत संरचना विशेष रूप से ग्रामीण सड़कों के विकास पर मौजूदा फोकस को बनाए रखने की आवश्यकता है। चूंकि इससे अन्ततः कनेक्टिविटी में सुधार होगा और जो कृषि उत्पादों की आवश्यकता हेतु आवश्यक है। सिंचाई क्षेत्र में निवेश तथा आधुनिक प्रबन्धन दोनों की संदर्भ में नए सिरे से ध्यान देने की जरूरत है। लघु सिंचाई-प्रणालियों और जल संभरण के विकास की पर्याप्त सम्भावना है और इसे प्राप्त करते हेतु सहयोगीपूर्ण दृष्टिकोण का उपयोग करने की जरूरत है।

उपर्युक्त विपणन समर्थन के जरिए उत्पादक मूल्यों तथा उपभोक्ता मूल्यों के बीच के अन्तर को कम करने की जरूरत है। आधुनिक प्रौद्योगिकी से संचालित विपणन आधारभूत संरचना और भण्डारण भंडार तथा कोल्ड चेन के विकास से इस आवश्यकता के समाधान में सहायता मिलेगी। वत्तीय समावेशन समिति की रिपोर्ट (जनवरी 2008) के अनुसार, 73 प्रतिशत से अधिक किसान परिवारों की ऋण के औपचारिक-स्रोतों तक पहुंच नहीं है। अभिनव सांस्थानिक तंत्र समय की मांग है जो विशेष रूप से कृषि क्षेत्र की उसकी जोखिम धारक क्षमता को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है तथा ऋण और वित्तीय उत्पाद (बीमा उत्पाद सहित) की व्यवस्था करता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अन्तर्सम्बन्धित आर्थिक गतिविधियों को निरन्तर बनाए रखने की आवश्यकता हैं। कृषि आवश्यकताओं को व्यवहार्य कृषितर तथा गैर कृषितर आवश्यकताओं की गतिविधियों में सामंजस्य बैठाना चाहिए। किसानों को कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण, बागवानी, मत्स्यपालन, कुक्कुट, गैर कृषि ग्रामीण उद्यमों का विकास जैसे मूल्य वर्धन कार्यों को हाथ में लेने की सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता है। एक और क्षेत्र जिस पर ध्यान देने की जरूरत है, वह पर्यावरण चिन्ताओं पर यथोचित ध्यान देते हुए कृषि के टिकाऊपन के मुद्दे से जुड़ा है भूक्षरण, जल अवरुद्धता, भूजल तल में कमी तथा भूतल सिंचाई में गिरावट, ये ऐसी समस्याएं हैं जिनका सामना कृषि कर रही है। इस क्षेत्र के विकास की रणनीति में भारतीय कृषि में जलवायु परिवर्तन के परिणामों को भी ध्यान में रखने की जरूरत है।

समग्र रूप में, जहां कृषि के समक्ष मौजूदा चुनौतियां विशाल हैं, वहीं नए निवेश, नई प्रौद्योगिकियों के उपयोग की भी सम्भावनाएं हैं जो समाज के लिए अपनी उपयोगिता सूचित कर सकती हैं और इससे ग्रामीण क्षेत्र में आय सृजन भी असीमित मात्रा में हो सकता है।

भारत में सहकारिता (Co-operative in India)

'सहकारिता' शब्द 'सह+कारिता' दो शब्दों के योग से बना है। 'सह' शब्द से अर्थ 'मिलकर' व 'कारिता' शब्द का अर्थ 'कार्य' से लगाया जाता है। इस बात को इस प्रकार भी कहते हैं कि किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग देना सहकारिता कहलाता है। भारतीय सहकारी नियोजन समिति (Indian Co-operative Planning Committee) के अनुसार, "सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा के आधार पर अपनी आर्थिक उन्नति के लिए शामिल होता हैं।"

संक्षेप में, "सहकारिता ऐसे व्यक्तियों का ऐच्छिक संगठन है, जो समानता, स्व-सहायता तथा प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के आधार पर सामूहिक हित के लिए कार्य करता है।"

Downloaded From www.studymasterofficial.com

भारत में सहकारिता का विकास

भारत में सहकारिता की विधिवत् शुरूआत यद्यपि सहकारी साख अधिनियम (Co-operative Credit Societies Act), 1904 के पारित होने के बाद ही हुई है, लेकिन इससे पूर्व सहकारिता पर आधारित समितियों की स्थापना पर जोर 1882 में सर विलियम वेडरबर्न ने दिया था और उन्होंने कृषकों को ऋण देने के लिए सहकारी कृषि बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी।

1914 में सरकार ने एक समिति सर एडवर्ड मैक्लागन (Sir Edward Maclagan) की अध्यक्षता में सहकारी आन्दोलन के मूल्यांकन के लिए गठित की। इस समिति ने सुझाव दिये कि सहकारी समितियों का विकास धीरे-धीरे और सुदृढ़ आधार पर होना चाहिए।

रिजर्व बैंक ने अपनी स्थापना से 1935 में ही इसमें सक्रिय योगदान देकर इसको प्रोत्साहित किया है। सहकारी नियोजन समिति जो आर. जी. सरैया की अध्यक्षता में 1945 में बनायी गयी थी, ने सुझाव दिया था कि बहुउद्देशीय सहकारी समितियाँ बनायी जायें।

भारत में नियोजन 1951-52 में प्रारम्भ किया गया है तभी से सरकार का ध्यान सहकारिता की ओर विशेष रूप से गया है। इस काल में अखिल भारतीय सर्वे समिति का गठन हुआ है। इस योजना के अन्त में समितियों की संख्या बढ़कर 2.4 लाख, सदस्यता 176 लाख, अंश पूंजी 77 करोड़ रुपए व कार्यशील पूंजी 469 करोड़ रुपए हो गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता के विकास पर पर्याप्त जोर दिया गया है।

भारत में सहकारिता की सफलताएँ

(1) सहकारी समितियों की संख्या में वृद्धि- पिछले 55 वर्षों से सहकारी समितियों की संख्या में बराबर वृद्धि होती रही है जो इस बात का प्रमाण है कि सहकारिता का विकास सफलता से हुआ है। (2) विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों की स्थापना (3) समितियों की क्रियाओं में वृद्धि- सहकारी समितियों की क्रियाओं व कार्यकलापों में बराबर वृद्धि हो रही है। (4) साहूकारों व व्यापारियों के चंगुल से बचाव (5) कृषि उत्पादन में वृद्धि (6) विपणन लागत में कमी (7) उपभोक्ता को अच्छी किस्म की वस्तुओं की पूर्ति (8) सहकारी भावना का विकास।

सहकारी कृषि के विपक्ष में तर्क-

- आलोचकों का तर्क है कि सहकारी कृषि में बड़े-बड़े भूखण्डों पर तकनीकी ढंग से कृषि की जाती है जिससे पशुधन की उपेक्षा होने के साथ-साथ प्रति हेक्टेअर अपेक्षाकृत कम श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है, फलतः बेरोजगारी को बढ़ावा मिलता है।
- चूंकि सब एक साथ मिलकर काम करते हैं और सब को समान पारिश्रमिक प्राप्त होता है, अतः कुशल व अकुशल श्रमिकों के पारिश्रमिक में भेद नहीं किया जाता फलतः व्यक्तिगत उत्साह में कमी आती है।
- भारतीय कृषक को अपनी भूमि प्राणों की भांति प्रिय है जिसे छोड़ने हेतु सामान्य परिस्थितियों में तैयार नहीं।
- कुशल प्रबन्ध का अभाव।
- वित्त का अभाव।
- सहकारिता की भावना का अभाव।

भारत में सहकारी कृषि की धीमी प्रगति के कारण-

अनेक समीतियाँ 'अनुपस्थित भू स्वामियों' द्वारा भूमि सुधार नियमों के परिणामों से बचने के लिए बनायी गयी थीं, इसलिये वे सहकारिता के सिद्धान्तों का पालन नहीं कर सकीं।

- बड़ी समीतियों में भूमिपतियों व महाजनों का आधिक्य हो गया।
- अधिकांश सहकारी कृषि समीतियों की स्थापना घटिया भूमि से हुई है।
- प्राय: प्रारम्भ में तो कृषक अपनी भूमि को सहकारी कृषि समीति को दे देते हैं लेकिन जब विभिन्न विकास कार्यक्रमों से भूमि अच्छी हो जाती है तो वे उस समीति से त्यागपत्र देकर अपने हिस्से की भूमि वापस ले लेते हैं।

www.studymasterofficial.com

- सहकारी कृषि समीतियों के अन्य समीतियों जैसे- साख समीतियों, सिंचाई समीतियों आदि से समन्वय में कमी देखने में आती है।
- राज्य सरकारों की उदासीनता।
- जनसंख्या सहयोग का अभाव।

सहकारिता क्षेत्र को सुदृढ़ करने के लिए सरकारी प्रयास

आजकल लगभग प्रत्येक राज्य में अनार्थिक सहकारी समितियों को या तो समाप्त किया जा रहा है या उनको अच्छी इकाइयों के साथ मिलाया जा रहा है और इस प्रकार सहकारी संरचना का पुर्नसशक्तिकरण किया जा रहा है। इन पुनर्गठित समितियों में वैतनिक सचिवों व अधिकारियों की नियुक्ति की जा रही है। इस पुर्नसशक्तिकरण के संबंध में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आदि राज्य काफी प्रयत्नशील हैं।

1. **सहकारिता प्रशिक्षण विश्वविद्यालय की स्थापना:-** पूना स्थित बैकुण्ठलाल मेहता राष्ट्रीय सहकारिता संस्थान को विश्वविद्यालय में परिवर्तित कर दिया गया है जिससे देश के सभी प्रशिक्षण केन्द्र संबंधित कर दिये जायेंगे। यह देश का पहला विश्वविद्यालय है जो सहकारिता की डिग्री प्रदान करता है।
2. **प्रशिक्षण कार्यक्रम:-** कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बाद में इन प्रशिक्षितों को सहकारिता सेवा में नियुक्त कर दिया जाता है।
3. **बहुराज्य सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1984:-** यह अधिनियम 16 सितम्बर, 1985 से लागू किया है जिसका उद्देश्य सभी राष्ट्रीय स्तर की सहकारी संस्थाओं को एक नियम के अन्तर्गत लाना है। अभी तक यह संस्थाएँ अपने-अपने राज्यों के नियमों के अन्तर्गत कार्य करती थीं जिससे उन पर उचित व समान नियंत्रण नहीं रह पाता था।

Downloaded from www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

8. औद्योगिक क्षेत्र
(Industrial Sector)

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector in India)

सार्वजनिक क्षेत्र से अभिप्राय ऐसी संस्था से है, जिसका स्वामित्व प्रबन्ध एवं नियन्त्रण केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय सरकार या किसी सार्वजनिक संस्था द्वारा किया जाता है। भारत के सर्वांगीण विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है :

- **आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना-** एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र संरचनात्मक भूमिका निभाता है।
- **आधारभूत सेवाएं प्रदान करना-** सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करके सरकार अर्थव्यवस्था में आधारभूत सेवाओं; जैसे परिवहन, यातायात, विद्युत, बैंकिंग संचार आदि सेवाएं उपलब्ध कराती है। यह सेवाएं जन-साधारण के आर्थिक कल्याण में सहयोग देने के साथ-साथ औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करती हैं।
- **एकाधिकार एवं केन्द्रीकरण पर नियन्त्रण-** सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करके सरकार निजी क्षेत्र की एकाधिकारी एवं आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करती है।
- **धन का पुनर्वितरण-** सार्वजनिक क्षेत्र सरकार द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित होने के कारण जनहित एवं राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं, जिसके कारण समाज में आय के समान वितरण का मार्ग खुलता है।
- **सामाजवादी की स्थापना-** सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अर्थव्यवस्था में आधारभूत एवं सामाजिक महत्व की सेवाओं एवं आवश्यक उद्योगों को विकसित किया जाता है।
- **आर्थिक विकास के लिए वित्त के स्रोत-** सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय स्रोत प्रदान करते हैं।
- **वित्तीय साधनों का अनुकूलतम एवं उद्देश्यपूर्ण आबंटन-** अर्थव्यवस्यथा में नियोजन की प्राथमिकताओं के आधार पर संसाधनों को सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों में आबंटित किया जाता है, जिसके कारण जहां एक और आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर संसाधनों पर अपव्यय की सम्भावनाएं क्षीण हो जाती हैं।
- **सामाजिक न्याय-** समाजवाद की दिशा में जनसाधारण के हित को संरक्षण प्रदान करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास एवं विस्तार महत्वपूर्ण है, ताकि जनसाधारण के अतिरिक्त रोजगार एवं आय के स्रोत उपलब्ध हो सकें और समाज में व्यक्तियों का रहन-सहन उन्नत हो सके।
- **निर्यात प्रोत्साहन में योगदान-** अनेक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने भारत के निर्यातों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसे भारतीय सार्वजनिक उपक्रमों में कुछ प्रमुख हैं- भारत इलेक्ट्रानिक लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन खनिज एवं धातु व्यापार निगम आदि।

Download From
www.studymasterofficial.com

सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम, सरकारी उपक्रम, लोक उपक्रम व सार्वजनिक क्षेत्र शब्दों का प्रयोग पयार्यवाची शब्दों के रूप में किया जाता है। अतः इन शब्दों को हम एक ही अर्थ में ग्रहण करेंगे।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व (Importance of Public Sector in India)

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

1. आर्थिक ढांचे के निर्माण
2. आधारभूत ढांचे के निर्माण
4. उचित मूल्य
4. उच्च तकनीक पर आधारित उद्योगों का विकास
5. आर्थिक विकास के लिए वित्त के स्त्रोत
6. प्राकृतिक साधनों का सदुप्रयोग
7. अधिकतम उत्पादन
8. विदेशी सहायता का समुचित उपयोग
9. व्यापार संतुलन में सहायता

सामाजिक महत्त्व (Social Importnace)

1. सामाजवादी समाज की स्थापना
2. आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण पर नियंत्रण
3. लाभों का सोर्वजनिक हित में प्रयोग
4. श्रमिकों को लाभ
5. उपभोक्ताओं का लाभ
6. रोजगार में वृद्धि
7. शहरीकरण व सामाजिक परिवर्तन

सामान्य महत्त्व (General Importance)

1. उन्नति हेतु अनुसन्धान कार्य
2. उचित कीमत पर वस्तुएं
3. भविष्य के लिए देश की आर्थिक व्यवस्था में ढांचे का निर्धारण।

भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में निष्पादनता या उपलब्धियां (Performance of Achievement of Public Sector in India)

1. राष्ट्रीय आय में अंशदान
2. रोजगार में वृद्धि
3. पूंजी-निर्माण में अंशदान
4. निर्यात में योगदान
5. संसाधनों का आवंटन

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY®

6. बीमार इकाइयों का स्वामित्व
7. लघु एवं सहायक उद्योगों का विकास
8. अविकसित क्षेत्रों का विकास
9. तकनीक के आधार का विस्तार
10. बीमार मिलों का पुनर्वास
11. आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने में सहयोग

भारत में नवरत्न का दर्जा प्राप्त सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ (Nav Ratna Companies in India)

निजी कम्पनी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने हेतु सरकार ने नवरत्न, मिनी रत्न और अन्य लाभ कमाने वाले केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों (CPSEs) को बढ़े हुए वित्तीय और प्रचलनात्मक अधिकार प्रत्यायोजित किए हैं। जुलाई 1997 में सरकार ने 9 केन्द्रीय उपक्रमों को नवरत्न के रूप में चिह्नित किया था। इसके बाद इनकी संख्या में वृद्धि होती गई। इन नवरत्न कम्पनियों के नाम निम्नलिखित हैं-

- भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि. (BHEL)
- नेशनल एल्यूमिनियम कम्पनी (NALCO)
- भारत इलेक्ट्रानिक्स लि. (BAL)
- हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लि. (HPCL)
- भारतीय नौवहन निगम (SCI)
- पॉवर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लि. (PGCIL)
- महानगर टेलीफोन निगम लि. (MTNL)
- भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लि. (BPCL)
- ग्रामीण विद्युतीकरण निगम लि. (REC)
- राष्ट्रीय ताप विद्युत् निगम (NTPC)
- भारतीय तेल निगम (IOC)
- पॉवर फाइनेंस कॉर्पोरेशन (PFC)
- भारतीय गैस प्राधिकरण लि. (GAIL)
- तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम (ONGC)
- कोल इंडिया लि. (CIL)
- हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लि. (HAL)
- भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि. (SAIL)
- राष्ट्रीय इस्पात इंडिया लि. (RINL)
- राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (NMDC)
- ऑयल इंडिया लि॰ (OIL)

इनमें से NTPC, ONGC, SAIL एवं IOC को वर्ष 2010 में एवं कोल इंडिया को मार्च 2011 में महारत्न का दर्जा दे दिया गया। उल्लेखनीय है कि नवरत्न का दर्जा प्राप्त हो जाने से इन कम्पनियों को ज्यादा प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता मिलती है। यह कम्पनियाँ सरकार

DISCOVERY
Download From www.studymasterofficial.com

की अनुमति के बगैर देश या विदेश में संयुक्त उद्यम लगा सकती है और उनमे अपनी नेटवर्थ के 15 प्रतिशत तक निवेश कर सकती है। इतना ही नहीं इन कम्पनियों के निदेशक बोर्ड को अधिग्रहण और विलय सम्बन्धी निर्णय लेने का अधिकार होता है।

मिनी रत्न का दर्जा प्राप्त सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (Mini Ratan Enterprises)

हाल ही में केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के आठ उद्यमों नामत: भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, ब्राडकास्ट इंजीनियरिंग कंसल्टेंट्स आलॅ इण्डिया लि. कोचीन शिपयार्ड लि., हिन्दुस्तान कॉपर लि., इंडियन रेलवे केटरिंग और पर्यटन निगम लि., मिश्र धातु निगम लि, नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पॉवर, उद्यमों की संख्या बढ़कर 55 हो गई है। राष्ट्रीय इस्पात निगम लि. को अभी तक निजीकरण का दर्जा प्राप्त था जिसे मार्च 2010 में नवरत्न का दर्जा प्रदान करने की स्वीकृति दी गई

नवरत्न व मिनी रत्न कम्पनियों को म्यूचुअल फण्डों में निवेश की अनुमति

वैश्विक मंदी के प्रभावस्वरूप शिथिल हो रहे शेयर बाजार और म्यूचुअल फण्डों में जान फूंकने के लिए सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की नवरत्न और मिनी रत्न कम्पनियों को अपने अतिरिक्त नकद शेष का 30% म्यूचुअल फण्ड में निवेश करने की मंजूरी प्रदान की है। सार्वजनिक क्षेत्र के म्यूचुअल फण्डों के माध्यम से ही इन कम्पनियों को निवेश की अनुमति होगी इस आशय का फैसला आर्थिक मामलों की मंत्रिमण्डलीय समिति (CCEA) ने 26 दिसम्बर, 2008 को किया नवरत्न व मिनी नवरत्न कम्पनियों को ऐसे निवेश की अनुमति पहले भी अगस्त 2007 में प्रदान की गई थी, किन्तु यह केवल एक वर्ष के लिए ही थी जिसकी समय सीमा 1 अगस्त, 2008 को समाप्त हो गई थी।

महारत्न (Maha–Ratna)

'मिनी नवरत्न' व 'नवरत्न' के अब सार्वजनिक क्षेत्र की विशाल एवं सक्षम कम्पनियों को महारत्न का दर्जा प्रदान करने का फैसला सरकार ने दिसम्बर 2009 में किया है। महारत्न का दर्जा मिलने से इन कम्पनियों को और भी अधिक स्वायत्तता प्राप्त होगी। इन कम्पनियों के कामकाज में सरकार का हस्तक्षेप नगण्य होगा, महारत्न कम्पनियाँ देश-विदेश में संयुक्त उपक्रम गठित करने तथा विलय एवं अधिग्रहण सम्बन्धी निर्णय करने के लिए कम्पनियाँ काफी हद तक स्वतन्त्र होंगी। अपनी कुल नेटवर्थ के 15 प्रतिशत तक की छूट है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC), भारतीय इस्पात प्राधिकरण (SAIL) तथा राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम (NTPC) एवं IOC जो महारत्न के दर्जे के लिए सभी मानकों को पूरा कर रही हैं। इन्हें महारत्न का दर्जा मिल जाने से देश मे नवरत्न कम्पनियों की संख्या 16 रह गई है।

यह दर्जा उन्हीं सरकारी कम्पनियों को मिलेगा जिन्होंने पिछले तीन वर्षो मे औसतन 5 हजार करोड़ रूपए का शुद्ध मुनाफा कमाया हो साथ ही इनका तीन वर्षो में इनका औसत सालाना टर्नओवर 25 हजार करोड़ रूपए का हो तथा इस अवधि में इन कम्पनियो का नेटवर्थ भी औसतन 15 हजार करोड़ रूपए रहा हो।

प्रवीर सेन गुप्ता समिति (Pravir sen Gupta Committe)

आने वाले वर्षो में निजी क्षेत्र की स्वदेशी कम्पनियों से बड़े पैमाने पर रक्षा खरीदरी की सम्भावना को देखते हुए निजी क्षेत्र की कुछ कम्पनियों को रक्षा उद्योग रत्न (RUR) कम्पनियों का दर्जा प्रदान करने की संस्तुति प्रबीर सेनगुप्ता की रिपोर्ट में की गई है समिति की यह रिपोर्ट रक्षा मंत्री को 6 जून, 2007 को सौंपी गई थी संस्तुत कम्पनियों में निजी क्षेत्र की लगभग एक दर्जन कम्पनियों के नाम हैं, इनमें टाटा, लार्सन एण्ड टुब्रो और महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा जैसी कम्पनियाँ शामिल है।

महारत्न के दर्जे हेतु आवश्य

- कम्पनी शेयर बाजार मे सूचीबद्ध हो
- पिछले तीन वर्षो में कम्पनी का औसत कारोबार 25000 करोड़ रूपए रहा हो
- इस दौरान कम्पनी ने 5000 करोड़ रूपए का औसत शुद्ध अर्जित किया हो
- इन तीन वर्षो में कम्पनी का निवल मूल्य (नेट वर्थ) औसतन 15000 करोड़ रूपए रहा हो
- कम्पनी का विदेश में भी कारोबार हो

निजीकरण (Privatization)

निजीकरण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

www.studymasterofficial.com Downloaded From

1. **एक प्रक्रिया** (A Process) :- निजीकरण वह सामान्य प्रक्रिया है जिसमें न केवल आर्थिक क्रियाओं को सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र में हस्तांतरित करना ही शामिल होता है। बल्कि सभी आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी प्रभुत्व को कम करके निजी क्षेत्र को बढ़ावा देना है। इस प्रकार यह अवधारणा अत्यंत व्यापक है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र में सरकारी प्रभुत्व को घटाकर, निजी क्षेत्र को विस्तृत किया जाता है।

2. **विस्तृत क्षेत्र** (Wider Scope) :- निजीकरण की अवधारणा अत्यंत विस्तृत है, क्योंकि इसमें विराष्ट्रीयकरण (Decontrol) व आर्थिक उदारीकरण (Economic Liberalisation) अनेक गतिविधियां सम्मिलित हैं।

3. **आर्थिक प्रजातंत्र** (Economic Democracy) :- यह अवधारणा आर्थिक प्रजातंत्र स्थापित करने का साधन है। इसके द्वारा लोगों को आर्थिक क्षेत्रों में अधिक स्वंतत्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर दिया जाता है।

4. **सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का उपकरण** (Instrument of Social-Economic Change) :- निजीकरण देश के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया का एक प्रमुख उपकरण है।

निजीकरण के उद्देश्य (Objectives of Privatization)

विकसित तथा विकासशील दोनों ही प्रकार के दशों में निजीकरण को महत्व दिया जा रहा है। निजीकरण की विचारधारा के पक्ष में अग्रलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है:

1. अर्थव्यवस्था की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के वास्ते आवश्यक वित्तीय संसाधनों को जुटाना:
2. प्रबंधकीय योग्यता और दक्षता प्रदान करना।
3. राष्ट्रीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुरूप निजी क्षेत्र की उत्पादन क्रियाओं को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ समन्वित करना।
4. नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना तथा योजनाओं में आरंभ की गयी आयात प्रतिस्थापना क्रिया को बल प्रदान करना।
5. उपर्युक्त तकनीक के प्रसार, अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा उद्योगों के विवेकीकरण के वास्ते औद्योगिक शोध व विकास कार्यक्रम तेज करना और उनका विस्तार करना:
6. बाह्य ऋणों को घटाना:
7. प्रतियोगिता में वृद्धि करना:
8. उत्पादकता में वृद्धि करना तथा परिचालन क्षमता को बढ़ाना।

निजीकरण के उपाय (Methods of Privatization)

सार्वजनिक क्षेत्र के निजीकरण हेतु प्रायः तीन प्रकार के उपाय अपनाये जाते हैं:

A. **स्वामित्व संबंधी उपाय** (Proprietorship related method)

इन उपायों के अंतर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के स्वामित्व का हस्तांतरण, पूर्णतया या आंशिक रूप मे करके निजीकरण की प्रक्रिया पूरी की जाती है। जितने अधिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व हस्तांरण किसी व्यक्ति, उद्यम या निगम क्षेत्र को किया जाता है उतनी ही अधिक मात्रा में निजीकरण होगा। स्वामित्व हस्तांतरण संबंधी उपाय के निम्नलिखित रूप हो सकते है:

1. **पूर्ण अराष्ट्रीयकरण** :- इसका अभिप्राय किसी सार्वजनिक उद्यम के स्वामित्व का निजी क्षेत्र को शत-प्रतिशत हस्तांतरण से है।

2. **साझा उद्यम** : साझा उपक्रम से अभिप्राय निजी स्वामित्व को आशिंक रूप में करना है। निजीकरण की अभिसीमा 25 से 50 प्रतिशत या इससे भी अधिक हो सकती है। इस उद्यम का स्वरूप और राजकीय नीति पर निर्भर करता है।

3. **परिसमापन** (Liquidation):- इसका अभिप्राय किसी व्यक्ति के हाथ सरकारी संपत्ति की बिक्री से है। जो व्यक्ति इसे खरीदता है। वह इसे पूर्व कार्य में लगा सकता है या किसी वस्तु के उत्पादन में।

4. **प्रबंधकों द्वारा खरीद** (Management Buyout):- यह विराष्ट्रीयकरण का विशेष रूप है इसका अर्थ है कंपनी की संपत्ति को

DISCOVERY
Download From www.studymasterofficial.com

कर्मचारियों के हाथ बेच देना। इस काम के लिए बैंक से ऋण की व्यवस्था भी की जाती है। कर्मचारियों के स्वामी हो जाने के कारण उन्हें वेतन के साथ-साथ लाभांश में भी हिस्सा मिलता है।

B. **संगठनात्मक उपाय** (Organizational Measures)

राजकीय नियंत्रण को सीमा के अंदर रखने के लिए निम्न संगठनात्मक उपाय किये जा सकते है।

1. **नियंत्रक कंपनी** (Holding Company):- इसके अंतर्गत इस प्रकार ढांचे का विकास किया जाता है कि सरकार अपना नियंत्रण हस्तक्षेप उच्च स्तर के निर्णयों तक सीमित कर देती है। और इस ढांचे में कार्य कर रही कंपनियों को बाजार शक्तियों की परिसीमा में निर्णय करने में पर्याप्त मात्रा में स्वायत्तता दे देती है। भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्ज लि. नियंत्रक कंपनी का रूप धारण कर सकती हैं और अपने बहुत से कार्यो को घटा सकती है।
2. **पुनर्गठन** : सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बाजार अनुशासन के अंतर्गत लाने के लिए यह आवश्यक है कि इन उपक्रमों को पुनर्गठन किया जाये। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का पुनर्गठन दो प्रकार से किया जा सकता है : (क) वित्तीय पुनर्गठन इस प्रकार किया जा सकता है कि संग्रहीत हानि (Accumulated Losses) को समाप्त कर दिया जाये और पूंजी-संरचना को ऋण-इक्विटी अनुपात (Debt-equity Ratio) के साथ युक्तियुक्त बनाया जाये। (ख) बुनियादी पुनर्गठन करने के लिए उन वाणिज्यिक क्रियाओं को पुनः परिभाषित करना होगा जो भविष्य में इस उद्यम द्वारा की जायेंगी। यह कुछ क्रियाओं को छोड़ भी सकता है ताकि वह अनुषंगियों या लघु-स्तर इकाइयों द्वारा कर ली जायें।
3. **पट्टे पर देना** (Leasing) : इसके अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम द्वारा उपक्रम का प्रबंध स्वयं के हाथों में ही सुरक्षित रखते हुए उसका कार्य संचालन किसी निजी बोली लगाने वाले को निश्चित समय के लिए हस्तांतरित कर दिया जाता है। इसके अंतर्गत कोई बोली लगाने वाला एक निश्चित अवधि के लिए उपक्रम का कार्य संचालक बन जाता है।

C. **कार्य संचालन संबंधी उपाय**

इन उपायों को क्रियान्वित करने का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की कुशलता में वृद्धि करना है। यह उसी स्थिति में किया जाना संभव होता है। जब सार्वजनिक उपक्रम का पूर्व में अराष्ट्रीयकरण न कर दिया गया हो। इसके अंतर्गत सम्मिलित होने वाले निर्णय निम्न प्रकार है :

(i) निर्णय संबंधी स्वायत्तता कर्मचारियों के लिए प्रोत्साहन, ताकि उद्यम की कुशलता और उत्पादिता बढ़े, (ii) कुछ आदानों (Inputs) का उद्यम में निर्माण करने की अपेक्षा उन्हें बाजार से क्रय करना या उन्हें ठेका प्रणाली द्वारा प्राप्त करना, (iii) उचित निवेश कसौटियों को विकसित करना, (iv) सार्वजनिक उद्यमों को पूंजी बाजार से राशि गतिमान करने की स्वीकृति देना। इन सभी उपायों का मूल उद्देश्य उद्यम पर सरकारी नियंत्रण कम करना है।

निजीकरण के उपर्युक्त वर्जित उपायों का प्रमुख उद्देश्य यह है कि यदि निजीकरण का अर्थ केवल मात्र स्वामित्व हस्तांतरण से है तो इस पर बल देना आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबंधकीय नियंत्रण निजी स्वामित्व को सौंप दिया जाये ऐसा व्यक्ति के रूप में अथवा सहकारी समिति के रूप में हो।

निजीकरण सांकेतिक रूप में भी हो सकता है जिसके अंतर्गत विनिवेश की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। परंतु इस प्रकार के उपाय से उपक्रम की कार्य संस्कृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। संक्षेप में, सांकेतिक निजीकरण से उपक्रम के निष्पादन (Performance) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

भारत में निजीकरण को प्रोत्साहित करने वाले प्रमुख कारक (Factors Promotion the Privatization in India)

1. नये आर्थिक सुधार कार्यक्रम
2. सरकार पर बढ़ता ऋण भार
3. विदेशी कंपनियों की उपस्थिति

4. भारतीय उद्योगों को प्रतियोगी बनाना
5. उत्पादन बढ़ाने का विस्तृत आधार।

विनिवेश नीति (Disinvestment Policy)

विनिवेशः- सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में किया गया सकारात्मक निजी निवेश विनिवेश है। दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक इकाइयों को सुदृढ़ बनाने तथा उनमें मुनाफा अर्जन की प्रवृति का विकास करने के लिए ऐसे इकाइयों में निजी साझेदारी की जाती है। इसके लिए सरकार के समता अंशों का विक्रय निजी साझेदार के पक्ष में किया जाता है। उल्लेखनीय है, कि 1991 की औद्योगिक नीति में ही सार्वजनिक क्षेत्र के सुदृढ़ीकरण के लिए विशेष प्रयास करने पर जोर दिया गया था। इसी क्रम में सर्वप्रथम 1993 में रंगराजन समिति गठित की गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य विनिवेश नीति का निर्धारण था। समिति ने अधिकांश क्षेत्रों में 51% तक विनिवेश की स्वीकृति दी थी। इसके उपरान्त 1996 में भारत के पहले विनिवेश आयोग का गठन किया गया जिसका उद्देश्य सरकार की प्राप्तियों में वृद्धि तथा कर्मचारियों के हितों की रक्षा के साथ-साथ सार्वजनिक इकाईयों को सुदृढ़ बनाना था।

आयोग की अनुशंसाओं पर 10 दिसम्बर, 1999 को एक सरकारी आदेश पर विनिवेश विभाग की स्थापना की गई, जिसे 6 सितम्बर, 2001 को विनिवेश मंत्रालय में परिणत कर दिया गया था। लेकिन 27 मई, 2004 से पुनः इस मंत्रालय को वित्त मंत्रालय के अधीन विनिवेश विभाग के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

यह विभाग निम्नांकित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करता है-

1. केन्द्र सरकार के सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश से संबंधित सभी विषयों पर विचार।
2. विनिवेश आयोग द्वारा अनुसंशित प्रस्तावों पर निर्णय
3. विनिवेश से संबंधित लिए गए सभी निर्णयों का क्रियान्वयन
4. विनिवेश के लिए नई संभावनाओं की खोज।

वर्तमान सरकार की नीतियों के तहत 31 अक्टूबर, 2004 को विनिवेश आयोग का विघटन कर दिया गया था, इस कारण इसका कार्य वर्तमान में विनिवेश विभाग द्वारा ही किया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेशः- सार्वजनिक क्षेत्र में निरन्तर बढ़ते पूंजी विनियोग एवं घटती लाभदायकता ने इन उपक्रमों के प्रबंध को विगत वर्षों में आलोचना के कटघरे में खड़ा कर दिया और इन उपक्रमों के प्रबन्ध में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने, घाटे में चल रहे बीमार उपक्रमों को बन्द करने की मांग तेजी से बढ़ने लगी। सार्वजनिक उपक्रमों की बढ़ती समस्याओं के कारण सरकार ने अपने आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की श्रृंखला के दौर में सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश (Disinvestment) की नीति अपनाई और सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण (Privatisation) का मार्ग प्रशस्त किया। निजीकरण की इस प्रक्रिया में सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों (Shares) को सरकार द्वारा बेचने का उद्देश्य जहां एक ओर प्रबन्ध में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ाना था वहीं साथ ही साथ अर्थव्यवस्था के सफल संचालन के लिए अतिरिक्त संसाधन भी एकत्रित करना था।

विनिवेश आयोग 23 अगस्त 1996 में श्री जी.वी. रामकृष्ण की अध्यक्षता में सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश की सीमा, रणनीति, तौर-तरीके आदि के संबंध में सुझाव देने हेतु गठित किया गया था। आयोग ने कुल 12 रिपोर्टें प्रस्तुत की। रिपोर्ट में 58 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश की सिफारिश की गई। इस आयोग का वर्तमान में अस्तित्व समाप्त हो चुका है। केन्द्र सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए दिशा-निर्देश निर्धारित करने के लिए 10 दिसम्बर, 1999 को एक पृथक विभाग की स्थापना की थी।

भारत में विनिवेश कार्यक्रम (Disinvestment programme in India)

16 सितम्बर, 2003 को भारत के उच्चतम न्यायालय ने संसद की मंजूरी के बिना सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों एच.पी.सी.एल और

बी.पी.सी.एल. के निजीकरण पर रोक लगा दी। सार्वजनिक क्षेत्र की इन दो कम्पनियों की स्थापना विदेशी कम्पनियों एट्सा तथा बर्माशेल की परिसम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण कर संसद के कानून द्वारा की गई थी। उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू और न्यायमूर्ति जी.पी. माथुर की न्यायपीठ ने केन्द्र सरकार के कानून को नजरंदाज कर इन दो कम्पनियों के विनिवेश की इजाजत देने से मना कर दिया। स्टेट फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिमिटेशन ओर ऑयल सैक्टर अफेयर्स एसोसियेशन की ओर से दायर दो याचिकाएं मंजूर करते हुए न्यायपीठ ने कहा कि सरकार संसद की मंजूरी के बिना सार्वजनिक क्षेत्र की इन दोनों तेल कंपनियों के विनिवेश की प्रक्रिया को आगे नहीं बढ़ा सकती। आयल सैक्टर आफीसर्स एसोसियेशन ने हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड में 34.01 प्रतिशत हिस्सेदारी किसी क्रियात्मक साझेदार को बेचने तथा भारत पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड में 35% हिस्सेदारी की सार्वजनिक पेशकश करने हेतु सरकार के फैसले को न्यायलय में चुनौती दी थी। न्यायालय के इस निर्णय के बाद देश के शेयर बाजारों में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के शेयरों में अचानक भारी गिरावट दर्ज की गई।

अदालत ऑयल सेक्टर से आफीसर्स एसोसियेशन की इस बात से सहमत हो गई कि सरकार को इन दोनों कंपनियों के निजीकरण के बारे में फैसला करने से पहले उचित कानून बनाने के उद्देश्य से संसद के समक्ष जाना चाहिए था। इन दोनों कंपनियों का अधिग्रहण 1974 में संसद के कानून के जरिए किया गया था। इस फैसले का बाल्को के निजीकरण को वैध ठहराने का उच्चतम न्यायालय का निर्णय इस मामले में लागू नहीं होता, क्योंकि बाल्को की स्थापना संसद के किसी कानून से नहीं हुई थी। न्यायालय ने यह भी कहा कि संसद के कानून से स्थापित मारूति कंपनी के विनिवेश को केन्द्र की ओर से नजीर नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसके निजीकरण के तरीके की किसी न्यायालय ने जांच नहीं की। इन दोनों कंपनियों का संसद के कानून के द्वारा राष्ट्रीयकरण किया गया था और सरकार को राष्ट्रीय कानून के निरसन के लिए विधेयक लाना चाहिए था या फिर सरकारी अध्यादेश के जरिए विनिवेश के इजाजत संबंधी आवश्यक संशोध न पेश करना चाहिए था। केन्द्र सरकार के वकील ने कहा कि संविधान के तहत यह बात कम महत्त्व रखती है कि किसी कंपनी का गठन कैसे किया गया, क्योंकि बाल्को, भेल और मारूति जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के बारे में कानून एक जैसा हैं सरकार का कहना था कि बैंकों और कोयला खदानों के राष्ट्रीयकरण संबंधी कानून में स्पष्ट प्रावधान है कि सरकार किसी भी समय अपनी हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से कम नहीं करेगी, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों के मामले में कानून में इस तरह के प्रावधान नहीं है। सरकारी वकील ने बाल्को के निर्णय का हवाला देते हुए कहा कि ये सभी सार्वजनिक कंपनियां एक ही तरह की हैं और इनके लिए कानून भी समान हैं। बदले हुए आर्थिक परिदृश्य में सरकार महसूस करती है कि सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों के निजीकरण से बेहतर जनहित होगा। सरकार की ओर से यह दलील भी दी गई कि विनिवेश के बाद भी एच.पी.सी.एल. 12 प्रतिशत तथा बी.पी.सी.एल. में 26 प्रतिशत हिस्सेदारी अपने पास रखी है। इसके अलावा सरकार कंपनियों के कामकाज की निगरानी के लिए एक नियामक की नियुक्त करने की योजना बना रही है।

विनिवेश नीति पर प्रश्न चिन्ह (Question mark on Disinvestment Policy)

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद सरकार की विनिवेश नीति पर प्रश्न चिन्ह लग गया। एस.टी.सी. तथा शिपिंग कारपोरेशन, हिन्दुस्तान आर्गेनिक्स, नेशनल फर्टिलाइजर्स आदि के निजीकरण की राह भी मुश्किल में पड़ गई। निस्संदेह उच्चतम न्यायालय के निर्णय के दूरगामी परिणाम आये। 14 वीं लोकसभा के चुनावों में विनिवेश एक मुद्दा बना था। विरोधी दल पहले से ही विनिवेश की सरकारी नीति का विरोध कर रहे थे। उनका कहना था कि विपक्ष, में रहते हुए सरकारी, खास कर लाभ कमाने वाली कंपनियों के विनिवेश का विरोध करने वाली भारतीय जनता पार्टी ने सत्ता में आते ही सबसे पहले 250 से अधिक कंपनियों के विनिवेश करने का निर्णय लिया। राजग सरकार ने बाकायदा अलग से विनिवेश मंत्रालय का गठन कर डाला। इस क्रम में बाल्को, मार्डन फूड जैसी कम्पनियों के विनिवेश के बाद नाल्को, मारुति, एच.पी.सी.एल. तथा बी.पी.सी.एल. के विनिवेश प्रकरण को लेकर सरकार को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने सरकार की विनिवेश नीति पर कोई राय नहीं दी है, लेकिन इस फैसले की छाया सरकार के विनिवेश कार्यक्रम पर पड़े बिना नहीं रही। सरकार ने एच.पी.सी.एल. और बी.पी.सी.एल. के निजीकरण पर तत्काल रोक लगा दी। 22 मई, 2004 को सत्ता में आई डॉ. मनमोहन सिंह की सरकार ने विनिवेश मंत्रालय को समाप्त कर दिया तथा यह निर्णय लिया कि लाभ के संस्थान बेचे नहीं जायेगें।

Downloaded From www.studygateofficial.com

विनिवेश क्यों आवश्यक? (Why is Disinvestment necessary?)

विनिवेश का तात्पर्य आर्थिक संस्थानों एवं व्यवस्था में सरकार की भागीदारी कम करना और निजी कंपनियों को प्रोत्साहन देना है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों को व्यक्तियों, संस्थाओं और निजी उपक्रमों को बेचा जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में विनिवेश नीति लागू करने के दो उद्देश्य हैं- पहला, सरकार के शेयरों की बिक्री आम जनता और मजदूरों को करना, जिससे उनकी भागीदारी से इन उद्यमों के प्रबंधन में सुधार आ सके। दूसरा, बहुसंख्यक शेयर सरकार के पास बने रहें। भारत में जुलाई, 1991 से विनिवेश की प्रक्रिया आरंभ की गई। वर्तमान में अधिकांश लोक उपक्रम स्टेट एक्सचेकर पर एक भार बन गए थे और अर्थव्यवस्था में दीमक का काम कर रहे थे। इन उपक्रमों में लगभग 2,30,000 करोड़ रुपये का धन फ्रीज हो गया था तथा आय पूंजी लागतों से नीची थी। लोक उपक्रमों में प्रबंधकीय स्वायत्तता का अभाव था, अत: ये आयात दबावों अन्य निजी, घरेलू और विदेशी फर्मों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का मुकाबला नहीं कर पाते, क्योंकि ये उपक्रम नियमों से दबे हुए थे, जबकि निजी क्षेत्र की फर्मों में ऐसा नहीं होता। इन उपक्रमों को प्रश्रय के स्थान पर खुला छोड़कर आर्थिक सक्षमता के लिए तैयार किया जाना आज एक आवश्यकता बन गई थी। आज ग्राहक प्रधान अर्थव्यवस्था में समय की पाबंदी, बेहतर ग्राहक सेवाएं और गुणवत्ता युक्त समय की मूलभूत आवश्यकताएँ बन गई हैं। कई बार सरकार निर्णय नहीं ले पाती हैं ऐसा नहीं है कि सरकार कंपनियों में निठल्ले लोग बैठे हैं और इसलिए कंपनिया घाटे में जा रही हैं, बल्कि स्थिति इसके विपरीत है। बैंकिंग, बीमा, टेलीकॉम तेल, उड्डयन आदि क्षेत्रों की सरकारी कंपनियाँ के पिछड़ेपन का कारण उनका गैर-पेशेवराना रवैया रहा है। सरकारी कंपनियों को काम कंाज में स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। कांग्रेस पार्टी के शासन में यह प्रक्रिया शुरू हुई। संयुक्त मोर्चा सरकार ने इसे आगे बढ़ाया। उसने एक विनियोग आयोग का गठन भी किया था। उस आयोग ने विनिवेश के लायक कंपनियों की एक लंबी सूची बनाई थी। उस सूची के आधार पर कंपनियों का इस समय विनिवेश किया गया।

विदेशी पूंजी और भारत (India and Foreign Capital)

आर्थिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में विदेशी पूंजी का विशेष महत्त्व होता है इसकी भूमिका विकासशील और अल्प विकसित राष्ट्रों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण और प्रभावी रही है, परन्तु भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूंजी के अन्त: प्रवाह का दूसरा पक्ष उभरकर सामने आया है। इसमें भी अमीर देशों का हित छिपा हुआ है। तथा प्रत्यक्ष रूप से देश की पूंजी का पलायन ही होता है। यह तथ्य विश्व बैंक की नवीनतम ग्लोबल फाइनेंस डेवलपमेंट रिपोर्ट से स्पष्ट जाहिर होता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि गरीब देशों में विदेशी निवेश का स्तर निरंतर घटता जा रहा है।

पूंजी का अन्त:प्रवाह (Inflow of Foreign Capital)

सीधे विदेशी निवेश- विदेशी निवेश तीन रास्तों से आता है- पहला रास्ता सीधे निवेश का है। इस रास्ते से वाले निवेश में गिरावट आई है। 1999 में गरीब देशों में सीधा विदेशी निवेश 179 अरब डॉलर का हुआ था। वर्ष 2002 में यह घटकर 152 अरब डॉलर रह गया था। इस गिरावट का प्रमुख कारण विदेशी निवेशकों को मिलने वाला लाभ लगातार कम होता जा रहा है। वर्ष 1995 में सीधे विदेशी निवेशकों ने 8 प्रतिशत की दर से लाभ कमाया था, जबकि वर्ष 2000 में उन्हें केवल 8 प्रतिशत का ही लाभ हुआ था।

शेयर में निवेश- विदेशी पूंजी के आगमन का दूसरा रास्ता शेयर बाजार में निवेश का है विदेशी पूंजीपति हमारे शेयर बाजार में भारतीय कंपनियों के शेयर खरीद सकते हैं। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार गरीब देशों के शेयर बाजारों में वर्ष 1993 में 50 अरब डॉलर का निवेश हुआ था, जो वर्ष 2002 में मात्र 30 अरब डॉलर रह गया था। इस गिरावट का भी प्रमुख कारण यही है कि विदेशी निवेशकों को आशा के अनुरूप लाभ नहीं मिला। नब्बे के दशक में अमेरिकी सरकारी बांड में 8 प्रतिशत का लाभ मिला, जबकि गरीब देशों के शेयर बाजार में मात्र 6 प्रतिशत ही लाभ मिला। शेयर बाजार में खतरा भी अधिक होता है। कुछ गरीब देशों की मुद्रा का अवमूल्यन हो गया, जिससे विदेशी निवेशकों द्वारा किए गए निवेश का मूल्य घट गया।

विदेशी ऋण- विदेशों से मिलने वाले ऋण मे भी गिरावट आई है। विदेशी ऋण और विदेशी निवेश में मौलिक अन्तर है। निवेश ऋण में रिस्क विदेशी निवेशक का होता है, जबकि ऋण में लेनदार का होता है। यदि हम बैंक ऑफ अमेरिका से एक अरब डॉलर का ऋण लेते हैं तो उसकी अदायगी की पूरी जिम्मेदारी भारत पर होगी। उस रकम के उपयोग से लाभ हो या घाटा, इससे उन बैंकों का कोई सरोकार नहीं होता, परन्तु यदि बैंक भारत के शेयर बाजार में उसी एक अरब डॉलर का निवेश करता है, तो लाभ-हानि उसी की होगी।

www.studymasterofficial.com

इसलिए विदेशी निवेशकों के लिए ऋण देना अधिक सुरक्षित माना जाता है, परन्तु ऋण में भी खतरा रहता है। पिछले दशक में अनेक ऐसे अवसर आए हैं, जब गरीब देश ऋण की अदायगी में असमर्थ रहे। मैक्सिको में 1995 में यह सिलसिला शुरू हुआ था। ऐसी परिस्थिति में ऋण देने वाले बैंक को मजबूरी में समझौता करना पड़ता है। उसे ब्याज दर कम करने अथवा ऋण की अदायगी के लिए समय बढ़ाने को मजबूर होना पड़ता है। विदेशी बैंकों में ऋण देने के प्रति रुचि कम हुई है। वे गरीब देशों को ऋण देने का खतरा मोल नहीं लेना चाहते हैं। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1997 में गरीब देशों को 102 अरब डॉलर के ऋण दिए गए थे। उसी वर्ष पूर्वी एशिया में संकट आया था। उसके बाद दिए जाने वाले ऋण में लगातार गिरावट आ रही है। वर्ष 2002 में मात्र 7 अरब डॉलर के ऋण दिए गए।

पूंजी का पलायन (Drain of Capital)

मुद्रा भण्डार- इस रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि हमें मिलने वाले सीधे विदेशी निवेश, शेयर बाजार में विदेशी निवेश और विदेशी ऋण तीनों में ही कमी आई है। इससे भी गंभीर बात यह है कि जो कुछ पूंजी हमारे पास है, वह विभिन्न मार्गों से देश से बाहर जा रही हैं हमारी पूंजी के पलायन का पहला माध्यम विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि का है। विश्व बैंक के अनुसार इसका दूसरा पक्ष भी है। यह रकम अक्सर अमेरिका के सरकारी बान्ड अथवा दूसरे अमीर देशों के सुरिक्षत बाँडों में लगाई जाती हैं। यह पैसा गरीब देशों से अमीर देशों को भेज दिया जाता हैं। विश्व बैंक के अनुसार वर्ष 2002 में सभी गरीब देशों ने मिलकर 110 अरब डॉलर इस रास्ते से भेजे थे।

अमीर देशों में निवेश और हवाला- हमारी पूंजी के पलायन का दूसरा रास्ता है हमारी कंपनियों द्वारा अमीर देशों मे पूंजी का निवेश करना। पूंजी के पलायन का तीसरा रास्ता हवाला का है। देश के अमीर लोग अपने पैसे को विदेशों में फर्जी रास्तों से भेज देते हैं, जैसे रिश्वत या दलाली का पैसा। विश्व बैंक के अनुसार आखिरी दोनों रास्तों से वर्ष 2002 में 98 अरब डॉलर की पूंजी बाहर गई विश्व बैंक का वर्ष 2002 का गरीब देशों की पूंजी का अंतिम लेखा-जोखा इस प्रकार था:- कुल 159 अरब डॉलर की पूंजी मिली। इसके मुकाबले 110 अरब डॉलर विदेशी मुद्रा भण्डार के लिए भेजे गए और 98 अरब डॉलर हमारी कंपनियों ने अमीर देशों मे निवेश किए अथवा हवाला माध्यम से बाहर गए। इस प्रकार कुल 208 अरब डॉलर की पूंजी बाहर गई इस प्रकार अंतिम गणना में गरीब देशों ने 49 अरब डॉलर की पूंजी अमीर देशों को भेजी।

नई विनिवेश नीति (New Disinvestment Policy)

सरकार द्वारा वर्ष 2004 में नई विनिवेश नीति की घोषणा की गई थी, जिसमें एक ओर लाभ कमाने वाले लोक उपक्रमों में विनिवेश को तार्किक बनाने पर बल दिया गया है, वहीं दूसरी ओर विनिवेश से प्राप्त राशि के अनुकूलतम प्रबंधन का भी उल्लेख है। नई नीति के अनुसार लाभ कमाने वाले उपक्रमों में सरकार का समता अंश 51% होगा तथा कम्पनी के प्रबंधन पर भी सरकार का अधिकार होगा। विनिवेश से प्राप्त राशि के संग्रहण के लिए एक राष्ट्रीय निवेश निधि की स्थापना का प्रावधान है। इसी आधार पर यह निधि अप्रैल, 2005 से कार्य कर रही है। इस निधि को भारत की संचित निधि से बाहर रखा गया है तथा इसके क्रियान्वयन के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय निकायों को उत्तरदायी बनाया गया है।

उल्लेखनीय है, कि निधि की 70% राशि का उपयोग सामाजिक क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के लिए जबकि 30% सार्वजनिक इकाईयों की पूंजी संबंध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाएगा। साथ ही, यह भी प्रावधान है, जिन लोक उपक्रमों की विशुद्ध पूंजी 200 करोड़ रुपए है, उन्हें सूचीबद्ध कर विकास के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

निवेश प्रबंधन के संदर्भ में नई नीति के प्रावधानों के अनुरूप 13 दिसम्बर, 2004 से रतन टाटा की अध्यक्षता में एक निवेश आयोग कार्य कर रहा है। 3 वर्षीय यह आयोग वित्त मंत्रालय के अधीन है, तथा इसका उद्देश्य प्रतिवर्ष भारत में घरेलू तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करना है।

सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण एवं विनिवेश प्रक्रिया का औचित्य:- सार्वजनिक उपक्रमों में बढ़ते पूंजी विनियोग और इन उपक्रमों द्वारा अर्जित अति न्यून लाभदायकता के कारण नब्बे के दशक में सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण एवं उनमें विनिवेश की नीति अपनाये जाने की मांग तेजी से बढ़ी है। वर्तमान आर्थिक सुधारों के इस दौर में यह आवश्यक समझा गया कि सार्वजनिक उपक्रमों में

www.studymasterofficial.com

निजी क्षेत्र की सहभागिता आरम्भ की जाए और सार्वजनिक इकाइयों के शेयरों को निजी क्षेत्र के हाथों बेचा जाए। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ाने का प्रमुख उद्देश्य है- सार्वजनिक उपक्रमों में व्याप्त कमियों एवं असफलताओं को दूर करके उनकी लाभदायकता बढ़ाना। सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण एवं विनिवेश प्रक्रिया को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है-

- निजी क्षेत्र की कुशल प्रबन्धकीय क्षमता का सार्वजनिक उपक्रमों में प्रयोग सम्भव।
- सार्वजनिक उपक्रमों का आधुनिकीकरण करके उत्पादकता और लाभदर में वृद्धि करना सम्भव।
- निजी क्षेत्र की प्रबन्धकीय क्षमता का प्रयोग करके लम्बी परिपक्वता अवधि को घटाना सम्भव।
- सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार इकाइयों का पुनरोद्धार सम्भव।
- सार्वजनिक उपकरणों की अल्प-शोषित एवं अशोषित उत्पादन क्षमता का पूर्ण विदोहन सम्भव।
- सार्वजनिक उपकरणों में बढ़ती लालफीताशाही एवं सरकारी हस्तक्षेप को नियन्त्रित करना सम्भव।
- घाटे में चल रही बीमार सार्वजनिक इकाइयों को बजटरी सहायता में दी जाने वाली वित्तीय सहायता के बोझ से मुक्ति।
- विनिवेश से प्राप्त धन राशि का प्रयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में कर पाना सम्भव।
- आर्थिक सर्वेक्षण 2008-09 ने अनेक कर सुधारों की बात की है, सभी सेस चार्ज को खत्म करने और करों पर सर चार्ज खत्म करने, एवं उर्वरकों की खुली कीमत तय करने की सिफारिश की। सर्वेक्षण एक आक्रामक विनिवेश नीति का भी जिक्र करता है जिसका महत्वाकांक्षी वार्षिक राजस्व प्राप्ति लक्ष्य 25 हजार करोड़ रूपए है और सभी सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों को इस दिशा में सूची बद्ध कर पुरानी रूग्ण इकाइयों को बेचने की सिफारिश किया है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश (Disinvestment in Public Sector Enterprises)

भारत में सार्वजनिक उपक्रमो में विनिवेश की प्रक्रिया 1991 में प्रारम्भ हुई थी। तब से लेकर जुलाई 2007 तक सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश व इनकी रणनीतिक बिक्री (Strategic Sale) से कुल मिलाकर 51608 करोड़ रूपए केन्द्र सरकार को प्राप्त हुए थे। इनमें उपक्रमों की रणनीति बिक्री से प्राप्त राशि 6344.35 करोड़ रूपए रही थी वित्तीय वर्ष 2007-08 में सार्वजनिक क्षेत्र के चार उपक्रमों-मारूति उद्योग लि. पॉवर ग्रिड कॉर्पोरेशन, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम (REC) व राष्ट्रीय जलविद्युत् निगम (NHPC) में विनिवेश (Disinvestment) की केन्द्र सरकार की योजना थी इस विनिवेश (Disinvestment) से सरकार को लगभग 4 हजार करोड़ रूपए वित्तीय वर्ष 2007-08 में प्राप्त हो जाने का अनुमान है पिछले वित्तीय वर्ष 2006-07 में सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश से कोई भी राशि सरकार को प्राप्त नहीं हुई थी, जबकि 2005-06 में इस मद से प्राप्तियाँ 1570 करोड़ रूपए रही थीं।

दिसम्बर 2002 में विनिवेश नीति के निम्नवत् उद्देश्य घोषित किये गए थे-

i. सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का आधुनिकीकरण एवं उन्नयन

ii. नई परिसम्पत्तियों का सृजन

iii. रोजगार सृजन

iv. सरकारी ऋण को समाप्त करना

v. यह सुनिश्चित करना कि विनिवेश से राष्ट्रीय परिसम्पत्तियों का स्वामित्व अन्तरण न होने पाए, क्योंकि विनिवेश की प्रक्रिया से परिसम्पत्तियाँ वहीं रहती हैं जहाँ वह हैं इससे यह भी सुनिश्चित होगा कि विनिवेश से निजी एकाधिकार न हो

vi. विनिवेश आय निधि स्थापित करना

vii. प्राकृतिक परिसम्पत्ति कम्पनियों के विनिवेश के लिए मार्ग-निर्देश तैयार करना

www.studymasterofficial.com Download From DISCOVERY

viii. सरकार द्वारा ऐसी कम्पनियों में जिसमें सरकारी ईक्विटी किसी अनुकूल भागीदार को विनिवेशित कर दी गई है, सरकार की शेषधारिता के धारण, प्रबन्ध और निपटान के लिए एक परिसम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी की स्थापना की सम्भाव्यता एवं कार्यप्रणाली पर एक दस्तावेज तैयार करना।

ix. सरकार के अन्य विशिष्ट निर्णय-

a. भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन (BPCL) में पब्लिक को शेयरों की बिक्री के जरिए विनिवेश करना।

b. स्ट्रेटजिक बिक्रि के द्वारा हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लि. (HPCL) में विनिवेश करना।

c. BPCL और HPCL दोनों मामलों में रियायती मूल्य पर दोनों कम्पनियों के कर्मचारियों को शेयरों का एक विशिष्ट प्रतिशत आंवटित करना

लाभ में चल रही पेट्रोलियम क्षेत्र की दो तेल कम्पनियों-भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लि. (BPCL) व हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लि. (HPCL) के निजीकरण की सरकार की योजना को बड़ा धक्का 16 सितम्बर, 2003 को उस समय लगा जब इनके निजीकरण संसद की अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता, क्योंकि इनका अधिग्रहण संसद द्वारा पारित अधिनियम के तहत् किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से ऐसे सभी उपक्रमों मे विनिवेश प्रभावित होगा जिनका गठन अथवा राष्ट्रीयकरण संसद द्वारा पारित अधिनियमों द्वारा किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय की आपत्ति इन कम्पनियों के निजीकरण पर नहीं, बल्कि इसके लिए अपनाई गई प्रक्रिया पर है न्यायालय के अनुसार ऐसी कम्पनियों के विनिवेश के लिए संसद की पूर्वानुमति आवश्यक है

राष्ट्रीय निवेश कोष (National Investment Fund)

सार्वजनिक उपक्रमों के अनिवेश से प्राप्त होने वाले राजस्व के सुनिश्चित इस्तेमाल के लिए केन्द्रीय सड़क निधि (Central Road fund-CRF) की तर्ज पर 'राष्ट्रीय निवेश निधि' (National Investment fund-NIF) स्थापना की गई है सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश से प्राप्त होने वाली राशि इस कोष में जमा की जाएगी ताकि यह राशि भारत के संचित कोष से बाहर रहेगी, इस राशि के 75% भाग का इस्तेमाल शिक्षा, स्वास्थय जैसे सामाजिक क्षेत्र के विकास के साथ-साथ 25% राशि का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में निवेश के लिए किया जाएगा 'राष्ट्रीय निवेश कोष' के गठन को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने मंजूरी वर्ष 2005 में प्रदान की थी इसकी औपचारिक शुरूआत 6 अक्टूबर, 2007 से उस समय हुई जब पॉवर ग्रिड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लि. (PGCIL) के विनिवेश से प्राप्त 994.82 करोड़ रूपए की राशि इस कोष में जमा की गई इस राशि का प्रबन्धन तीन एसेट मैनेजमेंट कम्पनियों (AMCs) को सौंपा गया है। इनमें यूटीआई एसेट मैनेजमेंट कम्पनी प्रा. लि. एसबीआई फण्डस मैनेजमेंट प्रा. लि. व एलआईसी म्युचुअल फण्ड एसेट मैनेजमेंट कम्पनी लि. शामिल है। इनके मुख्य कार्यकारी अधिकारियों को क्रमशः 368.91 करोड़ रूपए, 368.91 करोड़ रूपए व 257 करोड़ रूपए की राशि के चैक तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् ने 6 अक्टूबर, 2007 को सौंपे इन तीन एसेट मैनेजमेंट कम्पनियों को राष्ट्रीय निवेश कोष का फण्ड मैनेजर' शुरू में तीन वर्ष के लिए नियुक्त किया गया है। निष्पादन के आधार पर इनके साथ अनुबन्ध का विस्तार किया जाएगा।

बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporations)

आइ.बी.एम. वर्ल्ड ट्रेड कॉरपोरेशन के अध्यक्ष के अनुसार, "एक बहुराष्ट्रीय निगम वह है जो (1) अनेक देशों में कार्य करता है (2) उन देशों में अनुसन्धान, विकास व निर्माण का कार्य करता है (3) जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध होता है व (4) जिसका स्कन्ध स्वामित्व बहुराष्ट्रीय होता है।" ऐसे निगमों को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी या बहुराष्ट्रीय कम्पनी या निगम या राष्ट्रपारीय निगम (Transnational Corporations) के नाम से जाना जाता है।

"संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार इस समय 40,000 बहुराष्ट्रीय निगम हैं जिनके पास संसार की कुल निजी सम्पत्ति का 1/3 हिस्सा है तथा निजी बिक्री 55,000 करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष है।"

भारत में इस प्रकार की अनेक कम्पनियाँ हैं जिनका कारोबार भारत में है, लेकिन उनका मुख्यालय भारत के बाहर किसी देश में है तथा जिनका भारत के अतिरिक्त अन्य कई देशों में भी करोबार है। जैसे पौण्ड्स, वारेन टी, सीबा, कॉलगेट-पालमोलिव, हिन्दुस्तार लीवर, ग्लैक्सो, गुडलस नेरोलक पेण्ट्स आदि।

बहुराष्ट्रीय निगम की विशेषताएँ (Features of Multinational corporations)

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाकलाप-** बहुराष्ट्रीय निगमों की क्रियाएँ किसी एक राष्ट्र में सीमित न होकर अनेक राष्ट्रों तक चलती हैं। इसके लिए ये अपने देश में मुख्य निगम रखती हैं व अन्य देशों में शाखाएँ या सहायक कम्पनियाँ, लेकिन इन सहायक कम्पनियों में मुख्य निगम का हिस्सा 51 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। इस प्रकार मुख्य निगम इन शाखाओं व सहायक निगमों पर नियन्त्रण करता रहता है। (2) **साधनों का हस्तान्तरण-** ये अपनी तकनीक, प्रबन्धकीय सेवीवर्ग, कच्चा माल एवं पक्का व तैयार माल आदि को अपनी सहायक कम्पनियों व शाखाओं पर आसानी से हस्तान्तरित कर देते हैं। (3) **बृहत् आकार-** ये वृहत् आकार के होते हैं। इनकी पूंजी व बिक्री अरबों रुपयों में होती है। (4) **बहुराष्ट्रीय स्कन्ध स्वामित्व-** इन निगमों की पूंजी में हिस्सा अनेक राष्ट्रों का होता है। (5) **बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध-** इन निगमों का प्रबन्ध बहुराष्ट्रीय होता है, अर्थात् उनके प्रबन्ध मण्डल में अनेक राष्ट्रों के व्यक्ति होते हैं।

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका

(1) **औद्योगीकरण में सहायक-** बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा विकासशील देशों के औद्योगीकरण में सहायता पहुंचायी गयी है। जहाँ विकासशील देश पूंजी व तकनीक देने में असमर्थ थे वहाँ इन बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारी मात्रा में पूंजी व तकनीक देने में असमर्थ थे वहाँ इन बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारी मात्रा में पूंजी ही नहीं लगायी है, बल्कि तकनीक भी प्रदान की है जिससे कि उन देशों में औद्योगिक उत्पादन की नींव ही नहीं रखी है, बल्कि उसके विकास में भी भारी योगदान दिया है। (2) **साधनों का विदोहन-** भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों ने साधनों के बारे में पता लगाकर उनके विदोहन का कार्य प्रारम्भ किया। (3) **उत्पादन तकनीकों में परिवर्तन-** बहुराष्ट्रीय निगमों ने जब यह पाया कि भारत में श्रम सस्ता है तो उन्होंने उनका लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन तकनीक में अनेक बार महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जिससे कि उत्पादन तकनीक में अनेक बार महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जिससे कि उत्पादन आधुनिक व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतियोगी बन गया जो देश के हित में ही रहा। (4) **शोध एवं विकास-** इन निगमों ने शोध एवं विकास पर पर्याप्त मात्रा में व्यय किया है तथा मुख्य कार्यालय के शोध एवं विकास का लाभ शाखा कार्यालय व सहायक कम्पनियों को भी दिया है जिससे अल्प-विकसित देशों के औद्योगीकरण में सहायता मिली है। (5) **विपणन-** बहुराष्ट्रीय निगमों ने विपणन कार्य भी कुशलता से कर निर्यात को बढ़ावा दिया है। इसके लिए बाजार शोध, विज्ञापन, विपणन सूचनाओं का प्रसारण, भण्डार प्रबन्ध, पैकेजिंग आदि का भी विकास किया है जिससे कि वस्तु उपभोक्ता तक उचित प्रकार में पहुंच सके।

बहुराष्ट्रीय निगमों की आलोचनाएँ

(1) **उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक-** ये एक ओर तो मूल्य अधिक लेते हैं व दूसरी ओर वस्तु के गुणों में वे गुण नहीं होते हैं जो ये विज्ञापन में देते हैं। इनके द्वारा वस्तु विभेद भी किया जाता है। अर्थात् विभिन्न ग्राहकों से विभिन्न मूल्य लिए जाते हैं जो ग्राहकों की देयक्षमता के अनुसार होते हैं यद्यपि वस्तुओं में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। (2) **तकनीक हस्तान्तरण मूल्यवान-** यह निगम अपनी तकनीक के देने के बदले में जो फीस, रॉयल्टी, मुआवजा व व्यय लेते हैं वे काफी अधिक होते हैं साथ ही इन रकमों को भारत से बाहर भेजने से विदेशी मुद्रा कोष पर बुरा प्रभाव पड़ता है। (3) **मुद्रा में हेरा-फेरी-** यह निगम विभिन्न तरीकों से दुर्लभ मुद्रा को लाभप्रद स्थानों पर एकत्रित करते जाते हैं जिससे कभी-कभी इन देशों में मुद्रा संकट उत्पन्न हो जाता है। (4) **उचित तकनीक को न अपनाना-** यह निगम अपनी तकनीक अपनाते हैं। उस देश की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखते हैं जिस देश में यह उद्योग स्थापित करते हैं। इससे वे देश स्वयं अपनी तकनीक का विकास नहीं कर पाते हैं। (5) **क्षेत्रीय आर्थिक असमानताएँ-** येनिगम किसी खास क्षेत्र में ही उद्योग के बाद उद्योग स्थापित करते चले जाते हैं जिससे उस क्षेत्र में तो विकास हो जाता है, जबकि शेष क्षेत्र वैसे ही बने रहते हैं।

भारत में सरकार की नीति इन बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीयकरण करने की थी। अतः इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने कुछ अधिकार ले लिये जिनके अन्तर्गत उसने इन सभी 883 कम्पनियों से कहा था कि वे अपनी पूंजी में विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत

Download from www.studymasterofficial.com

करने का प्रयास करें। अत: 700 कम्पनियों ने अपनी पूंजी में विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत कर दिया, लगभग 100 कम्पनियों को 51 प्रतिशत पर बने रहने की अनुमति दे दी गयी, लगभग 40 को 74 प्रतिशत पर बने रहने की आज्ञा दे दी गयी, लेकिन कोका कोला (ब्बबं ब्वसं) व आई.बी.एम. (प्ठड), इस प्रकार विदेशी हिस्सा कम करने को तैयार नहीं हुए। अत: उन्होंने अपना व्यवहार बन्द कर दिया, परन्तु अब सरकार ने नीति में परिवर्तन किया है। औद्योगिक नीति, 1991 के अनुसार 51 प्रतिशत की पूंजी की अनुमति सरकार द्वारा दी जा रही है (कुछ मामलों में शत प्रतिशत पूंजी की अनुमति दी जा रही है।) इससे इन निगमों की क्रियाएँ भारत में बढ़ रही हैं। उनके बहुराष्ट्रीय निगम भारत में आ गये हैं और उन्होंने अपना व्यवहार प्रारम्भ कर दिया है। कोका कोला कम्पनी जिसे पहले अनुमति न मिलने के कारण अपना व्यापार भारत में बन्द करना पड़ा था, वह अब 17 वर्ष बाद पुन: भारत में आ गई है।

भारत की औद्योगिक नीति, 1991 व नवीन आर्थिक नीति के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमों का कारोबार भारत में तेजी से बढ़ने लगा है जिससे भारतीय उद्योगपतियों में भय सा फैल गया है और वे भरसक प्रयास कर रहे हैं कि उनसे भली-भांति मुकाबला किया जा सके।

भारत में निगमित शासन (Corporate Governance in India)

वर्तमान में निगतिम शासन पूरे विश्व में वित्तीय एवं पूंजी बाजार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके विस्तार का उद्देश्य निवेशकों के साथ-साथ अर्थव्यवस्था को कुशासन एवं घोटालों के खतरे से निकाल कर वास्तविक पूंजी निवेश को बढ़ावा देना है। पिछले दिनों कई निगमों के ध्वस्त होने (जिनमें अमेरिका के कई बड़े उपक्रम भी शामिल हैं) के बाद मामले ने जोर पकड़ा है। यह उदारीकृत अर्थ व्यवस्था के लिए हानिकर है। भारत में भी निगमों की लापरवाहियों को गंभीरता से लिया जा रहा है।

अवधारणा (Concept)

निगम गृहों के नियम और कानूनी व्यवहार के साथ ही सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के कार्यों के लिए निगमित व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है। इसमें व्यावसायिक नीति विषयक प्रक्रिया को कायम रखना सम्मिलित है। निगमित व्यवस्था के तीन मुख्य तत्त्व हैं- (1) कम्पनी मामलों में पारदर्शिता एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया (2) हिसाब की जिम्मेदारी जो कि पहले से सम्बद्ध है एवं (3) व्यापार उद्यम में साझेदारी के प्रति जवाब देही। इस क्षेत्र में कई तरह के साझेदार मौजूद रहते हैं। शेयरधारी प्रथम साझेदार हैं जो कि वास्तविक निवेशक होते हैं। ग्राहक, आपूर्तिकर्त्ता, संगठन के कर्मचारी और जन समुदाय भी इसमें सम्मिलित रहते हैं।

उदारीकरण से पूर्व (Before Liberalisation)

1991 से पूर्व भारत ने पं. नेहरू के समाजवाद के अनुसार मिश्रित व्यवस्था मार्ग अपनाया था। इसके परिणामस्वरूप ऊर्जा, स्टील केमिकल्स, खाद्यान्न इत्यादि क्षेत्रों में सार्वजनिक उपक्रम उभरकर सामने आए। इन उपक्रमों को आयातित माल की अपेक्षा सस्ते और समय पर जरूरी सामग्री की आपूर्ति की जा सके इसके लिए सक्षम बनाया गया। इसके साथ-साथ भारत में निजी उपक्रमों की भी अच्छी भागीदारी बनी रही। इस अनुभव के बाद सरकार ने किसी प्रकार के अल्पाधिकार को रोकने के उद्देश्य से 'कंपनी लॉ बोर्ड', 'प्रतिभूति एवं विनियम आयोग' जैसी महत्त्वपूर्ण संस्थानों एवं आयोग का गठन किया।

उदारीकरण के बाद (After Liberalisation)

भारत ने 1991 से उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण का अनुसरण किया। एक दशक से अधिक समय से चल रहे मुक्त बाजार व्यवस्था के इस दौर में निजी क्षेत्रों में बड़े उद्यमों के आने से सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या में गिरावट आ रही है। मुक्त बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक संसाधनों की बचत करने के साथ अर्थव्यवस्था के रख-रखाव में सफलता अवश्य मिली है, लेकिन आर्थिक स्वतंत्रता की वजह से कई तरह की कमजोरियां भी उभर कर सामने आई हैं। भारत में निगतिम व्यवस्था एनरॉन और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों जैसे- वर्ल्डकॉम की असफलता के बाद प्रकाश में आई हैं। इस प्रकार सरकार पूंजी एवं वित्तीय बाजार में निवेश के माहौल से संबंधित संस्थाओं की गतिविधियों पर व्यापक रूप से नजर रख रही है। (बाजार की असफलता के विषय में निगतिम प्रभुत्व एवं लेख परीक्षा द्वारा समूह से सलाह ली जाती है। कम्पनियों के आय-व्यय में प्राय: धोखाधड़ी देखने को मिलती है। सामान्यतया कंपनियां कई तरह के निरर्थक हिसाब रखती हैं। प्राप्ति का अराजक भुगतान, सम्पत्ति राजस्व खर्च, विभिन्न कर विधान, विशेष उद्देश्य के लिए आय से अधिक

Download From www.studymasterofficial.com

का वाहन ऋण, ये सब सामान्य तरीके हैं, जिनसे लेखपाल एवं लेखा परीक्षक धोखधड़ी कर सकते हैं। पूंजी बाजार में निवेशकों को हिसाब का सिद्धान्त पूर्णतया धोखा देता है। कई मामलों में उद्यम की वास्तविक सुदृढ़ वित्तीय स्थिति को लेकर हिसाब असफल हुआ है। निगम की असफलता का आंतरिक कारण चालाकी से अपने लक्ष्य में सफल होकर विरोधी का अनुमोदन न कर, मत में भाग न लेने देकर इत्यादि के द्वारा स्वयं का परिषद पर प्रभुत्व साबित करना सिद्ध हो रहा है। भारत में लेखा के विभिन्न नियम हैं। और कार्य पद्धति में लालफीताशाही का प्रचलन है। नौकरशाही आवरण के पीछे और नकली बाजार में नियम विरुद्ध कार्य ही कर सकते हैं। 1990 के स्टॉक बाजार का खोखला रूप सामने आ गया है। परंपरागत एवं वर्तमान संरचना दलालों की धांधली को रोकने में असमर्थ है। दशकं एक्सचेंज की गलत व्यवस्था नीतियों के कारण पूंजी बाजार में अस्थिरता उत्पन्न हो गई थी।

अब तक उठाए गए कदम (Steps taken so far)

1990 बाद खुली अर्थव्यवस्था के दौर में कारपोरेट शासन की उत्साहित अर्थव्यवस्था का निर्धारण हुआ है। सी.आई.आई. समिति, 1998 और के एम रिला समिति, 1999 ने महत्त्वपूर्ण पहल की। 2002-03 में नरेश चन्द्रा समिति आई। कारपोरेट शासन के अन्तर्गत दूसरी समिति का गठन हुआ जिसके अध्यक्ष इनफोसिस के एन.आर.नारायण मूर्ति थे। वास्तविक समस्या सही मार्गदर्शन, नियम और व्यवस्था के प्रभावी कार्यान्वयन की है। सी आई आई समिति, 1998 और कुमार मंगलम बिरला समिति, 1999 की कारपोरेट व्यवस्था से संबंधित संस्तुतियों की पूर्ण उपेक्षा की गई। 1999 में बिरला कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी ने सेबी को रिपोर्ट दी, पर इसकी सिफारिशों का क्रियान्वयन नहीं किया गया। 2001 में सेबी ने कुमार मंगलम बिरला की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। कई कंपनियां कानूनी पत्र के आदेशानुसार परिवर्तन करती रहती हैं, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। पिछले दिनों सेबी द्वाराएन.आर. नारायण मूर्ति समिति नियुक्त की गई है। स्वतंत्र निवेशकों का कार्य कारपोरेट व्यवस्था से संबंधित विभिन्न पहलुओं की जांच करने का अधिकार दिया गया। स्वतंत्र निवेशकों का कार्य कारपोरेट परिषद में कारपोरेट जगत् की कुव्यवस्था का समाधान करना है। न्यूयार्क स्टॉक एक्सजेंज ने पिछले वर्ष बोर्ड की स्वतंत्रता के लिए निवेशकों के बहुमत का प्रस्ताव पारित किया। देश में कारपोरेट शासन के बेहतर संचालन के लिए निम्नलिखित पहल करने की अनुशंसा की गई- (1) बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए पूर्णतया सुरक्षित आडिट व्यवस्था आवश्यक है। (2) कारपोरेट हिसाब खातों के नए मानक स्थापित किए, जाएँ, जैसा कि अमेरिका में है। इसके तहत वित्तीय लेखे-जोखे से संबंधित प्रमाण-पत्र लेने की व्यवस्था की जा सकती है। और कानूनी दायरे को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही कारपोरेट घोटालों की रोक-थाम के लिए गंभीर सजा देने की व्यवस्था जा सकती है। (3) कारपोरेट जगत के प्रति चौकस रहने की नीति अपनाई जाए, ताकि ग्राहकों, निवेशकों और कर्मचारियों को बेहतर सेवा उपलब्ध हो सके। (4) चीन में सार्वजनिक निजी मिश्रण प्रतियोगिता का नया मॉडल प्रचलन में आया है, जिसके द्वारा पूरे अर्थ बाजार में इच्छित परिणाम आ रहे हैं। भारत में भी ऐसे मॉडल विकसित किए जाने चाहिए। (5) विनिवेश की रणनीति इस प्रकार बनाई जाए कि जिससे निपुणता के साथ लोक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। (6) कारपोरेट जगत सामाजिक उत्तरदायित्वों को भली भाँति निभाता है या नहीं, इसकी समय-समय पर जाँच की जानी चाहिए। (7) भारतीय नौकरशाहों की जाँच की जानी चाहिए, जिससे कि कारपोरेट घरानों की गैर उत्तरदायी गतिविधियों का पता लगाया जा सके। (8) आडिट की गुणवत्ता के लिए मापदंड बनाया जाना चाहिए। (9) मुख्य कार्यकारी अधिकारी और मुख्य वित्तीय अधिकारी के दायित्व को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। (10) प्रशासनिक और वैधानिक कार्यों में गुणवत्ता और योग्यता पर बल दिया जाना चाहिए। (11) ऑडिटर और ग्राहकों के बीच संबंधों पर ध्यान देना चाहिए।

पिछले दिनों यू.एस.ए. में सारबेंस ऑक्सले अधिनियम पारित हुआ है। इसके अनुसार किसी प्रकार की धोखा-धड़ी में मुख्य कार्यकारी को जवाबदेह ठहराया जायेगा। अब तक बहुत से पदाधिकारियों को जेल भी जाना पड़ा है। इस अधिनियम में एक मिलियन डॉलर या 10 वर्ष से अधिक के कारवास की सजा का प्रावधान हैं। यह जान बूझ कर किए गए गलत कार्यों को रोकता हैं। भारत के संदर्भ में बड़े पैमाने पर कारपोरेट संस्थानों के लिए कम्पनी अधिनियम की धाराओं में ऐसे प्रावधान हैं। वहीं कम्पनी एक्ट में 2000 और 2002 में सुधार हुआ है। जिससे छोटे निवेशकों को सुरक्षा प्राप्त हुई है। अब जान बुझ कर की गई ठगी के लिए 3 वर्ष तक की कैद की सजा पर प्रतिदिन 500 डॉलर सजा का प्रावधान है। इस समय वैधानिक और प्रशासनिक कार्य प्रणाली के पुनर्गठन की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार ने कारपोरेट सैक्टर के सही संचालन के लिए एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया है। वैसे इस क्षेत्र की कुव्यवस्था को रोकने के लिए स्वतंत्र निदेशकों की बात की जा रही है, लेकिन स्वतंत्र निदेशकों का चयन किस प्रकार किया जाए, यह एक समस्या

www.studymasterofficial.com

हैं। स्थिति उस समय और जटिल हो जाती है, जब संबंधित व्यवसाय का प्रबंधन किसी एक परिवार के हाथ में हो।

उद्योग (Industry)

सामान्यतया उद्योग का अर्थ उच्च आर्थिक क्रियाओं से है जिनका सम्बन्ध सेवा या वस्तुओं के उत्पादन या संवर्द्धन से है। उद्योग की परिधि में वे सभी उपक्रम सम्मिलित हैं जिनमें नियोजकों एवं सन्तुष्टि के लिए एक व्यवस्थित गतिविधि के रूप में वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन का कार्य सम्पन्न किया जाता है। एक देश की अर्थव्यवस्था के विकास में उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। औद्योगीकरण से प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है। रोजगार के अवसर मिलते हैं। आधारभूत संरचना का विकास होता है। निर्यात पर विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

भारत में औद्योगिक उत्पादन की प्रवृत्ति (Trends in Industrial Production in India)

औद्योगिक-क्षेत्र जीडीपी, जिसमें खनन, विनिर्माण तथा विद्युत के अलावा निर्माण क्षेत्र का सकल मूल्य वर्मान (जीवीए) शामिल है, ने औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी) पर आधारित विकास दर से तुलनीय तिमाही विकास दर दर्शायी है। चालू वित्तीय वर्ष की दूसरी और तीसरी तिमाही के आईआईपी आंकड़े यह दर्शाते हैं कि इसके अंतर्गत कवर किए गए सभी बड़े क्षेत्रों में अनुसीमन स्थापित है। चालू विनीय वर्ष की तीसरी तिमाही में विनिर्माण विकास दर 5.1 प्रतिशत तक कम हुई है। पिछले वित्तीय वर्ष की चौथी तिमाही (जनवरी-मार्च) के दौरान प्राप्त 16.8 प्रतिशत की अधिकतम वृद्धि की तुलना में यह अधिक सामान्य है। विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत, वृद्धि का मुख्य चालक पूंजीगत वस्तुओं का हिस्सा रहा है, इसने अधिकतम अस्थिरता दर्शायी है जैसा कि इसने 2009-10 की पहली तिमाही में 3.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है और पिछले विनीय वर्ष की दूसरी तिमाही के दौरान 45.7 प्रतिशत तक बढ़ गई और तब से दो अंकों में बनी रही और चालू वित्तीय वर्ष की तीसरी तिमाही के दौरान यह संतुलित होकर 3.8 प्रतिशत पर आ गई।

भारत में वर्ष 1999-2000 के मूल्य पर व्यक्त जी.डी.पी. में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान वर्ष 1950-51 के 15.1% से बढ़कर वर्ष 2009-10 में 24.5% हो गया है। उल्लेखनीय है कि औद्योगिक क्षेत्र के अंतर्गत हम मुख्यत: विनिर्माण, खनन, उत्खनन, निर्माण, विद्युत एवं गैस को शामिल करते है परन्तु औद्योगिक क्रियाओं की माप के सन्दर्भ में प्रयुक्त औद्योगिक उत्पादन निर्देशक (IIP: Index of Indrustrial Production) में उत्खनन, विनिर्माण एवं विद्युत को शामिल करते हैं।

योजनावधि में भारत की औद्योगिक प्रगति को सूचित करने वाले प्रमुख बिन्दु हैं-

- भारतीय अर्थव्यवस्था में आधुनिक एवं सुदृढ़ आधारिक संरचना का तेजी से निर्माण हुआ है जिनके फलस्वरूप भारतीय औद्योगिक क्षेत्र का निजीकरण कर पाना सम्भव हो सका है।
- योजनावधि में औद्योगिक क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रमों का तेजी से विस्तार हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र के आधारभूत उद्योगों के विस्तार के कारण ही योजनाबद्ध आर्थिक विकास सम्भव हो पाया है।
- योजनावधि में पूंजीगत भारी उद्योगों (Capital Intensive Heavy Industries) में निवेश का विस्तार किया गया है जिसके परिणामस्वरूप इंजीनियरिंग वस्तुओं, खनन, लोहा, इस्पात, उर्वरक जैसे उत्पादन क्षेत्रों में आत्म-निर्भरता या तो घटी है या फिर पूर्णतया समाप्त हो चुकी है। भारत योजनावधि में लोहा, इस्पात जैसे आधारभूत और आवश्यक क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो चुका है और उर्वरक एवं पेट्रोलियम जैसी वस्तुओं के लिए विदेशों पर अपनी निर्भरता को कम कर सका है। दूसरे शब्दों में औद्योगिक प्रगति के कारण ही भारतीय अर्थव्यवस्था में आयात प्रतिस्थापन की नीति को सफलतापूर्वक अपनाया जा सका है।
- योजनावधि में भारत के निर्यातों में गैर-परम्परागत वस्तुओं विशेषकर इंजीनियरिंग वस्तुओं का निर्यात तेजी से बढ़ा है जिसके परिणामस्वरूप देश के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को पक्ष में करने में सहायता मिली है।
- योजनावधि में औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी एवं प्रबन्धकीय सेवा का विस्तार हुआ है जिससे न केवल औद्योगिक विस्तार को गति मिली है बल्कि विदेशी मुद्रा को भी बचाया जा सका है।

योजनावधि के औद्योगिक विकास के साथ-साथ औद्योगिक संरचना में विविधता एवं आधुनिकीकरण देखने को मिलता है। आधारभूत

एवं पूंजीगत उद्योगों के विस्तार के साथ-साथ इंजीनियरिंग वस्तुओं, औषधि, संचार उपकरण, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जैसे आधुनिक उद्योगों का भारत के औद्योगिक क्षेत्र में पर्याप्त विस्तार हुआ है जिसके परिणामस्वरूप भारत के विदेशी व्यापार की संरचना भी अनुकूल हुई है। योजनावधि में हुए औद्योगिक विकास के कारण ही अब भारत में विनिर्मित वस्तुओं का आयात न होकर कच्चे माल एवं पूंजीगत पदार्थों का आयात होने लगा है।

सरकारी उद्यमों की कमजोरियाँ (Weaknesses of Governmental Enterprises)

यह कहना अनुचित होगा कि सरकारी उद्यमों में सभी कार्य भली प्रकार चल रहे हैं। सरकारी उद्यमों की क्षमता और कार्यपद्धति को सुधारने की काफी गुंजाइश है। मुख्य बातें, जिनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिये, निम्नांकित हैं-

1. **बढ़ती हुई हानियाँ**- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निष्पादन की समीक्षा से पता चलता है कि या तो इनमें लाभ की मात्रा बहुत ही कम है या वे घाटे में ही चल रहे हैं। परिणामत: घाटे हर वर्ष बढ़ते ही जा रहे हैं।
2. **स्थिति निश्चयन को प्रभावित करने वाले प्रबल कारण**- सत्तारूढ़ दल के शक्तिशाली मंत्री कई बार किसी राज्य में किसी परियोजना के भावी स्थिति निश्चयन की घोषणा कर देते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि लागत की दृष्टि से क्या यह स्थान व्यवहार्य है। उदाहरणार्थ, मिग एयरक्राफ्ट को दो भागों में दो राज्यों में स्थापित करने का निर्णय किया गया। ये दो स्थान नासिक और कोरापुर एक दूसरे से 900 कि.मी. दूर है।
3. **इन परियोजनाओं की पूर्ति में अधिक समय लगना**- इससे निर्माण की लागत अधिक हो जाती हैं सांथ ही इनसे प्राप्त होने वाले प्रत्याशित लाभ समय पर प्राप्त नहीं हो पाते।
4. **अधिपूंजीयन**- अपर्याप्त आयोजन, विलम्ब, अनावश्यक व्यय, अतिरिक्त मशीनी क्षमता, बाह्य विदेशी सहायता, उदार श्रम मानकों आदि के कारण बहुधा इन उद्यमों का आदान-प्रदान अनुपात प्रतिकूल हो जाता है।
5. आवश्यकता से अधिक मानव शक्ति का प्रयोग जो इन उद्यमों की विशिष्ट प्रकृति का ही द्योतक है।
6. **सामर्थ्य उपयोग**- 2003-04 के दौरान लगभग 52 प्रतिशत सरकारी उद्यम सामर्थ्य की दृष्टि से 75% से अधिक में चल रहे थे और 32% उद्यम 50 से 75% की सीमा के बीच कार्य कर रहे थे और 47% सरकारी उद्यम 50% से भी नीचे स्तर पर कार्य कर रहे थे। यह एक अनुकूल परिस्थिति नहीं कही जा सकती।
7. **श्रम अनुशासनहीनता**-श्रमिकों में अनुशासनहीनता और श्रम प्रबन्ध संबंध अच्छे न होने के कारण इनका पर्यवेक्षण व प्रशिक्षण भी कठिन हो जाता है।
8. **दोषपूर्ण नियन्त्रण**- आज स्थिति यह है कि इन पर वित्त मंत्रालय और प्रत्येक उद्यम से सम्बद्ध मंत्री व लोकसभा का नियन्त्रण होता है। वित्त मंत्रालय इन पर अत्यधिक वित्तीय नियन्त्रण द्वारा इन्हें सरकारी विभागों की भांति काम करने के लिये मजबूर करता हैं।

औद्योगिक सुधार के उपाय (Measures of Industrial Reforms)

उत्पाद शुल्क का यौक्तिकीकरण, कारपोरेट लाभकारिता को बढ़ावा देने के लिए कारपोरेट कर अधिभार को हटाया जाना, मांग को बढ़ावा देने के लिए आयकर अधिभार को हटाया जाना, ब्याज दरों की कमी, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को और अधिक बढ़ाना, निजीकरण को कार्यान्वित करना।

भारत में औद्योगिक नीति एवं लाइसेंस व्यवस्था (Industrial Policy and Lience System in India)

स्वतंत्रता प्राप्त के बाद अब तक 6 औद्योगिक नीतियों की घोषणा हो चुकी है-

- **औद्योगिक नीति 1948**- 6 अप्रैल, 1948 को घोषित प्रथम औद्योगिक नीति में उद्योगों को चार भागों में वर्गीकृत किया गया: (i) प्रथम वर्ग (सैनिक एवं राष्ट्रीय महत्व के उद्योग) (ii) द्वितीय वर्ग (छ: उद्योग-लोहा इस्पात आदि) (iii) तृतीय वर्ग (18 उद्योग-

DISCOVERY
Downloaded from www.studymasterofficial.com

आधारभूत एवं उपभोक्ता उद्योग) (iv) चतुर्थ वर्ग (शेष उद्योग) 1948 की औद्योगिक नीति में विशेष रूप से लघु एवं कुटीर उद्योगों का उल्लेख किया गया और इनके विकास की जिम्मेदारी राज्य सरकार को सौंपी गई।

- **औद्योगिक नीति-1956-** 30 अप्रैल, 1956 को घोषित औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्य थे: (i) औद्योगीकरण की गति में वृद्धि लाभ। (ii) भारी उद्योगों का विकास। (iii) सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार। (iv) सन्तुलित औद्योगिक विकास। (v) आय की असमानताएं कम करना। (vi) रोजगार अवसवरों में वृद्धि। 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को तीन वर्गों में बांटा गया : (i) वर्ग 'अ' (इस वर्ग में 17 उद्योग रखे गए जिनका उत्तरदायित्व सरकार को सौंपा गया) (ii) वर्ग 'ब' (इस वर्ग में 12 उद्योग रखे गए जिनके विकास में सरकार को अधिक-से-अधिक भागीदारी देने का प्रावधान किया गया।) (iii) वर्ग 'स' (शेष उद्योग जिन्हें निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया)
- **औद्योगिक नीति 1977-** 1956 की औद्योगिक नीति की कमियों को दूर करने और जनता की आर्थिक विकास संबंधी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए 23 दिसंबर, 1977 को एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसके प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार थे: (i) एकाधिकारवादी प्रवृत्ति और कुछ हाथों में आर्थिक शक्ति के जमाव को रोकना। (ii) उद्योगों को सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना। (iii) उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करना। (iv) मानवीय तथा राष्ट्रीय साधनों का पूर्ण उपयोग करना। (v) रोजगार प्रदान करने वाले उद्योगों का तीव्रता से विकास करना।
- **औद्योगिक नीति 1980-** औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 को ही आधार बनाकर 23 जुलाई, 1980 को नई औद्योगिक नीति वक्तव्य की घोषणा की गयी।

1. **लघु उद्योग:** नयी औद्योगिक नीति में लघु उद्योगों के विकास तथा उनकी उन्नति के लिए उनमें किये जाने वाले निवेश की सीमा को बढ़ा दिया गया। लघु उद्योगों में निवेश की सीमा दस लाख रूपये से बढ़ाकर बीस लाख रूपये कर दी गयी है। सहायक उद्योगों (Ancillaries) में निवेश की सीमा को पंद्रह लाख रूपये से बढ़ाकर पच्चीस लाख रूपये कर दिया गया।
2. **खादी तथा ग्रामोद्योग:** नयी औद्योगिक नीति के अनुसार गांवों में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए खादी तथा ग्रामीण उद्योगों को विकास की ऊंची दर प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।
3. **सार्वजनिक क्षेत्र** : इस औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में कहा गया कि पिछले कुछ वर्षो में सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यक्षमता में आई कमी के कारण इसमें जनता का विश्वास कम हो गया है, अत: अब ऐसे कदम उठाये जायेंगे जिससे कि इनमें जनता का विश्वास पुर्नस्थापित हो सके।
4. **निजी क्षेत्र:** इस औद्योगिक नीति में निजी क्षेत्र के संबंध में पुन: 1956 की नीति प्रस्ताव के अनुसार यह स्पष्ट किया गया कि राष्ट्रीय योजना एवं नीतियों के अंतर्गत निजी क्षेत्र में भी उद्योगों के विकास हेतु पूर्ण सुविधाएं प्रदान की जायेंगी।
5. **अतिरिक्त क्षमता नियमितीकरण**-(Regularisation of Excess Capacity):- कई बड़े स्तर के कारखानों की उत्पादन क्षमता लाइसेंसिंग क्षमता (Licensing Capacity) से अधिक है। राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ाने के उद्देश्य से सरकार इन कारखानों को अपनी अतिरिक्त क्षमता का पूर्ण उपयोग करने की आज्ञा देगी।

- **औद्योगिक नीति 1990** (ये औद्योगिक नीतियां वस्तुत: नीतियां न होकर विस्तृत दिशा निर्देशक हैं।)

नई आर्थिक नीति की पृष्ठभूमि (Background of new Economic Policy)

भारत में समाजावादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग चुनकर अप्रैल, 1951 से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास की यात्रा शुरू की गयी थी। इन 55 वर्षों में हमें यद्यपि सफलताएं मिली हैं तथापि अपेक्षित स्तर तक विकास करने में हम पीछे रह गये हैं और जून, 1991 के अंत में देश में अभूतपूर्व आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। विदेशी मुद्रा के भण्डार केवल दो सप्ताह के आयात के लिए पर्याप्त थे। नये ऋण मिल नहीं रहे थे, अनिवासी भारतीयों के खातों से बड़ी-बड़ी राशियाँ निकाली जा रही थीं। भारतीय अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय विश्वास डगमगा रहा था।

सरकार द्वारा जुलाई, 1991 के बाद से देश को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकास की गति को तीव्र करने के जो विभिन्न नीतिगत

Downloaded From www.studymasterofficial.com

उपाय अपनाये गये वे 1991 से पूर्व अपनायी गयी नीतियों से ठीक उलटे थे, जैसे-

i. नियंत्रित व्यवस्था अर्थात् उद्योग व व्यापार के लिए लाइसेंस के स्थान पर उदारीकरण की नीति।

ii. सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित पर निजीकरण की नीति।

iii. आयात-निर्यात के लिए परमिट प्रणाली के स्थान पर विश्वव्यापीकरण की नीति।

उपर्युक्त सुधारों को नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) अथवा यू टर्न नीति (U-Turn Policy) कहा गया है। नीतियों के यू टर्न (U-Turn) से आशय अपनायी गयी नीतियों का पहले से अपनायी गयी नीतियों से बिलकुल विपरित (उलटा) होना है। संक्षेप में, नयी आर्थिक नीति से अभिप्राय जुलाई, 1991 के बाद से किये गये विभिन्न नीतिगत उपायों और परिवर्तनों से है। जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था में प्रतियोगी वातावरण तैयार करके उत्पादकता और कुशलता में वृद्धि करना है।

उदारवादी औद्योगिक नीति 1991 (Liberal Industrial Policy)

24 जुलाई, 1991 को भारत सरकार द्वारा घोषित औद्योगिक नीति में व्यापक परिवर्तन किए गए और उसे 'उदारवादी औद्योगिक नीति' (Liberalised Industrial Policy) का स्वरूप प्रदान किया गया।

उद्देश्य (Objectives): नवीन औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं :

- विगत योजनाकाल की उपलब्धियों के आधार पर उद्योगों का और अधिक विकास करना,
- उद्योग में व्याप्त कमियों तथा विकृतियों को दूर करना,
- औद्योगिक उत्पादकता में निरन्तर सुधार करना,
- लाभदायक रोजगार अवसरों में निरन्तर वृद्धि करना,
- नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धों में कमी करके भारतीय उद्योगों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगितात्मक क्षमताओं का विकास करना।

महत्वपूर्ण संशोधन (Important Amendments)

1. **लाइसेन्स व्यवस्था** (Licensing System)- नई नीति के अन्तर्गत 18 प्रमुख उद्योगों को छोड़कर शेष सभी उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग व्यवस्था समाप्त करने का प्रावधान किया गया।

   वर्तमान में लाइसेंसिंग की अनिवार्यता वाले उद्योगों की संख्या केवल 6 है जिनमें सम्मिलित हैं-

   i. एल्कोहल युक्त पेयों का आसवन एवं निर्माण,

   ii. तम्बाकू के सिगार, सिगरेट तथा विनिर्मित तम्बाकू के अन्य विकल्प,

   iii. इलेक्ट्रॉनिक, एयरोस्पेस तथा सभी प्रकार के रक्षा उपकरण,

   iv. डिटोनेटिंग फ्यूज, सेफ्टी फ्यूज, गन पाउडर, माचिस सहित औद्योगिक विस्फोटक सामग्री,

   v. खतरनाक रसायन,

   vi. औषधि और फार्मास्यूटिकल (1994 में संशोधित औषधि नीति के अनुसार)।

2. **विदेशी पूंजी विनियोग** (Foreign Capital Investment):- 48 उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में विदेशी पूंजी निवेश सीमा को बढ़ाकर 51% कर दिया गया है। खनन की क्रियाओं से संबंधित 3 उद्योगों में विदेशी पूंजी निवेश सीमा 50% तथा 9 अन्य उद्योगों में विदेशी पूंजी निवेश की सीमा को 74% तक बढ़ा दिया गया है।

3. **विदेशी तकनीक** (Foreign Technology):- उच्च प्राथमिकता प्राप्त 35 उद्योगों के लिए विदेशी तकनीक के समझौतों के स्वतः अनुमोदन (Automatic Approval) का प्रावधान किया गया है। साथ ही विदेशी मुद्रा की मांग न करने वाले अन्य उद्योगों के लिए भी विदेशी तकनीक के समझौतों के स्वतः अनुमोदन की व्यवस्था की गई है।

DISCOVERY
Downloaded From www.studymasterofficial.com

4. **स्थानीयकरण** (Localisation):- दस लाख से कम जनसंख्या वाले नगरों में 6 अनिवार्य लाइसेंसिंग वाले उद्योगों को छोड़कर शेष उद्योगों के स्थानीकरण के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। प्रदूषण न फैलाने वाले (जैसे- इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर, प्रिंटिंग आदि) ऐसे उद्योगों का स्थानीयकरण दस लाख से कम जनसंख्या वाले बड़े नगरों की परिधि से 20 किमी. की दूरी पर करने की व्यवस्था की गई है। नई नीति औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है।

5. **सार्वजनिक क्षेत्र** (Public Sector)- नई औद्योगिक नीति 1991 के प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए केवल आठ उद्योग आरक्षित किए गए थे किन्तु अब सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या घटकर केवल 3 रह गई है। ये आरक्षित उद्योग हैं- **परमाणु ऊर्जा, रेलवे परिवहन** और खनिज जो **परमाणु ऊर्जा** में काम आते हैं।

6. **अन्य महत्वपूर्ण सुधार** (Other Important Reforms)

- पूंजीगत वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क अधिक युक्ति संगत बनाया गया। पूंजी संबंधी लागतों को कैम करने और निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आयात शुल्कों में और अधिक कटौती के प्रावधान किए गए।
- पूंजी बाजार में विदेशी निवेश स्तरों में वृद्धि के लिए विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) के लिए अल्पकालिक पूंजी लाभों पर 30% की रियायती कर की दर आरम्भ की गई।
- औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों एवं संघ राज्य के क्षेत्रों में नये उद्योगों के लिए तथा देश के किसी भी क्षेत्र में विद्युत उत्पादन करने के लिए पांच वर्ष तक कर की छूट लागू की गई।
- 2 लाख रुपये से अधिक की उधारियों के लिए न्यूनतम ब्याज दर की सीमा को समाप्त कर दिया गया।
- रुग्ण औद्योगिक इकाइयों में उपचारात्मक उपायों को तेज करने के लिए दिसम्बर 1993 में Sick Industrial Companies Act, 1985 में संशोधन किया गया।
- आधारभूत दूरसंचार सेवा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी तथा विदेशी निवेश की अनुमति प्रदान की गई।
- निर्यात निष्पादन में सुधार हेतु एक उच्च शक्ति निर्यात प्रोत्साहन बोर्ड की स्थापना की गई।

औद्योगिक विकास के कुछ महत्त्वपूर्ण आयाम (Some Important Dimensions of Industrial Development)

उत्पादकता आर्थिक वृद्धि महत्त्वपूर्ण रूप से उत्पादन में लाभों पर निर्भर करती है। कुल निविष्टि उपयोग के वाल्यूम माप के अनुपात के रूप में परिभाषित कुछ फैक्टर श्रम, पूंजी और अन्य निविष्टियां संयुक्त रूप से होती हैं। मूल्यांकन, उत्पादन और निविष्टियों का पता लगाने, निष्कर्ष पर पहुंचने और परिणामों का अर्थ लगाने की विधि के संबंध में विनिर्माण उत्पादकता के मूल्यांकन के दृष्टिकोण में बहुत अधिक अन्तर होते हैं। इन अन्तरों को परिलक्षित करते हुए, विभिन्न अवधियों के दौरान भारतीय विनिर्माण में उत्पादकता वृद्धि के बारे में अलग-अलग निष्कर्ष निकाले गए हैं।

हालांकि अनेक अध्ययनों ने 1980 के वर्षों के दौरान उत्पादकता वृद्धि में आई गति के सम्बन्ध में उल्लेख किया है, उन क्रिया-विधियों के बारे में आपत्तियां उठायी गयी है जिनसे इस निष्कर्ष पर पहुंच गया है। यद्यपि सुधार पश्चात की अवधि के दौरान उत्पादकता संबंधी बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध हुआ है परन्तु उन शोध अध्ययनों से भी स्पष्ट निष्कर्षों पर नहीं पहुंचा जा सका है तथापि, यह सर्वविदित है कि 1980 और 1990 के वर्षों में व्यापार उदारीकरण से उत्पादकता वृद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यह भी देखा गया है कि विनिर्माण में लगातार बढ़ते श्रम प्रतिकर के परिदृश्य में, श्रम उत्पादकता का विकास आवश्यक है।

संसाधन प्रयोग में कुशलता के मोटे अनुमान के रूप में, उत्पादकता विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है। इन सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक कारक प्रौद्योगिकीय प्रगति है। श्रम कौशलों और ज्ञान के अनुरूप उन्नयन सहित, विनिर्माण में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के बढ़ते अनुप्रयोग से उत्पादकता वृद्धि पर बहु-आयामी प्रभावों को होते देखा गया है। इस परिप्रेक्ष्य में, यह पाया गया है कि विकसित देशों की अपेक्षा, भारतीय विनिर्माण और व्यवसाय क्षेत्र में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव बहुत कम रहा है।

यद्यपि भारत के मामले में सकल घरेलू उत्पाद के संबंध में अनुसंधान एवं विकास पर व्यय पिछले कुछ वर्षों में बढ़ा है, परन्तु भारत

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

और विश्व के विकसित देशों के मध्य अनुसंधान एवं विकास पर व्यय के बीच अन्तर काफी बना हुआ है। भारत अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.88 प्रतिशत व्यय करता है। यह चीन जैसे देशों की अपेक्षा कम हैं। चीन अनुसंधान एवं विकास पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 1.42 प्रतिशत खर्च करता है और सर्वाधिक विकसित देश अपने सकल घरेलू उत्पाद का 2 प्रतिशत से अधिक खर्च करते हैं।

2005-06 के दौरान, कुल अनुसंधान एवं विकास व्यय का 74.1 प्रतिशत सरकारी संसाधनों से पूरा किया गया तथा शेष 25.9 प्रतिशत निजी क्षेत्र से किया गया। अनुसंधान एवं विकास व्यय, में केन्द्रीय सरकार का हिस्सा सबसे अधिक 57.5 प्रतिशत रहा, राज्य सरकार का 7.7 प्रतिशत रहा तथा औद्योगिक सेक्टर का योगदान 30.4 प्रतिशत और उच्चतर शिक्षा क्षेत्र का हिस्सा 4.4 प्रतिशत रहा। यह यह उल्लेख करना उचित है कि विकसित देशों में अनुसंधान एवं विकास व्यय में औद्योगिक सेक्टर का योगदान सामान्यतया 50 प्रतिशत से अधिक रहता है। केन्द्रीय सरकार अनुसंधान एवं विकास व्यय के अन्तर्गत, 12 वृहद वैज्ञानिक एजेंसियों द्वारा 86 प्रतिशत व्यय किया गया। इन 12 प्रमुख वैज्ञानिक ऐंसियों द्वारा किए गए अनुसंधान एवं विकास व्यय में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) का हिस्सा 34.4 प्रतिशत रहा है।

नया प्रतिस्पर्द्धा (संशोधन) विधेयक-2007 (New Competition Amendement Bill 2007)

केन्द्र सरकार ने 2006 में संसद मे प्रस्तुत प्रतिस्पर्द्धा विधेयक को वापस लेकर एक नया प्रतिस्पर्द्धा (संशोधन) विधेयक 2007 लोक सभा में 29 अगस्त, 2007 को प्रस्तुत किया इस विधेयक के जरिए भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग (Competition Commission of India - CCI) को वैधानिक अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। आयोग की स्थापना 2003 में की गई थी. प्रतिस्पर्द्धा निरोधी व्यापार व्यवहार पर निगरानी रखने व इनकी रोकथाम करने के मामलों में नियामक का कार्य यह आयोग करेगा। आयोग के फैसलों के विरूद्ध अपील के लिए तीन सदस्यीय 'कॉम्पिटीशन एपीलेट ट्रिब्यूनल' के गठन का प्रावधान भी विधेयक में किया गया है।

नवगठित प्रतिस्पर्द्धा आयोग (Newly Constituted Competition Commission)

एकाधिकारी शक्तियों पर अंकुश लगाकर प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा देने तथा कम्पनियों के विलयों व अधिग्रहणों पर निगरानी रखने के उद्देश्य से गठित भारतीय प्रतिस्पर्द्धा आयोग मई 2009 से अस्तित्व में आ गया है धमेन्द्र सिंह की अध्यक्षता वाले प्रतिस्पर्द्धा आयोग ने 20 मई, 2009 से कार्य करना शुरू कर दिया है। प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002 जिसमें संशोधन सितम्बर 2007 में किया गया था, के तहत् गठित प्रतिस्पर्द्धा आयोग को प्रभावी बनाने के लिए सन्दर्भित अधिनियम के अनुच्छेद 3 व 4 को केन्द्र सरकार ने मई 2009 में अधिसूचित कर दिया है इनमें अनुच्छेद 3 का संबंध प्रतिस्पर्द्धारोधी समझौतों से है, अनुच्छेद 4 प्रभावी स्थिति के दुष्प्रभाव से निपटने से सम्बन्धित है। विलयों व अधिग्रहणों से सम्बन्धित अनुच्छेद 5 व 6 अधिसूचित नहीं किए गए हैं।

नया प्रतिस्पर्द्धा आयोग एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग (MRTPC) का स्थान लेगा इसके अस्तित्व में आ जाने से 20 मई, 2009 के बाद कोई नया मामला MRTPC के पास पहले से लम्बित सभी मामलों को निपटाने के लिए दो वर्ष का समय दिया गया है।

एम.आर.टी.पी. अधिनियम को हटाए जाने के कारण

- एकाधिकार खत्म करने से प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने की नीति के मद्देनजर, एम.आर.टी.पी. अधिनियम को हटाए जाने की आवश्यकता है।
- एम.आर.टी.पी. अधिनियम पूर्व-सुधार परिदृश्य पर आधारित है जबकि नया कानून सुधार बाद परिदृश्य पर आधारित होगा।
- एम.आर.टी.पी. अधिनियम खण्ड रूप में आकार पर आधारित है जबकि नया कानून खण्ड रूप में आचरण या व्यवहार पर आधारित होगा।
- नए कानून के अन्तर्गत आधिपत्य स्वत: बुरा नहीं है बल्कि आधिपत्य का दुरुपयोग ही बुरा है जबकि एम.आर.टी.पी. अधिनियम के अन्तर्गत आधिपत्य स्वयं बुरा है।
- एम.आर.टी.पी. अधिनियम एम.आर.टी.पी. आयोग को सीधे तौर पर विदेशी मूल के कार्टेलों की जांच करने की इजाजत नहीं देता। प्रस्तावित प्रतिस्पर्द्धा कानून में उन्हें विनियमित करने का प्रावधान है यदि ऐसे कार्टेलों का देश के भीतर प्रतिस्पर्द्धा पर प्रतिकूल प्रभाव है।

DISCOVERY Downloaded from www.studymasterofficial.com

लघु उद्योग (Small Scale Industries)

भारत में वर्तमान में लघु उद्योगों की परिभाषा के अन्तर्गत वे समस्त इकाइयाँ सम्मिलित की जाती थीं जिनमें स्थिर परिसम्पत्तियों के रूप में प्लाण्ट व मशीनरी पर पूंजी की मात्रा 1 करोड़ रुपये से अधिक नहीं थी। लेकिन उच्च तकनीक, निर्यात उद्योगों एवं लेखन सामग्री तथा औषधि निर्माण के क्षेत्र के लिए यह सीमा 5 करोड़ रुपए थी। प्रशुल्क आयोग के अनुसार, ''कुटीर उद्योग-धन्धे वे धन्धे हैं जो अंशत: परिवार के सदस्यों की सहायता द्वारा ही आंशिक या पूर्णकालिक कार्य के रूप में किये जाते हैं।''

मध्यम स्तरीय उद्योग (Medium Industries)

मध्यम श्रेणी के उद्योगों की लघु उद्योगों से अलग पहचान के लिए इन उद्योगों के लिए अलग परिभाषा की स्वीकृति लघु उद्योग मन्त्रालय द्वारा जून 2004 में प्रदान की गई है। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) की पहल पर स्वीकार की गई इस परिभाषा के अन्तर्गत ऐसे उद्योगों को मध्यम श्रेणी के उद्योगों में शामिल किया गया जिनमें प्लांट एवं मशीनरी में निवेश 1 करोड़ रुपए से 10 करोड़ रुपए तक थी। लघु एवं मध्यम उपक्रम विकास अधिनियम, 2006 में ऐसे उद्योगों को पुर्नपरिभाषित किया गया है। इसके लिए उद्योगों की दो श्रेणियां बनाई गई हैं- विनिर्माण तथा सेवा के क्षेत्र।

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों का विकास (Development of Micro, Small and Medium Scales Industries)

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग देश के सम्पूर्ण औद्योगिक अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है यह अनुमान किया जाता है कि मूल्य के अर्थ में, यह क्षेत्र विनिर्माण की दृष्टि से 45 प्रतिशत एवं देश के कुल निर्यात के 40 प्रतिशत हिस्से के लिए जिम्मेदार है हाल के वर्षो में यह क्षेत्र लगातार सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में उच्च विकास दर दर्ज करा रहा है। क्षेत्र का वृहद लाभ यह है कि इसकी रोजगार क्षमता न्यूनतम पूँजी लागत पर है। 31 मार्च, 2008 की स्थिति के अनुसार, यह क्षेत्र 12.84 मिलियन माइक्रो और लघु उपक्रमों के जरिए अनुमानत: 31.2 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार देता है और इस क्षेत्र में मजदूरों की तीव्रता बृहद उद्योगों की तुलना में करीब 4 गुना ज्यादा अनुमानित की गई है।

वैश्वीकरण की चुनौतियों को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र की मदद करने के क्रम में, सरकार ने हाल के वर्षो में विभिन्न पहल एवं उपाय किए है। इनमें प्रथम एवं प्रमुख है '' **सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006**'' जिसका उद्देश्य प्रोत्साहन एवं विकास को सुविधाजनक बनाना है यह अधिनियम 2 अक्टूबर, 2006 से प्रभावी हुआ है। सरकार द्वारा" लघु एवं मध्यम दर्जे के उद्योगों के लिए साख चरण-दर-चरण विकास के लिए योजना पैकेज'' की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य पाँच वर्षो की अवधि के अन्तर्गत साख के प्रवाह को दोगुना करना है। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग मंत्रालय नीतियों के निर्माण एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के अपने कार्यभार को मुख्य तौर पर दो केन्द्रीय संगठनों द्वारा सम्पन्न करता है ये संगठन हैं-

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग विकास संगठन (पूर्व में SIDO)

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग विकास संगठनों की स्थापना एक के रूप में 1954 में की गई थी और यह सूक्ष्म एवं मध्यम उद्योग के सतत् एवं संगठित विकास के लिए शीर्ष/नोडल अंग के रूप में यह अपने 30 लघु उद्योग सेवा संस्थानों, 28 SIM शाखाओं, चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों (आर टी सी) 7 फील्ड टेस्टिंग स्टेशनों, 6 प्रसंस्करण-सह-उत्पाद विकास केन्द्रों (PPDC), 11 यंत्र कक्ष एवं दो विशेषीकृत संस्थान-इंस्टीट्यूट और डिजाइन ऑफ इलेक्ट्रिकल मेजरिंग इंस्ट्रूमेंटस (IDEMI) एवं इलेक्ट्रॉनिक सर्विस एण्ड ट्रेनिंग सेन्टर (ESTC) के नेटवर्क के द्वारा यह MES को सुविधाओं एवं सेवाओं की सजात श्रृंखला प्रदान करता है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड (NSICL)

1955 में अपने अस्तित्व में आने से लेकर अब तक राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड अब तक राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड सूक्ष्म एवं लघु उद्योग के लिए प्रोत्साहन, सहायता एवं पोषण के अपने मिशन के लिए कार्य कर रहा है। यह सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के हितों के प्रोत्साहन के लिए कार्य कर रहा है। निगम सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के बदलते परिदृश्य को पूरा करने के लिए समय-समय पर

Download DISCOVERY www.studymasterofficial.com

विभिन्न नई योजनाएं प्रारम्भ करता रहा है इन सभी योजनाओं के मुख्य उद्देश्य सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के हितों को प्रोत्साहित करना है और उन्हें प्रतिभोगी एवं लाभदायक स्थितियों में रखना है। एनएसआईसी की योजनाएं देश में सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने में काफी उपयोगी पाई गई हैं। योजनाओं से परे सूचनाएं ग्यारहवीं योजना अवधि में निगम द्वारा सरकारी समर्थन से जारी रखने की है।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग में नई परिभाषा के अनुसार निवेश सीमा-

(क) निर्माण उद्योग

1. एक सूक्ष्म उद्योग, जहाँ प्लांट एवं मशीनरी में निवेश 25 लाख रूपए से अधिक नहीं होता है
2. एक लघु उद्योग, जहाँ प्लांट एवं मशीनरी में निवेश 25 लाख रूपए से अधिक लेकिन 5 करोड़ रूपए से कम होता हो, एवं
3. एक मध्यम उद्योग, जहाँ प्लांट एवं मशीनरी में निवेश 5 करोड़ रूपए से अधिक, लेकिन 10 करोड़ रूपए से कम होता है

(ख) सेवा उद्योग

1. एक सूक्ष्म उद्योग, जहाँ उपकरणों में निवेश 10 लाख रूपए से आगे नहीं बढ़ता है
2. एक लघु उद्योग, जहाँ उपकरणों में निवेश 10 लाख रूपए से अधिक, लेकिन 2 करोड़ रूपए से अधिक नहीं है
3. एक मध्यम उद्योग, जहाँ उपकरणों में निवेश 2 करोड़ रूपए से अधिक, लेकिन 5 करोड़ रूपए से कम हो

कुटीर एवं लघु उद्योगों में अन्तर (Difference between Cottage and Small Scale Industries)

(1) कुटीर उद्योग मुख्यत: परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्णकालीन या अंशकालीन धन्धे के रूप में चलाये जाते हैं, जबकि लघु उद्योग सामान्य रूप से मजदूरों व श्रमिकों की सहायता से मुख्य धन्धे के रूप में चलाये जाते हैं। (2) कुटीर उद्योगों में हस्तक्रिया की प्रधानता रहती है, लेकिन लघु उद्योगों में ऐसा होना आवश्यक नहीं है। (3) कुटीर उद्योगों में परम्परागत वस्तुएँ बनायी जाती हैं जो सामान्यतया स्थानीय माँग की पूर्ति करती हैं, जबकि लघु उद्योगों में यान्त्रिक प्रक्रिया अपनायी जाती है और यह विस्तृत क्षेत्र की माँग की पूर्ति करते हैं। (4) कुटीर उद्योगों में पूंजी का विनियोग नाममात्र का होता है, लेकिन लघु उद्योगों में अधिक पूंजी लगायी जाती है। (5) कुटीर उद्योग सहायक उद्योग के रूप में चलाया जाते हैं, जबकि लघु उद्योग मुख्य उद्योग के रूप में। (6) कुटीर उद्योगों में स्थानीय कच्चा माल और कुशलता का उपयोग होता है, जबकि लघु उद्योगों में माल बाहर से मँगाया जा सकता है और तकनीकी कुशलता को भी बाहर से प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का महत्व (Importance of Small Scales Industries in Indian Economy)

1. **बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी में कमी**- लघु उद्योग बेरोजगारी में कमी करते हैं, क्योंकि यह कम पूंजी से अधिक व्यक्तियों को रोजगार देने में समर्थ होते हैं।
2. **ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुकूल**- भारत की लगभग 58.4 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहती है, लेकिन कृषकों को पूरे वर्ष भर कार्य नहीं मिल पाता है। अतः लघु उद्योग उनके लिए महत्वपूर्ण हैं और हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुकूल हैं।
3. **आय के समान वितरण में सहायक**- लघु उद्योगों का स्वामित्व लाखों व्यक्तियों व परिवारों के हाथ में होता है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण नहीं हो पाया है तथा आय के समान वितरण में भी सहायता मिलती है।
4. **व्यक्तित्व एवं कला का विकास**- लघु उद्योग व्यक्तित्व एवं कला का विकास करने में सहायक होते हैं।
5. **औद्योगिक विकेन्द्रीकरण**- लघु उद्योगों से देश में उद्योगों के विकेन्द्रीकरण में सहायता मिलती है। बड़े उद्योग तो कुल विशेष बातों के कारण एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं, लेकिन लघु उद्योग तो गाँवों व कस्बों में होते हैं।
6. **कम तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता**- लघु उद्योगों की स्थापना में कम पूंजी के साथ-साथ कम तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है तथा कर्मचारियों को प्रशिक्षण भी कम मात्रा में देकर काम चलाया जा सकता है। इस प्रकार यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए सर्वोत्तम है।
7. **शीघ्र उत्पादन उद्योग**- इन उद्योगों की स्थापना के कुछ समय बाद ही उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है इसीलिए उनको शीघ्र उत्पादन उद्योग कहते हैं। भारत में वस्तुओं की सामान्य कमी बनी रहती है जिसको दूर करने में यह अपना महत्वपूर्ण योगदान दे

Downloaded From www.studymasterofficial.com

सकते हैं।

8. **निर्यात में सहायक-** लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का निर्यात बढ़ रहा है जो देश को बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायता दे रहा है। वर्तमान में लघु उद्योगों की वस्तुओं का देश के कुल निर्यात में हिस्सा 35 प्रतिशत बैठता है।
9. **आयात पर कम निर्भरता-** बड़े उद्योग स्थापित करने में कभी तकनीक के लिए, तो कभी मशीनों के लिए, तो कभी कच्चे माल के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है और उनको आयात करना पड़ता है। लघु उद्योगों में ऐसी कोई बात नहीं है न तो मशीनें आयात करनी पड़ती हैं और न तकनीक और न कच्चा माल। इस प्रकार आयात पर निर्भरता कम हो जाती है।
10. **बड़े उद्योगों के लिए सहायक या पूरक-** लघु उद्योग बड़े उद्योगों के लिए सहायक या पूरक के रूप में कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, अर्द्ध-निर्मित माल लघु उद्योग बना सकते हैं जिनका उपयोग बड़े उद्योग निर्मित माल के रूप में करने के लिए कर सकते हैं।
11. **स्थानीय साधनों का प्रयोग-** लघु उद्योग स्थानीय साधनों का उपयोग करते हैं। ये उद्योग ग्रामीणों व छोटे व्यक्तियों को उद्यमी बनाने तथा ग्रामीण बचतों को विनियोजित करने में सहायक होते हैं।

भारत में लघु उद्योगों का योगदान कुल राष्ट्रीय उत्पादन में 10 प्रतिशत, कुल औद्योगिक उत्पादन में 39 प्रतिशत, रोजगार में 32 प्रतिशत व देश के निर्यात में 35 प्रतिशत है। लघु उद्योगों के महत्व के कारण ही इन्हें औद्योगिक नीतियों में मुख्य स्थान दिया गया है। लघु उद्योगों के लिए 590 वस्तुओं का उत्पादन सुरक्षित है।

लघु उद्योगों के विकास के लिए नौ पंचवर्षीय योजनाओं में कुल 21,970 करोड़ रुपए व्यय किए गए। वर्तमान सरकार लघु उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दे रही है। सरकार द्वारा लघु उद्योगों के विकास पर ध्यान देने के कारण इनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई है। 1960-61 में 36 हजार इकाइयाँ लघु उद्योगों के रूप में विद्यमान थी जिनकी संख्या बढ़ते-बढ़ते 2003-04 में 115.2 लाख इकाइयाँ हो गयी हैं। यह इकाइयाँ 8,000 वस्तुओं का निर्माण करती हैं। इन लघु उद्योगों के विकास हेतु प्रारंभ में 180 वस्तुओं का निर्माण केवल इन्हीं के द्वारा ही करने के लिए सुरक्षित था, लेकिन वर्तमान में 590 वस्तुओं का उत्पादन इनके लिए सुरक्षित है।

लघु उद्योगों की समस्याएं (Problems of Small Scales Industries)

▸ कच्चे माल की समस्या ▸ तकनीक की समस्या ▸ वित्त की समस्या ▸ विपणन की समस्या ▸ बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता ▸ शक्ति की अपर्याप्तता ▸ सूचनाओं व परामर्शों का अभाव ▸ कुशल प्रबन्धकों का अभाव ▸ प्रमाणीकरण का अभाव

▸ अन्य समस्याएँ- (i) बीमार इकाइयाँ, (ii) परिवहन सुविधाओं का अभाव, (iii) विज्ञापन की कमी, व (iv) स्थानीय ऊँचे कर, आदि।

औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणाओं में लघु उद्योगों पर विशेष जोर दियां गया है। इनकी महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं:

1. **सुरक्षित वस्तुओं की संख्या में वृद्धि-** 590 वस्तुओं का उत्पादन लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित है।
2. **लघु उद्योगों की सुरक्षा के लिए विशेष क़ानून-** लघु उद्योगों की सुरक्षा के लिए एक कानून बनाया जा रहा है, जिससे कि अधिक संख्या में लोगों को स्व-रोजगार व देश के औद्योगिक विकास में उचित स्थान मिल सके।
3. **जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना-** देश के प्रत्येक जिले में जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किये जाते हैं जो लघु उद्योगों को प्रत्येक प्रकार की सहायता एवं सेवा प्रदान करते हैं। इन केन्द्रों पर घरेलू उद्योगों के लिए अलग से विभाग होते हैं जो उनकी आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सहायता प्रदान करते हैं। अब तक 422 जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किया जा चुका हैं।
4. **विकास खण्ड एवं विशिष्ट संस्थाओं में सहसम्बन्ध-** विकास खण्ड एवं विशिष्ट संस्थाओं, जैसे लघु उद्योग सेवा संस्थान, आदि में उचित सहसम्बन्ध बनाया जा रहा है जिससे कि लघु उद्योग के विकास में कोई बाधा उपस्थित न हो तथा लघु उद्यमियों को अधिक दूर न जाना पड़े।
5. **बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं में विशेष विभाग-** लघु उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए सभी वित्तीय संस्थाओं व राष्ट्रीयकृत बैंकों में विशेष विभाग खोले जा रहे हैं जिससे कि इस क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं की अनदेखी न की जा सके।
6. **लघु उद्योगों की वस्तुओं के विपणन के प्रबन्ध-** लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपणन के लिए सर्वेक्षण किये जा रहे हैं, क्वालिटी नियन्त्रण की व्यवस्था की जा रही है व वस्तुओं का प्रमाणीकरण किया जा रहा है।

7. **खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग के कार्यों का विस्तार-** आयोग का राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर पुनर्गठन किया जा रहा है जिससे कि यह अपने उत्तरदायित्व को प्रभावी ढंग से निभा सके। खादी का विकास किया जा रहा है तथा खादी एवं ग्राम उद्योग अधिनियम में परिवर्तन किया जा रहा है। खादी कार्यक्रम के विपणन एवं आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा अधिकतम सहायता प्रदान की जा रही है।
8. **हथकरघा उद्योग का विकास-** हथकरघा उद्योग का विकास किया जा रहा है और उनको उचित मात्रा में सूत देने की व्यवस्था की जा रही। हथकरघा उद्योग की मिल या पावरलूम उद्योग से अनुचित प्रतियोगिता न हो इस बात की विशेष ध्यान रखा जा रहा है। हथकरघा उद्योग के लिए कुछ विशेष प्रकार के कपड़ों का उत्पादन सुरक्षित कर दिया गया है। उसकी समीक्षा करके उसमें वृद्धि की जायेगी और कुछ नयी वस्तुएँ इसमें जोड़ दी जायेंगी।
9. **उचित तकनीक-** लघु उद्योगों के लिए इस बात की व्यवस्था की जा रही है जिससे कि वे साधारण मशीनें व उपकरण काम में ले सकें और उत्पादकता एवं आमदनी बढ़ा सकें।
10. **भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक-** 2 अप्रैल, 1990 को लघु उद्योगों की आर्थिक सहायता के लिए यह बैंक स्थापित किया गया है जिसका मुख्यालय लखनऊ में है।

लघु औद्योगिक नीति, 1991:- 6 अगस्त, 1991 को भारत सरकार ने पृथक रूप से एक लघु औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति में लघु औद्योगिक क्षेत्र के लिए वित्तीय समर्थन दिए जाने, गुणवत्ता में सुधार, आधुनिकीकरण एवं तकनीकी सुधार, नियमों एवं प्रक्रियाओं का सरलीकरण आदि पर विशेष बल दिया गया। साथ ही अति लघु इकाइयों हथकरघा तथा ग्रामीण उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन दिए जाने का उल्लेख इस नीति में किया गया है। इस नीति के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

- अन्य औद्योगिक उपक्रमों द्वारा लघु क्षेत्र की इकाइयों की इक्विटी पूंजी में भागीदारी की जा सकेगी। किन्तु यह कुल शेयर पूंजी के 24% से अधिक नहीं होगी।
- उद्योगों से संबंधित समस्त सेवा क्षेत्र एवं व्यावसायिक इकाइयों को अब लघु क्षेत्र में सम्मिलित किया जाएगा।
- लघु क्षेत्र द्वारा बेचे गए माल की कीमत वसूली के लिए फैक्टरिंग सेवाओं का विकास किया जाएगा।
- अति लघु इकाइयों (Tiny units) में पूंजी विनियोग की सीमा 2 लाख से बढ़ाकर 5 लाख कर दी गई है।
- महिला उद्यमियों की परिभाषा में संशोधन करके यह शर्त हटा दी गई कि ऐसी इकाइयों में महिला श्रमिकों को प्रधानता होनी चाहिए।
- लघु उद्योगों में विनियोग की सीमा 60 लाख रुपये तथा सहायक (Ancillary) एवं निर्यातोन्मुख लघु उद्योगों में विनियोग की सीमा 75-75 लाख रुपये निर्धारित की गई है।
- लघु क्षेत्र के निर्यातों को समर्थन देने के लिए लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) को प्रमुख संस्था के रूप में मान्यता दी गई है।
- लघु उद्योग क्षेत्रों को जहां भूमि आवंटन, विद्युत कनेक्शन में वरीयता एवं तकनीकी उन्नयन सुविधाओं की सुलभता केवल एक बार मिलेगी वहीं अति लघु उद्योगों को यह लाभ निरन्तर प्राप्त होते रहेंगे।

लघु उद्योगों की विलम्बित भुगतान समस्या की हल करने के लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) की सुविधाओं का जाल पूरे देश में बिठाया जाएगा और इन्हें वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से चलाया जाएगा।

लघु उद्योग निवेश सीमा :- लघु उद्योगों में प्लाण्ट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 1 करोड़ रुपए है। अति लघु इकाइयों में निवेश की सीमा को 25 लाख रुपये पर अपरिवर्तित रखा गया है। लेकिन उच्च तकनीक एवं निर्यात उद्योगों आदि के लिए लघु उद्योग की सीमा 5 करोड़ रुपए कर दी गई है।

औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness)

1. बीमार औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के अंतर्गत बीमार औद्योगिक इकाई को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :- "बीमार औद्योगिक कंपनी उसे कहा जायेगा जो कम से कम सात वर्षों से रजिस्टर्ड हो तथा जिसमें किसी वित्तीय वर्ष के अंत में उसकी कुल स्वामित्व-पूंजी (Net-worth) के बराबर या उससे अधिक घाटा संचित (Accumulated Loss) है और उसे ऐसे वित्तीय वर्ष तथा उसके ठीक पहले के वित्तीय वर्ष में भी नकद घाटा (Cash Loss) सहन करना पड़ा है।" इस प्रकार इस

DISCOVERY
Downloaded From www.studymasterofficial.com

परिभाषा में तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं :

(i) किसी वित्तीय वर्ष के अंत में उसमें संचित घाटा उसकी सकल खरी पूंजी (Entire net-worth) से अधिक हो तथा

(ii) उस वित्तीय वर्ष में भी तथा उसके ठीक पहले के वित्तीय के वर्ष में भी उसे नकद-घाटा (Cash-Loss) सहन करना पड़ा हो। शुरू में इस अधिनियम के अधीन केवल निजी क्षेत्र की इकाइयों को शामिल किया गया था परंतु दिसंबर, 1991 के अधिनियम में दो परिवर्तन किये गये-रजिस्ट्रेशन की अवधि 7 वर्षों से घटाकर 5 वर्ष कर दी गयी तथा नक़द-हानि को छोड़ दिया गया।

2. औद्योगिक रूग्णता और सामूहिक पुनर्निर्माण संबंधी समिति के अनुसार ऐसी इकाइयों को रूग्ण माना जाना चाहिए जिनके मामले में (i) मियादी उधार देने वाली संस्थाओं को पुनर्भुगतान पर 180 दिन या इससे अधिक की देरी हो; (ii) नकद ऋणों में अनियमितताएं या 180 दिन या अधिक के लिए कार्यशील पूंजी बाधित हो।

3. कंपनी (संशोधन) विधेयक, 2002 के अनुसार किसी कंपनी को रूग्ण औद्योगिक कंपनी तब कहा जायेगा जब विगत लगातार चार वर्षों में से किसी एक या अधिक वर्षों में वित्तीय वर्ष के अंत इसकी संचित हानि देयताओं को भुगतान करने में असफल रही हो।

औद्योगिक रुग्णता के लक्षण (Symptoms of Industrial Sickness)

▸ कार्यशील पूंजी प्रबन्ध के स्तर में गिरावट ▸ रोकड़ प्रबन्ध की कठिनाइयां ▸ अधिविकर्षों पर बढ़ती निर्भरता ▸ वैधानिक दायित्वों की पूर्ति में त्रुटि ▸ बिक्री में निरन्तर कमी ▸ पूंजी ढांचे के बढ़ते दोष ▸ सम्पत्तियों के लिखे मूल्यों की तुलना में वास्तविक मूल्यों में निरन्तर कमी। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा संकलित 31 मार्च, 2002 की सूचना के अनुसार, 1,77,336 रुग्ण/कमजोर इकाइयां थीं जिनमें से लघु उद्योग क्षेत्र की 1,67,574 इकाइयां और गैर-लघु उद्योग क्षेत्र की 9,762 इकाइयां थी।

औद्योगिक रुग्णता के कारण (Causes of Industrial Sickness)

1. **जन्मजात रूग्णता**
   - अनुभव का अभाव
   - परियोजना शुरू करने में विलंब
   - स्थानीयकरण
   - तकनीकी तत्व
   - वित्त की कमी
2. **आंतरिक कारण**
   - वित्तीय व अन्य प्रकार का कुप्रबंध
   - उपक्रम के स्वामित्वों में स्वार्थपरता एवं तीव्र मतभेद
   - दुर्बल औद्योगिक संबंध
3. **बाह्य कारण**
   - मांग में कमी आ जाना
   - सरकार की गलत नीतियां
   - आर्थिक शिथिलता या मंदी
   - शक्ति संकट
   - अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में परिवर्तन
   - क्रांतिकारी प्राविधिक परिवर्तन

औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय (Remedial Measures for Industrial Sickness)

1. **अविलंब उपाय**
   - रियायती वित्त

www.Downloaded from www.dulvirasterofficial.com
DISCOVERY

- सरकारी सहायता
- वृहत् स्वस्थ इकाइयों में संविलयन
- परामर्श सहायता
- प्रबंध में परिवर्तन

2. **दीर्घकालीन निरोधक उपाय**
   - प्रोजेक्ट जांच
   - प्रारंभोपरांत जांच
   - समन्वय की आवश्यकता

औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (BIFR)

1985 में औद्योगिक रुग्णता की समस्या पर विचार हेतु गठित तिवारी समिति की सिफारिशों के आधार पर रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम (Sick Industrial Companies (Special Provision) Act& SICA 1985) पारित किया गया बाद में वृहत् और मध्यम क्षेत्र की बीमार और सम्भावित बीमार कम्पनियों के पुनरुत्थान उधार उपचार, पुनर्संगठन, पुनर्स्थापन आदि के उद्देश्य से 12 जनवरी, 1987 को औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्संगठन बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction) की स्थापना बीमार औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम के अन्तर्गत की गई।

राष्ट्रीय कम्पनी विधि पंचाट (National Company Law Tribunal)

बीमार औद्योगिक कम्पनियों के पुनर्गठन के लिए एक नई व्यवस्था कायम करने वाले विधेयक को 16 दिसम्बर, 2003 को संसद द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। इस विधेयक में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बायफर) और उसके अपीलीय प्राधिकरण (ए.आई.एफ. आर.) के स्थान पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि पंचाट (एन.सी.एल.टी.) बनाने का प्रावधान है। यह पंचाट औद्योगिक कम्पनियों की रुग्णता का अध्ययन कर इनका समाधान करेगा। राष्ट्रीय कम्पनी विधि पंचाट की मुख्य पीठें दिल्ली में होंगी जबकि इसके कार्यालय देश के विभिन्न शहरों में खोले जाएंगे। इसमें अध्यक्ष और प्रमुख सदस्य 203 पद होंगे।

उद्योगों के सन्दर्भ में सरकार की नीति (Government Policies Regarding Industries)

1. **राष्ट्रीयकरण:-** सरकार संसद में अधिनियम पारित करके निजी क्षेत्र के किसी उद्योग अथवा उद्योग की किसी इकाई का राष्ट्रीयकरण कर सकती है। यदि अधिनियम पास करना तत्काल संभव न हो तो भी राष्ट्रपति द्वारा विशेष रूप से जारी किये गये अध्यादेश के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। जिसे बाद में अधिनियम पास करके संसद से अनुमोदित करा लिया जाता है। पिछले वर्षों में केंद्रीय सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के अनेक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। सन् 1985 के दौरान केवल तीन औद्योगिक उपक्रमों का ही राष्ट्रीयकरण संबंधित राज्य सरकारों द्वारा किया गया, जबकि सन् 1986 में नौ औद्योगिक कंपनियों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1991 के बाद राष्ट्रीयकरण के प्रति रूझान निजीकरण के प्रति झुकाव ने ले लिया है।
2. **संविलयन एवं एकीकरण:-** संविलयन एवं एकीकरण के संबंध में सरकार की नीति यह रही है कि जहां तक संभव हो, उसी औद्योगिक समूह के अंतर्गत किसी अन्य सुदृढ़ उपक्रम के संविलयन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसके लिए भारत सरकार द्वारा आय-कर कानून की धारा 71(A) में संशोधन करके संविलयन की प्रक्रिया को सरल बनाया गया है, ताकि ऐसे संविलयनों को प्रोत्साहन मिल सके।
3. **रूग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान अधिनियम, 1985):-** इस अधिनियम को पारित करके सरकार ने एक नया महत्वपूर्ण कदम उठाया है, जिसमें औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड की व्यवस्था की गयी है। रूग्ण औद्योगिक कंपनी के निदेशक बोर्ड के लिए यह आवश्यक होगा कि वह कंपनी की रूग्णता की सूचना औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड को दे। यह बोर्ड इन

Downloaded From www.studymasterofficial.com

सब मामलों का परीक्षण करेगा और आवश्यक निर्देश देगा।

4. **सीड पूंजी योजनाएं** (Seed Capital Plans) :- लघु उद्योगों के क्षेत्र में रूग्णता को कम करने के लिए यह आवश्यक होगा कि उचित समय पर उन्हें पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराया जाये। इस उद्देश्य से बैंकों द्वारा सीड पूंजी योजनाएं चलायी गयी हैं।

5. **कंपनी (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2002:-** यह विधेयक एक राष्ट्रीय कंपनी विधि ट्रिब्युनल (National Company Law Tribunal-NCLT) के गठन का प्रावधान करता है यह कार्य जो इस समय कंपनी विधि ट्रिब्यनल (National Low Board-CLB) (विवाद समाधान एवं कंपनी अधिनियम, 1956 के कुछ उपबंधों का अनुपालन), औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (BIFR) (रूग्ण कंपनियों का पुनर्स्थापन एवं पुनर्वास) और उच्च न्यायालयों (कंपनियों को बंद करना) द्वारा संचालित किये जायेंगे। SICA की तुलना में नये कानून के अनेक लाभ हैं। रूग्णता को पुन: परिभाषित किया गया है, एक पुनर्स्थापन एवं पुनर्वास निधि स्थापित की गयी है, ऋणदाताओं से संरक्षण वापस ले लिया गया है। NCLT अब विद्यमान तीन मंचों के स्थान पर कंपनियों के लिए एक अकेला मंच होगा।

6. **अन्य कार्यक्रम** (Other Programmes)

   (i) रिजर्व बैंक द्वारा एक विशेष प्रकोष्ठ (Special Cell) की स्थापना की गयी जो बीमार इकाईयों के उपचार के लिए बैंकों द्वारा किये जाने वाले प्रयासों की समीक्षा करती है।

   (ii) औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के पुर्नसंस्थापन एवं वित्तीय विभाग में भी एक विशेष प्रकोष्ठ की स्थापना की गयी है। जिसमें बैंकों द्वारा बीमार इकाइयों के प्रेषित मामलों पर विचार किया जाता है, रूग्णता के कारणों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है तथा उपर्युक्त पुर्नसंस्थापन कार्यक्रम (Rehablitation Programme) निर्धारित किया जाता है।

   (iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों के स्तर पर अंतरसंस्था समन्वय समितियों (Inter Institutional co-ordination Committees) की स्थापना की गयी है।

   (iv) इन समितियों के सुझाव पर बीमार इकाइयों के लिए मार्जिन-मनी योजना (Margin & Moniy Scheme) प्रायोगिक तौर पर पांच वर्ष के लिए लागू की गयी है जिसके अंतर्गत आसान शर्तों पर ऐसी इकाइयों को कुछ न्यूनतम कोषों की प्राप्ति हो जायेगी।

   (v) भारतीय स्टेट बैंक भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह पुनरूद्धार की दिशा में गुणात्मक दृष्टि से भी प्रयास कर रहा है। बैंक ने पुनरूद्धार कार्यक्रम के विषय में कुशल प्रशिक्षण भी देने की व्यवस्था की है। पुनरूद्धार योजनाओं को लागू करने की दिशा में स्टेट बैंक सतर्कतापूर्वक रूग्ण एवं कमजोर औद्योगिक इकाइयों के वित्तीय मामलों पर नजर रखे हुए है।

औद्योगिक रूग्णता पर गोस्वामी समिति

मई, 1993 में भारत सरकार द्वारा कंपनियों के पुनर्गठन और औद्योगिक रूग्णता की समस्या पर सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए गोस्वामी समिति का गठन किया गया जिसे औद्योगिक रूग्णता एवं कंपनियों के पुनर्गठन हेतु समिति (Committee on Industrial Sickness & Corporate Recontruction) के नाम से जाना जाता है। समिति ने अपनी रिपोर्ट 13 जुलाई, 1993 को वित्त मंत्रालय को प्ररूतुत कर दी। इस समिति की सिफारिशें निम्नलिखित हैं :

1. वह वित्तीय इकाई अस्वस्थ मानी जानी चाहिए :

   i. जो वित्तीय संसाधन प्रदान करने वाली संस्थाओं को 180 या अधिक दिनों तक किश्त का भुगतान न कर पायी हो तथा

   ii. जिसकी नकदी साख (Cach Crdit) या कार्यशील पूंजी में 180 या अधिक दिनों तक अनियमिताएं बनी रही हों।

2. अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों से ऋणों की वसूली के लिए पांच वसूली अधिकरण बनाने की सिफारिश की है जो 50 लाख रूपये के ऊपर के मामलों को देखें।

3. अस्वस्थ इकाइयों के निपटारे में औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड का काफी समय लग जाता है। समिति ने इनके जल्दी निपटारे के उपाय के रूप में पांच बड़े नगरों में पांच फास्ट ट्रैक वाइडिंग अप ट्रिब्यूनल स्थापित करने की सिफारिश की है।

DISCOVER
Downloaded www.vidyasagarofficial.com

4. अस्वस्थ इकाइयों को बंद करते समय या छंटनी करते समय सरकार की अनुमति की अनिवार्यता को समाप्त किया जाये।
5. अस्वस्थ इकाइयों द्वारा औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड में मामले दर्ज कराना अनिवार्य न होकर ऐच्छिक होना चाहिए जिससे बोर्ड के बाहर मामला निपटाने के प्रयास किये जा सकें।
6. BIFR में पेशेवर एवं साथियों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।

बालकृष्ण इराडी समिति

कंपनियों के दिवालियापन के संबंध में सुझाव देने के लिए बी. बालकृष्ण इराडी की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट 31 अगस्त को रिपोर्ट सौंप दी थी। समिति ने कंपनियों के पुनर्गठन के संबंध में सरकारी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन के सुझाव दिये थे। इनमें प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (NCLT-National Company Law Trebunal) के गठन का प्रस्ताव शामिल है। जिसे कंपनी लॉ बोर्ड के सारे अधिकार प्राप्त हों, समिति ने प्रस्तावित न्यायाधिकरण के माध्यम से ही वह सारे कार्य निपटाने की संस्तुति की थी जो रूग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम (SICA) के तहत फिलहाल औद्योगिक एंव वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (BIFR) तथा औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन अपीली प्राधिकरण (AAIFR) द्वारा निपटाए जा रहे हैं। रूग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम (SICA) के साथ-साथ इन दोनों निकायों को समाप्त करने के सुझाव करने के सुझाव समिति ने अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत किये थे।

असंगठित-अनौपचारिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन

डॉ. अर्जुन सेन गुप्त की अध्यक्षता में असंगठित अनौपचारिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग देश के श्रम कानूनों के अलावा असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों को उपलब्ध सामाजिक सुरक्षा प्रणाली की समीक्षा करेगा। चार सदस्यीय इस आयोग के अध्यक्ष डॉ. अर्जुन सेन गुप्त को कैबिनेट मंत्री का दर्जा दिया गया है। इस आयोग को इन उद्यमों में उत्पादकता बढ़ाने, बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसरों का सृजन करने और प्रतिस्पर्धा बढ़ाने सहित विभिन्न विषयों पर एक वर्ष के अन्दर अपनी सिफारिशें सरकार को देनी हैं।

यह आयोग परामर्शदात्री संस्था के साथ ही अनौपचारिक क्षेत्र के प्रहरी की भूमिका भी निभायेगा। सरकार ने इस आयोग की कार्यशर्तें 21 सितम्बर, 2004 को निर्धारित कर दी हैं। इसके अन्तर्गत यह आयोग असंगठित और अनौपचारिक क्षेत्र के उद्यमों के स्वरूप, उनके आकार उनके विकास और विस्तार की सम्भावनाओं और रोजगार के अवसरों की स्थिति की समीक्षा करेगा।

श्रम-सुधारों के सम्बन्ध में भावी रणनीति व दिशा

उपर्युक्त विवरण के दो महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं, प्रथम, भारत के श्रम-कानून जटिल पुराने होने के कारण विकास की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं हैं और उन्हें उदलने की आवश्यकता है। द्वितीय, उन्हें बदलते समय श्रमिकों व नियोक्ताओं दोनों के हितों का ध्यान रखना होगा। जहां एक तरफ नियोक्ताओं को श्रमिकों की भर्ती और उन्हें निष्कासित करने की कुछ सीमा तक स्वतन्त्रता देनी होगी, वहीं श्रमिकों के लिए निष्कासन की स्थिति में पुनर्प्रशिक्षण व नए काम की व्यवस्था करनी होगी तथा उन्हें पर्याप्त मात्रा में मुआवजा देना होगा ताकि देश में उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार, आमदनी, श्रमिकों की मजदूरी का राष्ट्रीय आय में अंश आदि में वृद्धि हो सके, और श्रम-सुधारों से सरकार, श्रमिकों, नियोक्ताओं, उपभोक्ताओं व सर्वसाधारण को लाभ मिल सके। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए श्रम-सुधारों की भावी रणनीति व दिशा की रूपरेखा निम्नलिखित किस्म की होनी चाहिए।

1. श्रम-कानूनों की वर्तमान अत्यधिक संख्या को घटकार काफी कम कर देना चाहिए। उन्हें सरल व पारदर्शी बनाया जाना चाहिए ताकि सभी पक्ष उनका यथोचित रूप से पालन कर सकें। कुछ लेखकों के अनुसार देश को तीन-चार से ज्यादा राष्ट्रीय स्तर श्रम-कानूनों की आवश्यकता नहीं है। श्रम का किस प्रकार उपयोग किया जाए, यह फर्मों के मैनेजरों के ऊपर ही छोड़ा जाना चाहिए।
2. श्रमिकों की छंटनी, ले-ऑफ व यूनिट को बंद करने लिए राज्य सरकार की अनुमति की आवश्यकता 100 या अधिक श्रमिकों की बजाय प्रारम्भ में 300 या अधिक श्रमिकों के लिए लागू की जानी चाहिए। जब इस परिवर्तन का लाभ रोजगार वृद्धि के रूप में सामने आने लगे तब इस सीमा को और बढ़ाया जा सकता है, अथवा समाप्त भी किया जा सकता है। कि भारत में कोई सात श्रमिक एक उपक्रम में अपना ट्रेड यूनियन बनाकर इसे पंजीकृत करा सकते हैं। इससे एक इकाई में कई यूनियन बनने की सम्भावना होती हैं। इस सुविधा से मजदूरों के हितों को और लाभ नहीं होता। इनकी संख्या सीमित होनी चाहिए।

3. राज्यों में श्रम-सुधारों की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए श्रम को राज्यों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए। वर्तमान में ये समवर्ती सूची (केन्द्र-राज्य की सूची) में शामिल हैं, राज्यों को इन्सपेक्टर राज समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए और प्रारम्भ में इन्सपेक्शन को विवेकपूर्ण बनाना चाहिए।

   श्रम-संघों में मजदूरों की भागीदारी के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश होने चाहिए। उत्पादन की एक इकाई में श्रम-संघ होने से वे श्रमिकों के हितों को लाभ पहुंचाने की बजाय क्षति ज्यादा पहुँचाते हैं। हैं। और अनावश्यक रूप से संघर्ष को बढ़ाते रहते हैं। लेकिन यह प्रश्न राजनीतिक दलों की संख्या से जुड़ा है। इसलिए इसका समाधान भी प्रारम्भ में राजनीतिक स्तर पर ही निकाला जाना चाहिए। न्यायपालिका को भी अवांछित हड़तालों व तालाबंदी पर रोक लगाने की दिशा में प्रयास करना चाहिए।

4. श्रम-सुधारों को निर्यात-प्रोत्साहन-क्षेत्रों व स्पेशल आर्थिक क्षेत्रों में लागू करके उनके प्रदर्शन-प्रभाव को देखा जाना चाहिए। चीन में सेज के श्रम-कानूनों में काफी ढीलें दी गई है। भारत में भी इन क्षेत्रों में श्रम-कानूनों से छूटें दी गई हैं। श्रम-कानूनों की देख-रेख व क्रियान्वयन का काम विकास-कमिश्नरों को देने का प्रयास किया गया है, लेकिन हाले में राज्यों के विरोध के कारण इसे श्रम-कमिश्नरों को दिया जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी व बिजिनेश-प्रोसेस आउटसोर्सिंग (बीपीओ) जैसे क्षेत्रों को सभी राज्यों में श्रम-कानूनों से मुक्त किया गया है। लेकिन यह प्रयास श्रमिकों को सीमित रूप में ही प्रभावित करता है।

5. संविदा व निर्धारित-अवधि के संविदाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। लेकिन नियमित श्रम व संविदा श्रम में आवश्यकता से ज्यादा अंतर कई प्रकार की विकृतियां उत्पन्न करता है।

6. श्रम-सुधारों की सफलता के लिए वस्तु-बाजारों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाना, व्यापार उदारीकरण को प्रोत्साहन देना तथा अन्य क्षेत्रों में आधुनिकीकरण को अपनाना भी जरूरी है।

भारत में वर्तमान समय श्रम-सुधारों के लिए अत्यधिक अनुकूल है, क्योंकि इस समय देश तीव्र विकास दर व तीव्र रोजगार-वृद्धि के दौर से गुजर रहा है। यदि निकट भविष्य में श्रम-कानूनों में सुधार किए गए तो देश विकास की नई ऊंचाइयों को छू सकेगा।

जुलाई, 2008 में प्रकाशित भारत सरकार की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, 2007-2012 के खण्ड-III में एक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया गया है कि भारत में गुणवत्तापूर्ण रोजगार को बढ़ावा देने के लिए असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को मजदूरी पर रोजगार का अवसर दिया जाना चाहिए, ताकि उनको भी वेतन सहित छुट्टी व सामाजिक सुरक्षा का लाभ मिल सके।

औद्योगिक वित्त (Industrial Finance)

आधारभूत संरचना के विकास के लिए बैंकों, बीमा-कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है। औद्योगिक वित्त की सुविधा प्रदान करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले कोई संस्थान नहीं था। अतः 1948 में भारतीय औद्योगिक निगम (IFCI) स्थापित किया गया। इसके बाद 1951 में राज्य-वित्त अधिनियम, 1951 पारित किया गया जिसके अन्तर्गत राज्यों को राज्य वित्त निगम स्थापित करने का अधिकार दिया गया। इस समय 18 राज्यों में यह निगम कार्यरत है। 1955 में औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (ICICI), 1964 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) व 1982 में भारतीय निर्यात-आयात बैंक (Exim Bank) स्थापित किए गए। बाद में भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC) व भारतीय साधारण बीमा निगम (GIC) ने भी उद्योगों को ऋण देना प्रारम्भ कर दिया। वर्तमान में यह सभी संस्थाएं उद्योगों को वित्त सुविधा प्रदान करने का कार्य कर रही हैं।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI:– Indian Industrial Finance Corporation)

IFCI की स्थापना 1 जुलाई, 1948 की औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम 1948 के अन्तर्गत की गई थी, किन्तु 1 जुलाई, 1993 से इस निगम को कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत सार्वजनिक कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य उद्योगों को दीर्घकालीन, मध्यमकालीन एवं अल्पकालीन ऋण प्रदान करना एवं लीजिंग व हायर पर्चेज वित्त का कार्य करना है।

IFCI द्वारा प्रदत्त सहायता के विभिन्न स्वरूप निम्नवत् हैं :

- औद्योगिक संस्थाओं को 25 वर्ष तक के लिए ऋण दे सकता है या उनके ऋण पत्रों को खरीद सकता है।
- 25 वर्ष की अवधि तक के लिए पूंजी बाजार से लिये गये ऋणों की गारण्टी ले सकता है।
- आयात किये गये माल की रकम के भुगतान के लिए गारण्टी दे सकता है।
- औद्योगिक संस्थाओं द्वारा अनुसूचित बैंकों या राज्य सहकारी बैंकों से प्राप्त किये गये ऋण की गारण्टी दे सकता है।
- भारतीय औद्योगिक कम्पनी द्वारा विदेशी बैंक या विदेशी वित्तीय संस्था से ऋण लेने पर यह निगम गारण्टी दे सकता है। IFCI की पंजीकृत पूंजी वर्तमान में 1,000 करोड़ रुपये से अधिक है। अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह संस्था समय-समय पर ऋण पत्र एवं बाण्डों का निर्गम कर सकती है तथा विदेशी संस्थाओं से विदेशी मुद्रा में भी ऋण पत्र प्राप्त कर सकती है। वित्तीय सहायता के अतिरिक्त यह निगम तीन प्रकार की अतिरिक्त सेवाएं प्रदान करता है।
- नये उद्यमियों को तकनीकी सलाह देता है।
- उद्योगों में प्रबन्ध सुधार के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाता है।
- 2 जनवरी, 1988 को जोखिम पूंजी एवं तकनीकी वित्त निगम का गठन किया गया जो नवीन या तकनीकी उद्योगपतियों की परियोजनाओं को बिना ब्याज के ऋण देता है।

राज्य वित्त निगम (SFC)

28 सितम्बर, 1951 को केन्द्र सरकार द्वारा राज्य वित्त अधिनियम पारित किया गया जिसका उद्देश्य राज्य सरकारों को छोटे तथा मध्यम आकार वाले उद्योगों को वित्तीय सहायता करने के लिए राज्यों में राज्य वित्त निगम स्थापित करने का अधिकार देना था। इस समय देश के 18 राज्यों में SFC कार्य कर रहे हैं।

राज्य वित्त निगम अधिनियम के अन्तर्गत राज्य निगमों की अधिकृत पूंजी की न्यूनतम सीमा 1 करोड़ रुपये तथा उच्चतम सीमा 10 करोड़ रुपये निर्धारित की गई है जिसे वर्तमान में 50 करोड़ रुपये तक बढ़ाया जा रहा है।

SFC द्वारा निम्नांकित रूपों में वित्तीय सहायता दी जाती है :

- यह 20 वर्ष तक की अवधि के लिए ऋण प्रदान करता है, किन्तु स्थायी सम्पत्ति के 50% मूल्य तक ही ऋण प्रदान किये जा सकता हैं।
- औद्योगिक संस्था द्वारा अन्य वित्तीय संस्था से ऋण लेने पर यह निगम ऋण की गारण्टी दे सकता है।
- यह निगम औद्योगिक संस्थाओं के अंशों व ऋण पत्रों के अभिगोपन का कार्य कर सकता है।
- यह निगम राज्य सरकार एवं औद्योगिक वित्त निगम जैसी संस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकता है।

भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (ICICI)

ICICI की स्थापना निजी क्षेत्र में 5 जनवरी, 1955 को की गई। इसमें निजी क्षेत्र की पूंजी लगी है।

इस निगम के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं :

- निजी क्षेत्र के उपक्रमों के निर्माण, विकास एवं आधुनिकीकरण में सहायता देना।
- ऐसे उपक्रमों में आन्तरिक एवं विदेशी साधनों से निजी पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहित करना।
- औद्योगिक विनियोग में निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित एवं विनियोग बाजारों का विकास करना।

यह निगम ऋण-पत्रों के आधार पर दीर्घकालीन और माध्यमकालीन ऋण देता है। ऋण-पत्रों का क्रय करता है। निजी क्षेत्र की औद्योगिक

DISCOVERY Downloaded From www.studymasterofficial.com

इकाइयों के अंशों में अभिदान करता है। ऋणों के लिए गारण्टी देता है तथा उद्योगों को प्रबन्ध व तकनकी सलाह भी देता है। यह निगम किसी भी सीमा तक ऋण प्रदान कर सकता है क्योंकि इसके लिए कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं है। यह निगम विदेशी मुद्रा में भी ऋण प्रदान करता है। 1 अप्रैल, 1996 से सरकार ने नौवहन उद्योग की वित्त उपलब्ध कराने वाली SCICI (Shipping Credit and Investment Company of India) का ICICI में विलय कर दिया। वर्ष 2002 में ICICI का ICICI बैंक में विलय कर दिया गया है और यह विलय भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित किया जा चुका है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)

औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम के अन्तर्गत IDBI की स्थापना 1 जुलाई, 1964 को की गई। इस वित्तीय संस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य हैं :

- औद्योगिक संस्थाओं के अंशों एवं बाण्डों को क्रय करना एवं उनका अभिगोपन करना।
- औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देना।
- अनुसन्धान सर्वेक्षण करके तकनीकी आर्थिक अध्ययनों को सम्पन्न करना।
- भावी औद्योगिक विकास के लिए प्राथमिकताओं का क्रम निर्धरित करना।
- दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन औद्योगिक वित्त की मांग एवं पूर्ति में उचित समन्वय स्थापित करना।

IDBI द्वारा प्रदत्त सहायता निम्नांकित रूपों में प्राप्त होती है:

- दीर्घकालीन ऋण देता है तथा औद्योगिक संस्थाओं के ऋण पत्र खरीदता है।
- औद्योगिक संस्थाओं द्वारा लिये गये ऋणों एवं स्थगित भुगतानों की गारण्टी देता है।
- निर्यात के लिए पुनर्वित्त की सुविधा देता है।
- औद्योगिक संस्थाओं के अंश खरीदता है।
- उद्योगों के लिए अनुसंधान एवं सर्वेक्षण करता है।

इस बैंक द्वारा स्वीकृत ऋणों एवं भुगतानों में बराबर वृद्धि हो रही है। वर्ष 1990 में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) की स्थापना के बाद इस बैंक के लघु एवं लघुत्तर उद्योगों को ऋण प्रदान करने के दायित्व अब SIDBI को हस्तान्तरित कर दिये गये हैं।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)

SIDBI की स्थापना 2 अप्रैल, 1990 को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के एक सहायक बैंक के रूप में की गई। SIDBI को लघु एवं लघुत्तर उद्योगों की स्थापना, वित्त पोषण, विकास आदि के लिए वित्त देने का दायित्व सौंपा गया है। इस बैंक का मुख्यालय लखनऊ में है। इसके अतिरिक्त इसके 5 क्षेत्रीय कार्यालय एवं 21 शाखा कार्यालय अब तक स्थापित किये जा चुके हैं। SIDBI लघु उद्योगों को व्यापारिक बैंकों, सहकारी तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा राज्य औद्योगिक वित्त निगमों के माध्यम से सहायता प्रदान करता है। SIDBI भारतीय पूंजी बाजार में तथा विदेशी संस्थाओं से विदेशी मुद्रा में ऋण भी ले सकता है।

1992-93 से SIDBI ने लघु औद्योगिक इकाइयों के लाभार्थ तीन नयी योजनाएं आरम्भ की हैं:

- जोखिम पूंजी निधि के अन्तर्गत सहायता की योजना।
- लाभ अर्जित करने वाली कम्पनियों के लिए उपकरण वित्त योजना।
- राष्ट्रीय वस्त्र निगम के कर्मियों के पुनर्वास के लिए पुनर्वित योजना।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) ने भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) के इक्विटी का 51% भाग बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थानों को देने की योजना बनाई है। वर्तमान में सिडबी के 45 करोड़ शेयर (प्रति शेयार 10 रुपए मूल्य) IDBI के पास हैं। हाल ही

DISCOVERY
www.discoveryofficial.com
Downloaded From

में इसे एक स्वतंत्र निकाय बना दिया गया है।

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (UTI)

UTI की स्थापना यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया अधिनियम के अन्तर्गत 1 जुलाई, 1964 को की गई। UTI की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य थे:

- जनता की बचत को एकत्रित करना।
- छोटे-छोटे विनियोजकों को यूनिट बेचकर बचत एकत्रित करके पूंजी में वृद्धि करना।
- इस संचित बचत को उद्योगों में विनियोजित करना। UTI अपने एकत्रित धन को नई कम्पनियों के अंशों में या पुरानी कम्पनियों के अंशों में लगा देता है। UTI ऋण-पत्रों को भी खरीद सकता है और सरकारी प्रतिभूति में भी धन का विनियोग कर सकता है। UTI अपनी यूनिटें जुलाई माह में सबसे कम कीमत पर बेचता है। 2 अप्रैल, 1994 से UTI ने 'UTI Bank Limited' नाम से एक बैंक स्थापित कर दिया है जिसकी अधिकृत पूंजी 200 करोड़ रुपये है तथा जिसका मुख्यालय अहमदाबाद में है।

भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI) का दो अलग-टलग इकाइयों- यूटीआई-I और यूटीआई-II में औपचारिक विभाजन 1 फरवरी, 2003 से प्रभावी हो गया है। यूटीआई-I में यूएस-64 सहित 26 ऐसी योजनाएं हें जिनमें सरकार की तरफ से लाभ देने के बारे में वचनबद्धता है। इनकी कुल परिसम्पत्तियां लगभग 35 करोड़ रुपए बताई गई हैं। दूसरी इकाई यूटीआई-II जो सेबी (SEBI) के नियमों के अन्तर्गत एक म्यूचुअल फण्ड के रूप में कार्य कर रही है, को शुद्ध परिसम्पत्ति मूल्य (NAV) आधारित 47 योजनाएं सौंपी गई हैं।

भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (IIBIL)

1985 में गठित भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (IRBI) के स्थान पर एक पूर्ण बहुउद्देश्यीय विकास वित्त संस्था के रूप में सरकार ने कम्पनी अधिनियम 1956 के अधीन 17 मार्च, 1997 को भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक लिमिटेड (IIBIL) स्थापित किया है। वर्तमान में IIBIL अन्य विकास वित्त संस्थाओं IDBI, IFCI, ICICI आदि की तरह स्वतंत्र विकास वित्त संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। वर्तमान में IIBIL की अधिकृत पूंजी 1,000 करोड़ रुपए है और इसका मुख्यालय कोलकाता में है।

भारतीय निर्यात-आयात बैंक (Exim Bank)

देश के निर्यातकों एवं आयातकों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से भारतीय निर्यात-आयात बैंक की स्थापना 1 जनवरी, 1982 को भारतीय निर्यात-आयात बैंक अधिनियम, 1981 के अधीन की गई। यह बैंक भारत के साथ-साथ तीसरी दुनिया के देशों (Third World Countries) को भी निर्यात एवं आयात वित्त सुविधाएं उपलब्ध कराता है। भारतीय निर्यात-आयात बैंक की चुकता पूंजी 5 बिलियन रुपये (117.84 मिलियन डॉलर) है।

उद्योग क्षेत्र में चुनौतियां और दृष्टिकोण

मौजूदा वैश्विक और देशीय परिदृश्य भारतीय उद्योग के समक्ष बहुत बड़ी चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। साथ ही कितने ही सकारात्मक कारक हैं जो भारत के लिए, उसके अपने यहां और अधिकांश अन्य देशों के संबंध में भी औद्योगिक दृष्टिकोण को मध्यावधिक रूप से उज्ज्वल करते हैं।

प्रथम, विश्व मंच पर, व्यापारिक साझेदार ऐसी प्रवृत्तियों में लग सकते हैं जिससे वे भारतीय बाजार में अपने वस्तुओं/सामान की भरमार कर दें। इसका उपाय इस प्रकार खोजना होगा कि निविष्टि लाभ प्राप्त करने की आवश्यकता तथा भारतीय उद्योग के न्यायोचित हितों को संरक्षित करने के मध्य संतुलन बना रहे। उद्योग की संभावित वैश्विक पुनर्संरचना के लिए उपाय किए जा रहे हैं, इसलिए भारतीय उद्योग के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वह सावधानीपूर्वक निर्माण करे तथा लागत लाभ बनाए रखे।

द्वितीय, भारतीय बाजार के विस्तार तथा औद्योगिक उत्पादों के लिए पूरी न हुई मांग से यह आशा उचित है कि मांग अपने आप में कोई अवरोधक नही है। ज्यादातर यह महसूस किया जा रहा है कि ऊपर आने के लिए यानि मंदी से उबरने के लिए उद्योग, सचेत प्रयास करें। उद्योग को ऐसा करने में समर्थ बनाने के लिए, उसे ऐसे उत्पादों जो लगी पूंजी का मूल्य लागत प्रभावी ढंग से दे सके, का वितरण करने

Downloaded From www.studymasterofficial.com

की आवश्यकता होगी। वैज्ञानिक श्रम शक्ति और अनुसंधान प्रयोगशालाओं- विशेषकर सरकारी क्षेत्र में आने वाली, का एक बहुत बड़ा भाग उत्पादों एवं प्रक्रियाओं के नवीकरण की संभाव्यता प्रदान करता है। तथापि, नवीकरण वृद्धि का मुख्य प्रेरक बने, इसके लिए उद्योग और अनुसंधान जगत को समयबद्ध ढंग से और परिणामोन्मुखी होकर सक्रिय रूप से सहयोग करने की आवश्यकता है।

तृतीय, सुदृढ़ उद्यमीय क्षमताओं सहित भारतीय औद्योगिक कारपोरेट सेक्टर की अंतर्भूत ताकत पर्याप्त आशा प्रदान करती है कि वे मौजूदा बदलावों को समायोजित करते हुए गतिशीलता प्रकट करते रहेंगे। इस गतिशीलता को अच्छे कारपोरेट मानकों का पालन करने, से क्रम किए जाने की आवश्यकता है।

चतुर्थ, अवसंरचना के लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना दौरान और उसके आगे बनायी गयी उच्च निवेश वाली आयोजनाओं से आशा है कि इनसे उद्योग के लिए बाध्यकारी आधारभूत संरचनात्मक प्रतिबंधों में कमी होगी। यह चुनौती यह सुनिश्चित करने पर निर्भर करती है कि अवसंरचना परियोजनाओं में ऐसे निवेशों से अवसंरचना में वृद्धि के लिए शीघ्र लाभ मिलने लगें। ये न केवल आपूर्ति संबंधी बाध्यताओं को कम करे बल्कि औद्योगिक वृद्धि के लिए अपेक्षित अतिरिक्त घरेलू मांग में भी बढ़ोत्तरी करें।

पंचम, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतप्रर्वाहों के लगातार प्रवाह से पुन: इस सकारात्मक दृष्टिकोण की पुष्टि होती है कि भारतीय बाजार में निवेश करने तथा उत्पादकता वृद्धि पर आधारित प्रतिलाभ प्राप्त करने की सामर्थ्य है। साथ ही, भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए तत्काल स्वरूप वाली प्राथमिकताओं तथा दीर्घावधिक महत्त्व की प्राथमिकताओं, जिनमें पर्यावरणीय मामले भी शामिल हैं, के मध्य संतुलन बनाए जाने की आवश्यकता है।

षष्ठ, भारत को कौशल और प्रतिभा के एक विशाल समूह के रूप देखा जाता है जिसकी अत्यधिक विविधता और जनसांख्यिकीय लाभ हैं। तथापि, औद्योगिक सेक्टर में कौशल की अत्यधिक कमी है। यह शीघ्रता, जिसके साथ इस कौशल की कमी को पूरा किया जाता है, अनुसंधान एवं विकास और प्रौद्योगिकीय नवीनताओं को सुदृढ़ बनाएगी। से नवीनताएं रसायन, आटोमोटिव और फार्मास्यूटिकल जैसे महत्त्वपूर्ण उद्योगों के लिए अत्यंत आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, श्रम-प्रधान उद्योगों-विशेषकर श्रम कानूनों और श्रम बाजार विनियमों की समीक्षा करने, की अत्यावश्यकता है। यह, विशेष रूप से, मौजूदा विनिर्माण रोजगार प्रवृत्तियाँ, जो अधिक प्रेरक नहीं हैं को बदलने में आवश्यक है। इसके अलावा, कोयला, लौह अयस्क, प्राकृतिक गैस और वानिकी संसाधनों जैसे महत्त्वपूर्ण कच्चे माल की गंभीर कमी इसके रिक्त होते भंडारों से अनेक उद्योगों में वृद्धि बाधित होती है।

इस बात के सकारात्मक संकेत हैं कि भारतीय उद्योग मंदी के इस भयानक दौर से शायद बचकर निकल गया है और अब वह सुधार की ओर लौट रहा है। कुछ सकारात्मक संकेत हैं- विद्युत उत्पादन में हाल में बढ़ोत्तरी का रूख, सीमेन्ट उत्पादन में वृद्धि तथा बैंक क्रेडिट के उठान में वृद्धि। लगातार विदेशीप्रत्यक्ष निवेश के प्रवाह से इस बात के संकेत है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में, विशेष भारतीय उद्योग में विदेशी निवेशक का विश्वास है कच्चे तेल की कीमतों, निविष्टि कीमतों और ब्याज दरों में कमी उद्योग को अपने लाभ-मार्जिनों, जो दबाव में रह रहे हैं, को सुधारने में मदद करेगी। अग्रणी संकेतकों और परचेजिंग मैनेजर्स इंडेक्स एवं निवेश मंशाओं जैसे विभिन्न अनुसंधान विश्लेषकों द्वारा एकत्रिक अन्य सॉफ्ट जानकारी से भी मांग एवं पूर्ति के संदर्भ में बढ़ते रूख का संकेत मिलता है।

इसके बारे में भी पर्याप्त सहमति है कि बाजार की स्थिति को देखते हुए, मूल्य अवस्फीति का सामना करने की संभावना बिल्कुल भी नहीं है। यह तथ्य, कि भारत का एक बहुत बड़ा घरेलू बाजार है। जिसमें औद्योगिक वस्तुओं को अपने यहां खपाने और साथ ही अवसंरचना के विकास के लिए निविष्टियों की बहुत अधिक संभावना है, स्पष्ट परिलक्षित होता है कि मांग पक्ष विस्तार की गुंजाइश प्रदान करता है। इस अवस्था पर, जब अधिकांश औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगिक उत्पादन एवं मूल्यों की संभानाएं कम ही दिखायी देती हैं, फिर भी मूल्यों, उत्पादन और बाजार-विस्तार की समाकृति भारतीय उद्योग को निवेश का एक आकर्षक गंतव्य बनाती है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

Downloaded From
www.studymasteroffical.com

DISCOVERY®

...Discover your mettle

सामान्य अध्ययन

भारतीय अर्थव्यवस्था

मुख्य परीक्षा

(भाग-2)

भारत की विश्व के साथ पारस्परिक आर्थिक क्रिया

Downloaded From
www.studymasteroffical.com

Personal copy
not for sale
and circulation

Head Office (B-14) Basement Commercial Complex Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
E-mail:discoveryiasacademy@gmail.com
Enquiry: 011-32906050, 9313058532, 9999044179

Lucknow Branch: Arif chamber iv, Ist Floor Above Maha Laxmi Sweets. Purania chauraha Aliganj
PH: 08960240900

Visit us at: www.discoveryiasacademy.com

nloaded
masterofi

विषय सूची

विदेशी व्यापार Foreign Trade (1–19)

- प्रमुख शब्दावली (Important Terms)
- भूमिका (Introduction)
- चुनिंदा देशों में व्यापार ऋण में कमी के संबंध में नीतिगत उपाय
- व्यापार संरचना (Trade Structure)
- विदेश व्यापार नीति 2009–14 (Foreign Trade Policy 2009–14)
- व्यापार नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु सरकार द्वारा किए गए उपाय
- क्षेत्रीय व्यापार समझौता (Regional Trade Agreement)
- क्षेत्रीय व्यापार समझौते एवं डब्ल्यू.टी.ओ. (RTAs and WTO)
- क्षेत्रीय व्यापार समझौतों पर भारत का दृष्टिकोण
- व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (CECA: Comprehensive Economic Cooperation Agreement)/ व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौता (CEPA: Comprehensive Economic Partnership Agreement)
- क्षेत्रीय व्यापार समझौते एवं भारत (RTAs and India)
- सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र (Most Favoured Nation)

विदेशी निवेश Foreign Investment (20–28)

- प्रमुख शब्दावली (Important Terms)
- विदेशी निवेश (Foreign Investment)
- विदेशी निवेश के प्रमुख स्त्रोत (Main Sources for Foreign Investment)
- प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति (Foreign Direct Investment Policy)
- खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI in Retail Trade)
- रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI in Defence)
- विदेशों में भारतीय निवेश हेतु रियायतें (Concessions for Indian Investments Abroad)
- विदेशी निवेश के मार्ग (Routes of Foreign Investments)

ऊर्जा प्रवाह से संबंधित आर्थिक एवं राजनयिक उपाय Economic and Diplomatic Measures Relating to Energy Flows (29–47)

- विश्व ऊर्जा परिदृश्य (World Energy Scenario)
- ऊर्जा सुरक्षा तथा ऊर्जा कार्यकुशलता (Energy Security and Energy Efficiency)
- ऊर्जा संसाधनों की भू-राजनीति (Geopolitics of Energy Resources)
- मध्य पूर्व में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Middle East)
- भारत और मध्य पूर्व (India and the Middle East)
- मध्य एशिया में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Central Asia)
- मध्य एशिया में भारतीय हित (India's Interests in Central Asia)
- अफ्रीका में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Africa)
- अफ्रीका में भारतीय हित (India's Interests in Africa)
- लैटिन अमेरिका में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Latin America)
- लैटिन अमेरिका में भारतीय हित (India's Interests in Latin America)
- ऊर्जा संकट (Energy Crisis)
- तेल की कीमतों में हाल की प्रवृत्तियां (Recent Trends in Oil Prices)
- प्रमुख तेल एवं गैस पाइपलाइन (Important Oil and Gas Pipelines)
- ऊर्जा सुरक्षा के क्षेत्र में भारत द्वारा किए जा रहे हाल के प्रयास

भारत की प्रमुख वैश्विक संस्थाओं के साथ आर्थिक अंत: क्रिया India's Economic Interaction with Important International institutions (48–59)

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF: International Monetary Fund)
- विश्व बैंक (WORLD BANK)
- विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO: World Intetectual Property Organisation)
- विश्व व्यापार संगठन (WTO: WORLD TRADE ORGANISATION)
- विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (WTO Ministerial Conference)
- व्यापार एवं पर्यावरण (Trade & Environment)
- बायोपाइरेसी (Biopiracy)
- WTO में विवाद के विषय और भारत का दृष्टिकोण (Disputs in WTO and India's Stands)

Downloaded From www.studymasteroffical.com

1. विदेशी व्यापार
Foreign Trade

Downloaded From www.studymasterofficial.com

प्रमुख शब्दावली (Important Terms)

दृश्य खाता (Visible Accounts)

इसे पण्य खाता (Merchandise Account) या व्यापार खाता (Trade Account) भी कहते हैं। इस खाते में वस्तुओं के आयात एवं निर्यात को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण काफी, चाय, ज्वैलरी, पेट्रोलियम आदि वस्तुएं।

अदृश्य खाता (Invisible Accounts)

अदृश्य मदों से तात्पर्य ऐसी मदों से होता है जिनकी प्राप्तियाँ एवं भुगतान वस्तुओं के आयात तथा निर्यात की तरह बंदरगाहों पर रिकार्ड नही किए जाते। इस प्रकार इस खाते में सेवाएं एवं एकपक्षीय हस्तांतरण (Unilateral Transfer) जैसे विदेशी पर्यटकों द्वारा देश के भीतर क्रय की गई वस्तुएं शामिल होती है।

उल्लेखनीय है कि दृश्य खाता एवं अदृश्य खाता को एक साथ मिला दिया जाय तो उसे चालू खाता कहा जाता है।

दीर्घकालीन पूंजी व्यवहार का खाता

इसके अंतर्गत हम पूंजी के अर्न्तप्रवाह एवं बर्हिप्रवाह को सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार, पूंजी का ऐसा प्रवाह जो एक वर्ष से अधिक का हो उसे दीर्घ कालीन पूंजी व्यवहार कहते हैं। इसके अंतर्गत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, पोर्टफोलियों निवेश, NRI जमा, वाणिज्यक उधारी, बाहरी सहायता आदि आते हैं।

अल्पकालीन पूंजी का खाता

ऐसे पूंजीगत व्यवहार जो एक वर्ष से कम अवधि के होते हैं, अल्पकालीन पूंजीगत व्यवहार के अंतर्गत रखते हैं। इसके अंतर्गत हम बैंक जमाओं, अल्पकालीन भुगतानों एवं प्राप्तियों को शामिल करते हैं।

प्रतिलोमी ड्यूटी ढाचा (Inverted Duty Structure)

उस स्थिति में जबकि कच्चे माल पर आयात शुल्क की दर पूर्ण निर्मित वस्तुओं (Finished Goods) आयात डयूटी की तुलना में बहुत अधिक हो तो उसे 'इनवर्टेड डयूटी स्ट्रक्चर' कहते हैं। 'इनवर्टेड डयूटी स्ट्रक्चर' विनिर्माण प्रक्रिया को अप्रतिस्पर्धात्मक बनाता है तथा घरेलू उद्योगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। ऐसा माना जाता है कि बहुत सीमा तक इनवर्टेड डयूटी स्ट्रक्चर की स्थिति विभिन्न देशों के साथ हुए व्यापार समझौते के कारण हुआ है।

हार्ड करेन्सी (Hard Currency)

एक ऐसी मुद्रा जो अन्य करेंसीज में परिवर्तनीय हो तथा जिनका दूसरी मुद्राओं के रूप में मूल्य में बढ़ने या स्थिर रहने की प्रत्याशा हो।

इसके विपरीत साफ्ट करेन्सी वह है जो अन्य करेंसीज में कम परिवर्तनीय है तथा जिसके मूल्य में गिरने की सम्भावना अधिक हो। स्पष्ट है हार्ड करेन्सी में सम्पत्ति रखना या विदेशी विनिमय कोष रखना अधिक वांछनीय तथा आकर्षक होगा।

फ्रीपोर्ट

एक बन्दरगाह या हवाई अड्डा जहां राष्ट्रीय टैरिफ नहीं लगायी जाती। पर जब किसी फ्रीपोर्ट से राष्ट्रीय सीमा के भीतर वस्तुयें भेजी जाती हैं तब उस पर टैरिफ देय होती है।

इन्टरपॉट (Interpot)

एक ऐसा स्थान या बन्दरगाह जहां वस्तुओं का आयात होता है और बिना किसी प्रकार के विधायन के वे पुनर्निर्यात कर दी जाती हैं। यातायात में पैमाने की मितव्ययिता के कारण इन्टरपॉट ट्रेड का अस्तित्व होता है। यदि फ्री पोर्ट तथा इन्टरपॉट एक साथ हों तो व्यवहार बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। सामान्यतया फ्रीपोर्ट को इन्टरपॉट विकसित करने के लिए किया जाता है।

मूल्यानुसार टैरिफ (Ad valorem tariff)

जब टैरिफ व्यापार में आने वाली वस्तु (सामान्यतया आयतित वस्तु) के मूल्य के एक निश्चित अनुपात या प्रतिशत में व्यक्त हो तो इसे मूल्यानुसार टैरिफ कहते हैं और टैरिफ में दोनों मूल्यानुसार तथा विशिष्ट टैरिफ का मिश्रण हो तो उसे कम्पाउन्ड टैरिफ कहते हैं।

काउन्टरवेलिंग डयूटी

जब कोई एक देश अपने निर्यात को सब्सिडाइज करता है जिससे दूसरे देश में उसकी वस्तु प्रतिस्पर्धा में सस्ती हो जाय और इस प्रकार दूसरे देश का बाजार प्राप्त हो सके, इसकी प्रतिक्रिया में दूसरा देश आयात पर जो डयूटी लगाता है जिससे व निर्यात सब्सिडी के प्रभाव को निरस्त कर सके तो इसे काउन्टरवेलिंग डयूटी कहते हैं। उल्लेखनीय है कि काउन्टरवेलिंग डयूटी सीमा शुल्क से नहीं बल्कि अपने घर में उस वस्तु पर उत्पाद शुल्क से निर्देशित होती है।

डर्टी फ्लोर

विदेशी विनिमय दर को केवल अल्पकालीन उच्चावचनों को समायोजित करने के लिए नहीं बल्कि अन्य उद्देश्यों से प्रबन्धित करना जिससे पूर्ण तिरण (Full Float) नहीं हो तो उसे डर्टी फ्लोट कहते हैं।

डच बीमारी (Dutch Disease)

किसी घरेलू संसाधन के, जो पहले आयात किया जाता था, विकसित होने या खोज लिए जाने के कारण उस संसाधन के आयात में कमी या आयात बन्द हो जाने के कारण देश की करेन्सी के विदेशी मूल्य का अधिमूल्यन होने के परिणामस्वरूप देश के उद्योगों, मुख्यतया परम्परागत क्षेत्र की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में कमी को डच डिसीज कहते हैं।

हस्तक्षेपक मुद्रा (Intervention Corrency)

एक ऐसी मुद्रा जो पर्विर्तनीय है जिसके मौद्रिक अधिकारी विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करने के लिए प्रयोग में लाते हैं अर्थात जिसका ही क्रय तथा विक्रय करते हैं जिससे विदेशी विनिमय दर एक वांछित सीमा के भीतर रख सकें उस मुद्रा को हस्तक्षेपक मुद्रा कहते हैं।

फारवर्ड रेट

ऐसी विनिमय दर उन विदेशी विनिमय व्यवहारों से संबंधित है जिसमें विदेशी विनिमय की सुपुर्दगी तीन से 6 महीने के बाद करनी है।

ओवर हीटिंग

ओवर हीटिंग क्रियाओं की ऐसी मात्रा व्यक्त करता है जिससे अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक मांग सृजित हो जाये, उत्पादन क्षमता की तुलना

में उत्पादन का स्तर (कुछ क्षेत्रों में) अधिक ऊँचा हो जाय या आयात की मात्रा बढ़ जाय। ओवरहीटिंग आन्तरिक रूप से स्फीतिक दबाव पैदा करता है तथा बाह्य रूप से प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन की स्थिति पैदा कर देता है।

अपटीय जमा (Offshore Deposits)

जिस देश में जमा रखा गया है उस देश की करेन्सी के अतिरिक्त किसी अन्य करेन्सी में बैंक जमा रखने को अपतटीय जमा कहते हैं और इससे संबंधित बैंकिंग को अपतटीय बैंकिंग कहते हैं।

टैरिफ फैक्ट्री (Tariff Factory)

किसी देश या आर्थिक इकाई जैसे कस्टम यूनियन जहां टैरिफ कम या शून्य हो, में निवेश करना जिससे टैरिफ से बचा जा सके टैरिफ फैक्ट्री कहलाता है।

राबिन हुड टैक्स

यह टैक्स टोबिन टैक्स का एक संशोधित रूप है, इसके अन्तर्गत हम टैक्स लगाने के लिए आधार के रूप में सम्पूर्ण वित्तीय व्यवहारों को लेते हैं, केवल विदेशी व्यवहारों को ही नहीं लेते हैं जैसा टोबिन ने लिया था। इसका उद्देश्य सतत रूप में आर्थिक सन्तुलन बनाये रखना है तथा भविष्य में होने वाले संकट को रोकने के संबंध में व्यवस्था करना है। राबिन हुड टैक्स वित्तीय बाजार में होने वाले सभी व्यवहारों को जिसमें सट्टेबाजी संबंधी व्यवहार भी सम्मिलित हैं, दृष्टि में रखता है।

ब्लू कार्ड

अमेरिका ग्रीन कार्ड के तर्ज पर यूरोपीय संघ ब्लू ईयू लेबर कार्ड जारी करेगा। यह कार्ड एशिया और अफ्रीका देशों के अर्हता प्राप्त प्रवासियों को यूरोपीय संघ के 27 देशों में निवास, भ्रमण एवं काम का अधिकार देगा। यह कुशल प्रवासियों हेतु होगा।

व्यापार समता मूल्य (Trade Parity Price)

पेट्रोलियम पदार्थों का मूल्य निर्धारण इसी आधार पर होगा। डॉ.सी.रंगराजन की अध्यक्षता में उच्चाधिकार प्राप्त अंतर मंत्रीय कमेटी ने आयात समता की जगह व्यापार समता मूल्य की संस्तुति की है जो आयात समता और निर्यात समता मूल्य का भारांश औसत होगा।

कैनालाइज्ड लिस्ट

यह सूची है जिसमें वे वस्तुयें आती हैं जिनके संबंध में (उन वस्तुओं को छोड़कर जो नकारात्मक सूची (Negative List) में भी है, कैनेलाइजिंग एजेन्सीज के द्वारा निर्यात करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इस सूची में 1. पेट्रोलियम प्राडक्ट्स 2. नाइट्रोजेनस, फास्फेरिक तथा पोटैशियम उर्वरक (डी.ए.पी., एम.ओ.पी. एम.ए.पी., एस.ओ.पी. तथा एन.पी.के. को छोड़कर) 3. कोकोनेट तथा पाल आयल 4. कुछ निश्चित बीजों जैसे कोपरा, मूंगफली, पाम, सोयाबीन 5. अखाद्य तेल आदि।

डीम्ड निर्यात (Deemed Export)

ये वे निर्यात व्यवहार हैं जिनमें पूर्ति की जाने वाली वस्तु देश से बाहर नहीं जाती है, बल्कि देश में ही बनी रहती है। इनका भुगतान या तो रूपये में प्राप्त होता है या स्वतंत्र विदेशी विनिमय में प्राप्त होता है। जैसे अग्रिम लाइसेंस के अन्तर्गत वस्तु की पूर्ति, एक्सपोर्ट ओरियेन्टेड यूनिट्स (EOU) की आपूर्ति ई.पी.सी.जी. के अन्तर्गत लाइसेंस धारकों को पूंजीगत वस्तुओं का निर्यात।

काल आप्सन (Call Option)

वस्तु के क्रय के संबंध में ऐसा समझौता जिसमें क्रय के विकल्प का निर्णय खुला हो अर्थात् क्रेता एक निश्चित तिथि पर यह बतायेगा कि वह क्रय कर रहा है या नहीं, काल आप्सन कहलाता है। क्रय व्यवहार में वस्तु की मात्रा, मूल्य तथा क्रय निर्णय के बाद सुपुर्दगी का समय निश्चित रहता है। यदि क्रेता क्रय नहीं करे तो समझौते के अन्तर्गत अग्रिम राशि उसे छोड़ना पड़ता है।

पुट आप्सन (Put Option)

एक ऐसा समझौता जिसमें किसी वस्तु, प्रतिभूति या करेन्सी को बिना किसी दायित्व के किसी भावी तिथि पर एक स्थिर मूल्य पर, जिसे उस समय तय किया गया हो जिस समय पहली बार समझौता किया गया, बेचने का अधिकार प्राप्त हो।

सुईजेनरिस (Sui generis)

सुई जेनेरिस के अन्तर्गत किसान अपनी फसल का एक भाग आगामी फसल के लिए बीज के रूप में प्रयोग कर सकता है, पर वह बीजों का व्यापारिक क्रय विक्रय नहीं कर सकता है।

ग्लोबल बैंक टैक्स

24 अप्रैल 2010 को हुए जी-20 के सम्मेलन में आई.एम.एफ. ने ग्लोबल बैंक टैक्स की संकल्पना प्रस्तुत की। उसके अनुसार वित्तीय उद्योग पर लगने वाला यह कर भावी वित्तीय संकट की सम्भावना को कम करेगा।

भूमिका (Introduction)

किसी भी राष्ट्र द्वारा विदेशी व्यापार द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थापना तथा विदेशी-पूंजी के सहयोग से विकासोन्मुखी कार्यों के निष्पादन के लिये किया जाता है। लेकिन विदेशी व्यापार को सुदृढ़ बनाने के लिये घरेलू स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से भारत में विदेशी व्यापार को आर्थिक उदारीकरण के पूर्व तथा उसके उपरांत के कालों में विभक्त किया गया है।

विदेशी व्यापार वस्तुतः आर्थिक उन्नति का एक प्रमुख मापदंड है जिसके माध्यम से घरेलू संसाधनों का अधिकतम तथा अनुकूलतम प्रयोग किया जाता है।

विदेशी व्यापार का महत्व

1. देश में उपलब्ध संसाधनों का विदेशी पूंजी तथा विशेषज्ञता की सहायता से प्रभावकारी दोहन और अनुप्रयोग।
2. विदेशी मुद्रा का अर्जन।
3. आयात और निर्यात की सहायता से सीमित मात्रा वाले उत्पादों की कीमतों में आने वाले उतार-चढ़ाव का विनियमन।

उपरोक्त आयामों के अतिरिक्त व्यापार किसी देश में उपभोग के स्तर को ऊँचा उठाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। इससे सीमित मात्रा वाले उत्पादों तक उपभोक्ताओं की पहुंच बढ़ती है। साथ ही, विभिन्न उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक उपलब्ध कराने में भी सहायता मिलती है। यह भी उल्लेखनीय है कि विदेशी व्यापार से किसी देश के उन क्षेत्रों को विकसित किया जा सकता है जिनमें श्रम की कार्यकुशलता का विशेष महत्व होता है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि विदेशी व्यापार से विकास और संवृद्धि की प्रक्रियाओं को गति प्रदान की जा सकती है।

विश्व व्यापार

विश्व व्यापार का मूल्य जो वर्ष 2008 के 16 ट्रिलियन अमरीकी डालर के स्तर से तेज़ी से कम होकर 2009 में 12.4 ट्रिलियन अमरीकी डालर रह गया, थोड़ा बेहतर होकर 2010 में 15.1 ट्रिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर आ गया, हालांकि यह संकट-पूर्व के स्तर से अभी भी कम था। विश्व व्यापार की मात्रा में वृद्धि में भी तेज़ी आई जो वर्ष 2009 के -10.7 प्रतिशत की ऋणात्मक स्थिति से बेहतर होकर 2010 में 12.7 प्रतिशत हो गया, हालांकि यह भी संकट-पूर्व की वृद्धि से कम था।।कम आधार वाला पूर्ववर्ती प्रभाव न होने के चलते यह कम होकर 2011 में 6.9 प्रतिशत पर आ गया।

व्यापार मात्रा में वृद्धि संबंधी रूझान

(प्रतिशत में परिवर्तन)

	अनुमान				सित. 2011 के डब्ल्यूईओ अनुमानों में अन्तर	
	2010	2011	2012	2013	2012	2013
विश्व व्यापार की मात्रा (माल एवं सेवाएं)	12.7	6.9	3.8	5.4	-2.0	-1.0
आयात						
विकसित अर्थव्यवस्थाएं	11.5	4.8	2.0	3.9	-2.0	-0.8
उभरती एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाएं	15.0	11.3	7.1	7.7	-1.0	-1.0
निर्यात						
विकसित अर्थव्यवस्थाएं	12.2	5.5	2.4	4.7	-2.8	-0.8
उभरती एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाएं	13.8	9.0	6.1	7.0	-1.7	-1.6

वर्ष 2011 के पूर्वार्ध में, विश्व व्यापार 23.1 प्रतिशत की मूल्य-वृद्धि के साथ 8.7 ट्रिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर आ गया था। लेकिन यूरो क्षेत्र के बढ़ते संकट के 2011 की चौथी तिमाही में नए खतरनाक दौर में दाखिल होने के चलते, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की वर्ल्ड इकनॉमिक आउटलुक, जनवरी 2012 के अनुसार, विश्व व्यापार की मात्रा में होने वाली वृद्धि धीमी होकर 2012 में 3.8 प्रतिशत रह जाने का अनुमान है। वर्ष 2012 में व्यापार-वृद्धि का लगभग आधा हो जाना वर्ष 2008 की ही तरह आसन्न संकट का अशुभ संकेत है।

आईएमएफ द्वारा विश्व उत्पादन के वृद्धि संबंधी अनुमानों को कम करके 2012 में 3.3 प्रतिशत और 2013 में 3.9 प्रतिशत पर लाने के चलते तथा विकसित अर्थव्यवस्थाओं के पास सीमित नीतिगत विकल्पों की वजह से इन अर्थव्यवस्थाओं के 2012 में 1.2 प्रतिशत पर विकसित होने की संभावना है। यह 2.0 और 2.4 प्रतिशत के स्तर पर उनके क्रमशः आयात एवं निर्यात व्यापार की संभावित मात्रा में भी प्रतिबिंबित होती है। उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं द्वारा 2012 में 5.4 प्रतिशत की अपेक्षाकृत बेहतर दर पर विकास करने की संभावना है, जहां आयात एवं निर्यात की मात्रा में क्रमशः 7.1 प्रतिशत और 6.1 प्रतिशत की दर पर वृद्धि होगी।

व्यापार ऋण

व्यापार ऋण की उपलब्धता और लागत दोनों ही अंतरराष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण पैमाना है। हालिया वर्षों में इस मोर्चे पर कई उतार-चढ़ाव हुए हैं। व्यापार ऋणः अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य

अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थान (आईआईएफ) द्वारा सितंबर 2011 के उत्तरार्ध में किए गए नवीनतम त्रैमासिक सर्वेक्षण के अनुसार, उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में स्थित बैंक-बैंक-उधारों की अपेक्षाकृत सख्त स्थितियां झेल रहे थे। बैंक-उधारों की स्थितियों का समग्र सूचकांक 2011 की तीसरी तिमाही में अपने अब तक के क्षीणतम स्तर तक जा पहुंचा। इस तरह, 2011 की तीन तिमाहियों में उभरते बाज़ारों में बैंक-उधार की स्थितियों में उल्लेखनीय गिरावट हुई है और इस दौरान समग्र सूचकांक अपने सबसे मज़बूत स्तर से हटता हुआ अपने सबसे कमज़ोर स्तर तक आ पहुंचा है। सबसे उल्लेखनीय गिरावट उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बैंकों द्वारा झेली जा रही निधिपोषण संबंधी स्थितियों में आई है। हालांकि स्थानीय निधिपोषण की स्थितियां तीसरी तिमाही में कुल मिलाकर अपरिवर्तित रहीं, अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में निधिपोषण की स्थितियां बहुत खराब हुई हैं और ऐसा सभी प्रमुख क्षेत्रों में हुआ है। ऐसे स्पष्ट प्रमाण हैं कि परिपक्व अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती समस्याएं उभरते बाज़ारों में असर दिखा रही हैंद्धखासतौर पर यूरो क्षेत्र में व्याप्त गंभीर ऋण समस्याओं से उभरने वाली चुनौतियां।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार को वित्तपोषण की स्थितियों पर मौजूदा अस्थिर वित्तीय स्थितियों का भी बुरा असर पड़ा है। हालांकि अंतरराष्ट्रीय व्यापार के वित्तपोषण की स्थितियों का समग्र प्रसार सूचकांक अभी भी 50 के आरंभिक स्तर से लगभग ऊपर है (यूरोप के लिए यह

DISCOVERY

रीडिंग 49.3 है), लेकिन पिछली तिमाही के मुकाबले भाव अभी मन्द है। (50 से ऊपर प्रसार सूचकांक का अर्थ है अधिक शक्ति, 50 से कम का अर्थ है कमज़ोरी और 50 तटस्थ रीडिंग है)। 2011 की तीसरी तिमाही में, 23 प्रतिशत बैंकों ने कहा कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार के वित्तपोषण की स्थितियों में सुधार हो गया है, जबकि 2011 की दूसरी तिमाही में यह 44 प्रतिशत था। सर्वाधिक मज़बूत सुधार एशिया में देखा गया। अंतरराष्ट्रीय व्यापार के वित्तपोषण की मांग यूरोप में मामूली सी कम हुई है, जबकि यह अन्य क्षेत्रों में ज़बरदस्त बनी रही। यूरोप में, 17 प्रतिशत प्रतिभागियों ने कहा कि पिछली तीन तिमाहियों में मांग में कमी आई है। आपूर्ति के मोर्चे पर, लैटिन अमरीका में स्थित बैंकों ने व्यापार वित्तपोषण करने की इच्छा में कमी होने की खबर दी, जबकि अफ्रीका और मध्य-पूर्व (एएफएमई) तथा एशिया में आपूर्ति की स्थितियों में सुधार होना जारी रहा। समग्र रूप से, 19 प्रतिशत बैंकों ने आपूर्ति की स्थितियों में सुधार को स्वीकृत किया (2011 की दूसरी तिमाही में 42 प्रतिशत की तुलना में)।

व्यापार ऋण: भारतीय परिदृश्य

वैश्विक वित्तीय स्थितियों में सुधार को प्रतिबिंबित करते हुए, भारत को मिलने वाले अल्पावधिक व्यापार ऋण का सकल प्रवाह 2010-11 के दौरान 75.7 बिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर पहुंच गया, जो 2009-10 के दौरान दर्ज प्रवाह से 42.2 प्रतिशत अधिक था। 50.6 बिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर व्यापार ऋण 2011-12 के पूर्वार्ध में बढ़ोतरी का रुख दर्शाता रहा और इसमें 2010-11 के पूर्वार्ध के 59.8 प्रतिशत की तुलना में 43.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। तथापि, व्यापार ऋण के कारण बहिर्वाह में हुई वृद्धि 2010-11 के पूर्वार्ध के 28.1 प्रतिशत के मुकाबले 2011-12 के पूर्वार्ध में 57.7 प्रतिशत के स्तर पर अधिक थी। परिणामत: निवल अंतर्वाह 2010-11 के पूर्वार्ध के 6.9 बिलियन अमरीकी डालर की तुलना में 2011-12 के पूर्वार्ध में 5.9 बिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर मामूली सा कम था।

निर्यात ऋण वृद्धि पूरे वित्त वर्ष 2010-11 में 22.2 प्रतिशत की वृद्धि की तुलना में 2011-12 (30 दिसंबर 2011 तक) में मार्चान्त 2011 के स्तर से कम होती हुई 8.4 प्रतिशत रह गई है। निवल बैंक ऋण (एनबीसी) के प्रतिशत के रूप में निर्यात ऋण में पिछले कई वर्षों में कमी होती रही है और यह 1999-2000 के 9.8 प्रतिशत के मुकाबले अप्रैल 2011 से 30 दिसंबर 2011 के दौरान केवल 4.2 प्रतिशत थी।

चूंकि यूरो क्षेत्र में व्याप्त संकट से संबंधित मुद्दे सितंबर 2011 से गंभीर हो गए हैं, आगामी तिमाहियों में व्यापार ऋण में कमी होने का जोखिम बढ़ गया प्रतीत होता है। नकदी की सख्त स्थितियों और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ारों में हालिया घटनाक्रम के कारण ऋण-विस्तार के बढ़ने को ध्यान में रखते हुए, 15 नवंबर 2011 को बैंकों द्वारा विदेशी मुद्रा में निर्यात ऋण पर उच्चतम सीमा को तत्काल और 31 मार्च 2012 तक लिबोर जमा 200 आधार बिन्दु की पूर्ववर्ती उच्चतम दर से बढ़ाकर लंदन अंतर बैंक पेशकश दर (लिबोर) जमा 350 आधार बिन्दु कर दिया गया, जो इस स्पष्ट शर्त के अध्यधीन होगी कि बैंक जेब से किए गए व्यय की वसूली को छोड़कर सेवा प्रभार और प्रबंधन प्रभार जैसे कोई अन्य प्रभार नहीं लगाएंगे। ऐसे मामलों में ब्याज दरों में परिवर्तन किए गए जहां बेंचमार्क के तौर पर यूरो लिबोर/यूरीबोर इस्तेमाल की गई है। विदेशी बैंकों की ऋण-श्रृंखलाओं पर उच्चतम ब्याज दर भी छ: माह लिबोर/यूरो लिबोर/यूरीबोर जमा 100 आधार बिन्दु से बढ़ाकर लिबोर/यूरो लिबोर/यूरीबोर जमा 250 आधार बिन्दु कर दी गई है। ये परिवर्तन 31 मार्च 2012 तक लागू हैं और उसके बाद उनकी समीक्षा की जाएगी इसी प्रकार, इस तथ्य को स्वीकारते हुए कि घरेलू आयातक मौजूदा ऑल-इन-कॉस्ट

निर्यात ऋण

निम्नलिखित तिथि को बकाया	निर्यात ऋण	अंतर (प्रतिशत)	एनबीसी के प्रतिशत के रूप में निर्यात ऋण
24 मार्च 2000	39118	9.0	9.8
22 मार्च 2002	42978	-0.8	8.0
21 मार्च 2003	49202	14.5	7.4
19 मार्च 2004	57687	17.2	7.6
18 मार्च 2005	69059	19.7	6.3
31 मार्च 2006	86207	24.8	5.7
30 मार्च 2007	104926	21.7	5.4
28 मार्च 2008	129983	23.9	5.5
27 मार्च 2009	128940	-0.8	4.6
26 मार्च 2010	138143	7.1	4.3
25 मार्च 2011	168841	22.2	4.3
30 दिसंबर2011	183004	8.4*	4.2

Downloaded From www.studyguideofficial.com

(एआईसी) की उच्चतम सीमा के अन्दर रहते हुए व्यापार ऋण जुटाने में कठिनाइयां अनुभव कर रहे थे, भारतीय रिज़र्व बैंक ने 15 नवम्बर, 2011 को एक वर्ष के व्यापार ऋण के साथ-साथ एक वर्ष से अधिक और तीन वर्ष तक की परिपक्वता अवधि के व्यापार ऋणों के लिए एआईसी की उच्चतम सीमा को छः माह लिबोर जमा 200 आधार बिन्दु से बढ़ाकर लिबोर जमा 350 आधार बिन्दु कर दिया है। एआईसी की उच्चतम सीमा में व्यवस्थात्मक शुल्क, अपफ्रंट शुल्क, प्रबंधन शुल्क, संचालन/प्रक्रियान्वयन प्रभार, जेबी और कानून खर्च, यदि कोई हो, शामिल हैं, एआईसी की उच्चतम सीमा भी 31 मार्च 2012 तक लागू है और उसके बाद उसकी समीक्षा की जाएगी।

चुनिंदा देशों में व्यापार ऋण में कमी के संबंध में नीतिगत उपाय

व्यापार ऋण के संबंध में कुछ चुनिंदा देशों के नीतिगत उपाय निम्नलिखित थे:

- यू एस एक्जिम बैंक निर्यात-आयात ने उभरते हुए बाजारों को अमरीकी वस्तुओं के निर्यात में सहायता के लिए नए अल्पावधि व्यापार वित्त सुविधाओं में 4 बिलियन अमरीकी डालर और मध्यम-और दीर्घावधि व्यापार वित्त सुविधाओं में 8 बिलियन अमरीकी डालर उपलब्ध कराने के एक कार्यक्रम की घोषणा की। इसी प्रकार, चीन ने चाइना-एक्जिम बैंक के माध्यम से उभरते हुए बाजारों को चीनी वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के लिए अल्प, मध्यम और दीर्घावधि की व्यापार वित्त-सुविधाएं उपलब्ध कराई।
- फेडरल रिजर्व, यूएसए ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली में विदेशी मुद्रा नकदी को रखने के लिए यूरोपीयन सेंट्रल बैंक और विभिन्न देशों के केन्द्रीय बैंकों के साथ मुद्रा विनिमय सुविधाओं की घोषणा की।
- यूके सरकार ने लघु और मध्यम कम्पनियों को कुल 20 बिलियन पौंड के बैंक ऋणों की गारंटी देने की योजनाओं की घोषणा की।
- जर्मनी ने बैंकिंग प्रणाली में विश्वास पैदा करने और इसमें नकदी लाने के लिए 480 बिलियन यूरो (672 बिलियन अमरीकी डालर) के वित्तीय सेक्टर राहत पैकेज की घोषणा की।
- सेन्ट्रल बैंक ऑफ रशिया ने छह माह तक बिना वांछित जमानती के वाणिज्यिक बैंकों को ऋण देने की योजनाओं की घोषणा की। इसके अतिरिक्त, सेन्ट्रल बैंक ने 2009 के अंत तक नेशकोनोमो बैंक को 50 बिलियन अमरीकी डालर की ऋण श्रृंखला प्रदान की।
- हांगकांग सरकार एसएआर की सरकार ने लघु और मध्यम उद्यमों के लिए कार्यशील पूंजी ऋण की अधिकतम गारंटी अवधि दो वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष करने का प्रस्ताव किया है।
- जापानी सरकार ने आईएफसी और एडीबी के निकट सहयोग से विकसित की जाने वाली, 1.0 बिलियन अमरीकी डालर व्यापार वित्त सुगमीकरण कार्यक्रम अभिक्रम की घोषणा की।
- ब्राजील की ऋण एजेंसी बांको नेशनल डि-डेसेन्वोल्वीमेंटो इकोनोमिको इ सोशल ने ब्राजीली कंपनियों के लिए 6 बिलियन डालर की घोषणा की;
- ब्राजीलियाई सेन्ट्रल बैंक ने पुनर्खरीद खंडों सहित बैंकों को 1 बिलियन अमरीकी डालर की नीलामी की (जो इसे व्यापार ऋण श्रृंखलाओं के लिए इस्तेमाल करेंगे)।
- कोलम्बिया और वेनेजुएला ने दोनों देशों के बीच सीमा आर-पार व्यापार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संयुक्त रूप से एक विशेष निधि की स्थापना के लिए प्रत्येक ने 100 मिलियन अमरीकी डालर की प्रतिबद्धता की।

व्यापार संरचना (Trade Structure)

निर्यात संरचना

भारत के निर्यात वस्तु-समूह की क्षेत्रक संरचना में 2000 के दशक में देखे गए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में इस दशक की शुरूआत से तेजी आ गई है। 2000-01 से 2009-10 की 10-वर्षीय अवधि में जहां कच्चे पेट्रोलियम एवं इसके उत्पादों का हिस्से में 11.8 प्रतिशतांक की वृद्धि हुई है, वहीं इसमें 2009-10 से 2011-12 के पूर्वार्ध तक 4.8 प्रतिशतांक की वृद्धि हुई। अन्य दो क्षेत्रों अर्थात् विनिर्माण एवं

www.studymasteroffical.com

प्राथमिक उत्पादों के हिस्से में लगभग आनुपातिक तौर पर 2000-01 से 2009-10 के दौरान क्रमशः 11.6 और 1.1 प्रतिशतांक की कमी आई तथा 2009-10 से 2011-12 के पूर्वार्ध तक इनमें क्रमशः 1.4 एवं 2.2 प्रतिशतांक की कमी आई। विनिर्माण निर्यातों में ही बड़े अन्तर-क्षेत्रक संरचनागत परिवर्तन भी हुए हैं जिनमें सबसे अधिक घाटा उठाने वाले क्षेत्र हैं श्रम-प्रधान विनिर्माण जैसेकि वस्त्रोद्योग, चमड़ा और चमड़ा विनिर्माण और हस्तशिल्प और इनका हिस्सा 2001-01 के क्रमशः 23.6, 4.4 और 2.8 प्रतिशत से कम होकर 2011-12 के पूर्वार्ध में 8.7, 1.6 और 0.3 प्रतिशत रह गया। इसमें सर्वाधिक लाभ लेने वाला क्षेत्र इंजीनियरी वस्तु-क्षेत्र रहा जिसका हिस्सा 2000-01 के 15.7 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 के पूर्वार्ध में 22.2 प्रतिशत हो गया। एक और क्षेत्र इलैक्ट्रॉनिक्स है जिसका हिस्सा 2.5 प्रतिशत से बढ़कर 2010-11 में 3.5 प्रतिशत हो गया परन्तु बाद में यह गिरकर 2011-12 के पूर्वार्ध में 2.9 प्रतिशत हो गया। वर्ष 2000-01 से 2011-12 के पूर्वार्ध के दौरान रसायनों एवं सहबद्ध उत्पादों के हिस्से में मामूली वृद्धि हुई और ये 10.4 प्रतिशत से बढ़कर 11.6 प्रतिशत हो गया, रत्न एवं आभूषणों में मामूली कमी हुई और ये 16.6 प्रतिशत से गिरकर 16.1 प्रतिशत पर आ गए (सारणी 7.7 और परिशिष्ट सारणी 7.3 (ख))। एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारत के अधिकतर पेट्रोलियम निर्यात परिष्कृत निर्यात हैं और विनिर्माण की श्रेणी में शामिल किए जाने के पात्र हैं। इसी प्रकार, कृषि और सहबद्ध क्षेत्र में अनेक मदें हैं जैसेकि सामुद्रिक निर्यात और प्रसंस्करित खाद्य-पदार्थ जो विनिर्मित मदें हैं। यदि इन्हें विनिर्माण की परिभाषा में शामिल कर लिया जाए, तो कुल निर्यातों में विनिर्माण के हिस्से में गिरावट नहीं हुई है।

कृषि और सहबद्ध उत्पादों के मामले में, अनाज, गोश्त से बने खाद्य पदार्थ, ऑयल मील तथा कॉफी में हुई निर्यात वृद्धि के कारण वर्ष 2010-11 और 2011-12 के पूर्वार्ध में निर्यात वृद्धि उच्च स्तर पर रही। विनिर्मित उत्पादों के निर्यातों में, इंजीनियरी वस्तुओं, रत्न एवं आभूषणों तथा रसायन एवं सहबद्ध उत्पादों में उच्च वृद्धि दर्ज की गई, जबकि वस्त्रोद्योग की निर्यात वृद्धि साधारण रही। पेट्रोलियम, कच्चे तेल और इनके उत्पादों की निर्यात वृद्धि भी बहुत अधिक रही जिसकी वजह कच्चे तेल की अधिक कीमतें और शोधन-शाला क्षमता में बढ़ोतरी होना भी रही। अयस्क और खनिज ही एकमात्र ऐसी मद है जिसकी 2011-12 के पूर्वार्ध में ऋणात्मक वृद्धि हुई और इसका कारण कर्नाटक एवं ओडिशा की राज्य सरकारों द्वारा लौह अयस्क के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया जाना था।

वर्ष 2000-01 से 2011-12 के पूर्वार्ध तक संरचना में हुआ बदलाव प्रमुख वस्तुओं के गन्तव्य-वार निर्यातों में भी देखा जा सकता है। जहां भारत से यूरोपीय संघ को किए जाने वाले पेट्रोल, कच्चे तेल और उत्पादों के निर्यात के हिस्से में वृद्धि लगभग 17 प्रतिशतांक की वृद्धि के साथ संयुक्त राज्य अमरीका के मुकाबले अधिक रही, वहीं भारत के यूरोपीय संघ को किए जाने वाले विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात के हिस्से में आई गिरावट भी लगभग 13.7 प्रतिशतांक पर अधिक है। तथापि, भारत से चीन को पेट्रोलियम, कच्चे तेल और उत्पादों के निर्यात के हिस्से में नाटकीय वृद्धि हुई है। भारत से चीन को अयस्कों एवं खनिजों के निर्यात के हिस्से में 2008-09 से गिरावट आनी शुरू हो गई है और यह 2011-12 के पूर्वार्ध में 30 प्रतिशत तक पहुंच गया जिसके परिणाम-स्वरूप विनिर्मित वस्तुओं के हिस्से में वृद्धि हुई है। विनिर्माताओं में, यूरोपीय संघ और संयुक्त राज्य अमरीका एवं अन्य देशों को वस्त्रों के हिस्से में 2000-01 से गिरावट 10 प्रतिशतांक से ऊपर कमोबेश समान रही। तथापि, भारत से चीन को वस्त्रों के निर्यात के हिस्से में वृद्धि हुई है, भले ही वह कम हो। इन चारों बाजारों को भारत की इंजीनियरी वस्तुओं के निर्यात के हिस्से में वृद्धि हुई है। हालांकि 2010-11 में इस मद का भारत से चीन को किए निर्यात हिस्से में बड़ा उछाल आया और फिर थोड़ी कमी हुई, अन्य तीन बाजारों में 2011-12 के पूर्वाध में हिस्सा 21-22 प्रतिशत के दायरे में बना हुआ है। जहां संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोपीय संघ बाजारों को रत्न एवं आभूषणों के निर्यात के हिस्से में कमी हुई है, वहीं "अन्य" के मामले में वृद्धि हुई है। इस मद के सन्दर्भ में चीन का हिस्सा नगण्य है। भारत के निर्यातों में रसायन और संबंधित उत्पादों के हिस्से में संयुक्त राज्य अमरीका बाजार को लगभग 10 प्रतिशतांक और यूरोपीय संघ बाजार को लगभग 3.5 प्रतिशतांक की बढ़त दर्ज की गई।

निर्यात विविधता

वर्ष 2009 के समान ही, भारत का दो अंकीय सुमेलित प्रणाली (एचएस) स्तर पर कुल 99 वस्तुओं में से 48 वस्तुओं में 1 प्रतिशत या अधिक का वैश्विक निर्यात-हिस्सा था। तथापि, वर्ष 2009 में 12 मदों में इसका 5 प्रतिशत या अधिक का हिस्सा कम होकर 10 मदों तक सीमित रह गया है और बर्ड स्किन, चमड़े, बनावटी फूल, मानव केश, और अयस्क, स्लैग और राख सूची से निकाल ली गई हैं। मोती, बहुमूल्य पत्थर, धातुएं, सिक्के आदि को छोड़कर, सभी नौ मदों में 2009 के मुकाबले 2010 में, ग्लोबल हिस्से में बढ़ोतरी देखी

www.Downloadfrom.studymasterofficial.com

गई जहां कपास सूची में सबसे ऊपर रहा। लेकिन मोती, बहुमूल्य पत्थर, धातुओं, सिक्कों आदि के अलावा इन अधिकतर 10 मदों का वैश्विक निर्यात में बहुत छोटा हिस्सा था।

हालांकि भारत ने अपने निर्यात बाजारों के विविधीकरण में बड़े कदम उठाए हैं, फिर भी निर्यात वस्तु समूह की विविधता के लिए ही नहीं बल्कि विश्व व्यापार की प्रमुख मदों में एक महत्वपूर्ण हिस्सा रखने के लिए भी अभी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है।

आयात संरचना

आयातों के मामले में कोई भी भारी संरचनात्मक परिवर्तन नहीं हुए हैं सिवाय स्वर्ण और चांदी के आयातों के हिस्से में हुई अचानक वृद्धि के जो 2000-01 में 9.3 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 के पूर्वार्ध में 13.3 प्रतिशत हो गयी और मोती, मूल्यवान और अर्ध मूल्यवान नगीनों के आयात के हिस्से में हुई गिरावट के जो 2000-01 में 9.6 प्रतिशत से कम होकर 2011-12 के पूर्वार्ध में 6.0 प्रतिशत हो गया। पूंजीगत वस्तुओं के आयातों का हिस्सा जो 2000-01 में 10.5 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 15.5 प्रतिशत हो गया था, फिर गिरना शुरू हुआ और 2011-12 के पूर्वार्ध में 11.6 प्रतिशत पर आ गया। पीओएल आयातों का हिस्सा जो 2000-01 में 31.3 प्रतिशत से गिरकर 2010-11 में 28.6 प्रतिशत पर आ गया था, कच्चे तेल की ऊंची कीमतों के कारण बढ़कर 2011-12 के पूर्वार्ध में 31.4 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया।

व्यापार की दिशा

निर्यात और आयात बाजारों की विविधता के संदर्भ में भारत ने सफलता की गाथा रची है। कुल व्यापार में एशिया और आसियान का हिस्सा 2000-01 के 33.3 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 के पूर्वार्ध में 57.3 प्रतिशत हो गया जबकि यूरोप और अमरीका का हिस्सा 42.5 प्रतिशत से गिरकर 30.8 प्रतिशत रह गया। इससे भारत को यूरोप और अमरीका से उपजे वैश्विक संकट का सामना करने में मदद मिली है। असल में, आज शीर्षस्थ 15 व्यापार भागीदारों में से केवल पांच विकसित पश्चिमी देश हैं जबकि 2000-01 में सात देश थे। हालांकि शीर्षस्थ 15 देशों के पास अब भी 2010-11 और 2011-12 (अप्रैल-सितम्बर) में लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा है, फिर भी इन वर्षों में शीर्षस्थ देश ही बदल गए हैं। मुख्य परिवर्तन यह है कि नई सूची में इटली, मलेशिया, फ्रांस और आस्ट्रेलिया के स्थान पर इंडोनेशिया, कोरिया, ईरान और नाइजीरिया का प्रवेश हुआ है। यदि हम 2000-01 के शीर्षस्थ 15 देशों का हिस्सा देखें तो आज यह 59.6 प्रतिशत है जबकि 2000-01 में आज के शीर्षस्थ देशों का हिस्सा 55.5 प्रतिशत था। भारत के व्यापार की दिशा में एक दिलचस्प घटनाक्रम यह है कि अमरीका जो 2007-08 में पहले स्थान पर था, बाद के वर्षों में पदावनत होकर तीसरे स्थान पर आ गया है और संयुक्त राज्य अमीरात भारत का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार बन गया है जिसके बाद चीन का स्थान आता है। यह स्थिति 2008-09 से 2010-11 तक बनी रही है।

सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में भारत का व्यापार घाटा वर्ष 2009 में 5.71 प्रतिशत के स्तर पर सबसे बड़े घाटों में से एक है। प्रमुख देशों में केवल दो ही व्यापार देशों-हांगकांग और यूनाइटेड किंगडम का अनुपात भारत के अनुपात से अधिक है। द्विपक्षीय व्यापार शेष को प्रतिबिम्बित करने वाले निर्यात-आयात के अनुपात यह दर्शाते हैं कि 2008-09, 2009-10 और 2010-11 में भारत का पांच देशों नामशः संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमरीका, सिंगापुर, यूनाइटेड किंगडम और हांगकांग के साथ द्विपक्षीय व्यापार अधिशेष था। गौरतलब दिलचस्प बात यह है कि भारत का संयुक्त अरब अमीरात के साथ व्यापार अधिशेष है, जहां से यह भारी मात्रा में तेल आयात करता है, जबकि सऊदी अरब, ईरान और नाईजीरिया जैसे तेल निर्यातकों के साथ इसका उच्च व्यापार घाटा है। तथापि, 2011-12 के पूर्वार्ध (अप्रैल-सितम्बर) में तेल की बढ़ती कीमतों के कारण संयुक्त अरब अमीरात के साथ भारत का व्यापार अधिशेष घाटे की स्थिति में चला गया है हालांकि यह काफी कम है। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति हैद्धभारत का चीन और स्विट्जरलैंड के साथ बढ़ता व्यापार घाटा जो 2009-10 के क्रमशः 19.2 बिलियन अमरीकी डालर और 14.1 बिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 2010-11 में 23.9 बिलियन अमरीकी डालर और 24.1 बिलियन अमरीकी डालर हो गया तथा आगे और बढ़कर 2011-12 के पूर्वार्ध में 20 बिलियन अमरीकी डालर और 14.8 बिलियन अमरीकी डालर हो गया। इसका कारण है चीन से मशीनरी और स्विट्जरलैंड से सोने का बढ़ता आयात। यह विश्लेषण द्विपक्षीय व्यापार शेष के संबंध में एक अधिक केंद्रित कार्यनीति अपनाने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है।

क्षेत्र-वार, निर्यातों में भारत की विविधता इस तथ्य का प्रमाण है कि एशिया और आसियान का हिस्सा 2000-01 के 38.7 प्रतिशत से बढ़कर 2010-11 में 56.2 प्रतिशत हो गया, जबकि इसी अवधि के दौरान यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका का हिस्सा 46.9 प्रतिशत से गिरकर 30.8 प्रतिशत रह गया। संयुक्त अरब अमीरात ने 2008-09 में संयुक्त राज्य अमरीका को भारत के निर्यातों के अग्रणी गंतव्य से पदच्युत कर दिया है और 2009-10, 2010-11 और 2011-12 के पूर्वार्ध में क्रमशः 13.4 प्रतिशत, 13.7 प्रतिशत और 11.9 प्रतिशत निर्यात हिस्से के साथ शीर्ष स्थान पर बना हुआ है। सभी शीर्ष तीन गंतव्यों अर्थात संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमरीका और चीन को किए जाने वाले भारत के निर्यातों ने 2010-11 में क्रमशः 43.3 प्रतिशत, 30.8 प्रतिशत और 69.1 प्रतिशत और 2011-12 के पूर्वार्ध में क्रमशः 21.9 प्रतिशत, 40.7 प्रतिशत और 34.2 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की।

7.33 एशिया और आसियान भारत के आयातों का प्रमुख स्रोत बने रहे हैं। 2000-01 की तुलना में 2011-12 के पूर्वार्ध में आयातों की संरचना यह दर्शाती है कि एशिया और आसियान के हिस्से में बढ़ातरी हुई है और यह 28.6 प्रतिशत से बढ़कर 61.5 प्रतिशत हो गया है तथा यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका का हिस्सा घट गया है और क्रमशः 27.5 प्रतिशत और 5.7 प्रतिशत से घटकर 18.6 प्रतिशत और 4.7 प्रतिशत रह गया है। 2011-12 (अप्रैल-सितम्बर) में देश-वार, चीन भारत के कुल आयातों में 11.7 प्रतिशत के हिस्से के चलते सबसे बड़ा स्रोत बना हुआ है, जिसके बाद संयुक्त अरब अमीरात (7.6 प्रतिशत), स्विट्जरलैंड (6.6 प्रतिशत), सऊदी अरब (6 प्रतिशत) और संयुक्त राज्य अमरीका (4.7 प्रतिशत) का स्थान आता है। शीर्ष 15 व्यापार भागीदारों में, कच्चे तेल, सोना और चांदी तथा कच्चे तेल के साथ-साथ खाद्य तेलों के आयातों के कारण नाइजीरिया, स्विट्जरलैंड और इंडोनेशिया से किए गए भारत के आयात ने 2011-12 (अप्रैल-सितम्बर) में 60 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की। हालांकि ईरान, संयुक्त राज्य अमरीका, संयुक्त अरब अमीरात और बेल्जियम से किए गए भारत के आयातों में कम वृद्धि दर्ज की गई।

विदेश व्यापार नीति 2009-14 (Foreign Trade Policy 2009-14)

27 अगस्त 2009 को घोषित भारत की विदेश व्यापार नीति का क्रियान्वयन वर्ष 2009 से 2014 है। वैश्विक मंदी के इस दौर में इस व्यापार नीति का विशेष महत्व है। इस नीति के दौरान अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है।

अल्पकालीन उद्देश्य के अंतर्गत वैश्विक व्यापार में भारत की भागीदारी बढ़ाना है। इस दौरान निर्यात में 15% वार्षिक वृद्धि के साथ वर्ष 2011 तक 200 बिलियन डालर के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है। उल्लेखनीय है कि भारत का निर्यात वर्ष 2003-04 के 63 बिलियन डालर से बढकर 2008-09 में 168 बिलियन हो गया है एवं विश्व व्यापार संगठन (WTO) के अनुसार वर्ष 2003 में भारत की वैश्विक

विदेश व्यापार नीति 2009-14

- 2014 तक देश के निर्यात को दोगुना करना
- मार्च 2011 तक निर्यात को 200 अरब डॉलर पहुँचाना।
- शुल्क हकदारी पासबुक योजना दिसम्बर 2010 तक बढ़ाई गई।
- निर्यातकों को 2 प्रतिशत ब्याज अनुदान की योजना 31 मार्च, 2010 तक बढ़ाई।
- निर्यातोन्मुख और एसटीपीआई इकाईयों को अब 2010-11 में भी आयकर में छूट जारी रहेगी।
- ईसीजीसी योजना का लाभ 2010 तक जारी।
- फोकस बाजार स्कीम के तहत् 26 नए बाजार शामिल, प्रोत्साहन भी बढ़ाया गया।
- जयपुर, अनंतनाग, श्रीनगर, कानपुर, देवास, मलीहाबाद एवं अंबूर को निर्यात उत्कृष्टता नगर के रूप में मान्यता।
- उत्तर पूर्वी राज्यों के बागवानी उत्पादों को फोकस उत्पाद योजना का लाभ।
- भारत को हीरे का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने के लक्ष्य से हीरा एक्सचेंज स्थापित करने की योजना।
- समुद्री उत्पाद, रत्न-आभूषण क्षेत्र के निर्यातकों के लिए विशेष प्रोत्साहन।
- मंदी से प्रभावित चमड़ा निर्यातकों को कच्चे चमड़े के पुनः निर्यात की सुविधा।
- चाय निर्यातकों को मूल्यवर्द्धन की शर्तों में ढील।
- जल्दी खराब होने वाली कृषि उपजों के लिए एकल खिड़की व्यवस्था की मंजूरी।
- समुद्री उत्पाद औषधि, हथकरघा क्षेत्र के लिए भी रियायतें।
- निर्यातोन्मुख इकाइयों को अपने उत्पादों का 90 फीसदी हिस्सा घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति।
- निर्यातकों की डॉलर ऋण की जरूरतों के सम्बन्ध में उच्चस्तरीय समिति का गठन।

Downloaded From www.studyonlineofficial.com

व्यापार में हिस्सेदारी 0.83% थी जो वर्तमान में बढ़कर 1.50% हो गई हो। इसी अवधि में व्यापारिक सेवाओं का हिस्सा 1.4% से बढ़कर 2.8% तथा वस्तु एवं सेवाओं का कुल हिस्सा 0.92% से बढ़कर 1.64% हो गया है।

दीर्घकालीन उद्देश्यों के अंतर्गत दो प्रमुख बातों पर बल दिया गया है-

(i) वर्ष 2020 तक वैश्विक व्यापार में भारत की भागीदारी दो गुनी करनी है।

(ii) व्यापारिक नीति के अल्पकालीन लक्ष्यों को प्राप्त करने के पश्चात् अगले तीन वर्षों में वर्ष 2014 तक भारतीय निर्यात में 25% वार्षिक की वृद्धि करना एवं वर्ष 2014 तक भारतीय वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात को दोगुना करना है।

व्यापार नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु सरकार द्वारा किए गए उपाय

1. **निर्यात अवसंरचनाओं का निर्माण**

(i) ASIDE (Assistance to States for Infrastructural Development for Exports) के तहत निर्यात प्रक्रिया में राज्यों की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना ताकि समावेशी विकास की अवधारणा वास्तविक अर्थों में सफल हो सके।

(ii) निर्यात अवसंरचनाओं के निर्माण के लिए वाणिज्य विभाग द्वारा राज्यों को वित्तीय एवं अन्य सहायता उपलब्ध कराई जा रही है।

(iii) विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) के विकास को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

(iv) अर्थव्यवस्था के विकास में ऊर्जा की अवाध आपूर्ति सबसे प्रमुख घटक है। अत: ऊर्जा आपूर्ति की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है।

2. **बाजार का विस्तार**

(i) **MAI (Market Access Initiative):–** इसके तहत देश विशिष्ट अथवा निर्यात विशिष्ट उत्पाद के लिए निर्यात औद्योगिक एवं व्यापार संघों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा रही है।

(ii) **MDA (Market Development Assistance):–** इसके तहत विभिन्न देशों में निर्यात को बढ़ावा देने के उद्देश्य से व्यापार संवर्धन संगठन अथवा परिषदों को व्यापार मेलों एवं व्यापारिक प्रदर्शिनियों के आयोजन हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा रही है।

(iii) **FMS (Focus Market Scheme):–** इसके तहत प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए व्यापार के विविधिकरण को प्रोत्साहन देने हेतु उपयुक्त बाजारों के चयन हेतु विशेष प्रयास करना शामिल है। विकसित देशों में भारतीय निर्यात की मांग में होने वाली कमी से भारतीय निर्यात को संरक्षित करने के लिए व्यापार नीति में भारतीय निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए दूसरे बाजारों में विविधीकरण की नीति पर बल दिया गया है। विशेषरूप से लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया ओसेनिया के कुछ भागों में भारतीय निर्यात के विविधीकरण के लिए नीति में उठाये गये कुछ कदम इस प्रकार हैं-

(क) फोकस मार्केट स्कीम में 26 नये देशों को सम्मिलित किया गया है।

(ख) फोकस मार्केट स्कीम में प्रेरणा (incentive) को 2.5% से बढ़ाकर 3% कर दिया गया है।

(ग) मार्केट लिन्कड फोकस प्रॉडक्ट स्कीम में और बाजारों तथा उत्पादों को जोड़ दिया गया है तथा इस व्यय बढ़ा दिया गया है।

विकास निर्यात को नई ऊँचाई पर ले जाने के उद्देश्य की प्राप्ति भारतीय निर्यात क्षेत्र के 'टेक्नोलॉजिकल समुन्नतीकरण' के द्वारा ही सम्भव है। इस दिशा में निम्नांकित व्यवस्थायें उल्लेखनीय हैं-

(क) कुछ इलेक्ट्रानिक, इन्जीनियरिंग उत्पादों, आधारभूत रसायनों तथा फार्मास्युटिकल्स, सूती वस्त्र तथा पोशाक, प्लास्टिक, हस्तशिल्प, चमड़ा तथा चमड़ा उत्पादों के सम्बन्ध में शून्य डयुटी पर ई पी सी जी स्कीम लागू करना।

(ख) वर्तमान में चल रही 3% ई पी सी जी स्कीम का निर्यातकों के प्रयोग की दृष्टि से सरलीकरण।

www.studymasterofficial.com Download DISCOVERY

(ग) आटोमोबाइल तथा अन्य इन्जीनियरिंग उत्पादों के साथ अनेक उत्पादों को फोकस प्राडक्ट तथा मार्केट लिन्क्ड फोकस प्राडक्ट स्कीम में उपलब्ध प्रेरणाओं के लिए सम्मिलित करना।

डी.जी.एफ.टी. या विकास आयुक्त द्वारा निर्यात घरानों, ट्रेडिंग घराना आदि के रूप में पहचान किए गये निर्यातकों को स्टेटस होल्डर कहते हैं जिनका भारतीय वस्तु निर्यात में 60% से अधिक का योगदान है, उनकों प्रोत्साहित करने के लिए एडीशनल क्रेडिट ड्यूटी स्क्रिप जो पिछले एफ.ओ.बी. निर्यात पर 1% होगी, अनुमन्य होगी। इस ड्यूटी क्रेडिट स्क्रिप का प्रयोग वे पूंजीगत वस्तुओं के आयात पर कर सकते हैं।

(iv) **FPS (Focus Product Scheme):–** इसके तहत् ऐसे उत्पादों के निर्यात को प्रोत्साहित करना है जिनसे उच्च निर्यात गहनता रोजगार सम्भावना हो।

3. **कृषि निर्यात को प्रोत्साहन**

(i) कृषि एवं ग्रामीण उद्योग को बढ़ावा देने के लिए विशेष कृषि एवं ग्राम उद्योग योजना (VKUG) का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

(ii) ई पी सी जी के अन्तर्गत आयातित पूंजीगत वस्तुओं का किसी भी जगह ए ई जेड में लगाये जाने की स्वीकृति।

(iii) 150 करोड़ रूपये की निचली सीमा के साथ 'निर्यात उत्कृष्ट' (export excellence) की घोषणा की जायेगी।

(iv) कुछ निश्चित फल, फूलों तथा सब्जियों के सम्बन्ध में VKGUY के अन्तर्गत अनुमन्य लोगों के अतिरिक्त स्पेशल ड्यूटी क्रेडिट स्क्रिप की सुविधा देना।

4. **सेवा निर्यात को प्रोत्साहन**

SFIS (Served From India Scheme):– इसके तहत् सेवा क्षेत्र में भारत के तुलनात्मक लाभ को देखते हुए W.T.O. के तहत् मान्यता प्राप्त सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहन देना।

5. **निर्यात संवर्धन**

EPCGS (Export Pramotion Capital Goods Scheme):– यह पूंजीगत उत्पाद के आयात को प्रोत्साहित करने वाला कार्यक्रम है जिसके तहत ऐसे उत्पादों पर आयात शुल्क लगभग समाप्त कर दिया गया है।

क्षेत्रीय व्यापार समझौता (Regional Trade Agreement)

किसी भौगोलिक क्षेत्र में अवस्थित राष्ट्रों के बीच व्यापारिक संबंधों की स्थापना करने वाले समझौतों को क्षेत्रीय व्यापार समझौते कहा जाता है। 1950 और 1960 के दशकों में अधिकांशत: ऐसे समझौते यूरोप में प्रचलित थे लेकिन 1980 के दशक और उसके बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में भी ऐसे समझौतों का महत्व बढ़ गया है।

विश्व व्यापार संगठन में क्षेत्रीय व्यापार समझौतों को बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अवयव माना गया है। 31 जुलाई 2010 तक कुल 474 ऐसे समझौते प्रभावी थे जिनमें GATT के अनु. 24 के तहत 351 तथा सेवा व्यापार पर सामान्य समझौता (GATS: General Agreement on Trade Services) के अनु. 5 के तहत 92 समझौते शामिल थे। यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व व्यापार का लगभग 70 प्रतिशत इन्हीं समझौतों के माध्यम से होता है। क्षेत्रीय व्यापार समझौतों के दो मुख्य उद्देश्य है–

1. **व्यापार सृजन–** जब कोई देश किसी व्यापारिक समझौते में उसके प्रचलित नियमों को स्वीकार करते हुए शामिल होता है तो उसे व्यापार सृजन कहते हैं।
2. **व्यापार का दिशा परिवर्तन–** जब कोई देश किसी अन्य देश को इस प्रकार व्यापार संबंधी रियायतें देता हैं जिससे समझौते में शामिल दूसरे देश प्रभावित नही होते उसे व्यापार का दिशा परिवर्तन कहते हैं।

क्षेत्रीय व्यापार समझौतों की प्रकृति

1. **उत्तर-उत्तर समझौता (North–North Agreement)**

विकसित राष्ट्रों के बीच होने वाले समझौते को उत्तर-उत्तर क्षेत्रीय व्यापार समझौता कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य-बाजार का विस्तार

Downloaded From www.dhyeyaassterofficial.com

करना होता है। जैसे- अमेरिका-यूरोपीय संघ समझौता।

2. **उत्तर-दक्षिण समझौता (North-South Agreement)**

विकसित और विकासशील राष्ट्रों के बीच समझौते को उत्तर-दक्षिण व्यापार समझौता कहा जाता है। इसका मूल उद्देश्य व्यापार सृजन करना होता है। इसके तहत जहाँ एक ओर जहाँ विकसित राष्ट्र अपने लिए नए बाजार की खोज का प्रयास करते हैं वहीं दूसरी ओर विकासशील राष्ट्र उपयुक्त वस्तुओं एवं सेवाओं की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। जैसे- भारत-यूरोपीय संघ समझौता (प्रस्तावित)

3. **दक्षिण-दक्षिण समझौता (South-South Agreement)**

विकासशील राष्ट्रों के बीच समझौते को दक्षिण-दक्षिण समझौता कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यापार का संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। जैसे- भारत-आशियान समझौता, भारत-दक्षिण, कोरिया समझौता।

क्षेत्रीय व्यापार समझौते के प्रकार (Types of RTAs)

1. **हल्के एकीकरण वाले समझौते**

(i) स्वतंत्र व्यापार समझौते (F.T.A: Free Trade Agreement)

इसके द्वारा समूह के देशों के बीच स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र बनाया जाता है। इस कारण सदस्य देशों के मध्य तटकर मुक्त व्यापार प्रणाली स्थापित होती है परन्तु प्रत्येक सदस्य देश गैर सदस्य देशों के साथ व्यापार के संबंध में अपनी टैरिफ बनाए रखता है। इस प्रकार इस समझौते में प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क समझौते की लगभग समाप्ति हो जाती है। उदाहरण स्वरूप भारत-आसियान मुक्त व्यापार समझौता, साफ्टा (SAFTA: South Asia Free Trade Agrrement) आदि।

(ii) प्रेफरेन्शियल ट्रेड एग्रीमेंट (PTA: Prefrential Trade Agreement)

इन समझौतों का उद्देश्य व्यापारिक अवरोधों को कम करना है लेकिन कम करने का यह स्तर निम्न होता है। दूसरे शब्दों में ऐसे समझौते में अधिकांश उत्पादों पर प्रतिबंध लगे होते हैं। उदाहरण स्वरूप भारत एवं चिली प्रेफरेंशियल ट्रेड एग्रीमेंट।

(iii) कस्टम यूनियन (CU: Custom Union)

यह मुक्त व्यापार समझौते का ही एक रूप है लेकिन इसमें विशिष्ट अवसरों पर सदस्यों को प्रशुल्क अथवा गैर-प्रशुल्क आरोपित करने का अधिकार होता है। उदाहरण स्वरूप SACU: South America Custom Union

2. **गहरे एकीकरण वाले समझौते**

(i) साझा व्यापार (Common Market)

ऐसे मुक्त व्यापार समझौते में वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार के साथ-साथ श्रम एवं पूंजी के प्रवाह को भी महत्व दिया जाता है। उदाहरण स्वरूप CACM: Central American Common Market, CARRICOM- Carribbean Common Market.

(ii) संघ (Union)

क्षेत्रीय एकीकरण के उच्चतम स्तर वाले इन समझौतों में सदस्यों द्वारा समान आर्थिक नीतियों पर कार्य किया जाता है। जैसे एकल मुद्रा (यूरोपीय संघ)।

क्षेत्रीय व्यापार समझौते के प्रभाव (Impect of RTAs)

(i) सकारात्मक प्रभाव

ऐसे समझौते व्यापार के उदारीकरण में सहायक होते हैं। इन समझौतों से द्विपक्षीय/बहुपक्षीय संबंधों की स्थापना में सहायता मिलती है। ऐसे समझौते वैश्विक अर्थव्यवस्था के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

(ii) नकारात्मक

विश्व स्तर पर ऐसे एक से अधिक समझौतों के प्रचालन से व्यापार में व्यवधान की आशंका उत्पन्न हो सकती है।

www.studyiasofficial.com
Downloaded from

क्षेत्रीय व्यापार समझौते एवं डब्ल्यू.टी.ओ. (RTAs and WTO)

डब्ल्यू.टी.ओ. के तहत इन समझौतों को व्यापार के उदारीकरण और क्षेत्रीय एकीकरण के माध्यम से भूमंडलीकरण के लिए उत्तरदायी माना गया है। संगठन में इन समझौतो की सामान्य तथा विशिष्ट दोनों ही अर्थों में पहचान की गई है। सामान्य अर्थ में इन समझौतों का विस्तार भौगोलिक सीमा से अधिक हो सकता है जबकि विशिष्ट अर्थ में समझौते संगठन के प्रावधानों से निर्देशित होते हैं।

डब्ल्यू.टी.ओ. के अनुसार परंपरागत समझौतों के विपरीत इन समझौतों में क्षेत्रीय स्तर पर निवेश, प्रतिस्पर्धा तथा पर्यावरण जैसे विषयों को भी शामिल किया गया है। डब्ल्यू.टी.ओ. का यह मानना है कि इन समझौतो की सफलता मुख्य रूप से उनके नियम आधारित ढ़ांचे तथा व्यापार उदारीकरण के स्तर पर निर्भर हैं।

क्षेत्रीय व्यापार समझौतों पर भारत का दृष्टिकोण

भारत आरंभ से ही बहुपक्षीय व्यापार का समर्थक रहा है लेकिन हाल के वर्षों में क्षेत्रीय व्यापार समझौतों को उच्चस्तरीय प्राथमिकता दी है तथा इन्हें बहुपक्षीय व्यापार का Building Block कहा है। पिछले पांच वर्षों में भारत ने ऐसे समझौतों में एक पहलकारी नीति का पालन किया है। इन समझौतों पर भारत के दृष्टिकोण को निम्न बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है:

1. दोहा दौर की व्यापार वार्ताओं की प्रगति की धीमी दर।
2. वैश्विक आर्थिक मंदी को देखते हुए अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर निर्भरता में कमी।
3. घरेलू अर्थव्यवस्था में सतत् समवृद्धि के लिए बाजारों का विस्तार।
4. व्यापार उदारीकरण का अधिकतम लाभ लेते हुए विश्व व्यापार में अपने अंश में वृद्धि।
5. भारत द्वारा ऐसे समझौतो को बहुपक्षीय व्यापार के एक प्रमुख उपकरण के रूप में मान्यता दी गई है।
6. वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार के अतिरिक्त भारत ने इन समझौतों में निवेश पर भी बल दिया है।

व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (CECA: Comprehensive Economic Cooperation Agreement)/ व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौता (CEPA: Comprehensive Economic Partnership Agreement)

व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (CECA) एक द्विपक्षीय व्यापार समझौता है जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए गेटवे का भी कार्य करते हैं जबकि व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (CEPA) में दोनों पक्षों का व्यापार द्विपक्षीय स्तर तक सीमित होता है। इस प्रकार ये दोनों समझौते मुक्त व्यापार समझौते (FTAs) से अधिक व्यापक संकल्पना पर आधारित होते हैं। उल्लेखनीय है कि मुक्त व्यापार समझौते (FTA) में सेवाओं एवं निवेश क्षेत्र संबंधी प्रावधान नहीं शामिल होते हैं।

हाल में भारत ने आसियान, जापान, दक्षिण कोरिया एवं मलेशिया एवं सिंगापुर आदि देशों के साथ ऐसे समझौते किए हैं तथा विभिन्न देशों के साथ ऐसे समझौते स्थापित करने का प्रयास कर रहा है।

1. **भारत-सिंगापुर व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (Indo-Singapore Comprehensive Economic Cooperation Agreement)**

भारत एवं सिंगापुर ने व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते पर 27 मई, 2003 को वार्ता नई दिल्ली में प्रारम्भ की। भारत-सिंगापुर व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते पर सिंगापुर के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान 29 जून, 2005 को हस्ताक्षर किए गए। यह भारत का किसी भी देश के साथ प्रथम व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (CECA) था।

इस समझौते के अंतर्गत व्यापारिक उत्पादों, सेवाओं का व्यापार एवं निवेश सुरक्षा को शामिल किया गया है। इसके तहत दोहरे करारोपण

Downloaded from www.studyiqmasterofficial.com

समझौते (DTA: Double Taxation Agreement) पर हस्ताक्षर किए गए है। इसमें समझौता करने वाले देश के नागरिकों की आय पर दूसरे देश द्वारा करारोपण को रोका जाता है। वस्तुओं के व्यापार के अध्याय में प्रशुल्क संबंधी रियायतें दी गई हैं जिनसे सिंगापुर की वस्तुओं को अन्य देशों से भारत द्वारा किए जाने वाले आयात की तुलना में प्रतिस्पर्धी बनाएगी। अगले 5 वर्षों में सिंगापुर घरेलू निर्यातों पर 75% प्रशुल्क कम हो जाएंगे।

2. **भारत-दक्षिण कोरिया व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (India-South Koria Comprehensive Economic Partnership Agreement)**

भारत एवं दक्षिण कोरिया के मध्य 7 अगस्त, 2009 को आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वयापक आर्थिक साझेदारी समझौते (CEPA) पर सियोल में हस्ताक्षर हुए। इस समझौते (CEPA) में मुख्य रूप से 6 क्षेत्रों को शामल किया गया है जिसमें वस्तओं, सेवाओं का व्यापार प्रमुख रूप से शामिल हैं। इस समझौते से 10 बिलियन डॉलर के व्यापार को बढ़ाने में सहायता मिलेगी। उल्लेखनीय है कि इस समझौते पर वार्ता मार्च, 2006 में प्रारम्भ हुई एवं सितम्बर, 2008 में इस समझौते पर आम सहमति बनी।

वर्ष 2007-08 में भारत ने दक्षिण कोरिया को 2.85 बिलियन डॉलर का निर्यात किया था जो पूर्व वर्ष की अपेक्षा 13.5% अधिक था। इस समझौते के तहत भारत, दक्षिण कोरिया से आयात होने वाले लगभग 75% उत्पादों पर से प्रशुल्क समापत करेगा वहीं दक्षिण कोरिया, भारत से आयात होने वाले लगभग 93% उत्पादों पर से प्रशुल्क समाप्त करेगा। इस समझौते से जहाँ दक्षिण कोरिया के जहाजरानी से संबंधित आटो पार्टस उद्योग को बढ़ावा मिलेगा वहीं भारत के सेवा क्षेत्र को बढ़ावा मिलेगा।

इस समझौते से दोनों देशों के निवेश संबंधी संबंधों को नया आयाम मिलेगा। यद्यपि दक्षिण कोरिया में भारतीय कम्पनियों का निवेश अत्यंत न्यून है फिर भी इस समझौते के क्रियान्वयन से भारतीय कंपनियों को निवेश संबंधी नए अवसर प्राप्त होंगे। इस प्रकार भारत की कंपनियों (मुख्य रूप से दूरसंचार क्षेत्र से संबंधित) को एपेक क्षेत्र (APEC Region) में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का अवसर प्राप्त होगा। इसी प्रकार दक्षिण कोरिया के निवेशकों को भारत में निवेश करने के नए अवसर जैसे खाद्य प्रसंस्करण, वस्त्र उद्योग, धातु एवं मशीन उद्योग में प्राप्त होंगे।

इस प्रकार के समझौतों का सफल क्रियान्वयन WTO के दोहा दौर वार्ता गतिरोध को एक निश्चित बिंदु पर ले जानें में सहायक होगा। यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तंत्र के विकास एवं उसकी सफलता में महत्वपूर्ण

द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग

विगत में भारत ने क्षेत्रीयवाद के प्रति अत्यन्त सावधानीपूर्ण और सुरक्षित दृष्टिकोण अपनाया था। तथापि, इस बात को मानते हुए कि क्षेत्रीय और तरजीही कारोबारी करार विश्व व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे और बहुपक्षीय वार्ताओं की धीमी प्रकृत्ति को देखते हुए, भारत ने अधिकांशः मामलों में व्यापक आर्थिक सहयोग करारों की ओर बढ़ना आरम्भ किया, प्रमुख एफटीए/आरटीए/सीईसीए से संबंधित हाल के घटनाक्रम निम्नलिखित हैं:

- **भारत-यूरोपीय संघ व्यापार और निवेश करार वार्ताएं:** भारत और यूरोपीय संघ के बीच एक व्यापक आधारयुक्त द्विपक्षीय व्यापार और निवेश करार हेतु वार्ताएं जून 2007 में आरंभ हुई। अब तक ग्यारह दौरों का आयोजन किया जा चुका है। अंतिम दौर जनवरी 2011 में भारत में आयोजित किया गया।
- **भारत-जापान आर्थिक साझेदारी करार (ईपीए) व्यापक आर्थिक सहयोग साझेदारी करार (सीईपीए) वार्ताएं:** एक व्यापक आर्थिक सहयोग साझेदारी करार (सीईपीए) हेतु वार्ताएं जनवरी 2007 में शुरू की गई और 9 सितम्बर 2010 को टोक्यो में 14वें दौर के दौरान 'सिद्धान्त:' करार पर हस्ताक्षर किए गए।
- **भारत-मलेशिया व्यापक आर्थिक सहयोग करार (सीईसीए):** भारत-मलेशिया सीईसीए वार्ताएं फरवरी, 2008 में आयोजित की गईं। वार्ताओं का समापन सितम्बर, 2010 को हुआ। सीईसीए में वस्तुओं और सेवाओं, निवेश और आर्थिक सहयोग के अन्य क्षेत्र शामिल हैं इसे एक एकल वचनपत्र के रूप में हस्ताक्षरित किया जाएगा। भारत-आसियान व्यापार को ध्यान में रखते हुए जिसे भारत और मलेशिया के बीच जनवरी 2010 में क्रियान्वित किया गया, दोनों पक्षों ने वस्तुओं में बाजार पहुंच पर 'आसियन प्लस' की पेशकश की है। 27 अक्तूबर, 2010 को भारत और मलेशिया के प्रधान मंत्रियों ने वार्ताओं के समापन की घोषणा की। 2011 के आरंभ तक इस पर हस्ताक्षर किए जाएंगे और यह 1 जुलाई 2011 तक क्रियान्वित किया जाएगा।

भूमिका निभा सकते हैं।

3. भारत-जापान व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (India-Japan Comprehinsive Economic Partnership Agreement)

9 सितम्बर, 2010 को नई दिल्ली में 14 वें भारत-जापान आर्थिक साझेदारी समझौते पर वार्ता के दौरान व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (CEPA) पर सहमति बनी। इस पर 16 फरवरी, 2010 को हस्ताक्षर किए गए। सिंगापुर, दक्षिण कोरिया के पश्चात जापान तीसरा देश है जिसके साथ भारत ने यह समझौता किया तथा भारत का किसी विकसित देश के साथ पहला समझौता है।

पूर्व में किए गए सभी समझौतों से यह समझौता अधिक व्यापक है एवं इसके अंतर्गत लगभग 90% व्यापार शामिल है। यह समझौता 1 अगस्त, 2011 से प्रभावी हो गया है। इस समझौते के अंतर्गत लगभग सभी प्रकार की सेवाएं, निवेश, बौद्धिक संपदा संबंधी अधिकार एवं विभिन्न व्यापार संबंधी मुद्दे शामिल हैं।

भारत-जापान व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते के अंतर्गत भारत द्वारा 11.4% प्रशुल्क दर को तत्काल शून्य करने की सुझाव दिया गया। प्रशुल्क दरें अगले 10 वर्षों में शून्य कर दी जाएगी। इसके परिणामस्वरूप व्यापार उदारीकरण हेतु विभिन्न उद्योगों को पर्याप्त समय मिलेगा। सेपा (CEPA) के क्रियान्वयन से भारत के फार्मास्यूटिकल्स उद्योग को जापान में प्रोत्साहन दिया जाएगा इसके अतिरिक्त जापानी निवेशक, तकनीक एवं विश्वस्तरीय प्रबंधन को भारत में स्थापित किया जाएगा। जापान, भारत के विशाल बाजार, संसाधन एवं मानव संसाधन का प्रयोग कर सकेगा। यह समझौता, जो अपने स्वरूप में अत्यंत व्यापक है, भारत-जापान आर्थिक संबंधों को सुदृढ़ करेगा जिसके दोनों देशों को लाभ प्राप्त होगा। दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय, व्यापार जो वर्तमान में 12.6 बिलियन डालर है, इस समझौता से वर्ष 2014 में 25 बिलियन डालर होने की सम्भावना है।

भारत एवं जापान एशिया के दो बड़े लोकतांत्रिक हैं साथ ही दोनों देश विधि के शासन एवं मानवाधिकार में विश्वास रखते हैं। सेपा (CEPA) के क्रियान्वयन से एशिया की दो बड़ी अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक अर्थव्यवस्था के निर्माण में सहायक होंगी।

4. भारत-मलेशिया व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (Indo-Malesiya Comprehensive Economic Partnership Agreement)

- **भारत-कोरिया सीईपीएः** भारत-कोरिया सीईपीए पर हस्ताक्षर 6 अगस्त, 2009 को किए गए और 1 जनवरी 2010 से क्रियान्वित किया गया जिसमें माल व्यापार निवेश, और सेवाओं और साझा हित के क्षेत्रों में द्विपक्षीय सहयोग शामिल है। सीईपीए के अंतर्गत, कोरिया की टैरिफ लाइनों के 93 प्रतिशत तथा भारत की टैरिफ लाइनों के 85 प्रतिशत पर टैरिफ कम किया जाएगा या समाप्त किया जाएगा। इससे दोनों देशों द्वारा स्वतंत्र व्यावसायिकों एवं संविदात्मक सेवा प्रदाताओं की आवाजाही को सरल बनाने के लिए की गई अतिरिक्त प्रतिबद्धताओं के माध्यम से यह करार सेवाओं में व्यापार को सुविधाजनक बनाया जाएगा।
- **भारत-आसियान वस्तु व्यापार करारः** भारत और आसियान जिसमें ब्रुनेई दारूस्सलाम, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, लाओ पीडीआर, मलेशिया, फ़िलीपीन्स, सिंगापुर, म्यांमार, थाईलैंड और वियतनाम शामिल हैं, के बीच 13 अगस्त, 2009 को एक व्यापक आर्थिक सहयोग करार (सीईसीए) के वृहत्तर फ्रेमवर्क के अंतर्गत माल व्यापार करार पर हस्ताक्षर किए गए। माल व्यापार करार में टैरिफ लाइनों के 80 प्रतिशत पर, जो व्यापार का 75 प्रतिशत बनता है, 1 जनवरी 2010 से आरंभ करके क्रमिक रूप से बुनियादी कस्टम ड्यूटी समाप्त करने का प्रावधान है। भारत ने कृषि, वस्त्र, ऑटो, रसायनों, अपरिष्कृत और परिष्कृत पाम तेल, कॉफी, चाय, गोल मिर्च आदि की संवेदनशीलताओं के निराकरण के लिए टैरिफ रियायतों की सूची से 489 एचएस 6 अंकीय लाइनों और टैरिफ समाप्तियों की सूची से 590 एचएस 6 अंकीय लाइनों को हटा दिया है।
- **एशिया प्रशांत व्यापार करार (एपीटीए):** एपीटीए में बंगलादेश, कोरिया गणतंत्र, श्रीलंका, चीन, लाओ पीडीआर और भारत शामिल हैं। वार्ताओं का चौथा दौर अक्तूबर, 2007 को गोवा में मंत्रीमंडलीय कांफ्रेंस के द्वितीय सत्र में आयोजित किया गया। वार्ताओं के चौथे दौर को आगे बढ़ाने के लिए क्रमशः 15 दिसम्बर, 2009 और 13-14 दिसम्बर, 2010 को सिओल, दक्षिण कोरिया में मंत्रीमंडलीय परिषद की तीसरी बैठक और स्थायी समिति की 35वें सत्र की बैठक आयोजित की गई।

1 जुलाई, 2011 से भारत एवं मलेशिया के मध्य व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता लागू हो गया है। सिंगापुर, दक्षिण कोरिया एवं जापान के पश्चात मलेशिया चौथा देश है जिसके साथ भारत ने यह समझौता किया है। इसके परिणामस्वरूप माल-व्यापार, सेवा-व्यापार एवं निवेश

में वृद्धि होगी। उल्लेखनीय है कि इस समझौते पर 18 फरवरी, 2011 को हस्ताक्षर किए गए थे।

इस समझौते के फलस्वरूप विभिन्न निर्यात योग्य भारतीय उत्पादों जैसे बासमती चावल, सूती वस्त्र, आम एवं आटोमोबाइल उद्योग को मलेशियाई बाजार में सरलतापूर्वक प्रवेश मिल सकेगा। साथ ही भारत के सेवा क्षेत्र का लाभ मलेशिया को मिल सकेगा। इसके फलस्वरूप भारतीय चिकित्सक, चार्टर्ड एकाउंटेंट्स, इंजीनियर्स अपनी सेवाएं मलेशिया को दे सकेंगे। इसके अतिरिक्त भारतीय स्थित टेट क्षेत्र मलेशिया में निवेश कर सकेगा साथ ही मलेशियाई निवेश भारत के आधारभूत संरचना में निवेश कर सकेगा। भारत एवं मलेशिया के मध्य वर्ष 2010-11 में द्विपक्षीय व्यापार 10 अरब डॉलर है जो पूर्व वर्ष 2009-10 की अपेक्षा 26% अधिक है। इस समझौते के सफल क्रियान्वयन से दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार वर्ष 2015 तक 15 अरब डॉलर पहुचने की सम्भावना है। साथ ही यह समझौता भारत-आसियान मुक्त व्यापार समझौते को और व्यापक आधार प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा। उल्लेखनीय है कि भारत-आसियान मुक्त व्यापार समझौते में सेवाओं को शामिल नहीं किया गया है।

इस प्रकार के समझौते निवेश को बढ़ावा देते हैं साथ ही व्यापार को सरल; उदार, पारदर्शी बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। उपरोक्त समझौते के परिणामस्वरूप एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था के निर्माण में सहायता मिल सकती है।

5. भारत-आसियान व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौता (Indo-Asean Comprehensive Economic partnership Agreement)

भारत एवं 10 सदस्यीय आसियान संगठन के मध्य वर्ष 2003 से आर्थिक क्षेत्र में सहयोग स्थापित करने के क्रम में वार्ताएं आयोजित की जा रही हैं। वर्ष 2007 में इस संगठन के सिंगापुर सम्मेलन के दौरान इस क्षेत्र में ठोस कदम उठाने की प्रतिबद्धता दोनों पक्षों ने व्यक्त की। इसी क्रम में 13 अगस्त, 2009 को बैंकाक में भारत-आसियान मुक्त व्यापार समझौते (India-Asean FTA) पर हस्ताक्षर हुए। इसका क्रियान्वयन जनवरी, 2010 से प्रारम्भ हो गया। इसके तहत 1 जनवरी, 2010 से 80% मूलभूत सीमा शुल्क समाप्त हो जाएंगे, जिनके तहत 75% व्यापार का अंश आता है। इसी मुक्त व्यापार समझौते का विस्तार करते हुए इस समझौते में प्रमुख सेवाओं एवं निवेश क्षेत्र को शामिल करके व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौते (CECP) को क्रियान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस समझौते (CEPA) पर वर्ष 2011 के अंत में हस्ताक्षर होने की सम्भावना है। उल्लेखनीय है कि भारत-आसियान व्यापार वर्ष 2010 में 50.33 बिलियन डॉलर था जिसमें भारत ने आयात 27.81 बिलियन डालर का एवं निर्यात 27.81 बिलियन डालर का किया। दोनों पक्षों के मध्य सेपा (CEPA) लागू होने से यह व्यापार वर्ष 2012 तक 70 बिलियन डॉलर होने की सम्भावना है। उल्लेखनीय है कि भारत अपनी 'लुक ईस्ट पॉलिसी' के तहत दक्षिण-पूर्वी एशिया के संबंधों को नई दिशा देने का प्रयास कर रहा है एवं यह समझौता इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

क्षेत्रीय व्यापार समझौते एवं भारत (RTAs and India)

भारत ने इस प्रकार के समझौतों का उपयोग अपनी आर्थिक एवं वैदेशिक नीति को सुदृढ़ बनाने के संन्दर्भ में किया है। इसके तहत् विभिन्न देशों के साथ समझौते करके एक वैश्विक अर्थव्यवस्था के निर्माण का प्रयास किया जा रहा है।

भारत द्वारा किए गए विभिन्न व्यापार समझौते

1. **सार्क (SAARC: South Asian Association for Regional Cooperation):-** भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्री लंका, बांग्लादेश, मालदीव, भूटान एवं अफगानिस्तान इस संगठन ने शामिल हैं। यह संगठन वर्ष 1985 में स्थापित किया गया था। इसके द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व से इस क्षेत्र का आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का प्रयास किया जा रहा है।

इस क्षेत्र के विकास में साफ्टा (SAFTA: South Asia Free Trade Agreement) की प्रमुख भूमिका स्थापित हो रही है। इस समझौते पर सहमति 12 वे सार्क सम्मेलन इस्लामाबाद के दौरान बनी। यह समझौता 1 जनवरी, 2006 से प्रभावी हो चुका है। इसके अंतर्गत संबंधित देश वर्ष 2016 तक प्रशुल्क दर को शून्य करने पर सहमत हैं।

साफ्टा के क्रियान्वयन के प्रथम चरण में भारत, पाकिस्तान एवं श्रीलंका वर्ष 2007 तक अपने प्रशुल्क दर को 20% तक कम करने पर सहमत हुए। द्वितीय चरण में वर्ष 2012 तक इस दर को शून्य करने पर ये देश सहमत हुए है। इस संगठन के न्यून विकसित देशों जैसे नेपाल, भूटान, बांग्लादेश एवं मालदीव को इस समय सीमा हेतु अतिरिक्त 3 वर्ष मिलेंगे अर्थात ये देश वर्ष 2015 तक अपने प्रशुल्क दर

को शून्य करेंगे।

2. **BIMSTEC**

इस संगठन में बांग्लादेश, भारत, म्यांमार, श्री लंका, थाइलैंड, नेपाल एवं भूटान शामिल हैं। इसे बे ऑफ बंगाल इनीसिएटिव फॉर मल्टीलेटरल, टेक्निकल एंड इकोनामिक कार्पोरेशन भी कहा जाता है। यह संगठन दक्षिण एशिया एवं दक्षिण- पूर्व एशिया को एक संबद्धता प्रदान करता है। इस संगठन की कुल आबादी विश्व की लगभग 21% है एवं संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद 750 बिलियन डॉलर है।

इस संगठन के सदस्य देशों ने 6वीं मंत्रिस्तरीय वार्ता के दौरान मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए। बांग्लादेश ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। उसने 25 जून, 2004 को इस पर हस्ताक्षर किए। 7-8 सितंबर, 2004 को इस समझौते के क्रियान्वयन हेतु एक व्यापार वार्ता समिति (TNC: Trade Negotiation Committee) का गठन किया गया था। इस समझौते के निम्न उद्देश्य हैं-

1. सदस्य देशों के मध्य आर्थिक, व्यापारिक एवं निवेश संबंधी सहयोग को सुदृढता प्रदान करना।
2. उत्पादों एवं सेवा संबंधी व्यापार उदार बनाना साथ ही एक पारदर्शी, उदार निवेश नीति को प्रोत्साहित करना।
3. सदस्य देशों के मध्य सहयोग के नए अवसरों को तलाशना।
4. संगठन के अल्प विकासशील देशों की आर्थिक गतिविधियों को बढावा देना ताकि संगठन के अपेक्षाकृत अधिक विकासशील देशों के साथ उनकी दूरी को कम किया जा सके।

3. **भारत-मर्कोसुर पी.टी.ए. (India–MERCOSUR PTA)**

मर्कोसुर (mercosur) एक लैटिन अमेरिकी संगठन है जिसकी स्थापना वर्ष 1991 में की गई थी। इसमें ब्राजील, अर्जेंटीना, उरूग्वे एवं पराग्वे देश शामिल हैं। इस संगठन का उद्देश्य सदस्य देशों के मध्य उत्पादों, सेवाओं एवं पूंजी संबंधी गतिविधियों को बढ़ावा देना है। उल्लेखनीय है कि यूरोपीय यूनियन (EU), उत्तरी अमेरिकी मुक्त व्यापार समझौते (NAFTA) के पश्चात् यह तीसरा सबसे बड़ा एकीकृत बाजार है।

25 जनवरी, 2004 को भारत एवं मर्कोसुर के मध्य नई दिल्ली में PTA (Preferential Trade Agreement) पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते के अंतर्गत भारत एवं मर्कोसुर के मध्य विद्यमान आर्थिक संबंधों को बढ़ावा देना है ताकि दोनों के मध्य मुक्त व्यापार क्षेत्र के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। भारत-मर्कोसुर पी.टी.ए. 1 जून, 2009 से प्रभावी हो गया है। इस समझौते से 452 उत्पादों पर प्रशुल्क दर को न्यून किया गया है। समझौते के तहत भारतीय उत्पाद प्रमुख रूप से कार्बनिक एवं आकर्बनिक रसायन, चमड़े के उत्पाद, ऊन, कपास के धागे, शीशा, लोहे एवं स्टील उत्पाद, मशीनरी उत्पाद, फोटोग्राफी एवं सिनेमैटोग्राफी संबंधी उत्पाद शामिल हैं वहीं मर्कोसुर उत्पाद में खाद्य प्रसंस्करण, कार्बनिक रसायन, फार्मास्यूटिकल्स, आवश्यक तेल, प्लास्टिक एवं रबर उत्पाद आदि शामिल हैं।

4. **भारत-यूरोपियन यूनियन**

भारत एवं यूरोपियन यूनियन मुक्त व्यापार समझौते पर वार्ता वर्ष 2007 से प्रारम्भ हुई थी। यदि भारत एवं यूरोपियन यूनियन के मध्य यह समझौता सम्पन्न हो जाता है तो दोनों के मध्य व्यापार वर्ष 2015 तक 237 बिलियन डॉलर तक पहुँच जाने की सम्भावना है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में दोनों के मध्य व्यापार लगभग 92 बिलियन डॉलर का है।

दोनों पक्ष एक मुक्त व्यापार समझौते (FTA) को अंतिम उद्देश्य तक ले जाने के लिए कटिबद्ध हैं एवं इसी क्रम में विभिन्न वार्ताओं का आयोजन किया जा रहा है। इस समझौते पर वर्ष 2010 के अंत तक हस्ताक्षर होने की आशा थी परन्तु अभी तक ऐसा नहीं हो सका है।

इन वार्ताओं के दौरान व्यापार, आर्थिक सहयोग एवं विकास सहयोग के क्षेत्र में तीन उप-आयोग और कृषि एवं समुद्री उत्पाद, वस्त्र, सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार, वाणिज्य मामले, पर्यावरण, इस्पात, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, दवा एवं जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापार सम्बंधी तकनीकी बाध्यताओं के सन्दर्भ विभिन्न आयोगों की स्थापना का निर्णय लिया गया है। इसके अतिरिक्त भारत-यूरोपियन यूनियन द्विपक्षीय व्यापार को वर्ष 2013 तक 100 अरब यूरो करने का लक्ष्य रखा गया हैं इसके लिए यूरोपियन यूनियन के देशों में पेशेवरों की उपलब्धता बनाए रखने हेतु बीजा प्रक्रिया को सरल बनाने का निर्णय लिया गया है।

यद्यपि दोनों पक्षों के मध्य मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर नहीं हो पाया है फिर दोनों पक्षों के मध्य व्यापार, निवेश, ऊर्जा, खाद्य सुरक्षा

www.studymaterofficial.com
Downloaded From BIGSOFT

जैसे प्रमुख क्षेत्रों में हाल के वर्षों में विविधता एवं गहनता आई है।

सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र (Most Favoured Nation)

विभेदीकरण के प्रतिषेध के मूल सिद्धांत पर आधारित यह एक दर्जा है जो सदस्य राष्ट्रों द्वारा एक-दूसरे को दिया जा सकता है। इसका उद्देश्य व्यापार में विभेदीकरण को रोकना है। सेवा व्यापार पर सामान्य समझौता (GATs:- General Agreement on Trade in services) में कुल 161 सेवाओं का उल्लेख है जिनका व्यापार किया जा सकता है। उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है:

Mode I

इसमें किसी देश की आर्थिक ईकाइयों द्वारा अन्य देशों को दी जाने वाली सेवाएँ शामिल हैं जिनमें बैंकिंग अथवा वित्तीय सेवाएं शामिल नहीं है।

Mode II

इसमें किसी देश में विदेशियों को प्राप्त होने वाली सेवाएं शामिल हैं जैसे पर्यटन आदि।

Mode III

इसमें मुख्यत: बैंकिंग तथा वित्तीय सेवाएं शामिल हैं।

Mode IV

इसमें व्यक्तिगत स्तर पर दी जाने वाली सेवाएं शामिल हैं जैसे शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधित सेवाएं।

पाकिस्तान द्वारा भारत को प्रस्तावित सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र का दर्जा

दोनों देशों के बीच कोई औपचारिक व्यापार समझौता नहीं होने के बावजूद वर्ष 2011 में भारत-पाकिस्तान द्विपीय व्यापार लगभग डॉलर 2.6 बिलियन का था। व्यापार में वृद्धि के लिए यह अपेक्षित है कि दोनों देश एक-दूसरे को सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र का दर्जा प्रदान करें। इसका अर्थ यह है कि MFN दर्जा प्राप्त राष्ट्र के व्यापार में वृद्धि के लिए सुविधाओं अथवा रियायतें दी जायेगी और ऐसा कोई प्रयास नहीं किया जायेगा जो उस राष्ट्र के व्यापार को बाधित करता है। सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र का मूल प्रावधान GATT (General Agreement of Triffi and Trade प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता) के Article XXIV (24) से प्रेरित है तथा यह विश्व व्यापार संगठन का मूल सिद्धांत है जो विभेदीकरण पर रोक को निर्धारित है। भारत ने पाकिस्तान को यह दर्जा सन् 1996 में ही दे दिया था। द्विपक्षीय व्यापार की दृष्टि से अक्टूबर, 2011 में पाकिस्तान द्वारा भारत को सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र दर्जा देने के प्रस्ताव को नित्यंत महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। मार्च, 2012 में पाकिस्तान सरकार द्वारा सकारात्मक सूची के बदले नकारात्मक सूची पर आधारित व्यापार के प्रस्ताव को मंजूरी दी गयी थी। इससे वर्ष 2012 के अंत तक भारत को सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र का दर्जा प्राप्त होने की संभावना बढ़ गयी है। नकारात्मक सूची आधारित व्यापार से भारत से पाकिस्तान को होने वाले निर्यात में 3 गुना वृद्धि होने की आशा है। इससे द्विपक्षीय व्यापार के डॉलर 8 बिलियन तक हो जाने की संभावना है।

DISCOVERY www.studymasterofficial.com Download

2. विदेशी निवेश
Foreign Investment

प्रमुख शब्दावली (Important Terms)

व्यापार की मात्रा (Volume of Trade) : किसी देश के एक वर्ष की अवधि के निर्यात और आयात के योग को हम व्यापार की मात्रा कहते हैं।

व्यापार का मूल्य (Value of trade) : किसी देश के एक वर्ष की अवधि के आयात और निर्यात के मौद्रिक मूल्य के योग को हम व्यापार का मूल्य अथवा कुल विदेशी व्यापार कहते हैं।

व्यापार की संरचना (Structure of Trade) : किसी देश के एक वर्ष की अवधि में आयात और निर्यात की गयी वस्तुएं व्यापार की संरचना कहलाती हैं।

व्यापार की दिशा (Direction of Trade) : ऐसे देश जिनके साथ व्यापार किया जाता है, व्यापार की दिशा कहलाते हैं।

व्यापार संतुलन (Balance of Trade) : किसी भी देश की वस्तुओं के आयात एवं निर्यात के अंतर को व्यापार-संतुलन कहते हैं। व्यापार संतुलन के निम्नलिखित तीन रूप हो सकते हैं:

(i) **अनुकूल व्यापार संतुलन** (Favourable Balance of Trade) = निर्यात – आयात

(ii) **प्रतिकूल व्यापार संतुलन** (Unfavourable Balance of Trade) = आयात – निर्यात

(iii) **साम्य व्यापार संतुलन** (Equilibrium Balance of Trade) = निर्यात = आयात (X=M)

भुगतान संतुलन (Balance of Payment) : भुगतान संतुलन एक निश्चित अवधि के लिए किसी देश के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों का लेखांकन है।

व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन में अंतर (Difference between Balance of Trade and Balance of Payment): जब केवल वस्तुओं के आयात-निर्यात का अंतर निकाला जाता है तो इसे व्यापार का संतुलन कहते हैं लेकिन जब सेवाओं के संबंध में यह अंतर निकाला जाता है तो इसे भुगतान संतुलन कहते हैं।

मुद्रा अवमूल्यन (Money Devaluation) : इस रीति के अंतर्गत सरकार अपनी मुद्रा के बाह्य मूल्य को विदेशी मुद्रा के रूप में कम कर देती है जिससे आयात महंगे हो जाते हैं तथा निर्यात सस्ते हो जाते हैं।

भेदपूर्ण परिवहन (Discriminating Freight Rate) : कभी देश की सरकार आयातित वस्तुओं पर ऊंची परिवहन लागतें वसूल करके आयातों को हतोत्साहित करती है। ऊंची परिवहन लागातों के कारण विदेशी माल बाजार में मंहगा हो जाता है तथा उसकी मांग स्वयं ही कम हो जाती है।

दृश्य व्यापार (Visible Trade) : दो देशों के मध्य होने वाला व्यापार जिसमें वाणिज्यिक वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता है तथा सेवाओं के व्यापार को शामिल नहीं किया जाता है, तब इसे दृश्य व्यापार कहते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

अदृश्य व्यापार (Invisible Trade) : विदेशी बैंक, जहाजरानी, बीमा कंपनी, विदेशी सेवाएं, उपहार, विदेशी ऋण पर ब्याज, विदेशी निवेश आदि से प्राप्त लाभांश आदि अदृश्य मदें-जिनका आयात-निर्यात होता है, के व्यापार को अदृश्य व्यापार कहते हैं।

मात्रात्मक प्रतिबंध (QR) : किसी वस्तु के आयात को हतोत्साहित करने के लिए उस वस्तु के आयात की मात्रा निश्चित कर दी जाती है या उसका अभ्यंश निश्चित कर दिया जाता है जिससे उस वस्तु का आयात स्वतंत्र नहीं रह जाये तो इस प्रकार के आयात प्रतिबंध को 'मात्रात्मक प्रतिबंध' कहते हैं।

ओवेन जनरल लाइसेंस (OGL) : इस सूची में आने वाली वस्तुएं प्रतिबंधित नहीं होती हैं पर उनके आयात के लिए सरकार से लाइसेंस लेने की आवश्यकता होती है।

कैनेलाइलजेशन (Canalisation) : केंद्रीय सरकार द्वारा निश्चित की गई संस्थाओं (Agencies) के द्वारा आयात तथा निर्यात किये जाने की व्यवस्था के तरीके को 'कैनेलाइजेशन' कहते हैं।

भुगतान संतलुन (Balance of Payment) : भुगतान संतुलन एक निश्चित अवधि के लिए किसी देश के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों का लेखांकन है।

व्यापार संतुलन व भुगतान संतुलन में अंतर (Difference between Balance of Trade and Balance of Payment) : जब केवल वस्तुओं के आयात-निर्यात का अंतर निकाला जाता है। तो इसे व्यापार का संतुलन कहते हैं लेकिन जब वस्तुओं व सेवाओं के संबंध में यह अंतर निकाला जाता है तो इसे भुगतान संतुलन कहते हैं।

चालू लेखा या खाता (Current Account) : भुगतान संतुलन में दृश्य (Visible) तथा अदृश्य (Invisible) दोनों प्रकार की मदों के आयात-निर्यात मूल्यों को अंकित किया जाता है। चालू खाते के लेन-देन को वास्तविक लेन-देन का खाता कहा जाता है।

पूंजी खाता (Capital Account) : इस शीर्षक के अंतर्गत विदेशों में विनियोजित तथा विदेशों की स्वयं के देश में विनियोजित पूंजी खाते की दीर्घकालीन व अल्पकालीन विनियोगों को अलग-अलग दिखाया जाता है।

चक्रीय असाम्यता (Cyclical Disequilibrium) : व्यापार-चक्रों के कारण से उत्पन्न होने वाले असंतुलनों को चक्रीय असंतुलन कहा जाता है।

चिरकालिक असाम्यता (Specular Disequilibrim) : चिरकालिक असाम्यता किसी अर्थव्यवस्था के विकास को एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर अग्रसर होने वाले परिवर्तनों के कारण पैदा होती है।

संरचनात्मक असाम्यता (Structural Dedeqyilibrium) : किसी देश के भुगतान शेष में संरचनात्मक असंतुलन की स्थिति उस समय आती है जब निर्यात अथवा आयात अथवा इन दोनों की मांग या पूर्ति के ढांचे में परिवर्तन होता है।

मुद्रा की परिवर्तनीयता (Convertibility of Money) : मुद्रा की परिवर्तनीयता का अर्थ ऐसी व्यवस्था से लगाया जाता है जिसके तहत् देश की मुद्रा मुक्त रूप से प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्राएं मुक्त रूप से स्थानीय मुद्रा में परिवर्तनशील होती हैं।

विदेशी पूंजी (Foreign Capital) : भारत में निवेश के लिए विदेशी व्यक्तियों अथवा कंपनियों द्वारा उपलब्ध कराई गई पूंजी को विदेशी पूंजी कहते हैं।

विदेशी सहायता (Foreign Aid) : विदेशी सहायता एक विस्तृत शब्द है जिसके अंतर्गत विदेशी ऋण अनुदान से लेकर निजी विदेशी विनियोग तक को सम्मिलित किया जा सकता है।

सार्वजनिक जमा (Public Deposit) : कंपनियों द्वारा ऋण के रूप में प्राप्त राशि को सार्वजनिक जमा कहते हैं।

निबद्ध विदेशी सहायता (Tied Foreign Assistance) : जब विदेशी ऋण का उपयोग किसी भी परियोजनाओं में किया जाता है जिनसे ऋण जुड़ा हुआ है तो वह निबद्ध विदेशी सहायता कही जाती है।

अनिबद्ध विदेशी सहायता (Untied Foreign Assistance) : जब विदेशी ऋण का उपयोग किसी भी परियोजना के लिए किया जाता

Downloaded from www.studymasterofficial.com

है तो वह अनिबद्ध विदेशी सहायता कही जाती है।

पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment) : इसके अंतर्गत विदेशी कंपनियों भारतीय कंपनियों के ऋणपत्र (बॉण्ड) या अंश (शेयर) खरीदकर विनियोग करती हैं। इस प्रकार के विनियोग में विदेशी कंपनियों का स्वामित्व, प्रबंध व नियंत्रण न होकर लाभांश व ब्याज प्राप्त करने तक सीमित होता है। यह सब स्वदेशी होता है।

विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (Foreign Direct Investment) : प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग से अभिप्राय है कि कोई विदेशी नागरिक अथवा संगठन दूसरे देश में अपनी पूंजी द्वारा उत्पादन इकाई की स्थापना करता है।

विदेशी निवेश (Foreign Investment)

किसी भी अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेश का महत्व दो कारणों से हैं-

1. सकल घरेलू पूंजी निर्माण में सहायता
2. भुगतान संतुलन बनाए रखने में सहायता।

भारत में विदेशी निवेश के आकर्षण का मुख्य कारण

पिछले दो दशकों में भारत में विदेशी निवेश की दर तीव्रगति से बढ़ी है। विश्व निवेश रिपोर्ट 2010 में विश्व के 10 अग्रणी राष्ट्रों में भारत को शामिल किया गया है। उल्लेखनीय है कि 2009 में भारत का स्थान 13वां था जबकि 2010 के रिपोर्ट में इसे 9 वें स्थान पर रखा गया है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख है कि 2010 में वैश्विक निवेश लगभग 1.2 ट्रिलियन डॉलर का होगा जबकि 2012 में इसके 1.6-2.0 ट्रिलियन डॉलर तक हो जाने की आशा है। यद्यपि वर्ष 2011 की रिपोर्ट में भारत की रैंकिंग में गिरावट आई थी। इस पृष्टभूमि में विदेशी निवेश की दृष्टि से एक आकर्षण केन्द्र के रूप में भारत के उभरने के कारणों में निम्नांकित प्रमुख माने जा सकते हैं-

- क्रय शक्ति समता के अधार पर विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था तथा एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था का होना।
- मुद्रा बाजार और पूँजी बाजार में विधि के शासन के कारण निवेश की पर्याप्त सुरक्षा।
- 60 से अधिक क्षेत्रों में स्वचालित मार्ग से निवेश की छूट (पूर्व अनुमति के बिना)।
- उन्नत पूंजी बाजार का होना।
- निर्यात संपर्द्धन के लिए विशेष कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
- प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता।
- अनुसंधान एवं विकास की प्रबल संभावनाएं।
- अधिकारों की रक्षा करने वाली एक सुदृढ़ लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली।
- अंग्रेजी भाषा का व्यापक प्रचलन।

विदेशी निवेश के प्रमुख स्त्रोत (Main Sources for Foreign Investment)

A. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI: Foreign Direct Investment)

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से आशय विदेशी कम्पनियों द्वारा भौतिक पूँजी सम्पत्तियों, प्लान्ट मशीनरी, भूमि, भवन, इन्वेन्ट्री आदि में निवेश करने से है। इसके अन्तर्गत विदेशी कम्पनी घरेलू देश में नयी कम्पनी विकसित करती हैं या अपनी सहायक कम्पनी को खोलती हैं जिसमें दोनों ही नियंत्रण (Control) तथा प्रबन्ध (Management) लगा रहता है। इसमें निवेशित पूँजी के प्रयोग पर निवेशक का नियंत्रण बना रहता है। स्पष्ट है प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से घरेलू देश में भौतिक पूँजी निर्माण होता है। जिसका अनुकूल प्रभाव उत्पादन, आय तथा रोजगार पर पड़ता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश दीर्घकालिक स्वभाव के होते हैं तथा इनके साथ पूँजी पलायन (Capital Flight) का भय नहीं होता।

भारत में यह विनियोग भारतीय रिज़र्व बैंक, औद्योगिक सहायता सचिवालय (Secretarial for Industrial Approvals - SIA) एवं विदेशी विनियोग प्रोत्साहन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board - FIPB) के माध्यम से होता है। इसके अन्य दो रास्ते हैं- अनिवासी भारतीय तथा अनिवासियों द्वारा भारतीय कंपनियों के शेयरों की खरीद।

रिजर्व बैंक द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की नई परिभाषा में निम्नांकित शामिल हैं-

(i) **समता पूंजी:-** किसी निवेशक द्वारा किसी उद्योग में उसके समता अंशों के मूल्य के बराबर निवेशित पूँजी।

(ii) **पुनर्निवेशित अर्जन:-** समता पूँजी के आधार पर प्राप्त लाभ का पुन: निवेश।

(iii) **अन्य पूँजी प्रवाह:-** मुख्यत: अन्य रूप में प्राप्त राशियाँ।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रमुख प्रकार

a. दिशा के आधार पर

(i) **अंतर्मुखी (Inward FDI):-** किसी विदेशी निवेशक द्वारा किसी देश के उद्योगों में किया गया निवेश।

(ii) **बहिर्मुखी (Outward FDI):-** किसी देश में घरेलू निवेशक द्वारा अन्य देशों के उद्योगों में किया गया निवेश।

b. लक्ष्य के आधार पर

- किसी निवेशक द्वारा किसी नई संरचना के निर्माण अथवा अनुसंधान एवं विकास के लिए किया गया निवेश इसे Green field Investment भी कहा जाता है।
- किसी कंपनी के अधिग्रहण अथवा विलय के लिए किया गया निवेश।

c. FDI के मार्ग

(i) **सरकारी मार्ग:-** विदेशी निवेश प्रवर्तन बोर्ड (FIDB) के पूर्व-अनुमति के आधार पर किया गया निवेश।

(ii) **स्वचालित मार्ग:-** सरकार अथवा रिजर्व बैंक के पूर्व अनुमति के बिना किया गया निवेश। निवेश की तिथि से 30 दिनों की अवधि में रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय को सूचना देना अनिवार्य है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लाभ

1. **यह घरेलू पूंजी की कमी को पूरा करती है :-** घरेलू बचतों की कमी के कारण देश में निवेश कम होता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश इस कमी को पूरा करता है। अधिक निवेश से आर्थिक विकास की दर

विश्व निवेश रिपोर्ट - 2012

5 जुलाई, 2012 को संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन (UNCTAD : United Nations Conference on Trade and Development) द्वारा विश्व निवेश रिपोर्ट 2012' जारी की गई। इस वर्ष इस रिपोर्ट का थीम है- **"निवेश नीतियाँ नई पीढ़ी की ओर"**।

विश्व निवेश रिपोर्ट 2012 के अनुसार वर्ष 2011 में वैश्विक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के प्रवाह में 16% की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि वर्ष 2010 के 1,309 अरब डॉलर के मुकाबले वर्ष 2011 में 1,524 अरब डॉलर हुई है।

विश्व निवेश रिपोर्ट 2012 के अनुसार चीन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चात् भारत तीसरा स्थान है जिसने सबसे अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित किया है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने के सन्दर्भ में 5 प्रमुख राष्ट्र क्रमश: चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, इंडोनेशिया एवं ब्राजील हैं।

रिपोर्ट में वर्ष 2012 में वैश्विक आर्थिक वृद्धि के धीमा होने की आशंका व्यक्त की गई है। वर्ष 2012 में वैश्विक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में धामी दर से वृद्धि 1.6 खरब डॉलर, वर्ष 2013 में 1.8 खरब डॉलर एवं वर्ष 2014 में 1.9 खरब डॉलर का अनुमान रिपोर्ट में लगाया गया है।

रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2011 के दौरान विकसित देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में 21% की वृद्धि हुई है जबकि विकासशील देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में 11% की वृद्धि हुई है।

विश्व निवेश रिपोर्ट 2012 के अनुसार भारत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने के सन्दर्भ में तृतीय स्थान पर है। वर्ष 2010 की तुलना में भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में 30% की वृद्धि हुई है तथा यह बढ़कर 32 अरब डॉलर हो गया है। उल्लेखनीय है कि इस दौरान चीन की इस सन्दर्भ में वृद्धि 8% रही है यद्यपि इस दौरान कुल प्रत्यक्ष विदेश निवेश चीन में 124 अरब डॉलर का रहा, वहीं भारत के सन्दर्भ में यह 32 अरब डालर रहा है।

Downloaded From : www.studymasterofficial.com

में वृद्धि होती है।

2. **इससे भुगतान-शेष की समस्या उत्पन्न नहीं होती:-** विदेशी निवेशक अपना साज-सामान और मशीनें लाते हैं। इससे आयात बिल नहीं बढ़ता और भुगतान संतुलन पर दबाव नहीं पड़ता। इसमें अंतर्राष्ट्रीय ऋण के वापिस करने जैसी समस्या नहीं होती। यह निवेश प्रत्यक्ष और स्वैच्छिक होता है। अत: इसमें विदेशी ऋणों की तरह ब्याज का भुगतान और मूल धन की वापसी की समस्या नहीं होती।

   दूसरे शब्दों में, प्रत्यक्ष निवेश से विदेशी विनिमय की कमी की समस्या नहीं होती। इसमें केवल विदेशी निवेशकों को लाभ का भुगतान करना होता है जिसके लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन इसमें भी प्रत्यक्ष निवेश सहायक रहता है। वह उत्पादन और निर्यात में वृद्धि लाकर विदेशी मुद्रा कमाता है जिसमें से लाभ का भुगतान किया जा सकता है।

3. **यह आधुनिक प्रौद्योगिकी और कुशल प्रबंधन तकनीकों को अपनाने में सहायक होती है:-** विदेशी निवेशक न केवल नए कारखाने लगाते हैं, साथ-साथ अपने इन्जीनियर, तकनीशियन और प्रबंधकर्त्ता भी लाते हैं। इन विशेषज्ञों के साथ काम करने वाले स्थानीय लोग इनसे ज्ञान व प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की हानियां

ऐसा समझा जाता है कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभाता है। लेकिन आजादी से पूर्व भारत का वास्तविक अनुभव यह बताता है कि यह पूंजी प्रगति में बाधाएं भी डालती है। ऐसी पूंजी की कुछ हानियां इस प्रकार हैं-

(i) **यह निवेश कई बार घरेलू पूंजी का पूरक नहीं बन पाता बल्कि घरेलू उद्योगों को समाप्त कर देता है:** घरेलू उद्योगों को, बड़े विदेशी उद्योगों से, प्रतियोगिता करनी पड़ती है जिसमें घरेलू उद्योग टिक नहीं पाते और बन्द हो जाते हैं। इससे विदेशी उद्यमों पर निर्भरता स्थायी हो जाती है।

(ii) **यह भुगतान-शेष की समस्या उत्पन्न नहीं होने देता है:-** यह ठीक है कि यह निवेश शुरू में भुगतान-शेष पर दबाव नहीं डालता लेकिन समय के साथ-साथ भुगतान-शेष पर दबाव बढ़ता जाता है क्योंकि ये कम्पनियां भारी मात्रा में लाभ, रॉयल्टी, प्रबंधन फीस अपने देशों को भेजती हैं और वहां से काफी मात्रा में महंगे कलपुर्जे, रख-रखाव के साज-सामान आदि का आयात करती हैं।

(iii) **यह निवेश उन उद्योगों में होता है जिनमें लाभ की मात्रा अधिक होती है चाहे ये उद्योग देश की प्राथमिकता में न आते हों :-** आजादी से पूर्व यह निवेश अधिकतर जूट उद्योग व चाय बागान में लगा क्योंकि इन उद्योगों का उत्पादन विदेशों में बिकने के कारण इसमें लाभ अधिक थे। सीमेंट, इस्पात व अन्य भारी उद्योग इससे अछूते ही रहे।

B. **विदेशी संस्थागत निवेश (Foregn Institutional Investment)**

इसके अन्तर्गत निवेशक द्वारा शुद्ध रूप से वित्तीय सम्पत्तियों जैसे शेयर, ऋणपत्र, बाण्ड आदि का क्रय किया जाता है तथा इस प्रकार के क्रय की व्यवस्था, बैंक विनियोग फण्ड या डिपाजिटरी के माध्यम से होता है। पोर्ट फोलिओं निवेश सामान्यतया अल्पकालीन निवेश होता है।

भारत के संदर्भ में पोर्टफोलियो निवेश का आशय विदेशियों या विदेशी संस्थागत विनियोग (FIF) या भूमण्डलीय न्यासी रसीद (Global Depository Receipts-GDRs) या अमरीकी न्यासी रसीद (Amarican Depository Receipts-ADRs) या अपतटीय फण्ड एवं अन्य (Offshore Fund and Other) द्वारा घरेलू पूंजी बाजार में प्रतिभूतियों (Securities) में विनियोग से है। उल्लेखनीय है कि विदेशी इक्विटी अंश में निवेश को या तो घरेलू स्टाक मार्केट FII के निवेश के द्वारा या विदेशी पूँजी बाजार में सीधे इक्विटी अंशपत्रों के प्राइमरी निर्गमन (Primary Issues) के द्वारा किया जा सकता है।

शेयरों अथवा क्षरण पत्रों अथवा अन्य प्रत्याभूतियों के माध्यम से किया जाने वाला निवेश। FDI की भाँति संस्थागत निवेश भी भुगतान संतुलन के पूँजी खाने का एक अनिवार्य अवयव है। ऐसे निवेश को प्रमाणित करने वाले कारकों में निम्नांकित महत्वपूर्ण हैं-

(i) ब्याज की उच्च दर।

Downloaded From studymasterofficial.com

(ii) लाभांश में प्राप्त राशि को कर मुक्त करने का प्रावधान।

विदेशी संस्थागत निवेश के प्रकार

1. **सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश**

लोक उपक्रमों द्वारा जारी ऋण पत्रों अथवा ब्रांड की खरीद अथवा ऐसे उपक्रमों में विनिवेश के आधार पर किया गया निवेश।

2. **विदेशी तकनीकी निवेश**

स्वचालित मार्ग से तकनीक में अधिकतम दो मिलियन डॉलर तक का निवेश किया जा सकता है।

3. **जोखिम पूँजी (Risk Capital)**

किसी नए क्षेत्र में प्रवेश करने वाली कंपनी में किया गया निवेश जिसके लिए सेबी के तहत पंजीकृत होता तथा रिजर्व बैंक से स्वीकृति अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति (Foreign Direct Investment Policy)

- औद्योगिक नीति प्रवर्तन विभाग द्वारा 2010 में स्वीकृत।
- इस नीति के घोषणा के पूर्व निम्नांकित विधियों से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विनियमित किया जाता था-
  - विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम- 1999 (FEMA)
  - प्रेस नोट
  - विभिन्न क्षेत्रों में सरकार की निवेश संबंधी नीतियाँ।
  - कुछ सीमा तक सेबी द्वारा विनियमन।

उल्लेखनीय है कि 1991 से अब तक 175 Press Note जारी किए गए हैं। सरकार द्वारा विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) को FEMA से प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

नई FDI नीति में यह कहा गया है कि गत प्रतिशत विदेशी गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों भारत में अपनी सहायक कंपनियाँ खोल सकती हैं। नीति में पूँजी शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। जिसमें अधिमान तथा परिवर्तनीय ऋण पत्र भी शामिल हैं। साझा उपक्रम खोले जाने की प्रक्रियाओं का सरलीकरण भी इस नीति की एक विशेषता है। FDI नीति में दी गई छूट के पीछे तर्क यह है कि भूमण्डलीकरण के दौरान यदि किसी विदेशी कंपनी को भारत में निवेश के लिए प्रेरित नहीं किया जाएगा तो वह किसी और देश में निवेश करेगी। दूसरी ओर, ऐसी कंपनी को आकर्षित करने के फलस्वरूप भारत में विदेशी पूँजी अंतर्प्रवाह की दर बढ़ेगी।

खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI in Retail Trade)

वर्ष 2006 में भारत सरकार ने खुदरा बाजार में विदेशी निवेश को अनुमति दी है। इसके तहत उत्पाद खुदरा व्यापार में 51% तक, थोक व्यापार में 100% तक अनुमति देने के बाद हाल ही में बहुल उत्पाद खुदरा व्यापार में 51% तक ऐसे निवेश का प्रस्ताव किया गया है। यह प्रस्ताव (ICRIER: Indian Council for Research on International Economic Relations) की सिफारिशों के आधार पर किया गया है।

जहाँ तक भारत में खुदरा व्यापार की वर्तमान स्थिति का प्रश्न है राष्ट्रीय सर्वेक्षण नमूना संगठन के अनुसार वर्ष 2007 में भारत में छोटे खुदरा व्यापार में लगभग 33.1 विलियन रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं तथा भारत की कुल श्रम शक्ति का लगभग 7.2% इस क्षेत्र से संबंध है।

भारतीय खुदरा व्यापार अत्यधिक असंगठित है। इसके बावजूद इसका आकार लगभग 400 बिलियन डॉलर का है तथा इसका वर्तमान वृद्धि दर लगभग 15% है। भारत के संगठित खुदरा व्यापार का अंश इसमें 5% से कम है। तथा इसका आकार लगभग 20 बिलियन डॉलर का है। यह आशा की गई है कि 2015 तक संगठित खुदरा व्यापार की वृद्धि दर लगभग 40% होगी तथा इसका आकार 75 बिलियन डॉलर का होगा।

खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से निम्नांकित लाभ प्राप्त होने की आशा है-

- अवसंरचनात्मक विकास।
- रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन।
- उत्पादों की गुणवत्ता में वृद्धि।
- उपभोक्ताओं के लिए विकल्पों की संख्या में वृद्धि।
- बेहतर तथा आधुनिक तकनीकों का हस्तांतरण।
- पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि।
- उपभोक्ताओं के लिए विकल्पों की संख्या में वृद्धि।
- बेहतर तथा आधुनिक तकनीकों का हस्तांतरण।
- पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि।
- राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि।

रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI in Defence)

हॉल ही में प्रतिरक्षा क्षेत्र के विनिर्माण उद्योग में सरकारी मार्ग से 100% तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का प्रस्ताव किया गया है। इसका उद्देश्य हथियारों की खरीद बिक्री में मध्यस्थों की भूमिका समाप्त करना है। रक्षा मंत्रालय के अनुसार किसी विदेशी कंपनी के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह भारत में कार्यरत प्रणाली के साथ एकीकृत होकर ही अपना कार्य करे साथ ही एक न्यूनतम प्रतिशत मूल्य व्यय करे। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि सरकार को यह अधिकार होगा कि राष्ट्र सुरक्षा के विषय पर वह ऐसी किसी कंपनी को उचित मुआवजा देकर बंद कर सकेगी।

विदेशों में भारतीय निवेश हेतु रियायतें (Concessions for Indian Investments Abroad)

भारतीय नागरिकों, कम्पनियों व म्यूचुअल फण्डों के लिए विदेशों में निवेश की दशाओं को और अधिक उदार बनाने की घोषणा वित्त मंत्री ने 10 जनवरी, 2003 को नई दिल्ली में प्रवासी भारतीय सम्मेलन में की थी। विदेशों में निवेश के लिए 8 सूत्रीय घोषणा में निम्नलिखित रियायतें शामिल हैं-

(i) म्यूचुअल फण्ड अब एक अरब डॉलर तक का निवेश विदेशों में पंजीकृत ऐसी कम्पनियों में कर सकेंगे जिनके पास भारत में सूचीबद्ध किसी कम्पनी के कम-से-कम 10 प्रतिशत शेयर निवेश वर्ष के पहले दिन (1 जनवरी को) हों, अभी तक म्यूचुअल फण्डों के लिए ऐसे निवेश की अधिकतम अनुमन्य सीमा 50 करोड़ डॉलर थी।

(ii) भारतीय निवेशक व्यक्तिगत रूप से भी विदेशों में पंजीकृत ऐसी कम्पनियों में निवेश कर सकेंगे, जो उपर्युक्त दशाओं को पूरा करती

DISCOVERY ...Discover your mettle
Downloaded from www.studymasterofficial.com

हों। वैयक्तिक निवेशकों के लिए ऐसे निवेश की कोई उच्चतम सीमा अभी घोषित नहीं की गई है।

(iii) पंजीकृत भारतीय कम्पनियों को भी विदेशों में पंजीकृत ऐसी कम्पनियों में निवेश की अनुमति प्रदान की गई है, जो उपर्युक्त दशाओं को पूरा करती हों अर्थात् जिनके पास भारत में सूचीबद्ध किसी कम्पनी के कम-से-कम 10 प्रतिशत शेयर निवेश वर्ष के पहले दिन (1 जनवरी को) हों। भारतीय कंपनियाँ अपनी नेटवर्थ का अधिकतम 25% निवेश विदेशी कम्पनियों में कर सकेंगी।

(iv) भारतीय कम्पनियों को एडीआर व जीडीआर के जरिए विदशों में जुटाए गए धन को भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों में ही रखने की छूट प्रदान की गई है। अभी तक इसके लिए 10 हजार डॉलर तक की सीमा निर्धारित थी, जो अब हटा ली गई है।

(v) विदेशों में शाखाएं व कार्यालय खोलने वाली कम्पनियों को ऐसे कार्यालयों के लिए व अपने स्टाफ के लिए विदेशों में सम्पति खरीदने की अनुमति प्रदान की गई है।

(vi) एम्पलॉयीज स्टॉक ऑप्शन प्रोग्राम (ESOP) के तहत् अधिकतम 20 हजार डॉलर के सम्प्रेषण की सीमा हटा ली गई है। इससे विदेशी कम्पनियों में कार्यरत् भारतीय कर्मचारी ESOP के तहत् ऑफर किए गए शेयर अधिक मात्रा में खरीद सकेंगे।

(vii) निर्यात आय विदेशी मुद्रा (Export Earners Foreign Currency-EEFC) खाता धारकों की व्यापार सम्बन्धी ऋण सीमाओं को समाप्त कर दिया गया है किन्तु ऐसे सभी लेन-देनों की सूचना रिजर्व बैंक को देना अनिवार्य होगा

(viii) प्रवासी भारतीयों (NRIs) को भारत में अपनी सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त अधिकतम एक लाख डॉलर तक की राशि विदेशी मुद्रा में भारत से बाहर ले जाने की अनुमति होगी। वित्त मंत्री द्वारा घोषित आठ सूत्रीय रियायतों में केवल यही ऐसी है जिसका लाभ प्रवासी भारतीयों को होगा

विदेशी निवेश के मार्ग (Routes of Foreign Investments)

उदारीकृत नीति में निम्नलिखित रूट्स की व्यवस्था है-

(1) **ऑटोमेटिक रूट-** इस योजना के अन्तर्गत भारतीय कम्पनियाँ 10 करोड़ अमरीकी डॉलर (दक्षेस देशों में 15 करोड़ अमरीकी डॉलर) का निवेश कर सकती हैं। पाकिस्तान में यह निवेश दर लागू नहीं होगी। नेपाल और भूटान में एक साल में 700 करोड़ रूपए तक का निवेश किया जा सकता है। इसके लिए रिजर्व बैंक या भारत सरकार की अनुमति की जरूरत नहीं होगी शर्त यह है कि यह निवेश भूसम्पत्ति उन्मुख न हो इस प्रकार के निवेश का वित्तपोषण भारतीय कम्पनी के मुद्रा-अर्जक विदेशी मुद्रा खाते से किया जा सकता है। इस प्रकार के निवेश की जानकारी बाद में रिजर्व बैंक को दे देनी चाहिए

(2) **विशेष आर्थिक क्षेत्र इकाइयाँ-** यह इकाइयाँ ऑटोमेटिक रूट से 10 करोड़ अमरीकी डॉलर की सीमा के बाहर भी विदेश में कितना भी पूँजी-निवेश कर सकती हैं। इसमें कम्पनी के मुद्रा-अर्जक विदेशी मुद्रा खाते से निवेश किया जा सकता है। विशेष आर्थिक क्षेत्र इकाई द्वारा ऐसे निवेश कुल मिलाकर (सभी विशेष आंर्थिक इकाइयों द्वारा) 50 करोड़ अमरीकी डॉलर से ज्यादा नहीं होना चाहिए

(3) **ए. डी. आर./जी. डी. आर. ऑटोमेटिक रूट-** इस स्कीम के तहत् भारतीय कम्पनियाँ ए. डी. आर./ जी. डी. आर. से मिली राशि का शत प्रतिशत उपयोग किसी सीमा के बिना ऑटोमेटिक रूट से विदेशी निवेश कर सकती है शर्त यह है कि बाद में इसकी सूचना रिजर्व बैंक को दे दी जाए।

(4) **ए. डी. आर./जी. डी. आर. ऑटोमेटिक शेयर/अदला-बदली रूट-** इस तरीके के अन्तर्गत भारतीय कम्पनियाँ अपने ए.डी. आर/जी.डी.आर. के नए निर्गम के बदले उतने ही महत्व वाली गतिविधि में 10 करोड़ अमरीकी डॉलर या पिछले साल की

Downloaded from www.studymaterofficial.com
DISCOVERY

निर्यात-कमाई के दस गुने के बराबर की अदला-बदली कर सकती हैं, शर्त यह है कि बाद में रिजर्व बैंक को इसकी सूचना दे दी जाए

(5) **भागीदारी फर्मों द्वारा निवेश** (Portfoleo Investment)- भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के अधीन कोई भागीदारी फार्म भी, जो विनिर्दिष्ट व्यावसायिक सेवा देती हो, बिना रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति (बाद में पूर्वानुमति दे दे) किसी एक वित्त वर्ष में वैसी ही गतिविधि में लगी विदेशी कम्पनी में 10 लाख अमरीकी डॉलर या इसके बराबर राशि लगा सकती है यह राशि भारत से ले जाई जा सकती है। यह शुल्क के रूप में या किसी अन्य हकदारी के रूप में विदेशी फर्मों से मिली राशि हो सकती है। शर्त यह है कि निवेशकर्ता फर्म से सम्बद्ध क्षेत्र के अखिल भारतीय व्यावसायिक संगठन/संस्था की सदस्य हो

(6) **सामान्य रूट**- जो प्रस्ताव उक्त रूटों के अन्तर्गत नहीं आते, उन पर समुद्रपारीय निवेश की समिति विचार करती है। रिजर्व बैंक का डिप्टी गवर्नर इस समिति की अध्यक्षता करता है। रिजर्व बैंक इस समिति का सचिवालय होता है।

पात्र विदेशी निवेशक (QFIs : Quilified Foreign Investor)

1 जनवरी, 2012 को केंद्र सरकार ने पात्र विदेशी निवेशकों (QFIs) को भारतीय शेयर बाजार में प्रत्यक्ष तौर पर निवेश की अनुमति प्रदान कर दी है।

उल्लेखनीय है कि बजट 2011-12 में की गई घोषणा के तहत अब तक QFIs भारतीय शेयर बाजार में म्यूचुअल फंड योजनाओं के माध्यम से ही निवेश कर सकते थे।

QFIs विदेशों में निवासित वह व्यक्तिगत समूह या संघ हैं जो वित्तीय कार्यवाही कार्यबल (FATF-Financial Action Task Force) के मनी लांड्रिग एवं आतंकवाद विरोधी दिशा-निर्देशों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं।

अब तक भारत में विदेशी संस्थागत निवेशक (FIIs) और अनिवासी भारतीय (NRIs) खातों के तहत ही शेयर बाजार में प्रत्यक्ष रूप से विदेशी पोर्टफोलियों निवेश की अनुमति थी।

नई घोषणा के अंतर्गत QFIs के लिए किसी भारतीय कंपनी में उसकी प्रदत्त पूंजी (Paid up Capital) के 10 प्रतिशत (व्यक्तिगत निवेश सीमा 5 प्रतिशत) तक निवेश की अनुमति दी गई है।

QFIs यह निवेश भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) के तहत पंजीकृत पात्र डिपॉजिटरी भागीदार (DP-Depository Participant) के माध्यम से कर सकेंगे।

DISCOVERY
Download from www.studymasterofficial.com

3. ऊर्जा प्रवाह से संबंधित आर्थिक एवं राजनयिक उपाय

Economic and Diplomatic Measures Relating to Energy Flows

विश्व ऊर्जा परिदृश्य (World Energy Scenario)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में ऊर्जा का महत्व अति विशिष्ट है। खासकर, विकासशील देशों में तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि अवसंरचनाओं का विकास करने के लिए ऊर्जा की मांग तेजी से बढ़ती है। विकास की दृष्टि से हम ऊर्जा स्रोतों की कई श्रेणियां बना सकते हैं–

(a) प्राथमिक तथा द्वितीयक (Primary and Secondary)

(b) वाणिज्यिक तथा गैर-वाणिज्यिक (Commercial and Non-Commercial)

(c) नवीकरणीय तथा गैर-नवीकरणीय (Renewable and Non-renewable)

प्राकृतिक रूप से उपलब्ध स्रोतों से प्राथमिक ऊर्जा प्राप्त की जाती है। इनमें जीवाश्म ईंधनों जैसे कोयला, तेल और गैस के अतिरिक्त जैव ऊर्जा स्रोत (लकड़ी) शामिल होते हैं। इनके अतिरिक्त, प्राकृतिक रेडियोधर्मी पदार्थों को भी इस श्रेणी में रखा जाता है। जब प्राथमिक ऊर्जा स्रोतों की औद्योगिक उपयोगिता बढ़ा दी जाती है तब द्वितीयक ऊर्जा प्राप्त होती है। जैसे, कोयला, तेल और गैस से तापीय तथा विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जाती है। बाजार में एक निश्चित मूल्य पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा वाणिज्यिक ऊर्जा कहलाती है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विद्युत ऊर्जा है। इसके विपरीत, कृषि कार्यों से निर्मित स्रोत जैसे, जलावन की लकड़ी, गोबर तथा अन्य अपशिष्ट गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा स्रोतों के उदाहरण हैं जिनके लिए सामान्यत: कीमत नहीं देनी पड़ती। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की श्रेणी में उन्हें शामिल किया जाता है जिनका क्षरण नहीं होता। इनमें सौर, पवन, भू-तापीय, ज्वारीय ऊर्जा आदि शामिल हैं। दूसरी ओर, क्षरित होने वाले स्रोतों जैसे, कोयला, तेल और गैस को गैर-नवीकरणीय श्रेणी में रखा जाता है।

विश्व में प्राथमिक ऊर्जा की मांग वर्ष 2005 और 2030 के बीच लगभग 55% बढ़ने की संभावना है। मांग की औसत वार्षिक वृद्धि दर 1.8% होगी। यह भी संभावना है कि इस अवधि में कुल ऊर्जा मांग में लगभग 84% योगदान जीवाश्म ईंधनों का होगा। लेकिन उत्पादन की दृष्टि से 2005-2030 में कोयला के अंश में लगभग 73% वृद्धि की आशा है। दूसरी ओर, प्राकृतिक गैस की मांग में भी वृद्धि होगी लेकिन इसकी दर 21% से बढ़कर 22% होने की संभावना है।

ऊर्जा की इस बढ़ती मांग की पूर्ति के लिए जिस प्रकार के अवसंरचनात्मक विकास की आवश्यकता है उसके लिए लगभग 22 बिलियन डालर का निवेश होगा। इतनी बड़ी राशि की उपलब्धता निश्चित रूप से चुनौतीपूर्ण है। यहां यह उल्लेखनीय है कि विकासशील राष्ट्रों, जिनकी अर्थव्यवस्था तथा जनसंख्या दोनों की ही वृद्धि दर अधिक है, का ऊर्जा खपत में अंश लगभग 74% आंका गया है। इनमें से चीन और भारत का अंश लगभग 45% होगा। विश्व ऊर्जा दृष्टिकोण (World Energy Outlook), 2007 में यह कहा गया है कि 2006 की तुलना में 2030 तक विशेष रूप से तेल की मांग में तीव्र वृद्धि होगी। इसके आधार पर 2030 में 116 बिलियन बैरल प्रतिदिन (Mbd) तेल की आवश्यकता होगी जो 2006 की मांग से 32 मिलियन अधिक होगी। इसी प्रकार, ऊर्जा दृष्टिकोण यह भी उल्लेख करता है कि ऊर्जा-संबद्ध कार्बन डायक्साइड के उत्सर्जन के बढ़ने की भी आशंका है।

DISCOVERY®
Discover your mettle
Downloaded From www.studymasterofficial.com

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में कोयले के कारण औद्योगिक क्षेत्र में विकास को गति मिली थी लेकिन वायुयानों तथा मोटरवाहनों के अधिकाधिक प्रयोग से 20वीं शताब्दी में तेल की मांग बढ़ गई थी। विश्व में आए तेल संकट के कारण उसकी कीमतें बढ़ जाने से पुन: कोयले पर निर्भरता तो बढ़ी लेकिन इसके साथ-साथ परमाणु ऊर्जा तथा गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी ने कोयले के वैश्विक भंडार का आकार 909 बिलियन टन का बताया है जो वर्तमान उत्पादन दर के आधार पर 155 वर्षों के लिए पर्याप्त होगा। लेकिन कोयला-आधारित संयंत्रों से उत्सर्जित कार्बन डायक्साइड ने भूमंडलीय तापन की समस्या को विकराल बनाने में योगदान भी दिया है। जहां तक तेल का प्रश्न है, यह आशंका व्यक्त की गई है कि वर्ष 2020 तक तेल का उत्पादन अपनी अधिकतम सीमा पर पहुँच जाएगा। कई अन्य विश्लेषकों ने इसके लिए 2010 की अवधि निर्धारित की है। वर्तमान में तेल 85mbd की दर से उत्पादित हो रहा है जो बढ़कर 93mbd हो जाएगा। इस स्थिति में मांग बढ़ने से तेल की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि होगी। इसी संदर्भ में ऊर्जा संकट की भी आशंकाएं व्यक्त की गई हैं।

यदि हम ऊर्जा के अन्य स्रोतों की बात करें तो ऊर्जा संकट का यह परिदृश्य जो विश्व के समक्ष रखा गया है वह कहीं न कहीं तेल की राजनीति से भी अभिप्रेरित लगता है। गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का सही दोहन ऐसे किसी भी संकट से हमें बचा सकता है। हालांकि हाल के वर्षों में वैकल्पिक ईंधनों के विकास पर ध्यान दिया गया है लेकिन इसे गति और दिशा, दोनों दी जानी चाहिए। हाल के वर्षों में परमाणु ऊर्जा उत्पादन पर भी विशेष जोर दिया गया है। आंकड़ों के अनुसार, विश्व की कुल प्राथमिक ऊर्जा आपूर्ति में परमाणु ऊर्जा का योगदान 6-5% से कुछ अधिक है। नवम्बर, 2007 तक विश्व में 439 परमाणु संयंत्र कार्य कर रहे थे जिनसे लगभग 3,72,002 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन किया जा रहा था। साथ ही, 33 ऐसे संयंत्र निर्माणाधीन हैं, 94 के निर्माण की परियोजनाएं स्वीकृत की जा चुकी हैं तथा 222 रिएक्टर प्रस्तावित हैं।

विश्व पवन ऊर्जा परिषद् (Global Wind Energy Council) ने यह कहा है कि 2005-06 में पवन ऊर्जा की कुल स्थापना क्षमता में लगभग 26% की वृद्धि दर्ज की गई थी। यह विदित है कि पवन ऊर्जा अधिकांशत: महासागरों के ऊपर प्रवाहित पवनों से प्राप्त की जाती है। चूंकि पृथ्वी के लगभग 71% भाग पर जल है अत: पवन ऊर्जा की क्षमता का उपयोग कर विश्व की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। इसी प्रकार, सौर ऊर्जा के क्षेत्र में भी अपार संभावनाएं हैं लगभग 1,20,000 टेरावाट की क्षमता वाले संसाधनों की उपलब्धता इस क्षेत्र में है जिसके एक छोटे से अंश के दोहन से ऊर्जा संकट का सामना किया जा सकता है। हाल ही में जैव ईंधनों के उत्पादन पर अत्यधिक जोर दिया गया है। 2005 के बाद जर्मनी, हंगरी, पोलैंड तथा स्पेन में जैव परिमाण ऊर्जा (Biomass energy) उत्पादन में लगभग 100% की वृद्धि हुई है। ब्राजील तथा अमेरिका में जैव ईंधन के रूप में ईथेनॉल का उत्पादन तेजी से बढ़ाया गया है लेकिन दुर्भाग्यवश इसके अनियंत्रित उत्पादन ने कृषि का संकुचन कर विश्व में खाद्य संकट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जल विद्युत (पन बिजली) का क्षेत्र भी वर्तमान में ऊर्जा उत्पादन का एक प्रमुख क्षेत्र है। पिछले दो-तीन वर्षों में चीन, ब्राजील, भारत तथा कनाडा में इस क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई है। यह अलग बात है कि भविष्य में ऊर्जा सुरक्षा में इसका योगदान उतना महत्वपूर्ण नहीं होगा क्योंकि अधिकांशत: संसाधनों का दोहन लगभग अधिकतम सीमा पर पहुँच गया है।

ऊर्जा सुरक्षा तथा ऊर्जा कार्यकुशलता (Energy Security and Energy Efficiency)

ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों, विशेषकर तेल और गैस के राजनीतिकरण के कारण ऊर्जा सुरक्षा का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। ऊर्जा सुरक्षा का तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से है जिसमें ऊर्जा की मांग के अनुरूप उसकी पूर्ति होती रहे तथा भविष्य की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता हो। ऊर्जा सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण अवयव उसकी कीमत है। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं के लिए ऊर्जा की कीमत का कम होना अनिवार्य हो गया है। ऐसी स्थिति में ऊर्जा सुरक्षा पर हाल के वर्षों में जो खतरे उत्पन्न हुए हैं उसके कई कारण हैं। कई तेल उत्पादक देशों में राजनीतिक अस्थिरता इसका एक प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त, ऊर्जा संसाधनों के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा तथा आपूर्तिकर्ताओं का परिचालन (Manipulation), आपूर्ति करने वाली अवसंरचनाओं पर विनाशकारी हमले तथा प्राकृतिक आपदाओं को भी महत्वपूर्ण कारक माना जा सकता है।

www.studymaterofficial.com Downloaded from

प्राथमिक ऊर्जा स्रोतों की सीमित उपलब्धता तथा तेल की बढ़ती कीमतों के आलोक में ऊर्जा सुरक्षा की संकल्पना और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। यह भी विदित है कि ऊर्जा सुरक्षा का प्रत्यक्ष संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा से भी है। हाल में कई अन्य कारणों से भी ऊर्जा सुरक्षा पर खतरे उत्पन्न हुए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में तीव्र गति से होने वाला औद्योगीकरण है जिसने ऊर्जा की मांग में वृद्धि कर दी है। इन परिस्थितियों में अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक प्रयासों से ऐसी सुरक्षा सुनिश्चित करने के प्रयास अपेक्षित हैं।

अल्पकालिक सुरक्षा के लिए अधिकांश देश तेल के रणनीतिक भंडार बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी द्वारा मापदंडों का निर्धारण किया गया है जिसके अनुसार, 90 दिनों के तेल आयात के बराबर रणनीतिक भंडार रखा जा सकता है। इस संबंध में मार्च, 2001 में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता भी किया गया था जिसमें एजेंसी के सभी 26 सदस्य देश शामिल हैं। यह रणनीतिक भंडार जितना बड़ा होता है उतनी उस राष्ट्र की ऊर्जा सुरक्षा की संभावनाएं बढ़ती हैं। कई देशों में सरकारी तथा निजी, दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे भंडार रखे जाते हैं। रणनीतिक भंडार का महत्व तब दिखाई दिया था जब 2006 में रूस तथा यूक्रेन के बीच गैस विवाद के कारण यूरोप में गैस आपूर्ति बाधित हुई थी। इसी प्रकार 2007 में रूस और बेलारूस के बीच ऊर्जा विवाद ने भी ऐसे तेल एवं गैस भंडारों का महत्व उजागर किया था। दूसरी ओर, दीर्घकालिक रूप से ऊर्जा सुरक्षा तब सुनिश्चित की जा सकती है जब आयातित ऊर्जा पर निर्भरता को कम किया जाए। साथ ही, घरेलू स्तर पर उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों (जीवाश्म ईंधन तथा नवीकरणीय संसाधन) का समुचित दोहन भी किया जाना अपेक्षित है। एक अन्य पक्ष यह भी है कि ऊर्जा संरक्षण को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों ही स्तरों पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय संधियों के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। ऊर्जा का विकेन्द्रीकरण ऊर्जा सुरक्षा का सबसे कारगर कदम हो सकता है। इसका तात्पर्य गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों अथवा नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में निवेश करने से है। ऐसी नई तकनीकों के विकास की नितांत आवश्यकता है। ये ऊर्जा स्रोत निश्चित रूप से पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी लाभकारी होंगे। ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उसकी कार्यकुशलता बढ़ाई जानी चाहिए। तकनीकी रूप से ऊर्जा कार्यकुशलता किसी यांत्रिक कार्य अथवा किसी प्रक्रिया से मुक्त ऊर्जा (निर्गम) तथा उस कार्य के लिए उपयोग में लाई गई ऊर्जा (आगम) का अनुपात है। साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि न्यूनतम ऊर्जा उपयोग से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करना ही ऊर्जा कार्यकुशलता है। निश्चित रूप से ऊर्जा उत्पादन की अपेक्षा ऊर्जा कार्यकुशलता पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन ढाँचागत सम्मेलन के विएना सम्मेलन 2007 में यह कहा गया है कि ऊर्जा कार्यकुशलता से कार्बन उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य को कम खर्च में किया जा सकता है। पर्यावरण के अतिरिक्त तेल के उत्पादन की अधिकतम सीमा प्राप्त कर लेने की आशंका ने भी ऊर्जा की कार्यकुशलता बढ़ाने की अनिवार्यता उत्पन्न कर दी है। तभी ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि ऊर्जा आपूर्ति में आने वाले व्यवधानों को दूर करना होगा। ऊर्जा कार्यकुशलता को प्रोत्साहित करना कार्बन उत्सर्जन तथा ऊर्जा उपभोग में कमी लाने वाला प्रभावकारी उपकरण सिद्ध हो सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ऊर्जा उपयोग घटाकर विकास को धीमा कर दिया जाए। वस्तुतः ऊर्जा उपयोग में कमी का अर्थ उसके आगम में कमी तथा निर्गम में वृद्धि करने से है। यदि इसे आर्थिक संदर्भ में परिभाषित किया जाए तो इसे ऊर्जा लोच (Energy Elasticity) के रूप में समझा जा सकता है। ऊर्जा लोच किसी राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद में एक प्रतिशत परिवर्तन लाने के लिए ऊर्जा उपभोग में होने वाला प्रतिशतांक परिवर्तन है। भारत की समन्वित ऊर्जा नीति, 2005 में यह कहा गया है कि वर्तमान में ऊर्जा की लोच 7-8% के सकल घरेलू उत्पाद के सापेक्ष 0.8 है जिसे 2011 तक 0.75 तथा 2021-22 तक 0.67 करने का लक्ष्य रखा गया है। इसी संदर्भ में यदि हम पर्यावरणीय ऊर्जा लोच (Environmental Energy Elasticity) को परिकल्पित करें तो इसे इस रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है कि यह कार्बन उत्सर्जन में एक प्रतिशत कमी लाने के लिए ऊर्जा तीव्रता में प्रति इकाई वृद्धि को दर्शाएगा।

ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का समुचित दोहन तथा प्राप्त ऊर्जा का ग्रामीण अथवा निम्नतम स्तर तक दोष-रहित वितरण सबसे कारगर कदम होगा। इस रणनीति के जरिए हम पर्यावरणीय मुद्दों पर ध्यान देने के साथ-साथ ऊर्जा संवेदनशीलता में वृद्धि तो कर ही सकते हैं, विशेषकर, विकासशील राष्ट्रों में ग्रामीण ऊर्जा की उपलब्धता से आर्थिक और अन्ततः राष्ट्रीय सुरक्षा के लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते हैं।

जेरोम विनगार्ट (Jerome Weingart) ने ग्रामीण ऊर्जा को परिभाषित करते हुए कहा है कि इसका तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा आपूर्ति की उस स्थिति से है जो सामाजिक-आर्थिक विकास को समर्थन देती है। इसी ऊर्जा को नवीकरणीय होना चाहिए ताकि उसे हस्तांतरणीय तथा सतत बनाया जा सके। इस परिभाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि यह ग्रामीण ऊर्जा के लिए वाणिज्यिक रूप से व्यवहार्य

बनाने की संकल्पना पर केन्द्रित है।

वाणिज्यिक व्यवहार्यता बढ़ाने के लिए ग्रामीण ऊर्जा को ग्रामीण अवसंरचना में शामिल कर उसे ग्रामीण विकास के एक कारगर उपकरण की भांति प्रयोग में लाना चाहिए। साथ ही, कम खर्च के साथ इसकी उपयोगिता भी बढ़ाई जानी चाहिए।

ऊर्जा संसाधनों की भू-राजनीति (Geopolitics of Energy Resources)

औद्योगिक क्रांति के समय से ही ऊर्जा संसाधनों की भू-राजनीति ने विश्व को निर्देशित किया है। आने वाले समय में भी यह वैश्विक विकास को प्रभावित करती रहेगी। ऊर्जा संसाधनों की राजनीतिक प्रकृति जो उनकी मांग और पूर्ति से संबंधित होती है, का महत्व विशेषकर ऊर्जा संकट के दौरान स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है। पिछले 6 दशकों से सभी प्रकार के ऊर्जा संसाधनों ने अपनी प्रचुरता के कारण विश्व विकास को दिशा दी है। इसका सबसे अधिक लाभ अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के देशों को मिला था। लेकिन पिछले दो दशकों में कई विकासशील राष्ट्रों, खासकर भारत तथा चीन की अर्थव्यवस्थाओं में हुई तीव्र संवृद्धि ने इन्हें भी ऊर्जा की दौड़ में शामिल कर दिया है। उल्लेखनीय है कि पिछले दो दशकों में वैश्विक ऊर्जा उपयोग में लगभग 47 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप, ऊर्जा की मांग और पूर्ति के बीच असंतुलन स्वाभाविक है। यह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रही है जिसमें ऊर्जा की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि, ऊर्जा आपूर्ति में संकुचन तथा नए एवं शक्तिशाली ऊर्जा उपभोक्ताओं की बढ़ती संख्या देखी जा सकती है। इसे हम संकल्पनात्मक दृष्टि से एक नई वैश्विक ऊर्जा व्यवस्था का नाम दे सकते हैं। इस नई व्यवस्था में तेल, गैस, परमाणु ऊर्जा संसाधनों तथा कोयले भी प्राप्ति एवं उपयोग में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा का माहौल बना हुआ है। यदि हम आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के आंकड़ों का अध्ययन करें तो यह प्रतिस्पर्धा पुरानी तथा नई आर्थिक शक्तियों के बीच विद्यमान है। 1990 तक कुल ऊर्जा का अधिकांश भाग बड़ी शक्तियों द्वारा उपयोग में लाया जाता था तथा केवल 29% ही विकासशील देशों तक उपलब्ध हो पाता था। लेकिन 2010 तक यह संभावना व्यक्त की गई है कि विकासशील राष्ट्रों का ऊर्जा उपयोग में अंश बढ़कर 40% हो जाएगा। इस परिवर्तन के लिए मुख्य रूप से भारत तथा चीन जिम्मेवार कहे जा सकते हैं। दूसरी ओर, ब्राजील, इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड तथा तुर्की में भी ऊर्जा की मांग में वृद्धि की पूरी संभावना है। बढ़ती मांग के सापेक्ष ऊर्जा की आपूर्ति पर्याप्त नहीं है इसके विपरीत इसका संकुचन हो रहा है। विशेषकर तेल के संबंध में 2020 तक इसके उत्पादन के अधिकतम स्तर तक पहुँच जाने की आशा की गई है। यह स्थिति तेल की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि करेगी। अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी ने भी लगभग ऐसी ही संभावना व्यक्त की है। हालांकि यह एक विवादास्पद मुद्दा है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तेल बाजार की स्थितियां कम से कम विकासशील देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि विश्व में तेल और गैस के भंडारों का एक प्रकार से भौगोलिक ध्रुवीकरण है। विश्व के कुल प्रमाणिक तेल भंडार दस देशों में उपलब्ध हैं जिनके द्वारा लगभग 82% तेल पर नियंत्रण रखा जाता है। ये देश हैं– सऊदी अरब, ईरान, ईराक, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, वेनेजुएला, रूस, लीबिया, कजाकस्तान तथा नाइजीरिया। इसी प्रकार, यह ध्रुवीकरण गैस के क्षेत्र में भी है। तीन देशों, रूस, ईरान तथा कतर में विश्व के कुल गैस भंडार का लगभग 56% उपलब्ध है। इन परिस्थितियों में आगामी दशकों में नई उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर नियंत्रण बनाने में इन्हें सरलता होगी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि तेल और गैस की प्रचुरता वाले देश राजनीतिक और सैन्य लाभ लेने का भी प्रयास कर सकते हैं। यह स्थिति विश्व राजनीति में शक्ति संतुलन को प्रभावित कर सकती है हम यह जानते हैं कि शक्ति संतुलन में परिवर्तन विवादों तथा संघर्षों को जन्म देता है तथा कई बार ये संघर्ष सैन्यीकृत भी होते हैं। इस कारण आगामी वर्षों में देशों के बीच विवाद उत्पन्न होने की भी आशंका है। कुछ हद तक ऐसे ही विवाद खाड़ी युद्धों के पूर्व तथा वर्तमान में भी मध्य पूर्व और मध्य एशिया में देखे जा सकते हैं। बाजार की अनिश्चतताओं से बचने के लिए कई दक्षिण अमेरिकी देशों में तेल तथा गैस संसाधनों का राष्ट्रीयकरण भी कर दिया गया है, जैसे बोलिविया। रूस-यूक्रेन गैस विवाद को भी यहां संदर्भित किया जा सकता है। हाल के वर्षों में रूस ने जिस प्रकार अपनी शक्ति के विस्तार का सफल प्रयास किया है उससे उसकी मंशा स्पष्ट हो जाती है कि वह पूर्व सोवियत संघ की भांति ऊर्जा महाशक्ति के रूप में पुन: स्थापित होना चाहता है। अपनी शक्ति के विस्तार के क्रम में रूस ने यूरोप पर दबाव बनाने की कोशिश की है। वस्तुत: यूरोप में गैस आपूर्ति करने वाले देशों में रूस का स्थान अति विशिष्ट है। यूरोप की कुल गैस आवश्यकता की पूर्ति रूस द्वारा की जाती है। खासकर चेक गणराज्य तथा हंगरी तो लगभग पूरी तरह रूस पर निर्भर हैं। हाल ही में रूस ने बुल्गारिया से ग्रीस तक एक तेल पाइपलाइन के निर्माण के लिए समझौता किया है जिसके जरिए रूस तथा मध्य एशिया से तेल यूरोपीय संघ तक

www.studymasterofficial.com Download from

लाया जाएगा।

इसी प्रकार, रूस और जर्मनी के बीच हुए एक समझौते के तहत बाल्टिक सागर के तल से एक गैस पाइपलाइन बिछाई जाएगी जिसमें यूक्रेन तथा पोलैंड को शामिल नहीं किया जाएगा। निश्चित रूप से इससे यूरोपीय संघ की निर्भरता रूस पर बढ़ेगी। रूस की एक महत्वाकांक्षी योजना यह भी है कि ओपेक की तरह एक गैस कार्टल (समूह) का निर्माण किया जाए। अभी हाल ही में रूस, ईरान और कतर के बीच एक समझौता किया गया है। यह गैस के भौगोलिक ध्रुव को और मजबूत करेगा। इसके विपरीत, अमेरिका द्वारा अजरबैजान से तुर्की तक जार्जिया होते हुए एक पाइपलाइन बिछाने की योजना है जिसे अन्ततः नाबुको (Nabucco) पाईपलाइन, जो तुर्की से आस्ट्रिया तक प्रस्तावित है, से जोड़ा जाएगा। इन प्रयासों के बावजूद इतना अवश्य है कि मध्य एशिया से गैस की आपूर्ति रूस को विश्वास में लिए बिना सरल नहीं है। यह गैस युद्ध की निरंतरता का ही प्रमाण है।

ऊर्जा संसाधनों पर प्रभुत्व बनाए रखने के लिए बड़ी शक्तियों द्वारा ऊर्जा आपूर्ति करने वाले देशों को सैन्य सहायता भी दी जाती है। उदाहरण के लिए, अमेरिका द्वारा जहां नाइजीरिया में नाइजर मुहाने वाले क्षेत्र में सशस्त्र सघर्ष को रोकने के लिए सैन्य सहायता दी जा रही है, वहीं चीन ने सूडान में सैनिक सहायता देने का प्रस्ताव किया है। इसी प्रकार, रूस ने भी फारस की खाड़ी वाले क्षेत्र में सैन्य सहायता तथा हथियारों की आपूर्ति की रणनीति अपनाई है। यहां यह विचारणीय है कि ऊर्जा संसाधनों पर प्रभुत्व के लिए जिस प्रकार की सैन्यीकृत राजनीति की जा रही है वह कई रूपों में हानिकारक हो सकती है। एक तो यह क्षेत्रीय स्तर पर शस्त्रीकरण को बढ़ावा देगी तथा दूसरे, इससे स्थानीय समस्याओं में बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप से विभिन्न राष्ट्रों में कई अन्य समस्याएं पनप सकती हैं।

हाल के दशकों में ऊर्जा संसाधनों पर चल रही भू-राजनीति का स्वरूप और भी विस्तृत हो गया है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष संबंध पर्यावरणीय कारकों के साथ स्थापित हो गया है। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन ढाँचागत सम्मेलन ने यह स्पष्ट कहा है कि वैश्विक तापक्रम में वृद्धि के लिए उत्तरदायी हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि का मुख्य कारण जीवाश्म ईंधनों के उपयोग की अधिकता है। इस स्थिति से कई देशों में खाद्य संकट सहित अन्य गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याएं पनप सकती हैं। जिस प्रकार तेल और गैस की कीमतें बढ़ी हैं तथा पर्यावरण मित्र तकनीकों के प्रयोग और कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए कार्बन व्यापार को बढ़ावा दिया जा रहा है, उससे विश्व के समक्ष परमाणु ऊर्जा के विस्तार का एक और विकल्प सामने आया है। जैसा कि इस अध्याय में पहले कहा गया है, परमाणु संयत्रों की बढ़ती संख्या इसका प्रमाण देती है। हालांकि परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग की कई पहलें की गई हैं, लेकिन अमेरिका-ईरान तथा अमेरिका-उत्तर कोरिया विवादों को देखते हुए यह एक बड़ी चुनौती बन गई है। इसके साथ-साथ परमाणु शक्ति सम्पन्न बनने की मंशा से विभिन्न देश कार्य कर रहे हैं जो पुनः विश्व को एक बड़े खतरे की ओर ले जा सकते हैं।

मध्य पूर्व में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Middle East)

मध्य पूर्व अथवा पश्चिम एशिया आरंभ से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। यह आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील क्षेत्र है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र पांच सागरों से घिरा है। ये हैं-भूमध्य सागर, काला सागर, कैस्पियन सागर, लाल सागर तथा फारस की खाड़ी। आधुनिक मध्य पूर्व में बहरीन, मिस्र, ईरान, इराक, इजरायल, जार्डन, फिलीस्तीन के क्षेत्र, कुवैत, लेबनान, ओमान, कतर, सऊदी अरब, सीरिया, तुर्की, यमन तथा संयुक्त अरब अमीरात शामिल हैं। इन राजनीतिक इकाइयों का निर्माण वस्तुतः प्रथम विश्व युद्ध के बाद ओटोमन साम्राज्य के पतन के कारण हुआ है। 20वीं शताब्दी में इस क्षेत्र में तेल भंडारों की खोज के बाद इसके आर्थिक-सामरिक महत्व का तीव्र विस्तार हो गया। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र के तेल भंडारों के महत्व को सबसे पहले ब्रिटेन ने 1916 में ही जान लिया था। उस वर्ष ब्रिटेन ने फ्रांस के साथ साइक्स-पिकॉट (Sykes-Picot) नामक एक गोपनीय समझौता किया था जिसके आधार पर ओटोमन साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को दोनो देशों के बीच बांट दिया गया। हालांकि 1921 में सोवियत संघ ने इस गोपनीय समझौते को सामने ला दिया लेकिन वस्तुतः 1920 की सैन रेमो संधि (San Remo Treaty) में ही इस क्षेत्र में तेल की महत्ता स्वीकार कर ली गई थी। इसके उपरांत, 1928 में हुए रेड लाइन समझौते में यह तय किया गया कि इस क्षेत्र की तेल संपदा पर ब्रिटेन तथा फ्रांस की औपनिवेशिक सरकारें किस प्रकार अधिपत्य रखेंगी तथा भविष्य में तेल उत्पादन के कितने प्रतिशत अंश पर ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिकी कंपनियों का अधिकार होगा। तेल संपदा पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने की मंशा ने कुवैत जैसे कृत्रिम राज्य का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त, सीरिया तथा इराक राज्य भी बने जहां अरब तथा कुर्द जनसंख्या का मिश्रित स्वरूप था। 1945

में ब्रिटेन तथा अमेरिका ने संयुक्त रूप से सम्पूर्ण क्षेत्र में तेल संसाधनों पर प्रभुत्व बनाने के प्रयास आरंभ कर दिए थे। इन देशों के बीच हुए एक समझौते में तेल संसाधनों को आर्थिक, वाणिज्यिक तथा सामरिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण कहा गया था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में एक नई व्यवस्था की कामना ने लोकतांत्रिकरण का विस्तार करना आरंभ कर दिया तथा औपनिवेशिक शासन व्यवस्थाओं की नींव कमजोर हो गई। नए स्वतंत्र राष्ट्रों के उदय से ब्रिटेन और फ्रांस के उपनिवेश समाप्त हो गए तथा तेल संपदा पर उनका प्रभुत्व लगभग समाप्त हो गया। शीत युद्ध के दौरान मध्यपूर्व का क्षेत्र भी वैचारिक संघर्ष से प्रभावित रहा। अमेरिका तथा सोवियत संघ, दोनों महाशक्तियों ने अपने-अपने क्षेत्रीय सहयोगियों की सहायता से अपने प्रभुत्व के विस्तार की कोशिश की। दोनों महाशक्तियों का मूल उद्देश्य इस क्षेत्र में सामरिक लाभ लेना था। अमेरिका तथा पश्चिमी राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के लिए तेल की नितांत आवश्यकता थी। इस पृष्ठभूमि में अमेरिका ने अरब देशों से सोवियत संघ के प्रभुत्व को कम करने की नीति अपनाई। इस नीति में मुख्य रूप से तीन अवयव शामिल थे-

(a) खाड़ी देशों में तेल उत्पादक क्षेत्रों तक पश्चिमी राष्ट्रों की पहुँच का विस्तार;

(b) तेल की निरंतर आपूर्ति तथा राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि;

(c) सम्पूर्ण क्षेत्र में साम्यवाद के प्रचार-प्रसार पर रोक लगाने के लिए अरब राष्ट्रवाद को सुदृढ़ बनाने का प्रयास।

अरब प्रायद्वीप में तेल की खोज के बाद अमेरिका तथा सऊदी अरब के संबंधों में प्रगाढ़ता आई। अब यदि हम आज के विश्व की बात करें तो फिर से यह स्पष्ट है कि मध्य पूर्व का क्षेत्र आज भी आर्थिक-सामरिक रूप से महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस क्षेत्र में विश्व के कुल प्रमाणिक तेल भंडार का लगभग 65 प्रतिशत तथा गैस भंडार का लगभग 36 प्रतिशत उपलब्ध है। जिस प्रकार का विश्व ऊर्जा परिदृश्य हमारे सामने है उससे 2020 तथा उसके बाद तक मध्यपूर्व ऊर्जा की भू-राजनीति में महत्वपूर्ण बना रहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी के अनुसार, 2020 तक विश्व की कुल ऊर्जा आपूर्ति का लगभग 40 प्रतिशत तेल से जबकि 30 प्रतिशत गैस से उपलब्ध होगा। तेल उत्पादक क्षेत्र उत्तर-पश्चिम से दक्षिण पूर्व तक तुर्की के दक्षिण पूर्व से पूर्वी तथा मध्य इराक, पश्चिमी ईरान तथा पूर्वी सऊदी अरब तक विस्तृत है।

ईरान के प्रमुख तेल उत्पादक क्षेत्रों में काजीतन (Kazitan) तथा मस्जिद-ए-सुलेमान, नफ्त शफीद आदि शामिल हैं। इसी प्रकार, इराक का सबसे महत्वपूर्ण तेल उत्पादक क्षेत्र बाबा-गागुर (Baba-Gagur) है। इसके उत्तर में किरकुक (Kirkuk) से हातीदा (Hatida) तक तथा इसके बाद दो भागों में त्रिपोली (Tripoli) तथा हायफा (Haifa) पाइपलाइन बिछाई गई है। खाड़ी युद्ध के बाद इराक तेल पर सबसे अधिक प्रभुत्व अमेरिका का बना हुआ है। चूंकि आरंभ से ही अमेरिका तथा सऊदी अरब के संबंध मधुर रहे हैं इस कारण आज भी इसके तेल उत्पादक क्षेत्रों पर अमेरिका का आर्थिक एवं तकनीकी नियंत्रण स्थापित है। तेल उत्पादन की दृष्टि से कुवैत का भी स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, बहरीन, कतर, सीरिया, ओमान तथा संयुक्त अरब अमीरात में भी तेल का उत्पादन किया जाता है।

मध्य पूर्व में ऊर्जा भू-राजनीति का महत्व इस रूप में स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के कुल 18 वृहद् तेल क्षेत्रों में से 14 मध्य पूर्व में अवस्थित हैं।

मध्य पूर्व में अवस्थित तेल भंडारों के समुचित दोहन के लिए भारी निवेश की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, उच्च स्तरीय तकनीक तथा दक्ष मानव संसाधन की भी जरूरत है। इस कारण यहां विदेशी कंपनियों द्वारा कार्य करने की प्रबल संभावना है। कई कंपनियां इस दिशा में कार्यरत भी हैं। सबसे पहले ईरान ने ही विदेशियों को तेल निकालने की अनुमति दी थी लेकिन रायल्टी से असंतुष्ट होने के कारण यह नीति समाप्त कर दी गई। अधिकांश देशों में स्वत: ही रोक लगाए जाने से विदेशी कंपनियों को पूरा अवसर नहीं मिल पा रहा था, लेकिन हाल ही में कई देशों में यह छूट दी जा रही है। सऊदी अरब में एक नए कानून के तहत तेल तथा गैस क्षेत्र में साझा उपक्रम स्थापित करने की छूट दी गई है। इसी प्रकार, कुवैत ने भी उदारीकरण करते हुए अर्थव्यवस्था के निजीकरण को प्रोत्साहन देना आरंभ किया है। इस कारण, उत्तरी कुवैत में तेल निकालने के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों ने पहल की है, जैसे, शेवरॉन टैक्सैको (Chevron Texaco)। संयुक्त अरब अमीरात इस दिशा में सबसे आगे है तथा वहां अर्थव्यवस्था में निजीकरण को पूरा समर्थन प्राप्त है। इसी कारण दुबई को "मध्य पूर्व का सिंगापुर" भी कहा जाता है। लगभग ऐसी ही स्थितियां बहरीन, ओमान तथा कतर आदि देशों में भी बनाई जा रही हैं।

www.studymaterofficial.com Downloaded From DISCOVERY

भारत और मध्य पूर्व (India and the Middle East)

भारत ने आरंभ से ही अरब समर्थक नीति का अनुसरण किया है। इसके माध्यम से भारत ने अपने कई उद्देश्यों को प्राप्त करने की कोशिश की है। मध्य पूर्व में भारत के हितों को कई रूपों में देखा जा सकता है–

1. मध्य पूर्व क्षेत्र में उपलब्ध तेल एवं गैस भंडारों पर भारत की निर्भरता;
2. पंथ निरपेक्ष राष्ट्र होने के कारण अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिम समुदाय के हितों की रक्षा तथा उनकी भावनाओं का सम्मान;
3. कश्मीर मुद्दे पर अधिक से अधिक इस्लामी देशों का समर्थन;
4. तकनीकी, बौद्धिक एवं सैन्य क्षमताओं का सहयोग।

इन हितों के संदर्भ में ही भारत की महत्वपूर्ण नीति का आकलन तार्किक होगा। 1960 तथा 1970 के दशकों में भारत ने कई खाड़ी देशों, ईरान, इराक, सऊदी अरब आदि के साथ आर्थिक संबंध बनाए। भारत ने 1976 के अरब-इजरायल युद्ध में अरबों को समर्थन दिया था जिससे भारत तथा अरब देशों के संबंधों में प्रगाढ़ता आई थी। इसके फलस्वरूप, अभियांत्रिकी सेवाओं के बदले भारत ने ईरान, इराक, सऊदी अरब, कुवैत तथा संयुक्त अरब अमीरात से तेल प्राप्त किए। लेकिन ईरान-इराक युद्ध के कारण भारत की निर्भरता अन्य खाड़ी देशों पर बढ़ गई। 1978 तथा 1979 में क्रमश: दो घटनाक्रमों ने भारत तथा मध्य पूर्व के संबंधों को कमजोर किया था। ये घटनाक्रम थे, ईरान में अयातुल्ला खोमिनी के नेतृत्व में इस्लामी शासन व्यवस्था की स्थापना तथा अफगानिस्तान में रूसी सेना का प्रवेश। लेकिन 1980-88 के बीच ईरान-इराक युद्ध ने मध्य पूर्व में शक्ति संतुलन की स्थितियां बदल दीं। ईरान की शक्ति के क्षरण के कारण उसके पाकिस्तान की ओर झुकाव होने के बावजूद भारत पर बनने वाला दबाव कम हो गया था।

विश्व के 18 वृहद् तेल क्षेत्र

1. घावर (Ghawar) - सऊदी अरब
2. वृहद् बरगन (Greater Burgan) - कुवैत
3. सफानिया (Safaniya) - सऊदी अरब
4. बेरी (Berri) - सऊदी अरब
5. उत्तरी तथा दक्षिणी रोमालिया (North & South Romalia) - ईराक
6. जखुम (Zakum) - अबु धाबी
7. मनिफा (Manifa) - सऊदी अरब
8. किरकुक - इराक
9. गशसरण (Gasmaron) - इराक
10. अबकैक (Abqaiq) - सऊदी अरब
11. अहवाज (Ahwaz) - ईरान
12. मरून (Marun) - ईरान
13. आगा जरी (Aghajari) - ईरान
14. जुलुफ (Zuluf) - सऊदी अरब
15. बोलिवर तट (Bolivar Coast) - वेनेजुएला
16. कैन्टारेल (Cantarell) - मेक्सिको
17. समोतलर (Samotlar) - रूस
18. पूढ़ी खाड़ी (Prudhoe Bay) - अलास्का

अरब समर्थित नीति में परिवर्तन लाकर भारत ने 1990 के दशक में इजरायल के साथ भी संबंधों में सुधार लाने के प्रयास किए। सुदृढ़ कूटनीति का परिचय देते हुए 1993 में भारत ने ईरान के साथ बेहतर संबंधों की स्थापना करने की कोशिश की। तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री नरसिंह राव की ईरान यात्रा के दौरान एक पाइपलाइन के जरिए गैस आपूर्ति की परियोजना पर भी चर्चा की गई।

भारत की वर्तमान मध्य पूर्व नीति का मूल आधार खाड़ी सहयोग परिषद् के देशों के साथ बहुपक्षीय संबंधों की स्थापना है। भारत के लिए खाड़ी सहयोग परिषद् व्यापार, निवेश, ऊर्जा तथा मानवशक्ति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आर्थिक दृष्टिकोण से भारत तथा परिषद के संबंध 1970, 1980 तथा 1990 के दशकों में सुदृढ़ हुए हैं जिसका मुख्य कारण भारत द्वारा तेल और गैस का आयात है। दोनों के राजनीतिक तथा सामरिक उद्देश्य इस रूप में समान हैं कि दोनों ही क्षेत्रीय शांति, सुरक्षा और स्थायित्व के लिए कटिबद्ध है। संबंधों को व्यापक बनाने के लिए मार्च, 2006 के मस्कट घोषणा पत्र (Muscat Declaration) में सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, पर्यटन, उद्योग, ऊर्जा तथा पेट्रोरसायन के क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग पर सहमति की गई है। इसके अतिरिक्त, भारत-खाड़ी सहयोग परिषद् मुक्त व्यापार समझौते पर भी वार्ताएं जारी हैं।

www.studymasterofficial.com

मध्य एशिया में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Central Asia)

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में व्यापक परिवर्तन सोवियत रांघ के विघटन तथा शीत युद्ध की समाप्ति के बाद आरंभ हो गए थे। बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों ने इन परिवर्तनों को दिशा दी थी। निश्चित रूप से शक्ति संतुलन के नए समीकरणों को बनाने में ऊर्जा, खासकर तेल और गैस की राजनीति का विशेष योगदान रहा है। ऐसे में मध्य एशिया के महत्व का बढ़ना स्वाभाविक था। मध्य एशिया में सोवियत संघ के कई पूर्व गणराज्य शामिल हैं। ये हैं- उजबेकिस्तान, कजाकस्तान, तुर्कमेनिस्तान, किर्गिस्तान, अजरबैजान तथा ताजिकिस्तान। मध्य एशियाई क्षेत्र कई देशों के भू-राजनीतिक संघर्ष का स्थान है तथा भौगोलिक रूप से यह पश्चिमी और पूर्वी देशों को जोड़ने वाला क्षेत्र है। ऐतिहासिक रूप से इसे सिल्क मार्ग कहा गया था जो भारत, चीन तथा यूरोप को जोड़ता था। वर्तमान में यह क्षेत्र भू-राजनीति के साथ-साथ भू-आर्थिक कारणों से भी महत्वपूर्ण है। हालांकि इसके स्थलबद्ध (Landlocked) होने के कारण इसकी महासागरीय पहुँच नहीं है लेकिन यह प्राकृतिक संसाधनों का भंडार है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण तेल और गैस है जो कमोबेश सभी देशों को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित करता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि 1813 से 1907 के बीच ब्रिटेन तथा रूस के जार (Tsar) साम्राज्य के बीच इस क्षेत्र पर नियंत्रण रखने के लिए प्रतिद्वंदिता थी। इसे ब्रिटेन में 'ग्रेट गेम' तथा रूस में 'टूर्नामेंट ऑफ शैडोज' कहा गया था। इसी संदर्भ में यदि मौजूदा स्थिति का आकलन किया जाए तो कई विश्लेषकों ने ऊर्जा संसाधनों के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा को 'ग्रेट गेम' का एक नया अध्याय माना है। भू-राजनीति के इस नए खेल के दो प्रमुख अवयव हैं। पहला, इस क्षेत्र में तेल और गैस के भंडारों पर नियंत्रण तथा दूसरा, उन पाइपलाइनों पर नियंत्रण जो तेल अथवा गैस की आपूर्ति पश्चिमी देशों को करते हैं। यह माना गया है कि कैस्पियन सागर का बेसिन तेल और गैस से प्रचुर है तथा यह अजरबैजान से कजाकस्तान एवं तुर्कमेनिस्तान तक विस्तृत है। विश्व के महत्वपूर्ण तेल क्षेत्रों में अजरबैजान का स्थान है। यहां के प्रमुख तेल भंडार गुणेशिल (Guneshil), चिराग (Chirag), अजेरी (Azeri) तथा कपाज (Kapaz) हैं। हालांकि सोवियत संघ अपतटीय (off shore) तेल क्षेत्रों को विकसित करने में तकनीकी रूप से सक्षम था लेकिन इसके लिए उसने अपरिष्कृत (Primitive) पद्धतियों का ही प्रयोग किया। इस कारण अधिक गहराई वाले तेल क्षेत्र विकसित नहीं हो पाए। इसी पृष्ठभूमि में अजरबैजान में तेल क्षेत्रों के विकास के लिए विदेशी कंपनियों को आमंत्रित किया गया है लेकिन सबसे बड़ी समस्या विधिक ढाँचे का अभाव है जो इन कंपनियों को विनियमित करने के साथ-साथ उन्हें दिशा दे सके। हाल में अजरबैजान ने कैस्पियन क्षेत्र में अपने नियंत्रण वाले कुल 24 नए तेल क्षेत्रों की पहचान की है जिनके विकास का कार्य किया जाना है। अजरबैजान के बाद तेल उत्पादकों में दूसरा महत्वपूर्ण स्थान कजाकस्तान का है। एक पारगमन क्षेत्र के रूप में अवस्थित होने के कारण यह तेल का निर्यात भी करता है। कजाकस्तान से कैस्पियन सागर अजरबैजान तथा जार्जिया होते हुए तुर्की तक एक पाइपलाइन भी प्रस्तावित है। जहां तक मध्य एशियाई क्षेत्र में बड़ी शक्तियों के आकर्षण का प्रश्न है, इसकी नींव 1973 के तेल संकट के बाद ही रखी गई थी। यह विदित है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तेल का सबसे बड़ा आयातक है। इस पृष्ठभूमि में अमेरिका का आकर्षण कजाकस्तान तथा अजरबैजान, दोनों की ओर हुआ था। इस क्षेत्र ने कई कारणों से अमेरिका को आकर्षित किया था। पहला, इस क्षेत्र में उपलब्ध तेल की गुणवत्ता अपेक्षाकृत बेहतर है। दूसरा, तेल उत्पादक देशों के पास तेल क्षेत्रों के विकास की तकनीक तथा निवेश की अपर्याप्तता है। निश्चित रूप से अमेरिका की मंशा यह रही है कि इन देशों को तकनीकी और वित्तीय सहायता देकर उन्हें रूस अथवा चीन के प्रभुत्व से विमुख किया जाए। इस मंशा से जहां उसके राजनीतिक हित पूरे होते हैं, वहीं अमेरिकी कंपनियों को इन देशों में विस्तार का अवसर भी प्राप्त होता है। मध्य एशिया में अमेरिका की नीति इस रूप में भी कारगर होगी कि वह इन देशों से तेल को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाने का प्रयास करेगा ताकि उसके अपने तेल स्रोतों का विपथन (Diversification) कर सके और तेल की कीमतों को कम रखने में सफल हो सके। दूसरी ओर, अमेरिका का यह भी मानना है कि आर्थिक विकास होने से स्थानीय विवाद समाप्त करने तथा क्षेत्रीय शांति स्थापित करने में भी सहायता मिलेगी। यदि हाल के घटनाक्रमों पर नजर डालें तो एक और तथ्य उभर कर सामने आता है कि अमेरिका जहां ईरान के विरुद्ध नियंत्रण की नीति अपनाने की कोशिश कर रहा है वहीं तुर्की की भूमिका के विस्तार के लिए भी प्रयास कर रहा है।

अमेरिका के अलावा मध्य एशिया में रूस की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। पूर्व सोवियत गणराज्यों के साथ संबंधों को बेहतर बनाने तथा सोवियत संघ के पुराने मित्रों, चीन, भारत और ईरान के साथ संबंधों में सुधार लाने के लिए रूस के प्रयास जारी हैं। इस संदर्भ में 1996 में गठित "शंघाई-5" उल्लेखनीय है कि जिसमें चीन और रूस के अतिरिक्त कजाकस्तान, किर्गिस्तान तथा ताजिकिस्तान सदस्य थे। वर्ष 2001 में उज्बेकिस्तान द्वारा इसकी सदस्यता ग्रहण कर लेने के बाद इसका रूपान्तरण शंघाई सहयोग संगठन के रूप में हो गया।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

रूस ने मध्य एशिया में अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए यूरेशियाई आर्थिक समुदाय का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कैस्पियन सागर के बारे में रूस की मान्यता है कि यह वास्तविक अर्थों में सागर नहीं होकर एक अन्त:स्थलीय (Inland) झील है। अत: इस पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सामुद्रिक विधि का प्रभाव नहीं है। इस कारण इसके संसाधनों का दोहन इसके तटवर्ती राज्यों के बीच हुए समझौते के आधार पर ही होना चाहिए। इसके विपरीत, अमेरिका तथा मध्य एशियाई देश इसे सागर के रूप में ही मान्यता देते हैं। आरंभिक चरणों में रूस ने स्वतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Independent States) को सुदृढ़ बनाने की कोशिश की थी। यह नीति सफल नहीं हो पाई। बाद में रूस ने ईरान के साथ सहयोग कर पाइपलाइनों तथा तेल और गैस उत्पादन पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया है। इसके लिए रूस ने चीन तथा भारत जैसे देशों का भी प्रत्यक्ष समर्थन लिया है। अमेरिका-समर्थक देशों जैसे यूक्रेन पर दबाव बनाने के संदर्भ में वर्ष 2002 में रूस ने यूक्रेन को गैस आपूर्ति रोक दी थी। कुल मिलाकर, हाल के वर्षों में जिस प्रकार रूस ने तेल और गैस पर अपने प्रभुत्व के विस्तार की कोशिश की है, वह मध्य एशियाई क्षेत्र में भी उसकी पकड़ के विस्तार को मजबूत करेगा। रूस के अतिरिक्त चीन ने भी मध्य एशिया में अपनी भूमिका के विस्तार की नीति अपनाई है वस्तुत: इस क्षेत्र के साथ चीन का ऐतिहासिक संबंध रहा है। इसका एक मुख्य कारण चीन के उत्तर-पश्चिम में मुस्लिम जनसंख्या की बहुलता रही है। शीत युद्ध के दौरान चीन तथा सोवियत संघ के संबंधों के मधुर नहीं रह पाने के कारण मध्य एशिया में चीन की भूमिका का विस्तार कम हो गया था। लेकिन इन देशों के स्वतंत्र हो जाने के बाद चीन ने पुन: अपनी नीति में रणनीतिक परिवर्तन किए। 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में मध्य एशिया क्षेत्र में रूस की शक्ति के कम होने का लाभ लेते हुए इस क्षेत्र में उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों पर अपने प्रभुत्व के विस्तार की कोशिश की। बाद में शंघाई-5 के माध्यम से रूस और चीन ने संयुक्त रूप से अमेरिकी प्रभुत्व को कम करने वाली रणनीति अपनाई। इस पूरी प्रक्रिया में चीन की अर्थव्यवस्था की तीव्र संवृद्धि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मध्य एशिया में भारतीय हित (India's Interests in Central Asia)

मध्य एशिया का क्षेत्र भारत की ऊर्जा सुरक्षा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हालांकि मध्य पूर्व की तुलना में कैस्पियन क्षेत्र में तेल और गैस के भंडार अपेक्षाकृत कम हैं। लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती संवृद्धि दर के कारण ऊर्जा की मांग में जो तीव्र वृद्धि हुई है उसे देखते हुए भारत के लिए मध्य एशिया में उपलब्ध ऊर्जा भंडार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भारत के लिए इन भंडारों तक अपनी पहुँच बढ़ाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस दिशा में किए जा रहे प्रयासों में तुर्कमेनिस्तान- अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत गैस पाइपलाइन परियोजना पर कार्य उल्लेखनीय है। दूसरी ओर, ईरान और भारत ने संयुक्त रूप से रूस की कंपनी गैजप्रोम (Gazprom) को एक अपतटीय (Offshore) पाइपलाईन के निर्माण के लिए आमंत्रित किया है जो ईरान से भारत तक गैस की आपूर्ति करेगी। भारत की कंपनी ओ.वी. एल. भी इस क्षेत्र में में तेल अन्वेषण का कार्य कर रही है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मध्य एशिया क्षेत्र में हाइड्रोकार्बन की भी प्रचुरता है जिसके बाजार का विकास अभी किया जाना है। भारत के लिए मध्य एशिया का महत्व क्षेत्रीय शांति, सुरक्षा और स्थायित्व के संदर्भ में भी है। भारत का शंघाई सहयोग संगठन में ईरान, पाकिस्तान और मंगोलिया के साथ पर्यवेक्षक बनना एक सकारात्मक प्रयास है। दूसरा प्रमुख प्रयास भारत-चीन-रूस सामरिक त्रिकोण का सुदृढ़ होना भी है। जहां भारत विश्व में एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहा है वहां मध्य एशिया का क्षेत्र भविष्य में अत्यन्त सहायक हो सकता है। इसमें भारत-चीन सहयोग की भी महत्वपूर्ण भूमिका होगी। दोनों देशों की तेल कंपनियाँ, ओ.वी.एल. तथा सी.एन.पी.सी. इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। आरंभिक चरणों में दोनों ही प्रतिस्पर्धी थीं। हालांकि सीरिया में अल-फुरात तेल क्षेत्र के विकास का अनुबंध दोनों ने संयुक्त रूप से प्राप्त किया था लेकिन कजाकस्तान में ओ.वी.एल. को सफलता नहीं मिली। हाल में दोनों देशों ने यह तय किया है कि ये दोनों कंपनियां अलग-अलग अनुबंध प्राप्त करने का प्रयास करेंगी।

कई घटनाक्रमों से यह प्रतीत हो रहा है कि एशियाई तेल एवं गैस बाजार के विकास के कार्य किए जा रहे हैं। यह भी सुझाव दिया गया है कि एक एशियाई ऊर्जा संघ बनाया जाए। इन दोनों ही स्थितियों में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। यदि कहा जाए कि मध्य एशिया भविष्य में तेल और गैस का प्रमुख आपूर्तिकर्ता होगा तो भारत और चीन सबसे बड़े उपभोक्ता देश होंगे।

अफ्रीका में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Africa)

निश्चित रूप से अधिक संसाधनों की उपलब्धता तथा प्रचुरता किसी देश अथवा क्षेत्र के राजनीतिक महत्व को बढ़ानें में सबसे

महत्वपूर्ण योगदान देती है। जहां तक अफ्रीका का प्रश्न है, अन्य महाद्वीपों की तुलना में विश्व राजनीति में इसका उदय अपेक्षाकृत देर से हुआ है। यह भी सत्य है कि अन्य महाद्वीपों की तुलना में यह पिछड़ा क्षेत्र है। अफ्रीकी राष्ट्रवाद के विस्तार के कारण औपनिवेशिक शासन की समाप्ति हुई तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्य क्षेत्रों की भांति यहां भी लोकतांत्रिकरण का तीव्र विस्तार हुआ। अधिकांश अफ्रीकी देश एशियाई देशों की भांति स्वतंत्र हो गए। लेकिन चूंकि यहां की राजनीतिक परंपराएं अधिनायकवादी रही हैं अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई देशों में शोषण का दौर चलता रहा है। इन परिस्थितियों ने कई देशों में गृह युद्ध को जन्म दे दिया है। प्रजातीयतावाद तथा रंगभेद से उत्पन्न समस्याएं भी विद्यमान रही हैं। इन समस्याओं के बावजूद संसाधनों की प्रचुरता के कारण यह पश्चिमी राष्ट्रों तथा कई अन्य बड़ी शक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। सभी अपनी-अपनी तरह से अफ्रीकी देशों को लुभाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि वहां के संसाधनों पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो। यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि यूरोप में संसाधनों का दोहन मानव सभ्यता के विकास के ऐतिहासिक क्रम को दर्शाता है। दूसरी ओर, जहां एशिया वर्तमान का चित्रण है वहीं अफ्रीका मानव सभ्यता का भविष्य है। हाल के वर्षों में अफ्रीका में ऊर्जा संसाधनों की खोज ने इसके रणनीतिक महत्व का विस्तार कर दिया है। निम्न सहारा क्षेत्र में विश्व के कुल तेल भंडार का लगभग 7 प्रतिशत है तथा वर्तमान में कुल उत्पादन में इसका अंश लगभग 11 प्रतिशत है। यह अनुमान लगाया गया है कि आगामी दशक में निम्न सहारा क्षेत्र के देशों को लगभग 200 बिलियन डालर का तेल राजस्व प्राप्त होगा। विशेषकर गिनी की खाड़ी के क्षेत्र में तेल भंडारों की खोज ने अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा चीन को आकर्षित किया है। भारत भी फारस की खाड़ी पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए अफ्रीकी संसाधनों के दोहन का प्रयास कर रहा है। वर्ष 2001 में लगभग 8 बिलियन बैरल कच्चे तेल के भंडार की खोज की गई थी। इनमें से 7 बिलियन बैरल पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीका में विद्यमान हैं। उत्पादन के संदर्भ में यह संभावना व्यक्त की गई है कि 2008 में निम्न सहारा क्षेत्र से तेल उत्पादन 6.8 मिलियन बैरल प्रतिदिन होगा जो वर्तमान 3.8 मि. बैरल प्रतिदिन है। वर्ष 2030 तक उत्पादन के 9 मि.बैरल प्रतिदिन हो जाने की आशा है। निम्न सहारा क्षेत्र में आठ तेल उत्पादक देश हैं-नाइजीरिया, अंगोला, कांगो, गबन, विषुवतरेखीय गिनी, कैमरून, चाड तथा सूडान। इसके अतिरिक्त अफ्रीका में घाना, आइवरी कोस्ट, सेनेगल तथा दक्षिण अफ्रीका में भी तेल का उत्पादन होता है। निम्न सहारा क्षेत्र में नाइजीरिया सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है तथा ओपेक में इसका स्थान सऊदी अरब, वेनेजुएला, ईरान तथा संयुक्त अरब अमीरात के बाद पांचवां है। नाइजीरिया में तेल उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत अपतटीय है। 1956 में नाइजीरिया में तेल की खोज के बाद उसकी राजनीतिक-आर्थिक स्थितियाँ बदल गई। आंकड़ों के अनुसार, पिछले चार दशकों में नाइजीरिया ने लगभग 340 बिलियन डालर की प्राप्ति की। लेकिन इसके विपरीत तेल उत्पादन ने नाइजर मुहाने वाले क्षेत्र में कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में निवास करने वाले नृजातीय समूहों ओगिनि (Ogini) तथा इजाऊ (Ijaw) द्वारा सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया गया था। इस विद्रोह ने धीरे-धीरे गृह युद्ध का रूप ले लिया है।

नाइजीरिया के अतिरिक्त सूडान भी एक महत्वपूर्ण तेल उत्पादक क्षेत्र है। 1960 के दशक के पूर्वार्द्ध में सूडान में तेल की खोज की गई थी। जून, 2000 में सरकर ने उत्तर पश्चिमी सूडान में तेल अन्वेषण की योजना बनाई थी। इसी अवधि में दक्षिण पूर्वी सूडान तथा पूर्वी सूडान में लाल सागर वाले क्षेत्रों में भी यह कार्य किया जाना था। सूडान में भी गृह युद्ध के कारण तेल से प्राप्त होने वाले राजस्व का पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाया है। अंगोला भी अफ्रीका के तेल उत्पादक क्षेत्रों में से एक है। लगभग 7 बिलियन बैरल के भंडार के कारण इसे कुवैत से महत्वपूर्ण माना गया है। वस्तुतः यह गैर-ओपेक तेल उत्पादकों में अग्रणी है। 2008 के अंत तक 2 मिलियन बैरल प्रतिदिन के उत्पादन की संभावना है। उल्लेखनीय है कि यह अपने कुल तेल निर्यातों का लगभग 40 प्रतिशत अमेरिका को करता है। इन देशों के अलावा घाना तथा आइवरी कोस्ट भी महत्वपूर्ण तेल उत्पादक देश हैं। अब हम यहां अफ्रीकी तेल भंडारों की राजनीति पर चर्चा करेंगे। शीत युद्धोत्तर काल के आरंभ में अमेरिका ने अफ्रीका पर विशेष ध्यान नहीं दिया था। बुश प्रशासन ने नीतिगत परिवर्तन करते हुए अफ्रीका को आर्थिक-सामरिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा। तत्कालीन उपराष्ट्रपति रिचर्ड चेनी (Richard Cheney) द्वारा राष्ट्रीय ऊर्जा नीति पर दी गई एक रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि अमेरिका को खाड़ी क्षेत्र के अलावा भी तेल संसाधनों पर ध्यान देना चाहिए ताकि किसी एक क्षेत्र पर निर्भरता नहीं रहे। अपनी इस ऊर्जा नीति का प्रयोग करते हुए विशेषकर पश्चिमी अफ्रीका में अमेरिका सैन्य अड्डों की स्थापना के लिए भी प्रयासरत है। कई अफ्रीकी देशों जैसे, सेनेगल, युगांडा, घाना, जाम्बिया, नामीबिया तथा कैमरून ने इस संबंध में अमेरिका के साथ समझौते भी किए हैं। अमेरिका की यह नीति अफ्रीका में उसे सुदृढ़ आधार देने में सहायक होगी। अमेरिका के अतिरिक्त चीन ने भी एक आक्रामक तथा पहलकारी अफ्रीका नीति का पालन किया है। उल्लेखनीय है कि केवल सूडान में चीन की तेल कंपनी द्वारा लगभग 15 बिलियन डालर का निवेश किया गया है। चीन-अफ्रीका संबंधों की स्थापना वस्तुतः 1955 में ही हुई थी। इसके उपरांत, खासकर

Downloaded From www.studymasterofficial.com

1990 के दशक में चीन ने अफ्रीकी देशों के साथ द्विपक्षीय संबंधों की स्थापना पर जोर दिया था। ये संबंध आर्थिक, राजनीतिक तथा सैन्य तीनों ही स्तरों पर बने हैं। चीन की रणनीति में एक बड़ा परिवर्तन 1997 में देखा गया था जब चीन ने सैन्य कूटनीति का प्रयोग किया। इस कूटनीति के प्रयोग के आधार पर चीन ने लाइबेरिया तथा कांगो में सेना भेजी थी। इसी प्रकार, चीन ने ईथियोपिया, सिएरा लियोन तथा सूडान में भी हथियारों की आपूर्ति की थी। अमेरिका और चीन की भू-राजनीति यह संकेत दे रही है कि भविष्य में अफ्रीका में शक्ति संघर्ष का विस्तार होगा।

अफ्रीका में भारतीय हित (India's Interests in Africa)

हाल के वर्षों में भारतीय तेल कंपनियों का अफ्रीका में आकर्षण बढ़ा है। अफ्रीका के तेल भंडारों के प्रति भारत के आकर्षण का मुख्य कारण यह है कि यहां तेल की गुणवत्ता अपेक्षाकृत बेहतर है तथा यहां विदेशी कंपनियों को कार्य करने की छूट है जो सऊदी अरब तथा कई अन्य खाड़ी देशों में नहीं है। दूसरा सबसे बड़ा कारण भारत-अफ्रीका संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। भारत के कुल तेल आयातों का लगभग 24 प्रतिशत अफ्रीकी देशों से होता है। निवेश की दृष्टि से भारत ने सूडान, अंगोला, आइवरी कोस्ट तथा घाना में निवेश किया है। घरेलू स्तर पर ऊर्जा की बढ़ती मांग को देखते हुए भारत ने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा संसाधनों तक अपनी पहुँच बढ़ाने का प्रयास किया है। इनमें अफ्रीका भी शामिल है। अफ्रीका में कार्य करने वाली तेल कंपनियां केवल भारतीय नहीं हैं बल्कि ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका तथा चीन की कंपनियां भी प्रतिस्पर्धा में हैं। 1990 के दशक में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति तथा लोकतांत्रिकरण ने भारत-अफ्रीका संबंधों को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत ने अफ्रीका में संयुक्त राष्ट्र शांति सेना को पूर्ण समर्थन दिया है। साथ ही, भारत ने कई महत्वपूर्ण पहल भी किए हैं। इनमें 'टीम-9' नामक पहल प्रमुख है जो तकनीकी तथा आर्थिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इस परियोजना पर भारत ने अब तक 500 मिलियन डालर की ऋण सुविधा उपलब्ध कराई है। इसके अलावा, 2002-03 में 'फोकस अफ्रीका' नामक कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य भारत-अफ्रीका व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ बनाना है। अब तक की सबसे महत्वपूर्ण पहल के रूप में मई, 2008 में भारत-अफ्रीका शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें बहुपक्षीय संबंधों को सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया गया है।

लैटिन अमेरिका में ऊर्जा भू-राजनीति (Energy Geopolitics in Latin America)

ऐतिहासिक रूप से लैटिन अमेरिका अमेरिकी महाद्वीप के उन देशों को कहा जाता था जो कभी स्पेन, पुर्तगाल तथा फ्रांस के साम्राज्य के अधीन थे। भू-राजनीति में लैटिन अमेरिकी क्षेत्र में दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका तथा कैरीबियन देश सम्मिलित होते हैं। मध्य अमेरिका तथा कैरीबियन क्षेत्रों को छोड़कर अन्य लैटिन अमेरिकी देशों में तेल तथा गैस की प्रचुरता है। वस्तुत: इस क्षेत्र में कुल तेल भंडार का 10 प्रतिशत तथा गैस भंडार का 4 प्रतिशत पाया जाता है। इस क्षेत्र की एक विशेषता यह है कि कच्चे तेल और गैस की मांग तथा पूर्ति अलग-अलग देशों में भिन्न हैं सबसे बड़ा भंडार वेनेजुएला में है लेकिन मैक्सिको, कोलंबिया, इक्वाडोर तथा ट्रिनिडाड एवं टोबैगो तेल निर्यातक देश हैं, जबकि अर्जेन्टिना तथा बोलिविया घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम हैं। पेरू तथा ब्राजील की स्थिति इस रूप में भिन्न है कि ये दोनों देश स्वावलंबन प्राप्त करने की स्थिति में आ गए हैं। मध्य अमेरिका तथा कैरीबियन (ट्रिनिडाड एवं टोबैगो को छोड़कर) क्षेत्रों में देशों द्वारा तेल का आयात किया जाता है। इसी प्रकार, दक्षिण अमेरिका में चिली, युरूग्वे तथा पराग्वे भी तेल का आयात करते हैं। निश्चित रूप से सम्पूर्ण लैटिन अमेरिका क्षेत्र में ऊर्जा संसाधनों की दृष्टि से वेनेजुएला सबसे महत्वपूर्ण देश है। जहां तक मध्य अमेरिका तथा कैरीबियन में तेल राजनीति का प्रश्न है, यह उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में अधिकांशत: तेल आयातक देश हैं। इस कारण, तेल और गैस पर इनकी अत्यधिक निर्भरता है जो तेल राजनीति को सुदृढ़ आधार देती है। अमेरिका सहित कई अन्य देशों जैसे मैक्सिको, वेनेजुएला, क्यूबा तथा ब्राजील ने भी इस क्षेत्र में अपने प्रभुत्व के विस्तार के प्रयास किए हैं। तेल की कमी की पूर्ति के लिए कई महत्वपूर्ण समझौते भी किए हैं। सैन जोस (San Jose) समझौते के तहत अगस्त, 1980 में वेनेजुएला तथा मैक्सिको, दोनों में से प्रत्येक ने 11 देशों को 80,000 बैरल प्रति दिन तेल आपूर्ति का आश्वासन दिया था। हालांकि इस समझौते को प्रत्येक वर्ष पुनरीक्षित (Review) किया जाता है लेकिन वेनेजुएला इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं है जिसका मुख्य कारण यह है कि यह समझौता क्यूबा पर लागू नहीं है। वेनेजुएला की असंतुष्टि के कारण अक्टूबर, 2000 में काराकास समझौता किया गया था जिसमें वेनेजुएला के साथ दस अन्य देश शामिल थे। इसके

www.studymasterofficial.com

अतिरिक्त, वेनेजुएला और क्यूबा के बीच भी एक समझौता किया गया है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह समझौता वस्तुतः अमेरिकी नीतियों के विरोध का परिचायक है। इसमें साम्राज्यवाद, भूमंडलीकरण तथा नव-उदारवाद का विरोध किया गया है। लेकिन यह भी विचारणीय तथ्य है कि समाजवादी मॉडल को लेकर दोनों देशों में भिन्नता भी है। जहां वेनेजुएला ने 21वीं सदी के समाजवाद की बात कही है, वहीं क्यूबा वास्तविक समाजवाद का पक्षधर है। हालांकि इस समझौते का मूल आधार तेल है। समझौते के अनुसार वेनेजुएला द्वारा क्यूबा को 90,000 बैरल प्रतिदिन बाजार कीमत से कम कीमत पर क्यूबा को आपूर्ति की जाती है। इसमें से 40,000 बैरल का उपयोग क्यूबा अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है जबकि 50,000 बैरल का वह निर्यात कर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से लाभ कमाता है। इस सहायता के बदले वेनेजुएला में चलाए जा रहे साक्षरता, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण तथा अन्य विकासोन्मुखी मिशनों के लिए क्यूबा के तकनीशियनों एवं विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त की जाती है।

इन समझौतों के अतिरिक्त, जून, 2001 में मैक्सिको, बेलिज, गुआटेमाला, हुंडुरास, निकारागुआ, अल सल्वाडोर, कॉस्टोरिका तथा पनामा ने मेक्सिको के 9 दक्षिणी राज्यों तथा मध्य अमेरिका के 7 राज्यों के एकीकरण की एक योजना बनाई गई थी। "प्लान प्यूबला पनामा" (Plan Puebla Panama) नामक इस योजना का मुख्य उद्देश्य इन राज्यों के पारस्परिक सहयोग के आधार पर एक "मिजो-अमेरिका" (Meso-America) क्षेत्र बनाना था। यदि हम आज की स्थिति देखें तो इस योजना का एक महत्वपूर्ण अवयव ऊर्जा और तेल का विषय है। वर्ष 2005 तथा उसके बाद से सभी देशों ने इस क्षेत्र में एक शोधन शाला की स्थापना का प्रस्ताव किया। हालांकि इस पर सहमति हो गई है लेकिन इसकी स्थापना मैक्सिको में नहीं की जा सकती क्योंकि मैक्सिको के संविधान में ऐसी किसी भी संस्थापना में निजी निवेश का प्रतिषेध किया गया है। इस पूरे क्षेत्र, खासकर मध्य अमेरिका तथा कैरीबियन देशों में तेल और गैस जैसे संसाधनों का विकास मुख्य रूप से मैक्सिको पर निर्भर करता है क्योंकि वह सबसे बड़ा उत्पादक देश है। मैक्सिको में चूंकि निजी निवेश को प्रोत्साहित नहीं किया गया है अतः केवल सरकार की कंपनियों द्वारा कार्य किया जाता हैं तेल की बढ़ती मांग और उत्पादन में वृद्धि के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि इस क्षेत्र को निजी निवेश के लिए खोला जाए। इसी आधार पर सुधार के कई प्रावधान यहां किए गए हैं। लैटिन अमेरिका का एक महत्वपूर्ण तेल निर्यातक कोलंबिया है। ऊर्जा संसाधनों की प्रचुरता वाला यह देश तेल, गैस, उच्चस्तरीय कोयले आदि का निर्यात करता है। हाल के वर्षों में तेल उत्पादन में हुई कमी को देखते हुए नीतिगत परिवर्तन किए गए हैं। इकोपेट्रोल (Ecopetrol) नामक सरकारी कंपनी में 20 प्रतिशत निजी अंश की स्वीकृति दी गई है। साथ ही, कोलंबिया और वेनेजुएला संयुक्त रूप से ऊर्जा क्षेत्र में कार्य करने के लिए सहमत हैं। कोलंबिया से वेनेजुएला तक गैस-आपूर्ति के लिए 2007-11 के बीच एक 330 किलोमीटर लंबी पाइपलाइन का भी प्रस्ताव है। ऐसी ही एक परियोजना और प्रस्तावित है जिसके तहत वेनेजुएला एशिया में तेल निर्यात बढ़ाना चाहता है। लैटिन अमेरिका के क्षेत्र में हालांकि वामपंथी विचारधारा का पुनरूत्थान हो गया है लेकिन यह विचारधारा दो खेमों में बंटी हुई है। एक ओर ब्राजील तथा उसके सहयोगी उदारवादी समाजवाद के पक्षधर हैं, वहीं बोलिविया जैसे देश संसाधनों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण चाहते हैं। इसी आधार पर जब बोलिविया के राष्ट्रपति ईवो मोरेल्स (Evo Morales) ने गैस संसाधनों का राष्ट्रीयकरण किया था तब बोलिविया और ब्राजील के संबंधों में कटुता आ गई थी। उल्लेखनीय है कि ब्राजील बोलिविया के गैस के 70% अंश का क्रेता देश है। ब्राजील ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह बोलिविया पर से अपनी निर्भरता अतिशीघ्र घटाएगा। हालांकि दोनों देशों के बीच मतभेद है, लेकिन यह भी सत्य है कि ये दोनों पूरक अर्थव्यवस्थाएं हैं तथा सम्पूर्ण क्षेत्र के एकीकरण और विकास में इनकी अहम भूमिका है। इस क्षेत्र में ऊर्जा संसाधनों की भू-राजनीति के संदर्भ में एक और मुद्दा जो गंभीर हुआ है, वह है गैस की तार्किक कीमतों का निर्धारण। बोलिविया तथा अर्जेन्टिना द्वारा 2006 तक सस्ते दाम पर गैस की आपूर्ति की जाती थीं लेकिन 2007 में दोनों ने गैस की कीमतों में लगभग 56% की वृद्धि का निर्णय किया था। कीमत वृद्धि ने भी देशों के बीच संबंधों में कटुता बढ़ाई है। गैस की कीमतों में हुई वृद्धि से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले देश हैं ब्राजील तथा चिली। एक बहुत ही महत्वाकांक्षी परियोजना के माध्यम से वेनेजुएला क्षेत्रीय एकीकरण को बढ़ावा दे रहा है। इसके तहत एक दक्षिणी गैस पाइपलाइन (Southern Gas Pipeline) बिछाई जाएगी। वेनेजुएला के कैरीबियन तट पर अवस्थित प्युर्टो ऑरडेज (Puerto Ordaz) से ब्राजील, युरूग्वे तथा अर्जेन्टिना होते हुए यह उत्तरी चिली तक विस्तृत होगी। पुनः उत्तरी चिली से इसे बोलिविया तथा पेरू तक बढ़ाया जाएगा। लगभग 9000 कि.मी. लंबी यह संकल्पित पाइपलाइन विश्व की सबसे लंबी पाइपलाइन होगी।

विश्लेषणात्मक रूप से यह कहना तार्किक होगा कि तेल और गैस की राजनीति राष्ट्रों के प्रभुत्व का विस्तार कराने में सहायक जरूर होती है लेकिन अधिकांश लैटिन अमेरिकी देशों में ऊर्जा संसाधनों की प्रचुरता होने के कारण यहां संसाधनों की भू-राजनीति की प्रकृति अन्य क्षेत्रों से भिन्न है।

लैटिन अमेरिका में भारतीय हित (India's Interests in Latin America)

चीन के साथ-साथ भारत की अर्थव्यवस्था भी तीव्र गति से वृद्धि कर रही है। इस संवृद्धि ने ऊर्जा की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी है। भारत द्वारा तेल एवं गैस के अतिरिक्त अन्य ऊर्जा संसाधनों की इस मांग ने उसे अमेरिका, पश्चिमी देशों तथा ऊर्जा संसाधनों की प्रचुरता वाले देशों के बीच अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया है। यह स्पष्ट है कि अपने आर्थिक विकास को सतत् बनाए रखने के लिए तेल और गैस की आपूर्ति की गारंटी भारत की नितांत आवश्यकता है। इस कारण, लैटिन अमेरिका का क्षेत्र भारतीय हितों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि भारत ने वेनेजुएला, मैक्सिको, ब्राजील, कोलंबिया, पेरू, बोलिविया तथा क्यूबा जैसे देशों के साथ संबंधों की स्थापना की है। क्यूबा तथा अन्य कैरीबियन देशों के साथ भारत के संबंधों के प्रति अमेरिका का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं है लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि भारत पर उसके द्विपक्षीय संबंधों के विषय पर अमेरिका दबाव नहीं दे सकता। मुख्यत: इसके दो कारण हैं– पहला, भारत का तीव्र विकास और दूसरा, अमेरिका की एशिया नीति में भारत के सहयोग की अनिवार्यता। हाल के वर्षों में भारत द्वारा न केवल समुद्रवर्ती राजनय बल्कि तेल और गैस के राजनय का भी प्रयोग किया गया है। इसके लिए भारतीय कंपनी ओ.वी.एल. ने भारी निवेश भी किया है। निवेश किए जाने वाले क्षेत्रों में सखालिन, सूडान, नाइजीरिया तथा वेनेजुएला प्रमुख हैं। वस्तुत: भारत केवल अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कच्चे तेल का आयात नहीं करता बल्कि तेल के मूल्य वर्द्धित उत्पादों के निर्यात के लिए भी भारत को कच्चे तेल की आवश्यकता है। इस कारण, अपनी तेल आवश्यकताओं का लगभग 70% भारत द्वारा आयात किया जाता है। जनवरी, 2007 में वेनेजुएला की कंपनी ने भारत में एक तेल शोधनशाला स्थापित करने का प्रस्ताव किया था। इस शोधनशाला में वेनेजुएला के सैन क्रिस्टोबल (San Cristobal) क्षेत्र के कच्चे तेल का शोधन किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि इसी क्षेत्र में भारतीय कंपनी ओ.वी.एल. को 30% की भागीदारी प्राप्त हुई है। भारत और वेनेजुएला के बीच के संबंधों में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जहां भारत में तेल की खपत तेजी से बढ़ी है वहीं वेनेजुएला एक बड़े तेल आपूर्तिकर्ता के रूप में संबंध बनाने के लिए इच्छुक है। जहां तक ब्राजील का प्रश्न है, इस क्षेत्र में तेल भंडारों की हैसियत से उसका स्थान मैक्सिको तथा वेनेजुएला के बाद तीसरा है। लैटिन अमेरिका में तेल बाजार में ब्राजील का अंश जो 2005 में लगभग 16 प्रतिशत था उसके 2010 तक बढ़कर 21.5% हो जाने की संभावना है। भारत तथा ब्राजील ने संयुक्त रूप से तेल की खोज करने का निर्णय किया है। यह वस्तुत: दोनों देशों के पारस्परिक आर्थिक सहयोग का ही एक भाग है। इसी प्रकार, भारत-मैक्सिको संबंधों में भी तेल का योगदान अत्यधिक है। मध्य अमेरिका में कोलंबिया की कंपनी ईको पेट्रोल (Ecopetrol), जापान की ईतोशु (Itochu), अमेरिका की वैलेरो (Valero) तथा भारत की रिलायंस (Reliance) द्वारा संयुक्त रूप से तेल शोधनशाला स्थापित करने का प्रावधान है। इस परियोजना को कोस्टरिका, गुआटेमाला, होंडुरास तथा पनामा का भी समर्थन प्राप्त है। क्षेत्रीय स्तर पर तेल शोधन में मैक्सिको का अंश 2005-2010 के बीच 21% से 23% हो जाने की आशा है। वर्तमान में देश में 6 शोधनशालाएं हैं। दूसरी ओर, भारत भी हाल के वर्षों में शोधन के क्षेत्र में विश्व स्तर पर एक महत्वपूर्ण राष्ट्र के रूप में उभरा है। ऐसी परिस्थितियों में दोनों देशों के बीच संबंधों के सुदृढ़ होने की पूरी संभावना है।

ऊर्जा संकट (Energy Crisis)

ऊर्जा संकट को सामान्य रूप से तेल संकट कहा गया है। तकनीकी रूप से ऊर्जा संसाधनों की मांग और पूर्ति के बीच असंतुलन की स्थिति को ऊर्जा संकट कहा जाता है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि ऊर्जा संकट उत्पन्न करने के लिए बाजार की अनिश्चितता अथवा विफलता उत्तरदायी होती है लेकिन इसके अलावा भी कई कारण हो सकते हैं। अर्थव्यवस्था के बाजार शक्ति सिद्धांत (Market Power Theory) के अनुसार, एक से अधिक उत्पादक संयुक्त रूप से अथवा ऐसे किसी समूह द्वारा बाजार में अपनी स्थिति की सुदृढ़ता के कारण उत्पादों की कीमतों में ऐसी वृद्धि कर लाभ कमाना चाहते हैं। इस संदर्भ में तेल निर्यातक देश के संगठन (ओपेक) का देखा जा सकता है। कीमतों में वृद्धि के कारण संकट जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अन्य कारणों में युद्ध अथवा प्रतिरक्षा संबंधी समस्याएं अथवा पाइपलाइन परियोजनाओं की विफलता भी महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त, कई अवसरों पर अवसंरचनाओं की अपर्याप्तता भी ऊर्जा संसाधनों की पूर्ति में व्यवधान उत्पन्न करती है जो संकट का कारण बन सकती है। पिछले दशकों में उभरने वाली नई परिस्थितियाँ भी इसके लिए जिम्मेवार हैं। इनमें अर्थव्यवस्था की तीव्र संवृद्धि दर बनाए रखने के लिए ऊर्जा की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि तथा आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था

की सुदृढ़ता के लिए अनिवार्य अवसंरचनात्मक विकास की अपर्याप्तता प्रमुख हैं। जैसा कि इस अध्याय में पहले भी कहा गया है, विकासशील देशों, खासकर भारत और चीन में ऊर्जा की बढ़ती खपत ने तेल की कीमतें बढ़ाने में जो योगदान दिया है, वह इनके साथ-साथ अन्य देशों के लिए भी समस्या का विषय बना हुआ है। अभी तेल संकट जैसी स्थिति तो नहीं है लेकिन 2003 तथा उसके बाद तेल की कीमतें जिस प्रकार बढ़ी हैं उसने संकटकालीन परिस्थितियां अवश्य उत्पन्न कर दी हैं।

तेल की कीमतों में हाल की प्रवृत्तियां (Recent Trends in Oil Prices)

1980 के दशक के मध्य से 2003 तक तेल की कीमतों में व्यापक स्तर पर उतार-चढ़ाव देखे गए थे। ऐसी ही प्रवृत्तियां कमोबेश 2005 तक विद्यमान रहीं लेकिन इसके उपरांत जून, 2008 तक की अवधि में तेल की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 1980 के दशक में तेल की कीमत जो 25 डालर प्रति बैरल थी वह जून, 2008 में बढ़कर 149 डालर प्रति बैरल हो गई थी। निश्चित रूप से तेल की आपूर्ति में कमी तो सबसे बड़ा कारण है लेकिन कई अन्य कारक भी इस वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहे हैं। इनमें 2003 में ईराक युद्ध, मध्य पूर्व के क्षेत्र में सशस्त्र संघर्षों के कारण तनाव, पीक ऑयल (Peak Oil) के प्रति डर, उत्तर कोरिया तथा ईरान के परमाणु कार्यक्रमों से उत्पन्न स्थितियाँ आदि महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहले अगर आपूर्ति की बात करें तो इसे आधारिक कारण माना जा सकता है। तीव्र गति से बढ़ती तेल की मांग ने कीमतों में उत्प्लावकता (Buoyancy) ला दी है। आने वाले दशकों में भी यह आशंका व्यक्त की गई है कि चूंकि तेल भंडार सीमित हैं, अतः किसी समय उत्पादन में कमी मांग और पूर्ति के बीच असंतुलन उत्पन्न करेगी जो कीमतों में वृद्धि का कारण होगी। इसी संदर्भ में पीक ऑयल (Peak Oil) की संकट की चर्चा प्रासंगिक होगी। उल्लेखनीय है कि 1956 में सर्वप्रथम किंग हबर्ट (King Hubbert) ने यह कहा था कि अमेरिका में तेल उत्पादन 1965 और 1970 के बीच अपनी चरम सीमा पर होगा। इसी आधार पर हबर्ट ने कई अन्य देशों के संदर्भ में भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। इसे हबर्ट थ्योरी (Hubbert Peak Theory) कहते हैं।

जब राष्ट्रों का आर्थिक विकास होता है तो नगरीकरण, औद्योगीकरण आदि प्रक्रियाओं के अलावा लोगों के जीवन स्तर के ऊँचा होने से भी ऊर्जा खपत बढ़ती है। इससे मांग में भी तीव्र वृद्धि होती है। इन्हीं आधारों पर यह माना गया है कि 2006 की तुलना में 2030 तक तेल की मांग में 37 प्रतिशत की वृद्धि होगी। भारत के संदर्भ में भी कई संस्थाओं ने कहा है कि 2020 तक भारत में तेल की मांग 2005 की तुलना में तीन गुनी हो जाएगी। अधिकांशतः तेल क्षेत्र के विशेषज्ञों का कहना है कि मांग में वृद्धि चार प्रमुख क्षेत्रकों के विकास के कारण होती है। ये हैं– परिवहन, आवासन, वाणिज्य तथा उद्योग। इनके अतिरिक्त, जनसंख्या वृद्धि भी तेल (ऊर्जा) की मांग बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। 1980 की तुलना में 2030 तक विश्व की जनसंख्या लगभग दुगुनी हो जाएगी। सबसे बड़ा अन्तर यह है कि तेल पर जो निर्भरता 1980 में रही थी उसकी अपेक्षा 2030 तक जनसंख्या तेल जैसे संसाधनों पर कहीं अधिक निर्भर होगी। हर्बट के सिद्धांत के आधार पर यह कहा जाना चाहिए कि तेल के भंडारों का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि उन्हीं भंडारों की खोज पर यह निर्भर करेगा कि तेल उत्पादन कब अपनी चरम सीमा पर होगा। यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों के निवेश के कारण भी तेल और गैस की मांग तथा खपत बढ़ती है यदि आपूर्ति उसके सापेक्ष नहीं होती तो कृषि उत्पादों की कीमतों में वृद्धि की आशंका होती है।

प्रमुख तेल एवं गैस पाइपलाइन (Important Oil and Gas Pipelines)

ऊर्जा सुरक्षा को ध्यान में रखकर विभिन्न देशों द्वारा अन्य क्षेत्रों से तेल और गैस की आपूर्ति के लिए राजनयिक प्रक्रियाएं चलाई जाती हैं। इस कारण, इस प्रकार की प्रक्रियाएं आर्थिक तथा राजनयिक, दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण हो जाती हैं। इन प्रक्रियाओं में भारत की भूमिका का भी विस्तार हुआ है। कई महत्वपूर्ण पाइपलाइनों में भारत की साझेदारी इसका प्रमाण है। इसी प्रकार, जैसा कि पहले कहा गया है, बड़ी शक्तियां भी इन राजनयिक-आर्थिक प्रक्रियाओं में अत्यन्त सक्रिय भूमिका में हैं। इस अध्याय में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण पाइपलाइनों के बारे में उल्लेख किया गया है–

1. **बाकू-त्बिलिसी-सेहन पाइपलाइन (Baku-Tblisi-Ceyhan Pipeline):** कैस्पियन सागर में अजेरी-चिराग-गुणशिलि (Azeri-Chirag-Guneshli) तेल भंडार से भूमध्यसागर तक कच्चे तेल की आपूर्ति के लिए बाकू (अजरबैजान), त्बिलिसी (जार्जिया) तथा सेहन

www.studymasterofficial.com
Downloaded from

(तुर्की) को तेल आपूर्ति के लिए यह पाइपलाइन बिछाई गई है। 1,768 किलोमीटर लंबी इस पाइपलाइन में 10 मई, 2005 को बाकू से तेल की आपूर्ति की गई थी जो 28 मई, 2006 को सेहन पहुँची।

हालांकि कैस्पियन सागर क्षेत्र में तेल एवं गैस का बड़ा भंडार उपलब्ध है, लेकिन इसके स्थलबद्ध होने के कारण पश्चिमी बाजार तक तेल की आपूर्ति सरल नहीं है। शीत युद्ध के दौरान आपूर्ति मार्ग रूस होकर ही बनाए गए थे। ईरान होकर कैस्पियन सागर से फारस की खाड़ी तक तेल की आपूर्ति का मार्ग सबसे छोटा तथा सुगम था। लेकिन अमेरिका तथा ईरान के बीच परमाणु कार्यक्रम के विषय पर विवाद होने के कारण इस विकल्प को समाप्त कर दिया गया था। दूसरी ओर, तुर्की ने यह आश्वासन दिया था कि यदि पाइपलाइन तुर्की होकर गुजरेगी तो यह सबसे सुरक्षित विकल्प होगा। इसी आधार पर 1993 में तुर्की तथा अजरबैजान के बीच समझौता किया गया था। यह संभव था कि पारगमन (Transit) के लिए जार्जिया अथवा आर्मेनिया को शामिल किया जाए लेकिन अजरबैजान- आर्मेनिया विवादों के कारण इस पाइपलाइन में जार्जिया को शामिल किया गया। लगभग 3.6 बिलियन डालर की लागत वाली इस पाइपलाइन की कुल लागत का 70 प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम तथा यूरोपीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक द्वारा उपलब्ध कराई गई है। भू-राजनीतिक, आर्थिक तथा सामरिक दृष्टि से इस पाइपलाइन का विशेष महत्व है। दक्षिणी कॉकेशस (South Caucasus) का क्षेत्र हाल के वर्षों में सामरिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। इस कारण अमेरिका तथा पश्चिमी राष्ट्र इस ओर आकर्षित हुए हैं। इन परिस्थितियों में रूस का यह मानना है कि दक्षिणी कॉकेशस क्षेत्र में पश्चिमी शक्तियां उसके प्रभुत्व को कम करना चाहती हैं। इस मान्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि पाइपलाइन में शामिल देश अपने-अपने स्तर पर भी ऊर्जा के लिए रूस पर अपनी निर्भरता कम करने का प्रयास कर रहे हैं। यह भी कहना तर्कसंगत होगा कि इस पाइपलाइन के कारण उसमें शामिल देशों की निर्भरता मध्य पूर्व पर से भी घटेगी तथा इनका ऊर्जा स्वावलंबन अमेरिकी प्रभुत्व के अनावश्यक विस्तार पर भी अंकुश लगाने में सफल होगा।

2. **नबुको पाइपलाइन (Nabucco Pipeline) :** बुल्गारिया, रोमानिया तथा हंगरी होते हुए तुर्की से आस्ट्रिया तक प्राकृतिक गैस की आपूर्ति के लिए 3300 किलोमीटर लंबी यह पाइपलाइन बिछाई जाएगी। इसके निर्माण का कार्य 2009 में शुरू होने की आशा है। इस पाइपलाइन द्वारा ईरान, अजरबैजान, कजाकस्तान, तुर्कमेनिस्तान, मिस्र तथा सीरिया से भी गैस की आपूर्ति की जा सकेगी। इसे तुर्की में ईरजुरूम (Erzurum) के निकट तबरीज-ईरजुरूम पाइपलाइन (Tabriz-Erzurum Pipeline) तथा दक्षिणी कॉकेशस पाइपलाइन (South Caucasus Pipeline) से जोड़ा जाएगा।

आरंभिक चरणों में इसके जरिए 4.5-13 बिलियन क्यूबिक मीटर (बीसीएम) गैस की आपूर्ति होगी जिसमें 2-8 बीसीएम गैस आस्ट्रिया को प्राप्त होगी। बाद के चरणों में गैस की लगभग आधी मात्रा तुर्की से आस्ट्रिया के बीच उपलब्ध बाजारों तक पहुँचाई जाएगी। वर्ष 2012 तक पूरी होने वाली इस परियोजना की कुल लागत 5.8 बिलियन डालर आंकी गई है।

राजनीतिक रूप से इसका महत्व इस रूप में है कि जहां अमेरिका तथा पश्चिमी देश इस पाइपलाइन के जरिए अपने प्रभुत्व को बनाए रखना चाहते हैं, वहीं रूस की कंपनी गेजप्रोम (Gazprom) इसकी प्रतिस्पर्धा में ब्लू स्ट्रीम (Blue Stream) पाइपलाइन के दूसरे खंड के निर्माण के लिए प्रयासरत है। यह काला सागर के नीचे से तुर्की तक गैस की आपूर्ति करेगी तथा इसका विस्तार बुल्गारिया, सर्बिया, क्रोएशिया तथा पश्चिमी हंगरी तक किया जाएगा।

3. **ब्लू स्ट्रीम पाइपलाइन (Blue Stream Pipeline) :** रूस से तुर्की तक गैस आपूर्ति करने वाली यह पाइपलाइन बहुचर्चित है। रूस के तेल संसाधनों की आपूर्ति को बहुआयामी बनाना इसका उद्देश्य है। 2005 में आपूर्ति आरंभ करने वाली यह परियोजना 2010 तक अपनी पूरी क्षमता से कार्य करेगी। पाइपलाइन के दो खंड हैं– सागरतलीय तथा स्थलीय। काला सागर के नीचे वाले खंड का स्वामित्व नीदरलैंड की कंपनी जबकि स्थलीय खंड का स्वामित्व रूसी कंपनी के पास होगा। इस परियोजना पर आने वाली कुल लागत 3.2 बिलियन डालर है तथा इसकी कुल लंबाई 1213 किलोमीटर होगी।

राजनीतिक रूप से यह पाइपलाइन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि तेल, ऊर्जा तथा परिवहन परियोजनाओं में रूस और तुर्की के बीच रणनीतिक संबंधों की स्थापना इसके प्रमुख उद्देश्य हैं। अब तक जो गैस आपूर्ति तुर्की तक की जा रही थी उसका मार्ग यूक्रेन, मॉलडोवा, रोमानिया तथा बुल्गारिया होते हुए था जिसका व्यय भार अत्यधिक था। इस समस्या के निदान के लिए भी रूस और तुर्की ने 1947 में ब्लू-स्ट्रीम पाइपलाइन समझौता किया था। हाल ही में रूस ने ऊर्जा के क्षेत्र में जिस प्रकार अपने प्रभुत्व के विस्तार

का प्रयास किया है, उस दृष्टिकोण से पाइपलाइन के विस्तार की योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तावित विस्तार के बाद रूस से गैस की आपूर्ति यूरोप के मध्यवर्ती भाग तक की जा सकेगी। इस रूप में यह परियोजना नबुको पाइपलाइन तथा ट्रांस-कैस्पियन गैस पाइपलाइन की प्रतिस्पर्धी होगी। इस प्रतिस्पर्धा के माध्यम से यह निश्चित है कि रूस ऊर्जा के लिए यूरोप की अमेरिका पर जो निर्भरता है उसे कम करना चाहता है। लेकिन यह भी सत्य है कि अपने प्रभुत्व के विस्तार में उसे तुर्की से जिस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा है वह तुर्की-अमेरिका संबंधों की पृष्ठभूमि में बहुत तार्किक नहीं लगती। साथ ही, यह यूरोप में ऊर्जा के क्षेत्र में रूस और अमेरिका के संबंधों को भी कटु बनाने में योगदान देगी।

4. **ट्रांस-कैस्पियन गैस पाइपलाइन (Trans-Caspian Gas Pipeline) :** तुर्कमेनिस्तान से अजरबैजान तक प्राकृतिक गैस की आपूर्ति के लिए प्रस्तावित इस परियोजना पर 5 बिलियन डालर की आपूर्ति के लिए प्रस्तावित इस परियोजना पर 5 बिलियन डालर का व्यय अनुमानित है। अजरबैजान में बाकू में इसे दक्षिणी कॉकेशस (South Caucasus) पाइपलाइन से जोड़ा जाएगा। इससे अन्ततः इसका संपर्क प्रस्तावित नबुको पाइपलाइन से भी हो जाएगा। इस सागरतलीय परियोजना का प्रस्ताव सबसे पहले अमेरिका द्वारा 1996 में किया गया था। इसके बाद, तुर्कमेनिस्तान, तुर्की, अजरबैजान तथा जार्जिया के बीच समझौते किए गए। इसके बावजूद वर्ष 2000 में यह परियोजना लगभग अस्वीकृत कर दी गई थी। इसका मुख्य कारण कैस्पियन सागर की ओर रेखांकित सीमाओं पर विवाद तथा रूस और ईरान द्वारा परियोजना का विरोध था।

वर्ष 2006 में रूस और यूक्रेन के बीच हुए गैस विवाद के बाद पुनः इस परियोजना पर गंभीरता रूप से विचार किया गया लेकिन इस पर पूरी तरह सहमति नहीं हो सकी। इसके बाद मई, 2007 में रूस, कजाकस्तान तथा तुर्कमेनिस्तान ने एक समझौते के तहत मध्य एशिया सेन्टर गैस पाइपलाइन पर सहमति व्यक्त की। इसके माध्यम से मध्य एशियाई क्षेत्र से यूरोप तक गैस की आपूर्ति प्रस्तावित है। रूस द्वारा प्रेरित इस समझौते ने ट्रांस-कैस्पियन गैस पाइपलाइन परियोजना को लगभग समाप्त कर दिया है।

5. **नॉर्ड स्ट्रीम गैस पाइपलाइन (Nord Stream Gas Pipeline) :** रूस से जर्मनी तक प्राकृतिक गैस की आपूर्ति करने के लिए यह परियोजना प्रस्तावित है। कुल 2113 किलोमीटर लंबी इस पाइपलाइन का प्रस्ताव 1997 में ही किया गया था लेकिन इसका निर्माण कार्य दिसम्बर, 2005 में आरंभ किया गया। दो खंडों वाली इस परियोजना के पहले खंड को 2010 तक जबकि दूसरे खंड को 2012 तक पूरा किया जाएगा। पहली गैस आपूर्ति 2011 में शुरू की जाएगी।

रूस की कंपनी गैजप्रोम (Gazprom) तथा जर्मनी की कंपनी विनगैस (Wingas) के बीच हुए एक समझौते के अनुरूप 2010-11 से 25 वर्षों तक 9 बीसीएम गैस की आपूर्ति प्रति वर्ष की जाएगी। कई अन्य परियोजनाओं की भांति इस पाइपलाइन के जरिए भी रूस अपने राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार का प्रयास कर रहा है। लकिन मुख्यतः पर्यावरणीय तथा सुरक्षा संबंधी विषयों के उभर जाने से यह परियोजना विवादास्पद हो गई है। अमेरिका, स्वीडन, पोलैंड तथा कई पर्यावरणीय संगठनों ने इसका विरोध किया है। इसी प्रकार, विशेषकर स्वीडन ने सुरक्षा संबंधी समस्याओं के प्रति भी आशंका जताई है। निश्चित रूप से इस पाइपलाइन से स्वीडन के अनन्य आर्थिक क्षेत्र में रूसी नौसेना की उपस्थिति सुरक्षा संबंधी समस्याएं उत्पन्न कर सकती है। जहां तक पर्यावरणीय समस्याओं का प्रश्न है, इससे बाल्टिक सागर के तल पर कई हानिकारक रसायनों के निक्षेप से उसकी प्राकृतिक संरचना दुष्प्रभावित हो सकती है।

6. **तापी गैस पाइपलाईन (TAPI: TurKmenishtan Afghanistan Pakistan India Gas Pipeline) :** इस परियोजना में तुर्कमेनिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत शामिल हैं। इस पाइपलाइन द्वारा कैस्पियन सागर क्षेत्र के गैस की आपूर्ति तुर्कमेनिस्तान से अफगानिस्तान होते हुए पाकिस्तान तथा भारत तक की जाएगी। 1680 किलोमीटर लंबी यह पाइपलाइन अफगानिस्तान में हेरात तथा कंधार होते हुए पाकिस्तान में मुल्तान तथा भारत में भारत-पाकिस्तान सीमा पर अवस्थित फाजिल्का (Fazilka) तक पहुँचेगी।

परियोजना पर व्यवहार्यता अध्ययन (Feasibility Study) एशियाई विकास बैंक द्वारा किया गया है तथा इस पर अनुमानित लागत लगभग 3.5 बिलियन डॉलर है। मूलतः यह परियोजना 1995 में ही प्रस्तावित हुई थी लेकिन इस पर एक नया समझौता दिसम्बर, 2002 में किया गया था। परियोजना से भारत तथा पाकिस्तान, दोनों को ही ऊर्जा सुरक्षा का स्तर प्राप्त करने में सहायता मिलेगी लेकिन सबसे बड़ी समस्या पाइपलाइन की सुरक्षा से है। तुर्कमेनिस्तान में इसका निर्माण कार्य 2006 में आरंभ किया जाना था लेकिन अफगानिस्तान के जिन क्षेत्रों से यह पाइपलाइन गुजरेगी वहां तालिबान का प्रभुत्व स्थापित है। ऐसी परिस्थितियों में सुरक्षा संबंधी

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

समस्या सबसे गंभीर बनी हुई है।

7. **ईरान-पाकिस्तान-भारत गैस पाइपलाइन (Iran-Pakistan-India Gas Pipeline) :** यह विदित है कि भारत और पाकिस्तान, दोनों के लिए ही ऊर्जा सुरक्षा सबसे पहली प्राथमिकता है। दोनों ही देशों में गैस की मांग अगले दो दशकों में दोगुनी हो जाने की आशा है। इस पृष्ठभूमि में ईरान, जहाँ विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गैस भंडार है, से गैस की प्राप्ति सर्वोत्तम विकल्प है। इसी उद्देश्य से लगभग 1700 मील लंबी इस पाइपलाइन परियोजना का प्रस्ताव किया गया था। लगभग 4 बिलियन डालर की अनुमानित लागत वाली यह परियोजना आर्थिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक, सामरिक कारणों से भी महत्वपूर्ण है। ईरान के लिए भारत गैस का एक बड़ा बाजार है। साथ ही, हाल के वर्षों में ईरान पर परमाणु कार्यक्रम के कारण जो अन्तर्राष्ट्रीय दबाव पड़े हैं, उसे कम करने में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसी कारण भारतीय कंपनियों को ईरान में कई बड़े अनुबंध भी दिए गए हैं। इसी प्रकार, पाकिस्तान भी ईरान के लिए सामरिक रूप से महत्वपूर्ण है। अफगानिस्तान में अमेरिकी सेना की स्थापना से ईरान पर भी दबाव पड़ते हैं। इस कारण पाकिस्तान के साथ वह अपने संबंधों को मधुर बनाने के लिए इच्छुक है। इन लाभों की संभाव्यता के बावजूद इस परियोजना पर निर्माण कार्य अब तक आरंभ नहीं किया जा सका है। एक ओर जहां भारत और ईरान के बीच एल.एन.जी. की कीमतों के निर्धारण पर सहमति नहीं है, वहीं दूसरी ओर, भारत और पाकिस्तान के बीच पारगमन शुल्क के विषय पर विवाद बना हुआ है। एक अन्य समस्या जो अत्यन्त गंभीर है, वह है पाइपलाइन की सुरक्षा। लगभग 475 किलोमीटर पाइपलाइन पाकिस्तान के बलूचिस्तान क्षेत्र से गुजरेगी जहां फैली हिंसा पाइपलाइन के लिए घातक हो सकती है।

> **IPI Gas Pinpline**
>
> ईरान-पाकिस्तान-भारत गैस पाइप लाइन प्रोजेक्ट को Peace Pipeline भी कहा जाता है। यह पाइपलाइन 2700 किमी० लम्बी है। यह पाइपलाइन ईरान के निकट फारस की खाड़ी से गैस निकालकर पाकिस्तान के प्रमुख शहरों (कराची एवं मुल्तान) फिर भारत के प्रमुख शहर (दिल्ली) को गैस की आपूर्ति करेगी।
>
> भौगालिक रूप से ईरान दोनों देशों (भारत एवं पाकिस्तान) को गैस उपलब्ध कराने के सन्दर्भ सुविधाजनक स्थिति में है। ईरान ने इस पाइपलाइन के निर्माण में होने वाले खर्च के 60% राशि को स्वयं वहन करने का प्रस्ताव किया है। इस पाइपलाइन के सन्दर्भ में वर्ष 2002 में घोषणा की गई थी तथा इसे वर्ष 2015 तक पूरा किया जाना प्रस्तावित है।
>
> इस पाइपलाइन में चीन ने भी अपनी रूचि दिखाई है तथा चीनी कंपनियाँ पाकिस्तान में पाइपलाइन के निर्माण अपनी सहायता देने पर सहमत हुई हैं।

ऊर्जा सुरक्षा के क्षेत्र में भारत द्वारा किए जा रहे हाल के प्रयास

आर्थिक विकास एवं मानव विकास के सन्दर्भ में ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक विकास एवं ऊर्जा खपत में दोहरा संबंध है अर्थात वैश्विक प्रतिस्पर्धियों के सन्दर्भ में किसी अर्थव्यवस्था की वृद्धि उसकी पर्यावरण मित्र एवं लागत मूल्य पर अधिकतम लाभ देने वाली ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करती है वहीं दूसरी ओर, किसी अर्थव्यवस्था के विकास का माप उसकी ऊर्जा मांग पर निर्भर होता है।

ऊर्जा किसी भी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अवयव है। भारत जैसे तेजी से विकसित होने वाली अर्थव्यवस्था के लिए ऊर्जा का विशेष महत्व है। भारत को अपनी सकल घरेलू उत्पाद की दर को 8 से 10 प्रतिशत बनाए रखने हेतु 5.6 से 6.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के साथ ऊर्जा की आवश्यकता होगी। हाल के वर्षों में भारत में **'तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवं तीव्र आर्थिक विकास'** के परिणामस्वरूप भारत की ऊर्जा खपत में लगभग चार गुनी वृद्धि हुई है। अत: ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करना भारत के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। इसके लिए जहां एक ओर भारत अपने घरेलू स्तर पर उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों के दोहन को प्रबंधित कर रहा है वहीं वहीं दूसरी ओर, वैश्विक स्तर पर ऊर्जा संसाधन सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में अपने प्रयास तीव्र कर रहा है।

ऊर्जा सुरक्षा को भारत ने अपनी विदेश नीति में सफलतापूर्वक एकीकृत किया है। उदाहरण स्वरूप भारत ने विदेश नीति के माध्यम से

Downloaded from www.studymasterofficial.com

तेल उत्पादक देशों के साथ नए समझौते स्थापित किए हैं जैसे ईरान, साऊदी अरब से तेल आपूर्ति समझौते तथा मध्य एशिया एवं काकेसस से भारत तक विभिन्न नई पाइप लाइंस की स्थापना का प्रयास करके जैसे तुर्कमेनिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत (TAPI) गैस पाइप लाइन एवं ईरान-पाकिस्तान-भारत (IPI) गैस पाइप लाइन तथा विभिन्न देशों के साथ असैन्य परमाणु ऊर्जा समझौता करके जैसे भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु ऊर्जा समझौता,भारत-रूस एवं भारत-फ्रांस असैन्य परमाणु ऊर्जा समझौता।

भारत अपनी विकासशील अर्थव्यवस्था को गतिवान बनाये रखने हेतु विभिन्न देशों/संस्थाओं के साथ ऊर्जा सम्बंधों को सुदृढ़ता से स्थापित कर रहा है। इसी क्रम में भारत द्वारा किये जा रहे प्रयास निम्नांकित हैं-

World Energy Outlook Report: 2011

यह रिपोर्ट अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी द्वारा जारी की जाती है। वर्ष 2011 के लिए World Energh Outlook Report 9 नवम्बर, 2011 को जारी की गई।

इस रिपोर्ट में ऊर्जा कीमत में वृद्धि से अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पडेगा, भू राजनैतिक स्थिति, मूल्य उतार-चढ़ाव और नीति-क्रियान्वयन एवं तेल क्षेत्र में निवेश जैसे कारक ऊर्जा सुरक्षा को प्रभावित किस प्रकार प्रभावित करेंगे, परमाणु ऊर्जा के सन्दर्भ में अनिश्चितता विशेष कर जापान में आई सुनामी के दौरान परमाणु रियेक्टर में विस्फोट के पश्चात इसके पर्यावरणीय प्रभाव इन सभी पर चर्चा की गई।

ईरान से तेल के बदले भुगतान विवाद का समाधान

ईरान, भारत का एक महत्वपूर्ण ऊर्जा साझेदार है क्योंकि वह भारत के लिए दूसरा सबसे बड़ा तेल आपूर्तिकर्ता देश है। भारत की कुल तेल मांग का लगभग 12 प्रतिशत ईरान से पूरा होता है। जिन कंपनियों द्वारा ईरान से तेल आयात किया जाता है उनमें मैंगलोर रिफाइनरी एंड पेट्रोकेमिकल्स लिमिटेड, आईओसी, बीपीसीएल, एचपीसीएल आदि प्रमुख हैं। भुगतान संबंधी समस्याओं के कारण ईरान ने अगस्त माह में भारतीय कंपनियों को तेल आपूर्ति बंद करने का निर्णय किया था। भारतीय कंपनियों पर लगभग +5 बिलियन की देनदारी थी। भारत और ईरान के बीच उत्पन्न होने वाली यह समस्या केवल क्रेता-विक्रेता संबंधों के लिए ही हानिकारक नहीं थी बल्कि यह दोनों देशों के द्विपक्षीय ऊर्जा संबंधों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। ऊर्जा संबंधों की सुदृढ़ता के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि भारत और ईरान के बीच ईरान-पाकिस्तान-भारत (IPI) गैस पाइपलाइन पर वार्ता आरंभ हुई थी। वार्ता की सफलता ऊर्जा के अतिरिक्त आर्थिक संबंधों की सुदृढ़ता के लिए उपयोगी होगी। संबंधों की सुदृढ़ता के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इस वर्ष जब भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्य के रूप में चुना गया तब ईरान ने भारत के साथ अपने संबंधों को पुनर्परिभाषित करने की कोशिश की। कारण यह कि ईरान इस बात को महसूस कर रहा है कि भविष्य में भारत की वैश्विक स्थिति सुदृढ़ होगी। इस पृष्ठ भूमि में भारत और ईरान के बीच तेल संबंधी कोई भी विवाद भविष्य के मित्रवत संबंधों के लिए एक चुनौती बन सकता था। अब जब तेल कंपनियों से जुड़ा भुगतान संबंधी विवाद समाप्त हो गया है तब द्विपक्षीय संबंधों की बेहतरी का मार्ग भी सुदृढ़ हो गया है।

भारत ने यह स्पष्ट किया है कि पहले भाग का भुगतान तुर्की के बैंक के जरिए किया जाएगा। मैंगलोर रिफाइनरीज ने यूनियन बैंक की दिल्ली शाखा में खाता खोला है। बैंक इसे यूरो में तुर्की के सरकारी बैंक हाल्क बैंक (Halk Bank) में स्थानांतरित करेगा। इस विधि द्वारा कुछ राशि का भुगतान भी किया गया है। विवाद के सुलझ जाने से भारत को निश्चित रूप से राहत मिली है।

परमाणु ऊर्जा सुनिश्चित के संदर्भ में भारत के प्रयास

ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में हाल में भारत ने परमाणु ऊर्जा की प्राप्ति के सन्दर्भ में अपने प्रयास तीव्र किए

पवन ऊर्जा के विकास हेतु नई प्रोत्साहन नीति

भारत ने पवन ऊर्जा के विकास को सुनिश्चित करने हेतु इस क्षेत्र में निवेश को प्रोत्साहन करने का निर्णय लिया है। इसके अंतर्गत पवन ऊर्जा से संबंधित इकाइयों को प्रोत्साहित किया जाएगा, ऐसे क्षेत्र में निवेश से प्राप्त आय पर आयकर में छूट का प्रावधान किया गया है। इस क्षेत्र में निवेश करने वाली कंपनियों को सरकार विशेष रियायतें प्रदान करेगी। सरकार सार्वजनिक ग्रिड को पवन ऊर्जा उपलब्ध करने वाली ईकाईयों को 50 पैसे प्रति यूनिट की दर से सब्सिडी प्रदान करेगी। यह सब्सिडी 4 वर्ष से 10 वर्ष तक की अवधि के लिए प्रदान की जाएगी।

हैं। भारत द्वारा विभिन्न देशों से किए जा रहे परमाणु ईंधन पर समझौतो को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि हाल के वर्षों में भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, रूस, ब्रिटेन, कनाडा, दक्षिण कोरिया, कजाखिस्तान, नामीबिया, मंगोलिया एवं अर्जेंटीना से असैन्य परमाणु ऊर्जा समझौता किए हैं।

इन समझौतों से भारत को परमाणु ईंधन की आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकेगी। उल्लेखनीय है कि भारत ने इन समझौतों के सफल क्रियान्वयन हेतु अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA) से भी एक समझौता किया है। इसके अतिरिक्त परमाणु ईंधन आपूर्तिकर्ता समूह (NSG: Nuclear Supplier Group) के दिशा निर्देशों के अनुरूप कार्ययोजना प्रारंभ कर दी है ताकि परमाणु ईंधन की अबाध आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके।

इसके अतिरिक्त भारत अपने पड़ोसी देशों जैसे नेपाल, भूटान एवं बांग्लादेश के साथ विभिन्न जल विद्युत परियोजनाओं पर बड़ी तीव्रता से कार्य कर रहा है। इसी क्रम में इन देशों के साथ मिलकर भारत विभिन्न बांधों का निर्माण कर रहा है।

भारत में पवन ऊर्जा को भी असीम सम्भावनाएं विद्यमान हैं। वैश्विक स्तर पर पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता के सन्दर्भ में शीर्ष 10 देशों में भारत का पांचवां स्थान है। यह क्षमता 9645 मेगावाट है। इस विषय पर नवीन अनुसंधान जारी है एवं भारत पवन ऊर्जा के दोहन हेतु अपने प्रयास तीव्र कर रहा है।

Downloaded from www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

4. भारत की प्रमुख वैश्विक संस्थाओं के साथ आर्थिक अंत: क्रिया
India's Economic Interaction with Important International Institutions

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF: International Monetary Fund)

1945 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ब्रिटेन वुड सम्मेलन के बाद सन् 1946 में एक वित्तीय संस्था के रूप में इसकी स्थापना की गई। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। 187 सदस्यों वाली इस संस्था के उद्देश्यों में निम्नलिखित प्रमुख हैं-

- वैश्विक मौद्रिक सहयोग।
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय स्थापित।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन।
- रोजगार के अवसरों के सृजन के दर में वृद्धि।
- सतत् आर्थिक संवृद्धि में सहायता।
- गरीबी उपसमन में सहायता।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए IMF द्वारा निम्नांकित साधन प्रयोग में लाए जाते हैं-

(i) **निगरानी एवं निरीक्षण**

- वैश्विक, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तरों पर आर्थिक विकास का आकलन।
- किसी राष्ट्र विशेष की वित्तीय नीतियों से अन्य अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन।
- राष्ट्रों की आर्थिक और वित्तीय नीतियों के निर्धारण में सहयोग।
- निगरानी एवं निरीक्षण के लिए तीन विशिष्ट रिपोर्टों का प्रकाशन-
  - (1) विश्व आर्थिक दृष्टिकोण (World Economic Outlook)
  - (2) क्षेत्रीय आर्थिक दृष्टिकोण (Regional Economic Outlook)
  - (3) वैश्विक वित्तीय स्थायित्व रिपोर्ट (Global Financial Stability report)

मुद्राकोष द्वारा दी गयी वित्तीय सुविधायें

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष सदस्यों को व्यापार शेष में उत्पन्न अल्पकालिक व दीर्घकालिक घाटों को पूरा करने के लिए दो प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय तरलता उपलब्ध कराता है (i) **ऋण द्वारा:** ऋण डालरों में दिया जाता है इस पर ब्याज की दर 9% है और इसे सात वर्षों के अन्दर वापस करना होता है। (ii) विभिन्न सुविधाओं द्वारा मुद्रा कोष सदस्य राष्ट्रों को विभिन्न प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कराता है। इनकी भुगतान प्रणाली इस प्रकार है: जितने मूल्य के बराबर की सुविधा चाहिए उतने मूल्य के बराबर घरेलू मुद्राकोष में जमा कराकर एस.डी.आर. प्राप्त किये जा सकते हैं और एक निश्चित समय के पश्चात् एस.डी.आर. जमा करके घरेलू मुद्रा को क्रय करना पड़ता है। सुविधायें हमेशा एस.डी.आर. में ही प्राप्त की जा सकती हैं। इनकी वापसी 7 से 20 वर्षों में सम्भव है और इन पर 3.79% ब्याज देय होता है।

Downloaded From www.studymasteroffical.com

(ii) **तकनीकी सहायता एवं परीक्षण:-** चार क्षेत्रों में IMF द्वारा ऐसी सहायता दी जाती है-

(1) मौद्रिक एवं अन्य वित्तीय नीतियों का निर्धारण।

(2) राजकोषीय नीति प्रबंधन।

(3) सांख्यिकी के आँकड़ों का संकलन।

(4) आर्थिक एवं वित्तीय विधानों का निर्धारण।

(iii) **ऋण प्रदान करना:-** संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के तहत IMF राष्ट्रों को भुगतान संतुलन संकट से बचने के लिए ऋण प्रदान करता है लेकिन इसके लिए अर्थव्यवस्था का उदारीकरण अनिवार्य है।

उल्लेखनीय है कि मार्च 2009 में IMF ने ऋण देने वाली प्रक्रियाओं का सरलीकरण किया है तथा इसके लिए Flexible Credit Line (FCL) की नई संकल्पना विकसित की है। इसमें अल्पकालिक ऋणों के बदले दीर्घकालिक ऋण देने का प्रावधान है। (सामान्यत: 9 माह की अवधि के बदले $3\frac{1}{2}$ वर्ष) वार्षिक ऋण देने की ऊपरी सीमा जो कोटे का 200% थी को दूगना कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त भूगतान संतुलन संकट की स्थिति में दिए जाने वाले ऋण की ऊपरी सीमा (कोटे का 600%) समाप्त कर दी गई है।

World Economic Outlook Report 2011

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा जारी की जाने वाली World Economic outlook report 2011 में भारत की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर वर्ष 2011 के लिए 8.2 प्रतिशत अनुमानित की गई है। उल्लेखनीय है कि पूर्व में इस संस्था ने भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर वर्ष 2011 के लिए 8.4 प्रतिशत अनुमानित की थी। साथ ही, इस रिपोर्ट के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने भारत को सावधान किया है कि वर्तमान में 'अर्थव्यवस्था की तेजी' जैसी परिस्थिति से अर्थव्यवस्था के ओवर हीटिंग (Over heating) की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार भारत सहित विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में 'ओवर हीटिंग' के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे हैं। इसे हाल के महीनों में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में खाद्य पदार्थों के मूल्य बढ़ने के कारण मुद्रास्फीति में वृद्धि के सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार वर्ष 2012 में भारतीय अर्थव्यवस्था 7.8 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ वृद्धि करेगी। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने आगाह किया है कि उत्पादन मूल्यों में वृद्धि एवं तेल आपूर्ति में बाधा उत्पन्न होने से भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने नए खतरे उत्पन्न हो सकते हैं।

IMF का कोटा

कोटे का अर्थ IMF में किसी राष्ट्र के अंशदान से है। इसका निर्धारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में राष्ट्र की सापेक्षिक स्थिति के आधार पर किया जाता है। कोटे के निर्धारण से राष्ट्र को IMF में मतदान का अधिकार प्राप्त होता है तथा उसकी वित्तीय प्रतिबद्धता भी बढ़ती है। कोटे के निर्धारण के लिए निम्नलिखित आधार बनाए गए हैं-

आधार	भारांश	
(1) GDP का आकार	50%	क्रय शक्ति क्षमता के आधार पर- 60% विनिमय दर के आधार पर - 40%
(2) आर्थिक उदारीकरण	30%	
(3) आर्थिक विविधता	15%	
(4) विदेशी मुद्रा भण्डार	5%	

IMF के कोटे को विशेष आहरण अधिकार (SDR) के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इस कारण SDR को IMF को खाते की इकाई कहते हैं।

अंशदान:- प्रत्येक राष्ट्र के कोटे के अंशदान का अर्थ यह है कि उसके द्वारा उस सीमा तक IMF को वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाएगें। कुल अंशदान के 25% अंश को SDR अथवा प्रचलित मुद्राओं के रूप में जबकि 75% को अपनी मुद्रा में रखना अनिवार्य है। सभी सदस्य राष्ट्रों को 250

भारत का IMF में कोटा

IMF ने भारत के दर्जे को अब बढ़कर 11वां कर दिया हैं। इसके कारण भारत का कोटा 1.92% से बढ़ाकर 2.44% हो गया है तथा उस पर आधारित मत का हिस्सा 1.88% से बढ़कर 2.34% हो गया है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

आधारिक मत प्राप्त होते हैं तथा प्रति SDR एक एक अतिरिक्त मत प्राप्त होता है। भुगतान संतुलन संकट दूर करने के क्रय में IMF दो प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करता है। जिसे क्रमशः Gold Tranche तथा Credit Tranche कहते हैं।

- Gold Tranche के तहत् कोटे के शत प्रतिशत तक ऋण चार किस्तों में दिया जाता है जबकि Credit Tranche के तहत् 2009 तक अधिकतम 600% ऋण दिया जाता था। लेकिन वर्तमान में यह ऊपरी सीमा समाप्त कर दी गई है।

विश्व बैंक (WORLD BANK)

1945 में ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन में विश्व बैंक की स्थापना का उद्देश्य निर्धनतम राष्ट्रों को आर्थिक या तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना है। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। यह संकल्पना वस्तुतः July 1944 में ही विकसित हुई थी। आरंभिक चरणों में विश्व बैंक अवसंरचनात्मक परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता देकर गरीबी उपशमन के लिए उत्तरदायी था लेकिन वर्तमान में यह गरीबी उपशमन के साथ-साथ सतत् विकास और संयुक्त राष्ट्र के सहस्त्राब्दि विकास (M.D.G) लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी उत्तरदायी है। विश्व बैंक समूह में पाँच संगठन सम्मिलित होते हैं- IBRD, अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद (IDA), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation IFC), बहुपक्षीय विनियोग गारण्टी संस्था (Multilateral Investment Guarantee Agency–MIGA) तथा इण्टरनेशनल सेन्टर फार सेटिलमेंट आफ इनवेस्टमेंट डिसप्यूट (ICSID) यह अपने सदस्यों को नीतिगत सुधारों तथा विकासात्मक परियोजनाओं के लिए ऋण देता है तथा नीतिगत राय, तकनीकी सहायता तथा ऋण के अलावा सेवायें प्रदान करता है।

उल्लेखनीय है कि विश्व बैंक के सदस्यों का IMF का सदस्य होना अनिवार्य है। बैंक द्वारा दो प्रकार के ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं-

(1) **निवेश ऋणः**- सदस्य राष्ट्रों में सामाजिक आर्थिक ढाँचे के निर्माण एवं विकास के लिए ऋण।

(2) **विकास ऋणः**- विभिन्न नीतिगत अथवा संस्थागत कार्यों के लिए दिया जाने वाला ऋण।

भारत के लिए विश्व बैंक की आवश्यकता

तीव्र गति की बढ़ने वाली भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजी पर्याप्तता का होना अनिवार्य है। यह पूँजी घरेलू संसाधनों, विभिन्न स्त्रोतों से विदेशी निवेश तथा ऋण के रूप में निर्मित होती है। हालांकि एक प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में भारत के समक्ष अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऋण प्राप्ति के एक से अधिक विकल्प उपलब्ध है लेकिन विश्व बैंक से ऋण प्राप्त करना दो रूपों में लाभकारी हैं-

(1) ब्याज की कम दर

(2) ऋण के पुनर्भुगतान की लंबी अवधि।

भारत में कई विकास परियोजनाओं को विश्व बैंक कई वित्तीय सहायता प्रदान करता है। उनमें शिक्षा तथा स्वरूप की परियोजनाएं तथा अवसरंचनात्मक विकास के कार्य शामिल हैं। पिछले दो दशकों में भारत में मानव विकास के उद्देश्य से शिक्षा और स्वास्थ्य को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस दृष्टि से सर्वशिक्षा अभियान और जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों में विश्व बैंक द्वारा दी जाने वाली वित्तीय और तकनीकी सहायता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

MIGA: Multilateral Investment Guarantee Agency

यह संस्था विश्व बैंक समूह से संबंधित संस्था है। इसकी स्थापना, सन् 1988 में 1 बिलियन डालर की आधारिक पूंजी के साथ की गई थी। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। यह संस्था विकासशील देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देती है। यह संस्था विभिन्न निवेशकों को राजनीतिक खतरों से सुरक्षा प्रदान करती है। साथ ही विभिन्न सरकारों को निवेश आकर्षित करने हेतु सलाह भी देती है।

नई मीगा रिपोर्ट (New MIGA Report)

वर्ष 2011 की मांग रिपोर्ट में विकासशील देशों में निवेश सुरक्षा के माध्यम से सतत् वृद्धि एवं विकास को एजेंसी द्वारा बढ़ावा देने पर केंद्रित है।

वित्तीय वर्ष 2011 के लिए मीगा के सदस्य विकासशील देशों के लिए विभिन्न प्रोजेक्ट्स हेतु 1.2 बिलियन डॉलर निवेश को मीगा (MIGA) ने स्वीकृति प्रदान की है। यह अब तक का जारी किया गई सबसे बड़ी निवेश राशि है।

MIGA ने मध्यपूर्व एवं उत्तरी अफ्रीका में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने पर विशेष प्रयास किया है। इस वर्ष एजेंसी ने विवादग्रस्त देशों में विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा दिया है।

Downloaded From www.civilservicesmasterofficial.com DISCOVERY

विश्व बैंक में भारत के मताधिकार में वृद्धि

IMF तथा विश्व बैंक में राष्ट्रों के अंशदान पर मताधिकार निर्भर है। ऐसे मताधिकार का प्रयोग कर बैंक के संचालन के लिए कार्यकारी विदेशकों का चुनाव किया जाता रहा है। मताधिकार में वृद्धि के पूर्व अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन पाँच बड़े अंश धारक थे जिनके द्वारा उनके कार्यकारी निदेशकों का चुनाव स्वत: किया जाता था।

25 अप्रैल, 2010 को विश्व बैंक मे अपनी पूँजी स्टॉक में वृद्धि के लिए राष्ट्रों में मताधिकार में वृद्धि का प्रस्ताव किया। इससे लगभग 86 बिलियन डॉलर के अंशदान के वृद्धि लक्षित थी। इस वृद्धि से IFC को भी 200 मिलियन डॉलर की अतिरिक्त पूँजी प्राप्त हुई थी। मताधिकार में वृद्धि का यह प्रस्ताव मूलत: अक्टूबर, 2009 में विश्व बैंक की विकास समिति की प्रस्तावित बैंठक में किया गया था। इसके उपरांत 3.13% की वृद्धि की गई है। इससे जहाँ चीन की स्थिति जर्मनी और फ्रांस से बेहतर हो गई है वही भारत का स्थान 7वां हो गया है-

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका – 15.85%

(2) जापान - 6.84%

(3) चीन - 4.42%

(4) जर्मनी - 4%

(5) फ्रांस - 5.75%

(6) ब्रिटेन - 5.70%

(7) भारत - 2.91%

विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO: World Intetectual Property Organisation)

बौद्धिक संपदा वह मानवीय क्षमता है जो किसी सृजनात्मक कार्य से आर्थिक अथवा व्यापारिक लाभ प्रदान करती है। ऐसे कार्यों में किसी उत्पाद के डिजाइन, संकेत, चिन्ह अथवा कला संस्कृति से संबंधित सभी कार्य शामिल हैं। ऐसी संपदा की सुरक्षा के लिए सर्वप्रथम सन् 1853 में Interational Bureau for Protection and Inteuectural Property नामक संस्था बनाई गई जिसे सन् 1968 में विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO) का नाम दिया गया। 1974 से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेषीकृत ऐजेंसी के रूप में कार्यरत है। इसका मुख्यालय जिनेवा में है। इसका मुख्य कार्य विश्व स्तर पर बौद्धिक संपदा की सुरक्षा के लिए एक संस्कृति का विकास करना है। इसके अतिरिक्त यह इस संबध में अंतर्राष्ट्रीय मानकों का निर्धारण भी करता है। इस संगठन को निम्नांकित समझौतों से समर्थन प्राप्त है-

(1) The Hague System of Internatinal Design, 1925

(2) Patent Cooperation Treaty, 1979

(3) The Madrid System of Trademark 2003

(4) TRIPS (Trade Related Intellectual Property Rights)

विश्व बौद्धिक संपदा संगठन के उद्देश्य

- बौद्धिक सम्पदा तथा संस्कृति को संरक्षण प्रदान करना।
- औद्योगिक सम्पदा और कॉपीराइट के नियमों तथा मानकों का निर्धारण करना।
- रचनात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहन देना तथा इसके विस्तार के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना।
- गुणवत्तापूर्ण सेवा प्रदान करना।
- पेटेंट, ट्रेडमार्क, औद्योगिक मॉडलों के बारे में अनुरोध दर्ज करना।
- संसाधनों का उपयोग विकासशील देशों की सहायता में करना।
- बौद्धिक सम्पदा के संरक्षण के लिए यह संगठन चालू सन्धियों तथा उनके संशोधन की व्यापक स्वीकृति की ओर नई सन्धियों के विकास को प्रोत्साहित करता है। WIPO प्रबन्धन की कुशलता में वृद्धि लाना।

बौद्धिक संपदा से संबंधित प्रमुख संकल्पनाएं

DISCOVERY
Downloaded from www.studymasterofficial.com

(1) **पेटेंट:-** किसी औद्योगिक उत्पाद अथवा अनुसंधान के लिए किसी व्यक्ति अथवा संस्था को दिए गए अन्नय अधिकार को पेटेंट कहते हैं। भारत में पेटेंट अधिनियम 1970 (2005 में संशोधित) की धारा 2(1)(m) में ऐसी परिभाषा दी गई है।

(2) **Copyright :–** कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में सृजनात्मकता के लिए किसी व्यक्ति अथवा संस्था को दिया गया अन्नय अधिकार।

(3) **Copyleft :–** यह कला मूलत: एक लाइसेंस है जो कला संस्कृति से संबंधित किसी सृजनात्मक कार्य में रूपांतरण कर उसके पुन: उपयोग का अधिकार देता है।

(4) **Trademark :–** किसी उत्पाद अथवा संस्था की पहचान करने वाले विशिष्ट चिन्ह को ट्रेडमार्क कहते हैं। उस चिन्ह का प्रयोग व्यापारिक कार्यों के लिए भी दिया जाता है। उल्लेखनीय है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर TRIPS समझौते के अनुच्छेद 15(1) में इस संबंध में विशिष्ट प्रावधान किया गया है। विश्व स्तर पर प्रचलित ट्रेडमार्क प्रणालियों में निम्नांकित प्रमुख हैं-

(1) **CTM (Community Trade Mark System):–** विशेषकर यह प्रणाली एक अधिराष्ट्रीय प्रणाली है जो यूरोपीय संघ के राष्ट्रों के बीच प्रचलित है।

(2) **बेल्जियम नीदरलैंड-लक्जमबर्ग (BENELUX):–** यह प्रणाली इन्ही तीनों में प्रचलित।

(3) **मैडरेड प्रणाली:-** अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित यह प्रणाली सबसे महत्वपूर्ण है। भारत द्वारा इसकी सदस्यता 2005 में ली गई है।

(5) **Geographical Indiketers (भौगोलिक संकेत):-** किसी देश के विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में उपस्थित अथवा उपलब्ध किसी वस्तु की पहचान अथवा सूचना के आधार पर पेटेंट के लिए आवेदन किया जा सकता है। इसी सूचना को संकेतक कहा गया है।

बौद्धिक संपदा अधिकार एवं दवा उद्योग

भारतीय दवा उद्योग का आकार लगभग 10 बिलियन डॉलर का है तथा विश्व के कुल दवा व्यापार में भारत का अंश 2% है। इस क्षेत्र में शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति है। दवा उद्योग की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रत्यक्ष संबंध जैव प्रौद्योगिकी से है। भारत में जैव प्रौद्योगिकी का आकार लगभग 1.1 बिलियन डालर का है। जिसके वर्ष 2010-11 के अंत तक 5 बिलियन डॉलर तक हो जाने की आशा है।

भारतीय दवा उद्योग में बौद्धिक संपदा अधिकार के विषय पर Indian Pharmaceuticals Association (IPA) तथा Organisation of Pharmaceuticals Producers of India (OPPI) के बीच विवाद बना हुआ है। OPPI द्वारा की गई मागों के आधार पर ऐसे विवाद उत्पन्न हुए हैं। जैसे-

- पेटेंट अधिनियम की धारा 3(d) में संशोधन की मांग। इसमें यह कहा गया है कि पहले से ज्ञात किसी अणु के नए लवणों अथवा उससे निर्मित सहायक उत्पादों का पेटेंट तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि चिकित्सा पद्धति में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो। इस संबंध में 2005 में स्विस कंपनी नोर्बाटिस एजी के उस आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें कैंसर के उपचार की एक नई दवा "इमैटिनेट मिसाइलेट" के पेटेंट का दावा किया गया था। चेन्नई उच्च न्यायालय ने भी नोर्बाटिस के विरूद्ध अपना निर्णय दिया था। वर्तमान में यह मामला उच्चतम न्यायालय में लंबित है।
- OPPI की यह मांग है कि पेटेंट और दवाओं की विक्री की प्रक्रियाँ के बीच सम्बंध स्थापित किया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि जर्मनी की कंपनी "बॉयर एजी" ने दवा महानियंत्रक के उस अधिकार को चुनौती दी थी जिसमें भारतीय कंपनी सिप्ला लिमिटेड द्वारा यकृत कैंसर की एक दवा "नेक्साशीर" की बिक्री की अनुमति दी गई थी। यह मामला भी उच्चतम न्यायालय में लंबित है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO: WORLD TRADE ORGANISATION)

गैट समझौते के उरूग्वे दौर की वार्ताओं के अंतिम चरण में मराकस समझौते के तहत इस विश्व व्यापार संगठन की स्थापना

Downloaded from www.studygovtofficial.com

सन् 1995 में की गई थी। 153 सदस्यीय यह संगठन एक नियम आधारित सदस्य संचालित संगठन है। दूसरे शब्दों में संगठन की कार्य प्रणाली को संस्थागत रूप प्रदान किया गया है। विभेदीकरण के प्रतिषेध के मूल सिद्धांत पर आधारित होने के कारण उसमें एक देश एक मत की संकल्पना प्रयोग में लाई जाती है। इसी कारण इसे विश्व का सबसे लोकतांत्रिक संगठन कहा जाता है।

विश्व व्यापार संगठन की निर्णय लेने वाली इकाई मंत्री स्तरीय सम्मेलन है जिसकी बैठक दो वर्ष में एक बार की जाती है। इसके अतिरिक्त उत्पादों, सेवाओं और बौद्धिक संपदा अधिकारों के विषयों पर विशिष्ट परिषदें कार्य करती हैं।

WTO के तहत् प्रमुख समझौते

(1) **कृषि पर समझौता (AOA: Agreement on Agreeculture)**

प्रारम्भ में गैट (GATT) के प्रावधानों में कृषि व्यापार शामिल नहीं था। इस कारण विकसित देशों ने अपने यहाँ कृषि सहायिकी को प्रोत्साहन देकर कृषि उत्पादन को बढ़ावा दिया। इन देशों में कृषि उत्पादन अधिशेष की स्थिति में हो गया परिणाम स्वरूप विकसित देशों ने उच्च घरेलू समर्थन के द्वारा अपने कृषि उत्पादों की घरेलू बाजार में सस्ती पहुंच को सुनिश्चित किया साथ ही विकासशील देशों के बाजारों में अपने कृषि उत्पादों की पहुंच को प्रोसाहित किया। इसके अतिरिक्त अपने घरेलू बाजारों में विकासशील राष्ट्रों के कृषि उत्पादों को रोकने हेतु सीमाशुल्क एवं मात्रात्मक प्रतिबंध संबंधी उपायों को अपनाया।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) के कृषि पर समझौते के संबंध में इस सन्दर्भ में विभिन्न प्रावधान किए गए।

इस समझौते के अनु० 1 में सहायिकी शब्द परिभाषित है। जिसके अनुसार सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय तथा अन्य प्रकार के सहायता को सहायिकी कहा गया है। कृषि व्यापार को विनियमित करने के लिए सहायिकी की कई श्रेणियाँ बनाई है जो यातायात संकेतों से प्रेरित एक प्रणाली के रूप में कार्य करती है। इसके अंतर्गत ग्रीन बाक्स, ब्लू बाक्स, अम्बर बाक्स, रेड बाक्स सहायिकी शामिल है।

कृषि-समझौते के तहत् अंतर्राष्ट्रीय कृषि-व्यापार में स्पष्टता और पारदर्शिता लाने के लिए सदस्य देश निम्न बिन्दुओं पर सहमत हुए-

(i) विकसित देशों को उत्पाद सहायिकी और निर्यात सहायिकी में कटौती का निर्देश दिया गया।

सहायिकी (SUBSIDY)

सब्सिडी को व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से पांच भागों में बांटते हैं-

(1) ग्रीन बाक्स (GREEN BOX)

इसके अधीन वे आर्थिक सहायता सम्मिलित हैं जो पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों, अनुसंधान, प्रशिक्षण, बाजार सूचना हेतु सहायता ग्रामीण आधारिक संरचना के कुछ रूपों पर दी जाने वाली सहायता से संबंधित हैं। इन्हें हम तटस्थ सब्सिडी भी कहते हैं। इसलिए इन्हें हम सब्सिडी कम करने के लिए नहीं रखते। ग्रीन बाक्स में शामिल गतिविधियों पर दी जाने वाली सहायता को कम करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की सहायता की कोई अधिकतम सीमा नहीं है।

(2) ब्लू बाक्स (BLUE BOX)

ब्लू बाक्स के अधीन वह आर्थिक सहायता रखी गई है जो किसानों को हानिपूर्ति भुगतान के रूप में या फिर उत्पादन को सीमित करने के एवज में दी जाती है। यह सहायता यद्यपि कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है, परन्तु इस प्रकार की सहायता पर अधिकतम सीमा है। जैसे- अमेरिका में सरकारी न्यूनतम समर्थन कीमत और बाजार भाव में अन्तर के बराबर 'हानिपूर्ति भुगतान' सीधा किसानों को दिया जाता है।

(3) अम्बर बाक्स (AMBER BOX)

व्यापार को विरूपित करने वाले सभी घरेलू समर्थन को अम्बर बाक्स में रखा गया है, उसका आकलन समर्थन के समग्र माप (Aggregate Measure of Support) द्वारा करना है, और फिर उसे समाप्त करना है। समर्थन के समग्र माप के 02 हिस्से है-उत्पादन विशिष्ट समर्थन तथा गैर-उत्पादन विशिष्ट समर्थन। भारत में वसूली कीमतें उत्पाद विशिष्ट समर्थन एवं गैर-उत्पादन विशिष्ट समर्थन के तहत उर्वरक, बिजली, सिंचाई, साख आदि पर दी जाने वाली सहायता सम्मिलित हैं।

(4) डी मिनीमिस सब्सिडी (De-Minimis Subsidy)

विकसित देश कृषि उत्पादन के मूल्य के 5 प्रतिशत तक तथा विकासशील देश 10 प्रतिशत तक सहायता दे सकते हैं। इन्हें भी सब्सिडी घटाने में आकलित नहीं करते।

(5) रेड सब्सिडी (Red Subsidy)

ऐसी सब्सिडी जो बिल्कुल प्रतिबन्धित हो उसे रेड सब्सिडी कहते हैं। जैसे सब्सिडी उस दशा के अन्तर्गत प्रदान करता यदि कोई व्यक्ति आयातित वस्तु की तुलना में घरेलू वस्तु का उपयोग करें।

Downloaded From www.Shailveshmasterofficial.com

(ii) विवेकाश्रित लाइसेंसिंग प्रणाली को समाप्त किया जाय। इसके द्वारा निर्यातकों को लाइसेंस से वंचित किया जाता था।

(iii) मात्रात्मक प्रतिबंध सहित सभी गैर-प्रशुल्क बाधाओं को समाप्त किया जाय और सीमा शुल्क की दरों को नियंत्रित जाय। इससे निर्यातकों के लिए अपनी स्थिति का आकलन आसान होगा।

(iv) कृषि उत्पादों पर सीमा शुल्क की अधिकतम दर को चरणबद्ध तरीके से कम किया जाय। विकसित देशों को छह वर्षों में 37% की कटौती करनी थी, जबकि विकासशील देशों को दस वर्षों के भीतर 24% की कटौती। प्रत्येक कृषि उत्पाद पर लागू सीमा शुल्क की दर में विकसित देशों को न्यूनतम 15% और विकाशील देशों को न्यूनतम 10% की कटौती करनी थी।

(2) सेवा व्यापार पर सामान्य समझौता (GATS: General Agreement on Trade and Services)

इसके तहत् कुल 161 सेवाओं के व्यापार को स्वीकृति दी गई है। सेवा व्यापार की 4 प्रणालियों का भी इसमें प्रावधान है-

(1) **Mode I :–** किसी देश की इकाईयों द्वारा अन्य देशों को दी जाने वाली सेवाएं जिनमें बैंकिंग और वित्तीय सेवाएं शामिल नहीं हैं। जैसे- परिवहन, संचार आदि।

(2) **Mode II :–** किसी देश में विदेशियों को प्राप्त होने वाली सेवाएं जैसे- पर्यटन।

(3) **Mode III :–** आर्थिक, वित्तीय तथा बैंकिंग सेवाएं।

(4) **Mode IV :–** निजी अथवा व्यक्तिगत स्तर पर दी जाने वाली सेवाएं जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य परामर्शी सेवाएं आदि।

(3) TRIMS (Trade Related Investment Measures)

इसका संबंध कुछ शर्तों या प्रतिबंधों से है जो कोई देश अपने देश में विदेशी विनियोगों के संबंध में लगाता है। इसका प्रयोग विकासशील देशों ने प्रमुख रूप से किया है। इसमें यह प्रावधान है कि कोई देश ऐसे प्रावधानों को लागू नहीं करेगा जो विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अनुरूप न हो। समझौते के अनु० 1 में निवेश के लिए तीन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख है-

(1) स्थानीय स्तर पर कच्चे माल का दोहन।

(2) उत्पादन के विभिन्न चरणों में मशीनों का उपयोग।

(3) तकनीकों का हस्तांतरण।

(4) सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र (MFN: Most Fovoured Nation Agreement)

समझौते के अनु० 1 में विभेदीकरण के प्रतिषेध को महत्व दिया गया है। इसके अनुसार सदस्य राष्ट्रों द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य है कि किसी राष्ट्र को सर्वाधिक ईष्ट राष्ट्र का दर्जा देने के बाद अंतर्राष्ट्रीय बाजार दुष्प्रभावित नहीं हो।

(5) TRIPS (Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights)

इसके तहत् Patent, Copyright, Trademark तथा भौगोलिक संकेतक जैसे विषय शामिल हैं जिनके विनियमन के लिए एक TRIPS परिषद् कार्य करती है। ट्रिप्स (TRIPS) के अंतर्गत सात बौद्धिक सम्पदा आते हैं-

(i) कापीराइट एवं इससे संबंधित अधिकार

(ii) ट्रेडमार्क

(iii) भौगोलिक संकेतक

(iv) पेटेंट

(v) औद्योगिक रूप रेखा

(vi) व्यापार संबंधी गुप्त सूचना

(vii) इंटिग्रेटेड सर्किट की रूप रेखा।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
DISCOVERY

विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (WTO Ministerial Conference)

1. सिंगापुर सम्मेलन (सन् 1996)

इस सम्मेलन में जिन मुद्दों पर चर्चा की गई उनमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा एवं सुशासन, पर्यावरण संबंधी मुद्दों तथा श्रम मानकों पर चर्चा की गई। उपरोक्त मुद्दों को सिंगापुर मुद्दे कहा गया।

2. जेनेवा सम्मेलन (सन् 1998)

इस सम्मेलन में श्रम मानकों, कृषि सहायकी तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित मुद्दों पर चर्चा की गई। श्रम मानकों तथा कृषि सहायकी जैसे मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य गतिरोध उत्पन्न हुआ।

WTO मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

1. सिंगापुर (1996)
2. जेनेवा (1998)
3. सिएटल (1999)
4. दोहा (2001)
5. कानकुन (2003)
6. हांगकांग (2005)
7. जेनेवा (2009)

3. सिएटल सम्मेलन (सन् 1999)

इस सम्मेलन में चार प्रमुख मुद्दों पर चर्चा की गई :-

(i) कृषि एवं संवाए संबंधी मुद्दे।

(ii) सिंगापुर सम्मेलन के मुद्दे।

(iii) व्यापार एवं श्रम मानकों, व्यापार एवं पर्यावरण, औद्योगिक शुल्क व्यापार जैसे मुद्दे।

(iv) विवादों के समाधान हेतु कार्यान्वयन संबंधी मुद्दा।

इस सम्मेलन में श्रम मानकों के सन्दर्भ में गतिरोध होने से सम्मेलन असफल हो गया।

4. दोहा सम्मेलन (सन् 2001)

इस सम्मेलन में एक व्यापक कार्ययोजना स्वीकार की गई जिसे **दोहा विकास एजेंडा** कहा जाता है। इस विकास एजेंडा के माध्यम से विभिन्न मुद्दों पर वार्ताएं प्रारम्भ करने पर सहमति बनी तथा कृषि एवं सेवा व्यापार पर कुछ अतिरिक्त मापदण्ड एवं समय-सीमा तय की गई। इस सम्मेलन में निम्नलिखित मुद्दों को प्राथमिकता दी गई :-

(i) निर्यात सहायिकी को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करना।

(ii) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण हेतु सीमाकर की दरों में कटौती करना तथा विकासशील देशों के कृषि उत्पादों की विकसित देशों के बाजारों में पहुंच को सुनिश्चित करना।

(iii) विकसित देशों के औद्योगिक उत्पादों के लिए विकासशील देशों के बाजारों को खोलना।

उपरोक्त मुद्दों पर विकासशील राष्ट्रों एवं विकसित देशों के मध्य गतिरोध की स्थिति और तीव्र हो गई।

5. कानकुन सम्मेलन (सन् 2003)

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे मंच की स्थापना करना था जो दोहा दौर की कार्ययोजना की प्रगति की समीक्षा कर सके तथा इस सन्दर्भ में आवश्यक दिशा निर्देश दे सके। परन्तु कृषि एवं सिंगापुर मुद्दों को लेकर विकासशील तथा विकसित राष्ट्रों के मध्य तीव्र गतिरोध ने इस सम्मेलन के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला तथा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का घोषणा पत्र पारित नहीं किया जा सका।

6. हांगकांग सम्मेलन (सन् 2005)

इस सम्मेलन के दौरान विकासशील राष्ट्रों ने ग्रांड एलायंस (G-110) बनाकर एकजुटता प्रदर्शित की। इसी एकजुटता का परिणाम था कि विकसित राष्ट्रों को कृषि सहायिकी समाप्त करने पर सहमत होना पड़ा।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

इस सम्मेलन के कृषि सहायिकी, औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क व सेवाओं के व्यापार पर चर्चा की गई तथा सम्मेलन की समाप्ति में हांगकांग घोषणा पत्र जारी किया गया। इस घोषणा पत्र में विकसित देश अपनी निर्यात सहायिकी को चरणबद्ध तरीके से वर्ष 2013 तक समाप्त करने पर सहमत हुए।

विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रमुख कटौती के संबंध में यूरोपीय संघ द्वारा प्रस्तुत **स्विस फार्मूला** को कुछ संशोधनों द्वारा इस सम्मेलन में स्वीकार किया गया।

स्विस-फॉर्मूला:

स्विस फॉर्मूला अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रशुल्क दर में कटौती के लिए निर्मित किया गया गणितीय फॉर्मूला है। इसे पहली बार स्विस प्रतिनिधि मंडल द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसका लक्ष्य ऐसी क्रियाप्रणाली को उपलब्ध करना है, जहां सीमा शुल्क की अधिकतम दर को लेकर सहमति बन सके साथ ही, निम्न सीमा-शुल्क वाले देश सीमा-शुल्कों में कुछ और कटौती करने पर सहमत हो सकें।

इसके तहत् औद्योगिक उत्पादों के संदर्भ में विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग-अलग मानदंडों की प्रस्तावना की गई है इसके अनुरूप उन्हें अपने यहां आयात-करों में कटौती करनी पड़ेगी।

हांगकांग में 13-18 दिसम्बर 2005 को हुए विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि गैरकृषि वस्तुओं के सम्बन्ध में तटकर की दर को स्विस सूत्र (Swiss Formula) के अन्तर्गत नीचे लाया जायेगा। स्विस सूत्र इस प्रकार है -

$$T_1 = \frac{a \times t_0}{a + t_0}$$

T_1= मूल्यानुसार रूप में अन्तिम प्राप्य दर

t_0= आधार दर

a =विकसित देशों द्वारा प्रस्तावित 15 का गुणांक है इस सूत्र के परिणामस्वरूप उच्चतर टैरिफ में तेज कटौती तथा कम टैरिफ में नरम या कम कटौती होगी। स्विस फार्मूला के तहत अलग-अलग देशों के लिए अलग-अलग गुणांक होंगे।

7. जेनेवा सम्मेलन (सन् 2009)

इस सम्मेलन का थीम था " WTO, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली और वर्तमान वैश्विक आर्थिक वातावरण"। इस सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा एवं ऊर्जा सुरक्षा के मुद्दों पर चर्चा की गई।

इस सम्मेलन में अल्पविकासशील राष्ट्रों WTO को सुदृढ़ करने संबंधी मुद्दों पर चर्चा की गई। इस सम्मेलन में दोहा की वार्ता के दौरान आए गतिरोध को समाप्त करने पर भी चर्चा की गई।

व्यापार एवं पर्यावरण (Trade & Environment)

1. गैट के अनुच्छेद 20(b) और 20(I) में व्यापार और पर्यावरण के संतुलन के विषय पर अनुसंधान के लिए रियायते दी गई हैं।
2. व्यापार और पर्यावरण की कार्य योजना में निम्न प्रमुख तथ्य शामिल है :
   (i) बहुपक्षीय व्यापार और बहुपक्षीय पर्यावरणीय समझौतों के बीच समन्वय।
   (ii) पर्यावरण की रक्षा के लिए विभिन्न व्यापारिक गतिविधियों पर कर अथवा शुल्क का आरोपण।
   (iii) राष्ट्रों को पर्यावरण और व्यापार नीतियों के प्रभाव के आकलन के लिए सहयोग करने का दिशा निर्देश।
   (iv) पर्यावरण और बौद्धिक सम्पदा अधिकार के बीच सामंजस्य।
   (v) पर्यावरण और सेवा व्यापार के बीच सामंजस्य।

व्यापार और पर्यावरण के विषय पर भारत ने यह स्पष्ट किया है कि TRIPS समझौते और जैव विविधता सम्मेलन के प्रावधानों के बीच समन्वय लाया जाना चाहिए साथ ही पर्यावरण मित्र तकनीकों और उत्पादन के हस्तांतरण के लिए प्रक्रियाओं का सरलीकरण अनिवार्य है। भारत के अनुसार पर्यावरणीय मानकों के निर्धारण के लिए वैज्ञानिकता, पारदर्शिता और समता के सिद्धांत का प्रयोग अनिवार्य है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि विकासशील और अल्प विकसित राष्ट्रों को पर्यावरणीय मानकों के निर्धारण में अपेक्षाकृत अधिक लंबी अवधि दी जानी चाहिए।

बायोपाइरेसी (Biopiracy)

बायोपाइरेसी जीवों का अवैधानिक प्रयोग है। इसमें सूक्ष्म जीवों, पादप , जन्तुओं (मानव सहित) और पारंपरिक सांस्कृतिक ज्ञान शामिल है। बायोपाइरेसी एक गैर-कानूनी कार्य है क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय (Convention) का उल्लंघन करता है। इस कार्य में स्वामित्व के कानूनी अधिकारों की अवहेलना की जाती है और पर्याप्त क्षतिपूर्ति भी नहीं दी जाती है। पारंपरिक ज्ञान का व्यावसायिक फायदे के लिए प्रचार-प्रसार किया जाता है।

बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Right-IPR) या पटेंट द्वारा संसाधनों का प्रयोग किया जाता है। पिछले दो दशकों में पश्चिमी देशों द्वारा पेटेंट के माध्यम से तृतीय विश्व के कम विकसित देशों के जैविक संसाधनों, आनुवांशिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान का अपने फायदे के लिए प्रयोग किया गया। यदि एक बार कोई कम्पनी या देश पेटेंट करा लेता है तो पटेंट किये गये सामग्री का उत्पादन कोई दूसरी कम्पनी या देश नहीं कर सकता है। इस प्रकार के कार्यों से किसानों और समुदायों के आजीविका खतरे में पड़ जाती है। बायोपाइरेसी के कुछ मामले भारत से सम्बन्धित हैं जैसे- बासमति हल्दी एवं नीम का मामला। उल्लेखनीय है कि - संयुक्त राज्य अमेरिका की एक कम्पनी राइसटेक ने बासमति की एक प्रजाति टेक्समति की स्वामित्व के लिए दावा किया था।

ट्रेडिशनल नॉलेज डिजिटल लाइब्रेरी (TKDL - Traditional Knowledge Digital LIbrary)

टीकेडीएल का उद्देश्य भारतीय चिकित्सा पद्धति आर्युवेद, यूनानी, और योग को डिजिटल फॉर्म में लाना है। इन चिकित्सा पद्धतियों को, जो संस्कृति, उर्दू, अरबी, फारसी और तमिल भाषाओं में मौजूद हैं, डिजिटल फॉर्म में विश्व के पांच भाषाओं अंग्रेजी, जर्मन, स्पेनिश, फ्रेंच और जापानी में लाया जायेगा, जिससे भारतीय चिकित्सा पद्धति का किसी दूसरे देश और कम्पनियों द्वारा पेटेंट के माध्यम से अनुचित प्रयोग ना हो सके।

एंटी-बायोपाइरेसी टिटी 2010

विकासशील देशों में भारी मात्रा में जैव विविधता पाई जाती है। इन देशों में जैव विविधता से सम्बन्धित पारंपरिक ज्ञान का प्रयोग सदियों से स्थानीय लोगों द्वारा रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। विभिन्न विकासशील देशों की सरकारें और संगठनों द्वारा यह मांग की जाती रही है कि वैश्विक स्तर पर एक वैधानिक नियम बने, जिससे जैविक संसाधन और उससे संबंधित पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित किया जा सके और इसके होने वाली बायोपाइरेसी को रोका जा सके।

विकासशील देशों का मानना है कि एबीएस नियम (ABS Law: Access and Benefit Sharing Law), को मजबूत किया जाना चाहिए। इन देशों के अनुसार अगर एक बार जैविक संसाधन और उससे सम्बन्धित ज्ञान का किसी दूसरे देशों के द्वारा अनुसंधान और वाणिज्यीकरण किया जाता है, तो विकासशील देश अपने अधिकारों का प्रयोग का अधिकार खो देंगे। अभी तक कई ऐसे विकासशील देश हैं जिनके पास जैविक संसाधनों और उससे सम्बन्धित ज्ञान को संरक्षित करने के लिए कोई विधि नहीं है, इस स्थिति में इन देशों के जैविक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान का बायोपाइरेसी करना आसान है।

इसी संदर्भ में जापान के शहर नागोया में नवम्बर 2010 में सम्मेलन हुआ, जिसे नागोया प्रोटोकॉल के नाम से जाना जाता है। प्रोटोकॉल निष्पक्ष और बराबर साझेदारी (Access and Benefit Sharing -ABS) की बात करता है। नागोया प्रोटोकॉल 2012 में लागू होना प्रस्तावित है। यह प्रोटोकॉल अनुवांशिक और जैविक संसाधनों के प्रयोग से सम्बन्धित है। इस प्रोटोकॉल में जैविक संसाधनों के प्रयोग से उत्पन्न लाभों को

Downloaded from www.studymasteroffical.com

निष्पक्ष व बराबर हिस्सेदारी में बांट लिया जायेगा। यह प्रोटोकॉल विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण है। उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों द्वारा लगातार 15 वर्षों से इसकी मांग की जा रही थी और विकसित देश व औषधि तथा जैव तकनीक से सम्बन्धित उद्योग के संचालकों द्वारा विरोध हो रहा था। लेकिन इस प्रोटोकॉल की सबसे बड़ी कमी यह है कि आनुवांशिक संसाधनों के सबसे बड़े प्रयोगकर्ता संयुक्त राज्य अमेरिका इस प्रोटोकॉल का हिस्सा नहीं है। नया एबीए नियम (ABS Law) का तात्पर्य यह है कि अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने लाभों को स्थानीय समुदायों में बांटना होगा। जैसे कोई विदेशी दवा कम्पनी भारतीय पौधों के मिश्रण से किसी उत्पाद का निर्माण करती है तो उसे उन समुदायों को भी इससे अर्जित लाभ में हिस्सेदार बनाना होगा, जिन्होने सर्वप्रथम इन पौधों का पोषण किया था।

इस प्रोटोकॉल के कारण बायोपाइरेसी को रोकने में सहयोग मिलेगी, साथ ही विकासशील देशों के जैविक, आनुवांशिक और इससे सम्बन्धित पारंपरिक ज्ञान को सुरक्षित करने में मदद मिलेगी।

WTO में विवाद के विषय और भारत का दृष्टिकोण (Disputs in WTO and India's Stands)

WTO में मुख्यरूप से दोहा दौर की वार्ताओं के तहत कृषि सहायिकी, NAMA (Non-Agricultural Market Access), विनिर्मित उत्पाद, वन उत्पाद, खन्न उत्पाद, ईधन पर प्रशुल्क में कमी वानस्पतिक तथा स्वास्थ्य जैसे मानकों और जैव पायरेसी जैसे विषय विवादास्पद हैं। इनके समाधान के लिए वर्ष 2008 में एक प्रारूप तैयार किया गया था लेकिन विवाद अबतक बना हुआ है।

कृषि सहायिकी के विषय पर विवाद का मुख्य कारण यह है कि विकासशील राष्ट्रों का यह मानना है कि विकसित राष्ट्रों की संरक्षणवादी नीतियों के कारण उनके कृषि उत्पादों का निर्यात बाधित होता है, दूसरी ओर ऐसे राष्ट्र छाड। उत्पादों पर प्रशुल्क में कमी करने के लिए तब तक तैयार नहीं है जब तक की विकसित राष्ट्र कृषि सहायिका/प्रशुल्क कम नहीं करते। उल्लेखनीय है कि छाड। उत्पादों पर प्रशुल्क में कमी से विकासशील राष्ट्रों में आयात की अधिकता और अंततः भुगतान संतुलन का संकट उत्पन्न हो सकता है। वर्ष 2008 के प्रारूप में यह कहा गया है कि विकसित राष्ट्र अगले 5 वर्षो में सहायिकी में वार्षिक 54% की कमी करेंगे। जबकि विकासशील राष्ट्रों द्वारा अगले 10 वर्षों में 36% की औसत दर से कमी जाएगी।

भारत में WTO में विशेष सुरक्षा प्रक्रिया [SSM : Special Safe guard

WTO एवं भारत

पिछले एक दशक में भारत की छवि WTO में विकासशील राष्ट्रों के नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरी है विशेषकर 2001 में आरंभ हुई दोहा दौर के वार्ताओं से शामिल कृषि सहायिकी, गैर कृषि उत्पादों पर प्रभुत्व तथा व्यापार और पर्यावरण जेसै विषयों पर विकसित और विकासशील राष्ट्रों के बीच विवाद बना हुआ है। विवाद का मुख्य कारण यह है कि विकसित राष्ट्रों द्वारा कृषि सहायिकी को कम करने के बाद ही विकासशील राष्ट्रों द्वारा गैर-कृषि उत्पादों पर प्रभुत्व में कमी की जाएगी। भारत में संगठन की बैठकों में विशेष सुरक्षा प्रक्रियों को और सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया है, इस प्रक्रियों के तहत् विकासशील राष्ट्रों को यह अनुमति है, कि अर्थव्यवस्था की अनिश्चितता के सन्दर्भ में विशिष्ट कृषि उत्पादों को आयात को कम करने के लिए वे शुल्क आरोपित कर सकते हैं।

कृषि वार्ताओं के संबंध में भारत ने यह स्पष्ट कहा है। कि जब तक विकसित राष्ट्रों द्वारा निर्यात सहायिकी खत्म नहीं की जाती तब तक विकासशील राष्ट्रों के व्यापार में व्यवधान बना रहेगा। ऐसी स्थिति में विकासशील राष्ट्रों द्वारा कृषि सहायिकी को कम करना संभव प्रतीत नहीं होता। दूसरी ओर, भारत ने गैर-कृषि उत्पादों (NAMA: Non Agricultural Market Access), जिसमें विनिर्मित उत्पाद, वन तथा खनन उत्पाद, तथा ईंधन शामिल हैं, पर प्रशुल्क कम करने के विषय पर कहा है कि इसमें कमी तभी की जा सकती है जब विकसित राष्ट्र निर्यात सहायिकी को समाप्त करें।

भारत इस बात का भी पक्षधर है कि प्रशुल्क में कमी के लिए स्विस फार्मूले को स्वीकार किया जा सकता है लेकिन इसके लिए दो अलग-अलग गुणांक निर्धारित होने चाहिए क्योकि NAMA उत्पादों पर प्रशुल्क में कमी के लिए विकसित और विकाशील राष्ट्रों की दरें अलग-अलग होनी चाहिए।

बौद्धिक संपदा अधिकारों के विषय पर भारत का मानना है कि विकासशील राष्ट्रों को अनुसंधान के लिए विशेष सहायता (तकनीकी तथा वित्तीय) दी जानी चाहिए। इसी क्रम में भारत ने जैव-पाइरेसी के विरूद्ध चलाए गए अपने अभियान में यह स्पष्ट किया है कि पेटेंट के आवेदन में ही यह स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए कि जिस जैव संसाधन का प्रयोग किया गया है वह किस देश से प्राप्त हुआ है। जैव संसाधन के स्त्रोत देश को उस संसाधन के वाणिज्यिक उपयोग से होने वाले लाभ का

Downloaded From www.studymaterialofficial.com

Machanism, को और सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया है। इस प्रक्रिया के तहत विकासशील राष्ट्रों को यह अनुमति दी गई कि अर्थव्यवस्था की अनिश्चितता के संदर्भ में विशिष्ट कृषि उत्पादों के आयात को कम करने में आयात शुल्क आरोपित कर सकते हैं।

विशेषकर नामा उत्पादों पर प्रशुल्क में कमी के लिए प्रस्तावित स्विस फॉमूला पर अब तक सहमति नहीं बन पाई है, जिसका कारण गुणांको के निर्धारण पर असहमति है। भारत ने यह कहा है कि आम सहमति पर आधारित निर्णयन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा विकासशील राष्ट्रों पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं दिया जाना चाहिए। निर्णयन की इस प्रक्रिया को क्षैतिज प्रक्रिया कहा गया है।

अंश दिया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि जैव-पाइरेसी किसी जैव संसाधन के अवैध अथवा पूर्व सूचना दिए बिना उपयोग (वाणिज्यिक) की संकल्पना है।

विश्व व्यापार वार्ताओं को समर्थन देते हुए भारत ने दक्षिण-दक्षिण सहयोग और व्यापार सृजन को भी समर्थन दिया है। उल्लेखनीय है कि 29 जनवरी, 2011 को दावोस में आयोजित सम्मेलन में भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों ने इस वर्ष के अंत तक दोहा दौर की वार्ताओं को दुबारा प्रारंभ करने पर बल दिया है।

बौद्धिक संपदा अधिकारों के विषय पर भारत ने यह स्पष्ट किया है कि अनुसंधान और विकास के लिए विकासशील राष्ट्रों को पर्याप्त तकनीकी और अन्य प्रकार की सहायता दी जानी चाहिए। इसी प्रकार जैव पाइरेसी पर रोक लगाने के लिए भी भारत ने एक आंदोलनात्मक कार्यवाही की। जैव पायरेसी का अर्थ किसी जैव संसाधन के पूर्व सूचना के बिना अवैध वाणिज्यिक उपयोग से है। इस संबंध में भारत ने यह कहा है कि पेटेंट के आवेदन में ही उस जैव संसाधन के स्रोत्र राष्ट्र का उल्लेख किया जाना चाहिए और उसके वाणिज्यिक उपयोग से प्राप्त लाभ का अंश भी उसे दिया जाना चाहिए।

DISCOVERY
Downloaded from www.studymasterofficial.com